पण्डितवेदनीय दीपनी



पण्डितवेदनीय दीपनी

विषय-सूची

पृष्ठ– १

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

पणाम और पटिञ्ञा

नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
सम्बोधप्पटिपन्नोस्मि, तस्स मे सरणं भव।।

(हे बुद्ध) वीर! आपको मेरा नमन। हे वीर बुद्ध! आप सर्व व्याधियों से विप्पमुक्त हैं। आप बन्धन काट चुके असि हैं। मैं संकीर्ण दुःखों में गिरा हुआ हूं। हे वीरवर भगवान बुद्ध मैं आपके शरण में होऊं।

पृष्ठ– २

तिलोकाधिपति बुद्धं, तिलोकस्स हितेसिनं। साधुं संसिय साविस्सं, साधूनं साधुसादिनं।।

मैं (तिलोक), तिलोकाधिपति या काम-रूप-अरूप नामक तीनों लोकों के अधिपति या - इन तीनों लोकों के हितैषी आप भगवान बुद्ध को - शिष्यों द्वारा पूजित बुद्ध के समान निवेदन कर (अनुमति लेकर) सर्वोत्तम साधु आस्वाद की कामना वाले साधुओं (शिष्यों) को साधु (सर्वोत्तम) को ही कहूं।

इन दोनों गाथाओं का सारांश यह है :– भगवान बुद्ध की वंदना कर - वे यह कामना करते हैं कि सर्वोत्तम की कामना से अरण्य वासी हुए उनके शिष्य - श्री इन्दक, श्री नन्दमाल, श्री पञ्ञा, श्री नन्द, श्री सुन्दर इत्यादि सभी शिष्यों के प्रति वे (तिलोक) सर्वोत्तम की ही देशना करें।

इति पणामपटिञ्ञापब्बं

१. साधुसाविनी पब्बं

शिष्यों! सर्वोत्तम की देशना करता हूं। प्रतिज्ञात के अनुसार मैं तुम लोगों को सर्वोत्तम की देशना करूंगा। भलीभांति सुनो। गूढ़ार्थ को आर-पार जानने के लिये ठीक-ठीक हृदयंगम करो।

पृष्ठ– ३

साधु वो साधवे देसिस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ भासिस्सामि। कतमञ्च साधवे धातु, निब्बानपत्तो साधवे साधु, निब्बानपत्तो साधूति। निब्बानपत्तो साधवे साधूति इति

खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं। तस्मिं हि पत्ते सो पुग्गलो न जातो, न व्याधितो, न जज्जरितो, न मतो, न सोचितो, न परिदेवितो, न दुक्खितो, न दोमनस्सितो, न उपायासितो ति। निब्बानपत्तो साधवे साधूति इति यन्तं वुत्तं। इदमेतं पटिच्च वुत्तन्ति।

(सेक्ख्यभासित साधुसाविनी सुत्त पाठ।)

साधुओं! मैं तुम्हें साधु की देशना करूंगा। ओ अच्छे शिष्यों! मैं तुम शिष्यों को - सर्वोत्तम की देशना करूंगा। मेरी देशना को सुनो। साधुतापूर्वक भलीभांति गूढ़ार्थ को आर-पार जान सकने योग्य मन में धारण करो। मैं भाषित करता हूं। साधुओ! (शिष्यो! भिक्षुओ) साधु क्या है? कौन अच्छा सर्वोत्तम नियम है? साधुओ! निर्वाण प्राप्त करना सबसे अच्छा है। साधु है। निर्वाण प्राप्त करना साधु है। **'निब्बानपत्तो साधवे साधु'** इस वचन को वस्तुतः मैं कहता हूं। किस हेतु से (किस कारण को लक्ष्य कर।) इस वचन (कथन) को देशित करता हूं। इसके देशित करने के कारण को बताता हूं - उसे निर्वाण को प्राप्त कर लेने पर - वह पहुंचा हुआ पुग्गल जन्म नहीं लेता। गर्भशयन प्रतिसन्धि नहीं करता। रोगी नहीं होता। न जर्जरित (बूढ़ा) होता। न मरता है। न सोच करता है। न रोना कौदना - परिदेव करता है।

पृष्ठ– ४

न दुक्ख पाता है। न दौर्मनस्य होता है। न उपायास पश्चाताप करता है। इसीलिये **'निब्बानपत्तो साधवे साधु'** इस वचन को मैं कहता हूं। इस वचन को मैं इसीलिये कहता हूं कि इसके साक्षात्कार से गर्भशयन, रोग, जरा, आदि नहीं आता। इन सभी विशिष्ठ लाभों के कारण इसे कहता हूं। यहां पर **साधु साविनी सुत्त** समाप्त हुआ।

साधुसाविनी सुत्त विग्रह वर्णन

"सेक्ख्य भासित साधु साविनी सुत्त' कहने का तात्पर्य यह है कि– "साधु वो साधवें देसिस्सामि" इत्यादि कथन क्रम सुवुत्तसवन इत्यादि पांच गुण विशेष से पूर्ण होने के कारण इसे सुत्त कहते हैं। "साधु सावेति एत्थ एतेनाति वा साधु साविनी" इस सुत्त में अथवा एक प्रकार से इस सुत्त से 'साधु' को 'सर्वोत्तम को' देशित किया गया है। इस तरह सर्वोत्तम की देशना का विषय होने के कारण वह सुत्त साधुसाविनी सुत्त कहलाता है।

सेक्ख्येन सेक्ख्यभगेन सेक्ख्यथेरेन सेक्ख्या चरियेन भासितं साधु साविनी सुत्तं सेक्ख्यभासित साधु साविनी सुत्तं।

इस प्रकार सेक्ख्य पब्बत थेर ने साधु साविनी सुत्त की देशना की। अतः वह साधु साविनी सुत्त कहलाया।

पृष्ठ– ५

इसके पांच गुणों के आधार पर इसके (ग्रन्थ में) पांच नाम इस प्रकार हैं– (१)

साधुसाविनी (२) सुदुद्दसपकासनी (३) अतक्कावचर दीपनी (४) पण्डितवेदानिय दीपनी (५) भीरुत्ताण पकासनी

पृष्ठ – ६

२. निब्बान कित्तन पर्व

शिष्यो! निर्वाण की प्राप्ति सर्वोत्तम है। निर्वाण व - निर्वाण प्राप्ति का मार्ग - विधि को मैं देशित करूंगा। शिष्यो! तुम लोग सुनो! इसने गूढ़ार्थ, स्वाभाविक अर्थ को पारदर्शी के समान भलीभांति कर हृदयंगम करो। मैं देशित करता हूं।

निब्बान कित्तन सुत्त –

१. सुणाथ साधवो सब्बे, यावन्तेत्थ समागता।
निब्बानं देस मिस्सामि, सच्चं पण्डितवेदितं।।

२. अत्थि खो साधवे पारं, निब्बानं बुद्धदेसितं।
असोकं सीतलं सन्तं, यत्थ रागो निरुज्झति।।

३. अत्थि खो साधवे पारं, निब्बानं बुद्ध देसितं।
असोकं सीतलं सन्तं, यत्थ दोसो निरुज्झति।।

४. अत्थि खो साधवे पारं, निब्बनं बुद्ध देसितं।
असोकं सीतलं सन्तं, यत्थ मोहो निरुज्झति।।

५. अत्थि खो साधवे पारं, निब्बानं बुद्धदेसितं।
असोकं सीतलं सन्तं, यत्थ दुक्खं निरुज्झति।।

(सेक्ख्य भासित निब्बान कित्तन सुत्त पाठ)

१. ओ साधुओ! शिष्यो! इस 'चॉय-ठो' नगर, सेक्ख्य पर्वत पर मुझ आचार्य के पास जब तक समागम है - तुम सभी लोग सुनो। मैं तुम शिष्यो को केवल पण्डित जन ही जिसे अनुभूत करते हैं - उस पंडित वेदनीय सत्य - निर्वाण धर्म को कहता हूं।

पृष्ठ – ७

२. ओ साधुओ! शिष्यो! उस निर्वाण धर्म में राग निरुद्ध हो जाता है। भगवान

बुद्ध द्वारा देशित भवसागर पार जाने वाला, अशोक, शीतल, शांत - वह निर्वाण धर्म है। जहां राग निरुद्ध हो जाता है - वह असङ्खत परमत्थ अवस्था (के रूप में) वस्तुतः है।

३. ओ साधुओ! शिष्यो! उस निर्वाण धर्म में द्वेष निरुद्ध हो जाता है। भगवान बुद्ध द्वारा देशित - भवसागर पार जाने वाला - अशोक, शीतल, शांत (अवस्था) - वह निर्वाण धर्म है। जहां द्वेष निरुद्ध हो जाता है - वह असङ्खत परमत्थ अवस्था है।

४. ओ साधुओ! शिष्यो! उस निर्वाण धर्म में मोह निरुद्ध हो जाता है। भगवान बुद्ध द्वारा देशित भवसागर पार जाने वाला, अशोक, शीतल, शांत (अवस्था) - वह निर्वाण धर्म है। जहां मोह निरुद्ध हो जाता है - वह असङ्खत परमत्थ अवस्था वस्तुतः है।

५. ओ साधुओ! शिष्यो! उस निर्वाण धर्म में दुक्ख निरुद्ध हो जाता है। भगवान बुद्ध द्वारा देशित भवसागर पार जाने वाला, अशोक, शीतल, शांत (अवस्था) - वह निर्वाण धर्म है।

पृष्ठ – ८

जहां दुक्ख निरुद्ध हो जाता है। वह असङ्खत परमत्थ अवस्था वस्तुतः है।

निब्बान कित्तन सुत्त अर्थ समाप्त

साधुओ! शिष्यो! इस निर्वाण किर्त्तन सुत्त को आदरपूर्वक, भलीभांति अभिप्राय को आर-पार जानते हुए हृदयंगम करो।

निर्वाण का उदाहरण द्वारा वर्णन –

१. साधुओ! शिष्यों! यदि उदाहरण से कहें तो यह शांत भाव, शीतल भाव वाला - राग-द्वेष-मोह - सभी दुक्खों का वस्तुतः निरोध - निर्वाण धर्म - हिमवन्त के अनोतत्त सरोवर के समान है।

२. वह निर्वाण भय भैरवमुक्त क्षेम पूर्ण नदी के पार वाले तट के समान है। वह नदी जो तीव्र धार वाली... विस्तृत घाटों वाली है - उसके पार क्षेम पूर्ण तट जैसा निर्वाण है।

३. तावतिंस शक्र देवताओं का स्थान अयुज्झ भूमि वाला सुदस्सन नगर के जैसा है।

निर्वाण का उदाहरण अनोतत्त से देना

१. किस तरह से एक समान हैं? हिमालय का अनोतत्त सरोवर जिसके चारों ओर सुदस्सन, गन्धमादन आदि पांच पर्वत हैं। आंधी-तूफान, चिलचिलाती धूप आदि से रहित हैं।

सरोवर शांत और धीर है - उसमें भंवर या उर्मियां या लहरें नहीं हैं। शीतल एवं शांत - स्थिर है।

पृष्ठ – ७

सरोवर के आस-पास चारों दिशाओं - आठों दिशाओं में यदि भयंकर वनाग्नि भी लग जाती है तो वह इस अनवतत्त सरोवर के समीप पर आते-आते निःशेष हो जाती है। बुझ जाती है। निरुद्ध हो जाती है। इस अनवतत्त सरोवर में सभी प्रकार की वनाग्नियां आ-आकर बुझ जाती हैं। उनको बुझाने वाला, निरुद्ध करने वाला स्थान है। उन वनाग्नि के बुझकर निरुद्ध होने - ताप के परे मुक्त रहने वाला है - वह ताप के आंच से मुक्त है। उसी तरह - शिष्यों! यह निर्वाण धर्म-सी है। उत्पाद-स्थिति-भंग (व्यय) कठिन है। इसमें उत्पत्ति स्थिति एवं विनाश रूपी तरंगें नहीं हैं। शांत है। शीतल है। स्थिर है। चारों दिशाओं से, आठों दिशाओं से, दसों दिशाओं से - संपूर्ण इक्तीस लोकों से झंझावात से भी भयंकर भीषण रागाग्नि, दोषाग्नि, मोहाग्नि, जाति-अग्नि, जराग्नि, मरणाग्नि, शोकाग्नि इत्यादि ग्यारहों प्रकार की अग्नियां उस शांत, शीतलीभूत - निर्वाण के स्थान पर पहुंचने पर समाप्त हो जाती हैं। निरुद्ध हो जाती हैं - निःशेष हो जाती हैं। यह श्रेष्ठ निर्वाण - उन ग्यारह प्रकार की अग्नियों के पहुंच-पहुंचकर समाप्त हो जाने का स्थान है। शांत हो जाने का स्थान है। निरुद्ध हो जाने का स्थान है। उनके एकादसाग्नियों का पहुंच-पहुंचकर मरण स्थान - शांति एवं निरोध नामक - संस्कृत (समुत्पन्न) ताप जो साथ में है उसे भी बिना जला पाये असंस्कृत (अनुत्पन्न) धातु के रूप में मुक्त होकर स्थिर हो जाता है। इस तरह निर्वाण अनवतत्त सरोवर के समान है।

अतिअच्छो सुगम्भीरो, निब्बानरहदो वरो।
देसिंतो धितिमन्तेहि, यम्हि गिनी निरुज्झरे।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

ओ साधुओ!... ओ भिक्षुओ! अतिअच्छो अर्थात् उत्पाद स्थिति - विनाश नामक लहरों से, तरंगों से युक्त अत्यंत शांत निर्मल सुगम्भीर - जैसे नदी-सागर में नन्हा खरगोश - छोटे-छोटे बुद्धि के पैर से उसमें उतरकर थाह लेने में असमर्थ - वैसा सुगम्भीर

पृष्ठ – १०

श्रेष्ठवर अथवा याचित्त (इप्सित) निर्वाण रूपी अनोतत्त दह को धितिमन्त भगवान बुद्ध - ज्ञान समाधि में धितिमन्त ने देशित किया है। उनके द्वारा देशित - उस अनोतत्त सरोवर में ग्यारहों प्रकार की अग्नि बुझ जाती है।

निर्वाण का उदाहरण प्रबल पर्वतीय जल प्रवाह (के पार)

२. शिष्यो! जान मारने के लिये पीछा कर रहे चोर-डाकू - पकड़ते ही हत्या कर डालेंगे। उनसे भयभीत एक ब्राह्मण। वनखण्ड में भागा जा रहा है। सामने ही बाढ़ आयी हुई अति वेग वाली पर्वतीय विशाल नही। कूद गया। छाती तक पानी। जूझता है।

भयमुक्त - उस पार निकलना चाहता है। तैरता है। हत्यारे डाकू पीछे कूद पड़े - जल प्रवाह भी बहुत तीव्र - ऊंची-ऊंची लहरें। बड़े-बड़े भंवर - चकोह। जान की बाजी लगाकर प्रयत्न करता है। तैरता है - हाथों से, अपनी छाती से, पानी के वक्ष को चीरता है। उस पार का किनारा मानो पुकार रहा है - तैर गये - पहुंच गये - प्रयत्न करो - आ जाओ। इस तरह तैरकर मृत्यु के पार सुख पूर्ण, क्षेम पूर्ण नदी के दूसरे तट पर पार पहुंच जाता है। तट पर चढ़ गया। शत्रु हत्यारों से परे - नदी के ऊंची लहरों से - भंवर के पार - भयमुक्त स्थान पर पहुंच गया। जैसे ही वह दूसरे तट पर पहुंच गया - पीछे देखता है कि उसके सभी शत्रु जो मृत्यु के ग्राहक थे - चूर-चूर होकर नष्ट-विनष्ट हो गये। जल-तरंगें - जल-प्रवेग - झाड़-झंखाड़ - कांट-कुश - जल-भंवर - रेत-दलदल सारे कुछ - उस तट पर - क्षेम तट पर स्पर्श करते ही समाप्त हो गये! निरुद्ध हो गये।

मेरे शिष्यो! गूढ़ार्थ अभिप्राय समझाने के लिये मैंने यह रूपक बांधा। यह रूपक इप्सित गूढ़ार्थ को समझाता है।

पृष्ठ– ११

१. शिष्यो! पीछा करने वाले शत्रु कौन? रूपस्कंध आदि पांच उपादानक्खन्धा ही हैं।

२. पर्वत खण्ड में भीषण वेग से प्रवाहमान नदी - चक्खायतन आदि छः अज्झत्तिकायतन ही हैं।

३. अन्य जल-प्रवाह - लहरें-बाढ़ क्या हैं। यह कामोघ इत्यादि चार ओघ (बाढ़) ही हैं।

४. झाड़-झंखाड़, कांट-कुश आदि क्या हैं? यह कामच्छन्द इत्यादि पांचों नीवरण ही है।

५. रेत-बालू दलदल - भंवर-चकोह क्या है? तण्हामानदिट्ठि नामक तीनों पपञ्चधर्म हैं।

६. बहुत कठोर प्रयत्न कर बाढ़ को अपने वक्ष द्वारा चीरकर - पार कर लिया अर्थात् सम्यकदिट्ठि आदि अष्टांगिक मार्ग को ही कहा।

७. हाथ से पानी काट-काटकर तैरा अर्थात् - वीर्य को कहते हैं।

८. भयरहित, उस पार क्षेमपूर्ण तट नामक शांति - असंस्कार धातु [(अनुत्पाद) असङ्खत धातु)] निर्वाण धर्म को कहते हैं। शिष्यों - संपूर्ण आयतन, सभी ओघ, सभी निवरण, सभी पपञ्च किलेस दुक्ख - जैसे-जैसे निर्वाण के रास्ते पर आगे बढ़ते जावेंगे - समाप्त होते हुए अंततः निरुद्ध हो जावेंगे।

९. बिना मरे सुखपूर्वक उस पार के क्षेमपूर्ण तट पर पहुंच गया। नदी के पार जहां बाढ़ का पानी समाप्त हुआ धरती लग गयी - तट आ गया, उस पर चढ़ गया। सभी दुःखों भयों से मुक्त हो गया। वह सुखपूर्वक पहुंच जाने वाला ब्राह्मण कौन है? वह अरिहन्त पुग्गल ही है! इस तरह निर्वाण संपूर्ण भय दुःखों के निरुद्ध वाला स्थान है। वह निर्वाण बाढ़पूर्ण पर्वतीय नदी के उस पार क्षेमपूर्ण तट ही है।

पृष्ठ – १२

२ - अतिण्णपुब्ब मेवेतं, भेरवं दुरतिक्कमं।
ओघं तरन्ति सप्पञ्ञा, यस्मिं वेरा विलीयरे।। (सेक्खन्ध भासित गाथा)

ओ - साधुओ! शिष्यो! - उस निर्वाण रूपी पार वाले तट पर वैरी शत्रु विलीन हो जाते हैं। शत्रु विहीन क्षेमपूर्ण पहले तट का अभिसन्धान कर (लक्ष्य कर) प्रज्ञावान लोग - जिसे पूर्व में कभी भी तीर्ण नहीं किया, जो भय-भैरवपूर्ण है - कठिन है। जिसका पार करना ऐसा दुरतिक्रमण है - ऐसे चार प्रकार के बाढ़ को तैरकर पार कर लिया। तीर्ण कर लिया। तिरन्ति।

निर्वाण को शक्र राज की राजधानी नगर सुदस्सन के समान वर्णन

३. शिष्यो! असुर एवं देवराज शक्र में युद्ध हुआ। तावतिंस देवलोक के शक्रादि हारने लगे। पीछे हटने लगे। असुर पीछा करने लगे। तावतिंस के देव लोग भयभीत होकर भागे। भागकर तिवतिंस देवलोक के नाभि स्थल में स्थित सुदस्सन नगर में प्रविष्ट हो गये। नगर के एक सहस्त्र द्वारों को बन्द कर लिया। निर्भय हो गये। कांपना समाप्त हो गया। सुखपूर्वक हो गये। असुर लोग सुदस्सन नगर में प्रविष्ट नहीं हो सकते थे। प्राचीर फांदकर भी जाना असंभव था। सुदस्सन नगर सुदृढ़ था। उस पर आक्रमण कर अधिकृत करना वश की बात नहीं थी। अतएव असुर लोग नगर प्राचीर के पास से ही अपने नगर वापस लौट गये। इस तरह युद्ध कर पराजित किया जा सकने वाला वह स्थान नहीं था। शक्र राज का वह स्थान अतुलित रत्न भंडार, सुवर्णपूर्ण था। युद्ध में अपराजित वह महासुदस्सन नगर इसी कारण से अयुज्झ भूमि कहलाता है।

ठीक इसी तरह निर्वाण भी महाअतुल सुदस्सन नगर-सा है। वशवर्ती देवता कहलाने वाले **देवपुत्त मार**, एक हजार पांच सौ क्लेश नामक - **किलेसमार**, पंच स्कंध नामक - **खन्धमार**, मृत्यु नामक **मच्चुमार**, कुशल कम्म, अकुशल कम्म नामक **अभिसङ्खारमार** यह पांचों मार असुर हैं। इनके आक्रमण हैं। पसीने से तर-बतर इनके भव से पलायन कर रहे योगी पुग्गल हैं। वह निर्वाण रूपी शांति स्वभाव वाला असङ्खत धातु भूमि - नामक महाअतुल सुदस्सन नगर है। जिसमें पहुंचकर सभी द्वार बंद कर लेने पर भयभीत होकर कांपना नहीं रहेगा। सभी प्रकार के भयों से रहित हो जावेंगे। सुखपूर्वक रहेंगे। पांचो मार अर्थात् असुर हैं। शत्रु हैं। यह सङ्खत धर्म हैं। इनके विपरीत - शांत स्वभाव में स्थित

वस्तुतः सही मायने में असङ्खत धातु अर्थात् निर्वाण नामक महाअतुल सुदस्सन नगर में पहुंचने पर - वे सभी मार इस असङ्खत नगर में फांदकर प्रविष्ट नहीं हो सकते। वे इस असङ्खत नगर को युद्ध द्वारा पराजित नहीं कर सकते। वे इसका भेदन नहीं कर सकने के कारण सभी हार मानकर लौट जाते हैं। इस तरह मार द्वारा युद्ध में अपराजेय स्थान के रूप में होते हैं - निर्वाण प्राप्त अरिहन्त। जैसे कि महाअतुल सुदस्सन नगर अयुज्झ भूमि है वैसे ही निर्वाण प्राप्त अरिहन्त होते हैं।

इस तरह निर्वाण को तावतिंसा के शक्र राज की नगरी सुदस्सन नगर से तुलना किया गया है।

३. अकम्पितं अचलितं, अपुथुज्जन सेवितं।
अगति यत्थ मारस्स, तदरिया-भि मोदरे।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

साधवे! शिष्यो! अपृथग्जनों से सेवित अर्थात् आर्य जनों से ही मात्र सेवित - वह निर्वाण रूपी महाअतुल सुदस्सन नगर अकम्पित है। पांचो मार के भय से निर्भय अकम्पित है। वह अचलित है। पांचों मारों द्वारा चलायमान नहीं किया जा सकता। वह अचलित है। साधवे! सत्पुरुषों! उस निर्वाण

पृष्ठ– १४

रूपी महाअतुल सुदस्सन नगर में अथवा यह नगर पांचो मार की, असुरों की - अगति है। वे यहां चढ़ाई नहीं कर सकते। इनकी गति यहां नहीं है। इन मारों व असुरों की जहां गति नहीं होती उस महाअतुल सुदस्सन नगर में आर्य पुग्गल लोग अभिमोद करते हैं। मोदपूर्ण विहार करते हैं।

ओ शिष्यो! इस तरह निर्वाण धर्म सभी भयों, दुःखों का अंत है, निरोध है। वहां मात्र शांति है। वह अनोतत्त सरोवर जैसा है। क्षेमपूर्ण उस पार के तट-सा है। अयुज्झ भूमि नामक सुदस्सन नगर के समान है।

४. अत्थस्सायं विञ्ञापिनी, उषमा विञ्ञूहि देसिता।
विञ्ञिस्सन्ति महापञ्ञा, पञ्ञं पञ्ञेन देसितं।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

ओ शिष्यो! विज्ञजनों ने इन उपमा समूहों को अर्थ सहित देशित किया है। ओ शिष्यो प्रज्ञावानों द्वारा देशित - प्रज्ञावान विज्ञजनों द्वारा ही जानने योग्य निर्वाण धर्म को महाप्रज्ञ लोग उन उपमाओं द्वारा - विज्ञापित किया। इसे मार्ग सहित एकन्तिक जन जानते हैं।

निर्वाण की अद्भुतता का वर्णन

शिष्यो ! यह निर्वाण रूपी महाअतुल सुदस्सन नगर बड़ा अद्भुत है। तालियां बजाकर इसकी अद्भुतता को व्यक्त करने वाला थक जायेगा। समुद्र में पांचो महानदियां ! पांच सौ छोटी नदियां, खेतों के नद-नाले, आकाश का वर्षा-जल सभी जा-जाकर गिरती है। फिर भी वह पूरा होकर बढ़ता या अधिक नहीं होता। यदि उक्त जल उसमें न गिरे तो समुद्र का सतह घटता भी नहीं। प्रकटतः यह दिखता नहीं। बेमालूम तरीके से आश्चर्यजनक - अद्भुत है वैसे ही यह निर्वाण नामक महाअतुल सुदस्सन नगर - गंगा के पेंदी में जितने बालू के कण हैं उतने बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अरिहन्त के परिनिर्वाण कर चुकने पर भी उसमें कुछ बढ़ता-घटता नहीं। असङ्खेय शून्य कल्पों में एक भी परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होते तब भी उसमें कोई कमी नहीं आती। बड़ा अद्भुत है - यह निर्वाण। यह अद्भुतता भगवान सम्यक सम्बुद्ध के श्रेष्ठ शासन में आठ अद्भुतताओं में से एक यह भी शामिल है। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है:—

सेय्यथापि भिक्खवे याकाचि लोके सवन्तियो महासमुद्दं अप्पेन्ति या च अन्तलिक्खाधारा पपतन्ति, न तेज महासमुद्दस्स अनत्तं वा पूरत्तं वा पञ्ञायति। एवमेव खो भिक्खवे बहूचेपि भिक्खू अनुपादिसेसाय निब्बान धातुया परिनिब्बायन्ति, न तेन निब्बानधातुया अनत्तं वा पूरत्तं वा पञ्ञायति।

(अङ्गुत्तर पाळि इत्यादि में आया अट्ठ सासनच्छरिय सुत्त का अंश)

भिक्षुओ ! लोक में सभी बहने वाली नदियां समुद्र में जाकर गिरती हैं। आकाश में वर्षा का जल भी समुद्र में ही गिरता है। तिस पर भी समुद्र के जल का सतह न घटता है - न बढ़ता है। ज्यों का त्यों रहता है। भिक्षुओं इसी तरह मेरे शासन में बहुत भिक्षु अनुपादिसेस निर्वाण धातु में यदि परिनिवृत्त होते हैं, तो उनके परिनिर्वाण प्राप्त करने के कारण

पृष्ठ — १६

निर्वाण धातु का (या कहना चाहो तो निर्वाण रूपी महाअतुल सुदस्सन नगर का) घटना या बढ़ना नहीं होता है।

निर्वाण प्राप्त करने वालों के न होने के कारण निर्वाण रूपी नगर विरल नहीं होता, संकरा, संकीर्ण या छोटा नहीं हो जाता। अथवा निर्वाण प्राप्त करने वालों की अधिनता के कारण वह निर्वाण रूपी नगर सघन नहीं हो जाता। पूरा होकर उसमें अब समा सकने का स्थान नहीं ऐसा नहीं होता। उसकी अधिकता से विस्तार करना - ऐसा नहीं होता। इस तरह यह अद्भुत बात है - इस निर्वाण रूपी महाअतुल सुदस्सन नगर की। ताली बजाकर इसकी अद्भुतता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। उस निर्वाण रूपी स्वर्ण नगरी की अद्भुतता का बखान असंभव है। पूरा नहीं हो सकता।

निर्वाण की अद्भुतता का वर्णन करने वाला तदायतन सुत्त

अत्थि भिक्खवे तदायतनं, यत्थ नेव पथवी, न आपो, न तेजो, न वायो, न आकासानञ्चायतनं, न विञ्ञाणञ्चायतनं, न आकिञ्चञ्ञायतनं, न नेवसंञ्ञानासञ्ञायतनं, ना यं लोको, न परोलोको, न उभो चन्दिमसूरिया, तत्राणहं भिक्खवे नेव आगतिं वदामि, न गतिं, न ठितिं, न चुतिं, न उपपत्तिं, अपतिट्ठं, अपवत्तं, अनारम्मणमेवतं, एसेवन्तो दुक्खस्साति। (उदान पालि में आया - तदायतन निब्बान सुत्त पाठ)

यह सुत्त बड़ा ही कर्णप्रिय है। आदर व श्रद्धा योग्य है। बड़ा ही प्यारा सुत्त है। बहुमूल्य सुत्त है। शिष्यो - कण्ठस्थ कर लो - धारण करो। अर्थ को समझते हुए धारण करो। आचार्य (मैं) इसका भलीभांति अर्थ बता रहे हैं :

पृष्ठ– १७

भिक्षुओ - इस लोक में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, यह चार महाभूतों के बिना अरिहन्तों को विहरने का कोई लोक परमत्थ के अनुसार प्रत्यक्ष नहीं हो सकता - इसमें शंका संदेह होता है। ऐसी शंकाओं वाले अरे मेरे शिष्यो! उन श्रेष्ठ अरिहन्तों के विहरने वाले निर्वाण नामक स्वर्ण राजधानी के उस लोक में - यह काम लोक - रूप लोक के समान पृथ्वी धातु भी नहीं। जल धातु भी नहीं है। अग्नि धातु भी नहीं है। वायु धातु भी नहीं है। ये आयतन अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चारों महाभूतों के न होते हुए भी अरिहन्तों के विहरने का स्थान निर्वाण नामक स्थान परमार्थ रूप में प्रत्यक्षतः और निश्चित रूप से है। ओ... शंकामुक्त मेरे शिष्यो! वह आयतन अर्थात् वह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि अर्थात् चार महाभूत भी नहीं है। न होते हुए भी - अरिहन्तों के विहरने का स्थान अद्भुत विचित्र और निश्चित रूप से है। वह निर्वाण नामक स्वर्ण राजमहल का लोक - वह स्थान - आकाश अनन्त आयतन नहीं है - जो कि अकनिष्ठ ब्रह्माओं के लोक के ऊपर पचपन लाख आठ हजार योजन पृथक आकाश क्षेत्र प्रथम अरूप ब्रह्माओं का निवास स्थान है - वह लोक भी नहीं है। न ही वह विज्ञान अनन्त आयतन ही है। जो कि - आकासानञ्चायतन के ऊपर पचपन लाख आठ हजार योजन प्रथम आकाश क्षेत्र दुतिय अरूप ब्रह्माओं का निवास स्थान हैं - वह लोक भी नहीं है। विञ्ञाणञ्चायतन लोक के ऊपर पचपन लाख आठ हजार पृथक आकाश क्षेत्र तृतीय अरूप ब्रह्माओं का स्थिति स्थान आकिञ्चञ्ञायतन लोक भी नहीं है। न तो वह नेवसञ्ञानासञ्ञायतन लोक ही है - जो कि आकिञ्चञ्ञायन लोक के ऊपर पचपन लाख आठ हजार योजन हटकर पृथक है - आकाश क्षेत्र चतुर्थ अरूप ब्रह्माओं का स्थिति स्थान वह नेवसञ्ञानासञ्ञायतन लोक भी नहीं है। निर्वाण - यह वर्तमान लोक भी नहीं है। अर्थात् वह मनुष्य लोक भी नहीं है। न ही वह परलोक ही है।

पृष्ठ– १८

अर्थात् मनुष्य लोक से परे यदि कोई लोक है को वह लोक भी नहीं है यह

निर्वाण। वह दोनों सूर्य चन्द्र (अथवा ग्रह नक्षत्र) भी नहीं है। अर्थात् यह भी कह सकते हैं कि सूर्य चन्द्र - इन दोनों के न चमकने पर भी वह स्वयं प्रभा गुण से चमकता है। प्रकाशमान है।

"अनन्तं सब्बतोपभं" नामक ब्रह्म निमनन्त सुत्त को देखो। भिक्षुओं निर्वाण अनन्तं है। वह सभी प्रकार से प्रभासित है। प्रकाश गुण से भरा है। अर्थात् वह निर्वाण - अनन्त है - सब्बतो पभं है।

भिक्षुओं - ओ... शंका-संदेह मे भरे भिक्षुओं! - निर्वाण चारों महाभूतों सहित काम लोक, रूप लोक भी नहीं है। चारों महाभूत पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि रहित - अरूप ब्रह्मलोक भी नहीं है। वह निर्वाण - वर्तमान मनुष्य लोक भी नहीं है। आगामी आने वाला परलोक भी नहीं है। नक्षत्र तारा, चांद-सूर्य के न होने पर जहां अन्धकार नहीं रहता - अपने ही गुण और प्रकाश से प्रकाशित होकर रहने वाला वह निर्वाण नामक स्वर्ण लोक स्थान - उस अमृत नगर में आगति है यह भी मैं नहीं कहता। गति है यह भी मैं नहीं कहता! अर्थात् दूसरे लोक से इस लोक में आकर प्रतिसन्धि करते हैं - अन्य दूसरे लोकों में भी आ-आकर प्रतिसन्धि करते हैं। निर्वाण में ऐसा होता है - यह मैं नहीं कहता। फिर इस लोक से दूसरे लोक में जाकर प्रतिसन्धि करते हैं - अन्यान्य दूसरे लोकों से भी जा-जाकर प्रतिसन्धि करते हैं। यह निर्माण में होता है - यह भी मैं नहीं कहता। अर्थात् आगति है यह भी नहीं कहता। गति है यह भी नहीं कहता। इस मनुष्य लोक में अन्य लोक अन्य भव से आकर प्रतिसन्धि कर बिना मृत्यु प्राप्त किये भलीभांति लम्बे समय तक पुग्गल सत्व रहते हैं उसी तरह अन्य लोक से आकर प्रतिसन्धि कर बिना मृत्यु को प्राप्त किये

पृष्ठ – १९

भलीभांति लम्बे अर्से तक स्थित रहने वाले पुग्गल हैं यह भी मैंने (बुद्ध ने) देशित नहीं किया है।

चुतिः- इस मनुष्य लोक में दूसरे लोकों से आकर प्रतिसन्धि में रहकर बिना मरे भलीभांति स्थित रहकर च्युति से बिना छुटकारा पाये मरने वाले लोग जिस तरह है - उसी तरह अन्य लोकों से आकर प्रतिसन्धि में रहकर बिना मरे भलीभांति लम्बे समय तक रहकर आयु क्षय होने पर च्युति से बिना छुटकारा पाये मरने वाले लोग हैः - यह भी (बुद्ध ने) देशित नहीं करता।

उपपत्तिः- इस मनुष्य लोक में आयु क्षय होने पर च्युति से बिना वंचित हुए मरकर पुनः प्रतिसन्धि में रहना पड़ता है - इसके समान आयु समाप्त होकर च्युति से बिना वंचित हुए मरकर पुनः प्रतिसन्धि में रहना पड़ता है - ऐसा मैं (बुद्ध) देशित नहीं करता। यह निर्वाण नामक स्वर्ण लोक, अमृत नगर – **अपतिट्ठं एव –** हमारे लोक के प्राणियों के समान रहने वाला कोई धरती - के समान कठोर-ऊंचा, खाला-समतल, लाल-सफेद, गोल-ठोस वस्तु

के रूप में - स्थित रहने वाला कोई स्थान भी नहीं है। **अपवत्तं एव–** नाम रूप खन्धा सङ्खत धर्म - लम्बे अर्से तक लगातार उत्पन्न होकर जैसे स्थित रहता है - उस तरह अनवरत उत्पन्न होकर स्थित रहने वाला भी नहीं है। **अनारम्मण एव–** चार नाम स्कंध के अनुसार आरम्मण करने वाला धर्म भी नहीं है।

भिक्षुओ! संसरण के दुःखों से, भयों से, अविकल छुटकारा पाने के लिये घर संसार छोड़कर गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अरण्य में मेरे समीप आये हुए धर्म रस अन्वेषी - ओ - मेरे प्रिय तात - भिक्षुओ!– वह निर्वाण निश्चित रूप से है - वह दुक्खों का अन्त है। संसरण आवर्त्त दुक्ख का निरोध अवस्था है। अथवा 'अविधा से लेकर जरामरणं' अंत तक पटिच्च समुप्पाद रूपी माला के १२ मनके - दुःख के मनकों का चक्र बिना चले रुककर माला के मनकों का टूटकर-छिन्न-भिन्न हो जाना है।

पृष्ठ– २०

(अथवा) 'अविज्जा प्रारम्भ - जरामरण अंत'। बारह पटिच्च समुप्पाद वाला रथ का चक्का। उसका अन्त हो जाना। चक्के का रूक जाना। अमृत (निर्वाण) नामक गन्तव्य स्थान (स्टेशन) पर पहुंच जाना। वही स्थान निर्वाण है। यहां पर तदायतन निब्बान सुत्त का अर्थ समाप्त हुआ।

निर्वाण के अतिविचित्रता (विशद सुख) का वर्णन करने वाला अजात निब्बान सुत्त

शिष्यो! निर्वाणकामी भिक्षुओं को भगवान ने अपने स्वर्ण ज्ञान द्वारा अतिविचित्र देशना किया कि वह निर्वाण परमार्थ है। उस निर्वाण की अतिविचित्रता को बताया। गुण उपकारों को बताया। उस निर्वाण रूपी गन्तव्य स्थान (स्टेशन) पर वे अतिशीघ्र पहुंचाना चाहते थे। उस अमृत स्थान पर - उस स्वर्ण नगर में शीघ्रता से पहुंचाने के इच्छुक महाकारुणिक अपने स्वर्ण ज्ञान से उद्बोधित करते हैं। विपश्यना के अभ्यास द्वारा - अष्टांगिक रथ (के साथ) पर सवार होकर अरिहंतों के विहरने वाला स्थान उस निर्वाण नामक अमृत पड़ाव - स्वर्ण नगर की अतिशय विचित्रता का वर्णन पुनः उन्होंने किया है।

अजात निब्बानसुत्त

जातं भूतं समुप्पन्नं, कतं सङ्खत मद्धुवं।
जरामरण संघट्टं, रोगनीळं पभङ्गुनं।।

आहारनेत्ति पभवं, नालं तं अभिनन्दितुं।
तस्स निस्सरणं सन्तं, अतक्कावचरं धुवं।।

अकतं असमुप्पन्तं, असोकं विरजं पदं।
निरोधो दुक्खधम्मानं, सङ्खा रूपसमो सुखोति।।

इतिवुत्तक— अजात निब्बान सुत्त पाठ।

भिक्षुओ! दुःख से छुटकारा पाकर सुख चाहने वालों। निर्वाण को अविकल चाहने वालों - कार्य कारण से उत्पन्न होने वाला, जाति। प्रत्यक्ष कारणों वाले धर्म से उत्पन्न - भूत। भलीभांति संयुक्त कार्य-कारणों से उत्पादित - कारण धर्म बिना रुके कृत, स्कंध - नाम रूप सड़ते-गलते, संस्कार धर्म - अध्रुव है। अर्थात् - जात, भूत, समुप्पन्न, कृत, संस्कार यह सब अध्रुव है। यह सब जरामरण संघातिक है। अर्थात् बुढ़ापे और मृत्यु के दुःख को दिन-रात घातित प्रतिघातित हैं, सताये जाने वाले हैं। यह रोगों का नीड़ है। रोगों का घर है। अन्ठानबे प्रकार के रोगों से बिना अलग हुए इससे लिपटा हुआ (यह शरीर) घोंसला है - घर है - नीड़ है। यह लगातार भंग होने वाला प्रभंगुर है। नष्ट होने वाला - व्यय धर्मा है।

तृष्णा के आहार आदि अनेकों तरह के विषय धर्मों वाला है यह शरीर। इस संस्कार को, सड़े-गले (शरीर) को - अभिनन्दन करना - प्यार करना - उचित नहीं है। भिक्षुओ! दुःख से छुटकारा पाकर सुख चाहने वालों! निर्वाण को अविकल चाहने वालों! उस संस्कार (सङ्खत) से जो सड़ते-गलते जा रहे हैं - से निस्सरण होकर - उससे परे रहने वाला स्थान (व) इससे मुक्त स्थान - अतक्कावचर=तर्कातीत ध्रुव स्थान - जहां व्यय नहीं - **स्थिर है।**

जो अकृत है - जहां विषय कारण धर्म अकृत हैं; जहां समुत्पन्न नहीं असमुत्पन्न है - **बुद्ध नेत्र से देखा** गया वह उत्पाद जहां नहीं है - जो सन्तं है - असङ्खत परमार्थ के रूप में सचमुच में है - वह अमृत पद - निर्वाण - वह अमृत अन्तिम पड़ाव - स्वर्ण नगर - विरज है - राग द्वेष मोह आदि रज कण की गन्दगियों से मुक्त स्थान है। जो असोक है। शोक रहित है - सभी प्रकार के दुक्ख धर्म - अविद्या से लेकर जरामरणं तक - बारह पटिच्च समुप्पाद चक्र, दुःख चक्र का निरोध है। जहां संस्कार धर्मों का निरोध स्थान है - जो अतिशय सुख है। यहां पर **अजात निब्बान सुत्त** समाप्त हुआ।

पृष्ठ— २२

निर्वाण तक की यात्रा गाड़ी या नाव से नहीं की जा सकती

भिक्षुओं! भगवान द्वारा देशित अतिविचित्र है निर्वाण की अवस्था। इसकी विचित्रता वर्णनातीत है। वह गुण विशेष युक्त। अरिहंतों की गोचर भूमि; महाअतुल सुदस्सन नगर के समान, परम सुखदायी अमृत पड़ाव जैसा निर्वाण - वह निर्वाण इकत्तीस (३१) लोकों के परे है। कामावचर - रूपावचर - अरूपावचर - इन सबके पार है। वह चार महाधातु पृथ्वी-जल, वायु-अग्नि रहित कामावचर, रूपावचर वाले काम लोक; तथा इन चारों महाधातुओं से रहित अरूप लोक; इन सब लोकों के परे - इन सब इकत्तीस लोकों के परे है निर्वाण। निर्वाण; पच्चुप्पन्न लोक तथा आगामी परलोक के तथा उसके अनन्तर नक्षत्र तारा-पथ - चंद्र-सूर्य आदि का जहां प्रकाश नहीं - वहां अपने गुण से, प्रकाश से

प्रकाशमान होकर स्थित है। उस निर्वाण रूपी परम सुख अमृत पड़ाव जो कि अन्तिम पड़ाव है - इस स्वर्ण नगर में किसी जहाज, रेल गाड़ी अथवा अन्यान्य रथ वाहनों द्वारा चलकर नहीं पहुंचा जा सकता। मेरे शिष्यों चलकर पहुंचने वाला नहीं है वह स्थान।

इसीलिये भगवान ने धम्म पद के इस गाथा में देशित किया है : **"नहि एतेहि यानेहि, गच्छेय्य अगत्तं दिसं"** निर्वाण की कामना करने वाले भिक्षुओं– पूर्व-पूर्व काल से नहीं पहुंच पाये - लोकों के अंत हो जाने के परे, स्थित, निर्वाण नामक परम सुख अमृत पड़ाव स्वर्ण नगर जहां स्थित है - उस दिशा की ओर - इन गाड़ियों, जहाजों, हाथियों, घोड़ों के रथों से चलकर नहीं पहुंचा जा सकता है।

लोकों के अंत को जाने वाले रोहितस देवता की कथा

रथों व यानों द्वारा निर्वाण तक नहीं पहुंचा जा सकता सो तो है ही - पैदल चलकर दौड़कर भी लोकों के अन्त तक नहीं पहुंचा जा सकता - मेरे शिष्यों! पुराने समय की बात है। रोहितस नामक एक व्यक्ति थे। जम्बुद्वीप वासी थे। ऋषि थे। ध्यान बल से उड़ सकते थे। विशिष्ट आजानीय थे। तुरंत जानने वाले। जितनी देर में एक तीर एक ताड़ वृक्ष की छाया को पार कर निकल जाता है - उतनी देर में वे

पृष्ठ– २३

बारह लाख तीन हजार चार सौ पचास (१२०३४५०) योजन - लंबाई-चौड़ाई वाले एक चक्रवाल को बिना रुके दौड़ सकते थे ऐसा अभिज्ञान उन्हें प्राप्त था। खाने-पीने व चारों ईर्ष्या-पथों के समय को छोड़कर वे बिना रुके आकाश-मार्ग द्वारा सौ वर्षों तक दौढ़ते रहे - चलते रहे। चारों द्वीपों के एक सुमेरू से दूसरे चार द्वीपों के सुमेरू तक - सौ वर्षों तक चलते ही रहे। प्राणियों का निवास चक्रवालों का अंत नहीं आया। स्वयं का जीवन ही समाप्त हो गया। मरने के बाद हमारे इसी चक्रवाल में पुनः आकर ब्रह्मलोक के एक महा ब्रह्मा हुए। वह रोहितस महा ब्रह्मा हमारे भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्त के बाद उनके समीप आये। उनसे पूछा कि क्या चलकल लोकों को पार किया जा सकता है ?–

निर्वाण, पैदल चलकर नहीं पहुंचा जा सकता

तब भगवान ने यह देशित किया–

गमनेन नपत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।
न च अपत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं।।

(चतुक्कङ्गुत्तर - लोकन्त गमन सुत्त का अंश गाथा)

आवुसो! रोहितस! ओ दायक-देवता! लोक का अन्त, लोकों के अन्तिम स्थान को - पैरों से गमन कर - चलकर कदापि नहीं पहुंचा जा सकता - (लोकों के अन्त को

कदापि नहीं प्राप्त किया जा सकता) लोकों के अन्त को बिना प्राप्त किये दुक्खों का विमोचन (समोचन) भी नहीं हो सकता।

इस तरह भगवान ने यह बताया कि चल-चलकर लोकों के अन्त को नहीं पाया जा सकता है। लोकों के अन्त को पाये बिना दुक्खों से छुटकारा भी नहीं हो सकता। अतः उस ब्रह्मा को लोक, लोक की उत्पत्ति का कारण, लोकों के अन्त का स्थान, लोकों के अन्त (निरोध) स्थान पर पहुंचने के लिये मार्ग-विधि को देशित किया। वह रोहितस ब्रह्मा

पृष्ठ– २४

बिना कहीं चले, खड़े होने के पूर्व ही, क्षण भर में ही लोकों के अन्त को जान लिया। जब वहां पहुंचा तो वह अपने पूर्व में दौड़े हुए संपूर्ण कथा को भगवान से निवेदित किया। भगवान ने उसको साधुवाद दिया - वह पुनः अपने ब्रह्मलोक को वापस गया।

मेरे शिष्यो! अरिहंतों की गोचर-भूमि - लोकों का अन्त - परम शांत प्रणीततर उस निर्वाण के परम सुख वाले अमृत पड़ाव स्वर्ण नगर को - किसी जहाज, रेलगाड़ी से, हाथी-घोड़े, के रथ से या पैदल नहीं पहुंचा जा सकता। विधि क्या है? :–

मार्ग रथ द्वारा निर्वाण जाने वाले समण देवता वत्थु

शिष्यो! भगवान के समय की एक घटना है। एक छोटा भिक्षु अर्थात् केवल पांच वर्षावास पूरा किया हुआ भिक्षु था। उसने निस्सयमुच्चक अङ्गों से अपने आपको सुसज्जित कर अरण्य में चला गया। एक चार धम्मविहारी योगी के रूप में श्रमण धर्म अर्थात् विपश्यना भावना में तल्लीन हो गया। उसे बहुत सारे दुःख लक्षण उत्पन्न हुए। विपश्यना भावना को छोड़कर वह कुछ नहीं करता था। भोजन, शयन, शरीर की रक्षा, प्रमाद आदि में भय का दर्शन करते हुए उसे भयावह मानकर - आदिनव मानकर - दोष देखते हुए विरक्त ही था। कठोरता एवं निर्दयतापूर्वक उसने आहार को काट लिया था। सोता भी नहीं था। चलना खड़ा होना सब बन्द कर केवल पालथी मारे ध्यान ही करता रहता था। मार्ग की प्राप्ति नहीं हुआ। वह बीच में ही च्युति को प्राप्त हो गया। मर कर तावतिंसा देवलोक में १२ योजन वाले स्वर्ण विमान के मध्य पालथी मारे ध्यानमग्न देवता के रूप में उत्पन्न हुआ।

पृष्ठ– २५

उसके वहां उत्पन्न होते ही लगभग एक हजार देव कन्याएं वहां दौड़ पड़ी कि उनके विमान का स्वामी आ गया। एक साथ प्रसन्नतापूर्वक उनके आदर सत्कार अगवानी करने व उनकी सेवा में उपस्थित उन देव कन्याओं को देखकर उस समण देवता ने यह समझा कि ओ... यह सब दायिकाएं हैं। चीवरादि दान-पूजन-दर्शन हेतु संभवतः लायी हैं। उसने

अपना चीवर आदि ओढ़ने के लिये कंधे पर रखकर ठीक-ठाक किया और आंखें नीचे की ओर झुका लिया। चक्षु-इन्द्रिय को श्रमण सारूप्प सजगतापूर्वक रखे हुए बैठे रहा। उन देव कन्याओं ने उस देवता के वह हाव-भाव देखकर अनुमान लगाया कि अपने पूर्व के जन्म में यह भिक्षु जीवन से यहां आकर उत्पन्न हुआ देवता है। इसे अपने देवता के रूप में जन्म लेने का भान नहीं है। उन्होंने उससे निवेदन कर कहा– "आयुष्मान - देवता! अभी आप मनुष्य लोक के भिक्षु श्रमण नहीं हैं। आप देवलोक में उत्पन्न हुए हैं। आप देवताओं के सुख-वैभव, आमोद-प्रमोद का भोग करें। "जब देव कन्याओं ने यह कहा तो वह श्रमण देवता यह अनुमान कर कि यह दायिकाएं अनुपयुक्त अनुचित कथन कह रही हैं। उनकी बातों का बिना विश्वास किये अपने भिक्षु स्मृति से ही चक्षुन्द्रिय को नीचे किये हुए ही बैठा रहा।

उसमें से एक समझदार देव कन्या को उपाय सूझी - जब बार-बार कहने पर भी श्रमण को विश्वास नहीं आया जानी तो उसने एक दर्पण लायी। लाकर श्रमण देवता के सम्मुख कर दी। जब अपना चेहरा दर्पण में देवता के रूप में देखा तब उसे अपने च्युति के बाद देवलोक में उत्पन्न हो जाने की बात समझ में आयी। नहीं... नहीं - मैं इस देवलोक की प्राप्ति के लिये ध्यान नहीं कर रहा था। मैं तो निर्वाण की कामना से ध्यान कर रहा था। इस निकम्मे दुःख भव में आ गया। भयभीत होकर उसे भय संवेग उत्पन्न हुआ। वह सिर उठाया। चारों ओर देवलोक को देखा। सामने खड़ी वह देव अप्सराएं उसे प्रेतनियों व यक्षिणियों के समान प्रतीत हुईं। संपूर्ण देवलोक जो आमोद-प्रमोद में डूबा हुआ था, वह अतिसुन्दर नन्दन वन उसको यूं लगा कि यह संसार चक्र से नहीं मुक्त होने देने के लिये अन्धकारपूर्ण वन खण्ड है। यह अन्धकारमय भवन भयावह हैं। आदिनव है।

पृष्ठ– २६

उसके मन में यह प्रतीत हुआ और वह तत्काल अपने शील को बिना खंडित किये शीघ्रातिशीघ्र विमान सहित भगवान के पास आकर उतरा और उनके समीप गया।

अच्छरागणसंघुट्ठं, पिसाच गणसेवितं।
वनन्तं मोहनं नाम, कथं यत्रा भविस्सति।।

(सगाथा वग्ग संयुत्त पाळि)

उपरोक्त गाथा भगवान से कहकर उनसे कामोघ संसरावट्ट दुःख से बाहर निकलने के मार्ग धर्म को पूछा।

"भन्ते! भगवान! अप्सराओं से घिरा हुआ हूं। पिशाचगण सेवित हूं। वह मोहित करने वाला जिसमें चार ओध बहते रहते हैं उस नन्दन वन से किस तरह से (मुझे) त्राण प्राप्त हो सकेगा।"

शिष्यो! उस नन्दन वन की भयावहता को सविस्तार जानना चाहते हो तो मेरी पुस्तक "अरियामग्ग दीपनी" में आया हुआ - 'पञ्ञा सम्पदा के अनुसार सुचरित का लाभ' वाले अध्याय का अवलोकन करो।

तब भगवान ने नन्दन कानन को अतिक्रमण कर, चारों ओघ को पार कर, परला तट; गुण-प्रकाश से प्रकाशित अरिहंतों की गोचर भूमि निर्वाण नामक परम सुख अमृत पड़ाव स्वर्ण नगर तक, पहुंचने के लिये मार्ग और उस मार्ग पर चलने वाले रथ सहित चलने की विधि को भी - उस देवता को इस प्रकार देशित किया :-

पृष्ठ- २७

रथूपमसुत्त

१. उजुकोनाम सोमग्गो, अभयानाम सादिस्स।
रथो अकूजनो नाम, धम्मचक्केहि संयुतो।।

२. हिरी तस्स अपालम्बो, सत्यस्स परिवारणं।
धम्माहं सारथी ब्रूमि, सम्मादिट्ठि पुरेजवं।।

३. यस्स एतादिसं यानं, इत्थिया पुरिसस्स वा।
सवे एतेन यानेन, निब्बानस्सेव सन्तिकेति।।

(सगाथावग्गसंयुत्त - रथूपमसुत्तपाठ)

१. देव पुत्र! वह मार्ग ऋजु है। वह आर्य अष्टांगिक मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा नहीं है, सीधा है। ऋजु है। निर्वाण की ओर, जिस दिशा को ले जाने वाला है वह क्षेत्र निर्भय है। निर्वाण की दिशा निर्भय है। कायिक वीरिय, चेतसिक वीरिय नामक रथ-चक्कों से भलीभांति संयुक्त है। धर्म चक्के संयुक्त हैं। अष्टांगिक नामक यह रथ - आठ अंगों वाला यह रथ - बिना आवाज किये चलता है। इसमें तेल-पानी डालने की जरूरत नहीं - बिना टूट-फूट के, बिना शोर-गुल मचाये चलने वाला यह अकूजन नामक रथ है।

२. **हिरी, ओतप्प** इस रथ के अपालम्ब हैं। गाड़ी के सहारे के तख्ते हैं। **सति** इस रथ का परिवारण है - घेरा है। **सम्मादिट्ठि** ही रथ का आगे चलना है। विपश्यना सम्यक दृष्टि ही रथ का आगे बढ़ना है। **धर्म** लोकुत्तर सम्मादिट्ठि ही इस रथ का सारथी है। इस प्रकार से मैं तथागत देशित करता हूं।

३. देवपुत्त! किसी भी स्त्री को अथवा किसी भी पुरुष को यह यान, यह रथ, यह अष्टांगिक रथ निर्वाण तक पहुंचाता है।

पृष्ठ– २८

जो भी इस अष्टांगिक रथ पर सवार होता है - चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे यह रथ निर्वाण नामक अमृत स्वर्ण नगर को निश्चित रूप से पहुंचा देता है। वह पहुंच जाते हैं।

(रथूपम सुत्त का अर्थ पूरा हुआ।)

भगवान के इस देशना के अंत में उन देव अप्सराओं सहित वह समण-देव-पुत्र अष्टांगिक रथ पर सवार होकर चले। कुछ स्रोतापन्न हुए तो कुछ नन्दन कानन का अतिक्रमण कर निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया। उन सबों ने भगवान को प्रणाम किया और तावतिंस देवलोक चले गये। आज तक भी दिव्य सुखों, वैभवों को भोगते हुए वह श्रमण जो गृहस्थ हो गया है - वहां है।

मेरे शिष्यो! लोकों के पार निर्वाण नामक परम सुख अमृत पड़ाव स्वर्ण नगर जाने के लिये कोई लौकिक यान काम नहीं देता। रोहितस के समान ज्ञान लाभी आजानीय पुरुष पैदल चलते हुए नहीं पहुंच पाया वहां। जब अष्टांगिक रथ पर सवार हुआ तो खड़े होने के पूर्व ही पलक झपकते - वह निर्वाण को प्राप्त कर लिया। वह भगवान द्वारा निर्दिष्ट अष्टांगिक रथ पर सवार हुआ - तब पहुंचा। इसलिये उस अनुत्तर सर्वोत्कृष्ट तक अगर पहुंचना चाहते हो तो तुम लोग भी अष्टांगिक रथ पर सवार होकर तुरंत पहुंच सकते हो।

अनुसासनी सुत्त

सुसुखं अमतं पूरं, लोकन्तं बुद्धदेसितं।
अतिट्ठन्ता अगच्छन्ता, गन्तारो होथ साधवो।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

पृष्ठ– २९

साधवो! तुम लोग, बुद्ध देशनानुसार लोक के अन्त को प्राप्त करने वाले बनो। पटिच्च समुप्पाद चक्र रथ नामक लोक का प्रारम्भिक आत्यंतिक निरोध स्थल प्राप्त करो। सु सुख वाला वह अमृतपुर - बिना खड़े रहे - बिना गमन किये प्राप्त करने वाले बनो।

इति निब्बान कित्तन पब्बं

३. मग्गरथ विधान पर्व

शिष्यो! **"निब्बानं देसयिस्सामि!** अब निर्वाण प्राप्त करने के लिये विधि-विधान सहित निर्वाण धर्म की देशना करूंगा।" इस भगवान की देशना के अनुसार, उनकी पटिञ्ञात - सहमति के अनुसार उन्होंने निब्बान की देशना की। अब भगवान द्वारा संक्षिप्त रूप में

देशित इस रथूपम सुत्त के अनुसार निर्वाण तक पहुंचने के लिये; विधि-विधान मार्ग - मग्गङ्ग रथ को भलीभांति समझने के लिए; उसका यहां विस्तार करें।

रथ के समान अष्टांगिक मार्ग का स्वरूप वर्णन

शिष्यो! रथ के समान है यह अष्टांगिक मार्ग। कौन आठ अंग हैं :-

१. सही-सही देखने की प्रज्ञा चेतसिक नामक सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग।

२. सही-सही विचारने की वितर्क चेतसिक नामक सम्मासङ्कप्प मग्गङ्ग।

३. वाचिक दुश्चरित्र से (दुराचरण से) बचना (विरती) सम्मावाचा चेतसिक नामक सम्मावाचा मग्गङ्ग।

पृष्ठ- ३०

४. कायिक दुश्चरित्र से (दुराचरण से) बचना (विरती) सम्माकम्मन्त चेतसिक नामक सम्माकम्मन्त मग्गङ्ग।

५. दुराचरण द्वारा आजीविका चलाने से बचना (विरती) सम्माआजीव चेतसिक नामक सम्माआजीव मग्गङ्ग।

६. भलीभांति सही-सही प्रयत्न - वीरिय चेतसिक नामक सम्मावायाम मग्गङ्ग।

७. बिना विस्मृत हुए सही-सही जागरूकता - सति चेतसिक नामक सति मग्गङ्ग।

८. ठीक-ठीक सही-सही - एकाग्रता चेतसिक नामक सम्मा समाधि मग्गङ्ग। यह आठ मग्गङ्ग हैं।

अष्टांगिक मार्ग को तीन शिक्षा में विभाजित कर वर्णन करना

शिष्यो! इस आठ अंगों वाले मार्ग को - जिसका स्वभाव एवं कृत्य एक समान मिलता है - उन्हें संक्षिप्त कर, संयुक्त कर, शिक्षा के रूप में विभाजित किया। वितर्क को प्रज्ञा में रखकर **अधिपञ्ञा सिक्खा - १**; तीन विरती (बचना) चेतसिकों को **अधिसील सिक्खा - २**; वीरिय, सति को समाधि में रखकर **अधिचित्त सिक्खा - ३**; इस प्रकार केवल तीन ही हैं। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :-

सीलं समाधि पञ्ञाच, यस्स एते सुभाविता।
अतिक्कम्म मारधेय्यं, आदिच्चोव विरोचति।। (इतिवुत्तक पाळि)

भिक्षुओ! जो भी कोई अधिसील सिक्खा नामक शील को; अधिचित्त सिक्खा नामक समाधि को; अधिपञ्ञा सिक्खा नामक प्रज्ञा को - इन तीनों धर्मों को भलीभांति अंत तक भावित करता है वह व्यक्ति मार-धेय्य - मार के क्षेत्र का अतिक्रमण कर आदित्य के

समान (कोहरा, बादल, धुंध, ओस, धूल कणों - इन पांच से रहित प्रकाशमान सूर्य के समान) चमकता है।

पृष्ठ – ३१

विरोचति = चमकता है।

अधिसील सिक्खा का विस्तृत वर्णन

शिष्यो! इस शील, समाधि, प्रज्ञा वाले तीन शिक्षाओं में शील : निम्न मैथुन क्रिया से बिना विरत हुए पालन किया जाने वाला - अब्रह्मचरियसील तथा निम्न मैथुन क्रिया से विरत होकर पालन किया जाने वाला ब्रह्मचरिय सील दो ही हैं।

विसाखा, **अनाथपिण्डिक** इत्यादि द्वारा प्रतिदिन अनवरत पालन किया जाने वाला पंचशील, आजीवट्ठमक सील, दस सुचरित सीलों को अब्रह्मचरिय सील कहते हैं। इन्हें **अब्रह्मचरिय सील** जानना। वह विसाखा, अनाथपिण्डिक इत्यादि लोगों द्वारा उपोशथ के दिन को पालन किया जाने वाला अष्ट शील; घटिकार हत्थक उपासक, सुमन श्रामणेर इत्यादि द्वारा पालन किया जाने वाला दस शील; आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान आनन्द आदि द्वारा पालन किया जाने वाला पातिमोक्ख संवरसील; बुद्धों द्वारा पालन किया जाने वाला ततुत्तरिअनुच्चंवच्च सीलों को ब्रह्मचरिय सील कहते हैं। इसे **ब्रह्मचरिय सील** जानना। इस क्रम के अनुसार वर्णित किये गये सभी शीलों को प्रथम से दूसरा - दूसरे से तीसरा उत्तरोत्तर उर्ध्व - उर्ध्व होता हुआ समझना चाहिए।

उपरोक्त वर्णित सभी शील शिक्षा पदों को 'द्वार' से निष्कर्ष निकालें तो - काया द्वारा अतिक्रमण नहीं किये जाने वाले शिक्षापद सभी दोष (द्वेष) कायदुचरित कहलाते हैं। वाणी द्वारा अतिक्रमण नहीं किये जाने वाले शिक्षापद सभी द्वेष वचीदुचरित कहलाते हैं। चित्त द्वारा अतिक्रमण नहीं किये जाने वाले शिक्षापद सभी द्वेष (दोष) मनोदुचरित कहलाते हैं। उन कायदुचरित, वचीदुचरित

पृष्ठ - ३२

मनोदुचरितों को बिना अतिक्रमण किये उनकी रक्षा करते हुए पालन करना काय सुचरित, वची सुचरित, मनो सुचरित इस प्रकार सुचरित शील केवल तीन हैं। इन तीन सुचरित सीलों से पूर्ण व्यक्ति को सुचरित शील सम्पन्न व्यक्ति कहते हैं। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :–

यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
तंवे कल्याण सीलोति, आहु भिक्खुं हिरीमनं।।

भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु काया से, बुरा आचरण नहीं करता। वाणी से बुरा आचारण (दुक्कट) नहीं करता। मन से बुरा आचरण नहीं करता। भिक्षुओ! बुरे आचरण

को करने में लज्जायुक्त मन वाला (हिरीमन) है - वह भिक्षु सचमुच में अच्छे शील आचरण से पूर्ण कल्याणशील वाला है। पण्डित लोग ऐसा कहते हैं।

अधिसील नामक कल्याण धम्म सील वर्णन समाप्त

अधिचित्त सिक्खा का वर्णन

इस शील, समाधि, प्रज्ञा तीनों में समाधि नामक प्रथम ध्यान समाधि, दुतिय झान समाधि, ततिय झान समाधि, चतुत्थ झान समाधि, पञ्चम झान समाधि - इस प्रकार पांच हैं। इन पांचों समाधि धर्म से पूर्ण व्यक्ति उत्तम धर्म से परिपूर्ण व्यक्ति कहलाता है। इसलिये भगवान ने यह देशित किया :-

यस्स धम्मा सुभाविता, पत्तुं सम्बोधगामिनो।
तं वे कल्याण धम्मोति, आहु भिक्खुं अनुद्धतं।। (इतिवुत्तक)

पृष्ठ- ३३

भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु चारों मग्गञाण (समाधि तक की) की प्राप्ति के लिये - चारों मग्गञाण तक पहुंचने वाले (सम्बोध गामिनो) धर्म अर्थात् सक्ति, वीरिय सहित पांचों समाधि धर्मों को भलीभांति अंतिम अवस्था तक सुभावित कर लिया - भिक्षुओं, उस अनुद्धत भिक्षु को सचमुच में पण्डितजन - कल्याण धर्मी - कल्याण धर्म के अंत तक पहुंचा हुआ कहते हैं।

अधिचित्तसिक्खा नामक कल्याणधम्म समाधि समाप्त हुआ।

अधिपञ्ञासिक्खा का वर्णन

इस सील, समाधि पञ्ञा - शिक्षात्रय में पञ्ञा अर्थात् - दुःख सत्य के भलीभांति जानने वाली पञ्ञा; दुःख उत्पत्ति के कारण समुदय सत्य को भलीभांति जानने वाली पञ्ञा; दुःखों का अन्त स्थान - निरोध सत्य को भलीभांति जानने वाली प्रज्ञा - पञ्ञा; दुःखों का अन्त स्थान - निरोध सत्य को पहुंचाने वाला मार्ग सत्य को भलीभांति जानने वाली पञ्ञा - इस तरह चार हैं। इन चारों ञाण पञ्ञा से परिपूर्ण व्यक्ति को सही ञाण पञ्ञा से पूर्ण व्यक्ति कहते हैं। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :-

यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
तं वे कल्याण पञ्ञोति, आहु भिक्खुं अनासवं।।

भिक्षुओं! जो कोई भिक्षु - इसी जन्म में अपने दुःखों का क्षय परिपूर्ण रूप से जान जाता है। (पटिच्च समुप्पाद नामक दुःख धर्म समूह को उसके क्षय निरोध सत्य को परिपूर्णरूपेण जान जाता है) भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को पण्डित लोग अनास्रव (अनासव)

कहते हैं। (जो सभी आस्रव धर्म से रहित हो गया।) सचमुच में वह कल्याणी प्रज्ञा से परिपूर्ण कहलाता है।

अधिपञ्ञा सिक्खा नामक कल्याण धम्म - पञ्ञा वर्णन समाप्त

पृष्ठ– ३४

शिक्षा (सिक्खा) त्रय को आदि, मध्य, अन्त से सम्बद्ध कर वर्णन

इस कल्याण सील, कल्याण धम्म समाधि, कल्याण पञ्ञा वाले तीन धर्मों से परिपूर्ण व्यक्ति, निर्वाण को प्राप्त करता है। इसलिये भगवान ने यह देशित किया–

तेहि धम्मेहि सम्पन्नं, अनीघं छिन्न संसयं।
असितं सब्ब लोकस्स, आहु सब्ब पहायिनन्ति।। (इतिवुत्तक)

उन तीनों धर्मों; कल्याण शील, समाधि आदि तीनों धर्मों से सम्पन्न; छिन्न संशय; दुःख रहित (अनीघ); संपूर्ण सङ्खार लोक में तृष्णा का सहारा रहित (असित=आश्रित) भिक्षु को सर्वप्रहाणित - अर्थात् सभी सङ्खत को प्रहाण किया हुआ उत्तम पुरुष के रूप में - पण्डितों ने कहा है। यह उत्तम पुरिस सुत्त समाप्त हुआ।

शिष्यो! इस तरह धर्म काया, धम्म जाति एक ही है। सेक्खासेक्ख (शैक्ष्याशैक्ष्य) बिना पृथक हुए एक भाव, एक कृत्य, सबको एक साथ समाविष्ट कर मुख्य रूप से लेते हैं। उपरोक्त अष्टांगिक मार्ग नामक सील, समाधि, प्रज्ञा के इस शिक्षात्रय में - सील-समाधि उत्पत्ति का कारण है। वह 'आदि' है। समाधि, प्रज्ञा उत्पत्ति का कारण है। वह 'मध्य' है। प्रज्ञा को समाधि का फल कहते हैं। यह 'अन्त' है। सील होने पर समाधि उत्पन्न होती है। समाधि के रहने से प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रज्ञा के उत्पन्न हो जाने पर निर्वाण प्राप्त करते हैं। इसीलिये पटिसम्भिदापत्त सीलवा (सीलव) नामक एक अरिहन्त थेर ने इस प्रकार देशित किया है–

सील के फल (परिणाम) को वर्णित करने वाला सीलवा सुत्त

१. सील मेविध सिक्खेथ, अस्मिं लोके सुसिक्खितं।
सीलं हि सब्ब सम्पत्तिं, उपनामेति सेवितं।। (थेर गाथा)

पृष्ठ– ३५

आवुसो! इस लोक में केवल सील का ही पालन करना होता है। (इसी का पालन करना सीखो।) मेरा यह कथन सत्य है। इस लोक में भलीभांति पालित शील - उस शील सेवित साधक को संपूर्ण लौकीय-लोकुत्तर के सुखों की पूर्णता को (उसके) समीप लाता है।

२. सीलं रक्खेय्य मेधावी, पत्थयानो तयो सुखे।
पसंसं वित्तलाभञ्च, पेच्चसग्गे च मोदनं।।

आवुसो! भिक्षुओं और सभी लोगों की प्रशंसा; उनका लाभ सत्कार, वित्त लाभ सत्कार; मृत्यु के उपरांत देवलोक के आमोद-प्रमोद को; इन तीन सुखों को चाहने वाले मेधावी को सील की रक्षा करनी होती है।

३. सीलवा हि बहूमित्ते, सञ्ञते नाधिगच्छति।
दुस्सीलो पन मित्तेहि, धंसते पापमाचरं।।

आवुसो! सील वाला शीलवान ही - काया वाणी चित्त को संयत रखने के कारण अनेकों मित्र को प्राप्त कर सकता है। बहुत मित्रों वाला होता है। पापाचरण करने वाले दु:शीलों के मित्र घटते जाते हैं। (उनके मित्र ध्वंसित होते जाते हैं, नष्ट होते जाते हैं।)

४. अवण्णञ्च अकित्तिञ्च, दुस्सीलो लभते नरो।
वण्णं कित्तिं पसंसञ्च, सदा लभति सीलवा।।

पृष्ठ– ३६

आवुसो! दु:शील नर अवर्ण तथा अकीर्ति प्राप्त करता है। शीलवान नर सदा, वर्ण, कीर्ति एवं प्रशंसा को प्राप्त करता है।

५. आदि सीलं पतिट्ठान, कल्याणञ्च मातुकं।
पमुखं सब्बधम्मानं, तस्मा सीलं विसोधये।।

आवुसो! शील सभी धर्मों का आदि है। मूल है। सभी धर्मों का वह प्रतिष्ठा है। सभी धर्मों की कल्याणकारिणी माता है। सभी धर्मों का प्रमुख है। उत्पन्न होने वाले सुख के समान है - ऐसा भी कर सकते हैं। इसलिये - पण्डित (विद्वान) लोग शील को निर्मल रखा करते हैं। उसका विशोधन करते रहते हैं।

वेला = वेरहा = सीमा, मर्यादा

६. वेला च धम्मानं सीलं, चित्तस्स अभिहासनं।
तित्थञ्च सब्बबुद्धानं, तस्मा तीलं विसोधये।।

आवुसो! शील - सभी धर्मों का बागुड़ - घेरान - वेला है। अथवा शील सभी धर्मों की बांध (वेला) है जो भीतर के जल का परिसीमन करता है। सभी बुद्धों का तीर्थ है। चित्त को हमेशा - बहुत आह्लादित रखता है।

पृष्ठ– ३७

इसलिये शांति स्थिरता का शोधन कर जानना चाहने वाले पण्डित जन शील को निर्मल व शुद्ध रखते हैं। इसका विशोधन करते हैं।

७. सील फलं अप्पटिमं, सीलं आवुध मुत्तमं।
सीलं आभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं।।

आवुसो! शील का फल अप्रतिम है। शील क्लेशों का हनन करने वाला उत्तम अप्रतिम आयुध है। शील श्रेष्ठ आभरण है। शील अद्भुत कवच है।

८. सीलं सेतु महेसक्खो, सील गन्धो अनुत्तरो।
सीलं विलेपनं सेट्ठं, येत वाति दिसोदिसं।।

आवुसो! शील महाप्रतापशाली है। देवलोक - निर्वाण जाने के लिये सेतु है। शील अनुत्तर गन्ध है। शील के समान कोई गन्ध नहीं, वह अनुत्तर है। (अथवा दिव्य मञ्जूसक पुण्य के समान गन्ध वाला है।) (अथवा आसावती पुष्प गन्ध वाला है।) शील श्रेष्ठ विलेपन है। (वह चन्दन चूर्ण है।) (अथवा आसावती पुष्प पराग है।) शीलवान की सुगंध दिशा-विदिशा में (हवा के रुख के विपरीत भी) बहती है, फैलती है। शीलवान की सुगंधि प्रत्येक दिशा में फैलती है। बहती है।

९. सीलं सम्बल मेवग्गं, सीलं पाथेय्य मुत्तमं।
सीलं सेट्ठो अभिवाहो, येन वाति दिसोदिसं।। (अभिवाहो=श्वेत अश्व)

पृष्ठ– ३८

आवुसो! (=शील सुगंधित खाद्य है।) शील अग्र सम्बल है। शील उत्तम पाथेय है। श्रेष्ठ अभिवाह है। अर्थात् श्वेत अश्व रत्न है। शीलवान शील रूपी पाथेय को लेकर उस श्वेत अश्व रत्न (अभिवाह) पर सवार होकर हर दिशा को जा सकता है।

१०. इधेव निन्दं लभति, पेच्चापाये च दुम्मनो।
सब्बत्थ दुम्मनो बालो, सीलेसु असमाहितो।।

आवुसो! मूढ़ शील शिक्षापदों में असमाहित, इस जीवन में भी निन्दित होता है; मरने के पश्चात चारों अपायों में दु:खित चित्त होता है। (मूढ़) सर्वत्र - सभी लोकों में दु:खित मन होता है। (यही अपने फल को पाता है)।

११. इधेव कित्तिं लभति, पेच्चसग्गे च सुमनो।
सब्बत्थ सुमनो धीरो, सीलेसु सुसमाहितो।।

आवुसो! धीर पुरुष - शील शिक्षा पदों में सुसमाहित, इस जीवन में भी कीर्ति प्राप्त करता है; मरने के बाद उर्ध्व देवलोकों में सुखी सुमन होता है। धीर पुरुष सर्वत्र सभी लोकों में सुखी सुमन ही रहता है।

१२. सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवापन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेरु, सीलपञ्ञाणतो जयन्ति।।

आवुसो! इस लोक में केवल शील ही अग्र है। प्रज्ञावान तो उत्तम है। मनुष्य तथा देवलोकों में शील एवं प्रज्ञा की शक्ति सर्वत्र विजय प्राप्त करती है।

यहां 'सीलवा' थेर देशित बारह गाथा पूर्ण हुआ।

सीलवासुत्त समाप्त

शिक्षा-त्रय को एक प्रकार से संलग्न कर वर्णन करना

शिष्यो! शील एक प्रकार से कहें तो पैरों के समान है। समाधि धड़ (शरीर = काया) **के समान है और प्रज्ञा सिर के समान है। पैर के होने पर धड़ (काया) स्थिर रह सकती है। धड़ के होने पर ही सिर टिका रह सकता है। सिर (बुद्धि) के रहने पर ही धड़ बिना नष्ट हुए रहकर उसका उपयोग किया जा सकता है। सिर (बुद्धि) के रहने पर ही पैर बिना नष्ट हुए सुरक्षित हैं** - उपयोग में आते हैं। सभी कृत्यों को सम्पन्न करते हैं। सिर, पैर और धड़ के ऊपर स्थित होकर - श्रेष्ठ है। उन पैरों तथा धड़ को उत्पन्न करता है। पैरों एवं धड़ को दीर्घकाल तक बिना नष्ट हुए रखने वाला रक्षक है। जिस प्रकार यह सिर-पैर एवं धड़ की सुरक्षा करता है - क्षत-विक्षत नहीं होने देता। उनके स्थिर रखने का मूल कारण भूत है - सभी कृत्यों को संपादित रखने का कारणभूत है प्रधान है - इसी तरह प्रज्ञा भी शील को उत्पन्न करता है। प्रज्ञा ही समाधि को उत्पन्न करता है। यह प्रज्ञा - इन दोनों शील और समाधि को बिना स्खलित हुए दिये - दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने वाला स्थान - मूल कारणभूत - प्रधान है। यह प्रज्ञा ही है जो कि संपूर्ण शील समाधियों के कृत्य को पूर्ण करने का मूल कारण प्रधान मुखिया है। रेलगाड़ी की इंजन के दौड़ने पर उसके साथ जुड़े बीच वाले डिब्बे - अंत के डिब्बे स्वतः

पृष्ठ— ४०

उसके पीछे-पीछे हमेशा दौड़ते हैं। ठीक इसी तरह से प्रज्ञा आगे-आगे चलती है तो सील और समाधि स्वतः उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

शिष्यो! उन आचार्य का कथन गलत नहीं है। एकदम सच है। जो कोई व्यक्ति प्रज्ञा द्वारा लाभ हानि को देखकर शील शिक्षा पदों का पालन करता है - अपनी प्रज्ञा द्वारा लाभ-हानि को दोष-अदोष को देखकर ही समाधि का अभ्यास करता है - उसका

बहुलीकरण करता है - वैसे व्यक्ति के लिये कभी भी अविद्या का अंधकार उत्पन्न होगा तो प्रज्ञा के ज्ञान विद्या के प्रकाश से वह उसको दूर कर लेगा। उस प्रकाश में उसे दिखेगा। कभी उसे अविद्या के अन्धकार में भय लज्जा को न देखकर शिक्षा पदों को भंग कर विप्पटिसार कुक्कुच उद्धच्च आ जावेगा तो वह शांत नहीं रह पायेगा - उसकी समाधि टूट जावेगी। ऐसे समय में ञाण प्रज्ञा विद्या के प्रकाश से अविद्या के अन्धकार को दूर कर लज्जा और भय को उत्पन्न करेगा। शिक्षा पदों का पालन करेगा। विप्पटिसार कुक्कुच्च-उद्धच्च आदि को प्रज्ञा से शांत कर शांतिपूर्वक समाधि को उत्पन्न करेगा। वह समाधि पुनः प्रज्ञा को बहुलीकृत कर निर्मल करेगी।

अकुशल उत्पत्ति में अविद्या अगुआ है : कुशल उत्पत्ति में विद्या अगुआ है।

शिष्यो! लज्जास्पद कृत्य, भयावह कृत्य को सभी लोगों में मैंने नहीं किया - मैंने नहीं किया - यह दुर्भाषित कृत्य अपने पर आये हुए आरोप के बदले में कहना बड़ा लज्जास्पद है - भयावह भी है। शिष्यो! ऐसे अवसर पर प्रज्ञावान ही शील रख पाते हैं। समाधि रख पाते हैं। प्रज्ञा रहित व्यक्ति में शील नहीं रह पायेगा। समाधि नहीं रह पायेगी। इस तरह जब सम्मासङ्कप्प सहित सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग ज्ञान - 'प्रज्ञा' अगुआ रहेगा तब सभी बोधिपक्खिय धर्म सहित शील समाधि स्वतः जुड़ कर चले आवेंगे। इसलिए निर्वाण के देश में जाने वाली मग्गरूपी गाड़ी (रथ) में सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग पञ्ञाखन्धा को सर्वप्रथम आगे संलग्न कर भगवान ने देशित किया यह खयाल रखना। इसलिए भगवान ने यह देशित किया –

पृष्ठ – ४१

अविज्जा भिक्खवे पुब्बङ्गमा अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया, अन्वदेव अहिरीकं अनोत्तप्पं। विज्जा च खो भिक्खवे पुब्बङ्गमा कुसलानं धम्मानं समापत्तिया अन्वदेव हिरोत्तप्पं –

तथा –

पञ्ञाय परिहीनेन, पस्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नाम रूपस्मिं, इदं मच्चन्ति मञ्ञति।।

पञ्ञा हि सेट्ठा लोकस्मिं, यायं निब्बेधगामिनी।
सा च यस्मा पजानाति, जातिभवपटिक्खयं।।

तेसं देवा मनुस्सा च, सम्बुद्धानं सतीमतं।
विहन्ति हास पञ्ञानं, सरीरन्ति मधारिनन्ति।। (इतिवुत्तक)

भिक्षुओ! अकुशल धर्मों की समुत्पत्ति में अविद्या पूर्वगामी है। सभी अकुशल धर्मों सहित अहिरीक अनोत्तप्प धर्म उसके संगी-साथी हैं, अनुगामी हैं।

भिक्षुओ! कुशल धर्मों की उत्पत्ति में विद्या पूर्वगामी है। सभी कुशल धर्मों सहित हिरी ओत्तप्प धर्म उसके संगी-साथी हैं। अनुगामी हैं।

भिक्षुओ! प्रज्ञा से परिहीन, नामरूप में, 'यह मेरी काया वाला मन ही सच है,' इस तरह मानता है। मैं को मान रहा, मेरे से आसक्त, देव ब्रह्माओं सहित मनुष्यों को, (अथवा) इस लोक को देखो :

भिक्षुओ! लोक में केवल प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है। यह प्रज्ञा

पृष्ठ– ४२

किस कारण निर्वेध गामिनी है - मैं माने जा रहे रूप को; नाम को बींधकर जान सकता है - केवल वह प्रज्ञा ही - जिसे मैं मानते जा रहा है उसको बींधकर जान सकने के कारण जाति भव परिरूप स्थान अर्थात् जन्म के निरोध सत्य को जान सकता है।

भिक्षुओ! चारों सत्य का भलीभांति बोध होकर, अन्तिम शरीर को धारण किये हुए - स्मृतिमान हुए - उस प्रसन्न ज्ञान-प्रज्ञावान पुग्गल को आकाश के देव ब्रह्मगण प्रज्ञावान मनुष्य गण आदर श्रद्धापूर्वक देखना चाहते हैं तथा उनसे प्रेम करते हैं।

विज्जाविज्ज पुब्बङ्गम सुत्त, पञ्ञापरिहीन सुत्त दोनों समाप्त

श्रेष्ठ प्रज्ञा सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग को कल्याण मित्र से मिलकर ही जाना जा सकता है।

भिक्षुओ! इस प्रकार संपूर्ण कार्यों को पूरा करने वाला संगी-साथियों सहित 'सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग ञाण पञ्ञा' को भी कल्याण-मित्र से मिलकर उन पर आश्रित होकर ही प्राप्त किया जा सकता है। कल्याण-मित्र के बिना वह प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :–

कल्याण मित्तस्सेतं मेघिय भिक्खुनो पाटिकङ्खं। कल्याण सहायस्स कल्याण सम्पवङ्कस्स पञ्ञवा भविस्सति उदयत्थ गामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मदुक्खक्खय गामिनिया– (नवङ्गुत्तर)

पृष्ठ– ४३

"तात मेघिय! आर्य निर्वेधिकाय - नाम रूप को बींधकर चले जाने वाला सम्यक् दुःख क्षय निरोध को पहुंचने वाला, नाम रूप धर्मों के उदय-व्यय स्वभाव को जान सकने वाला - सम्यक दृष्टि मग्गङ्ग प्रज्ञा विशेष से परिपूर्ण (समन्नागत) जो कोई भिक्षु प्रज्ञावान होना चाहता है। तो इस प्रकार प्रज्ञावान होने के लिये उसे कल्याण मित्र, कल्याण सहायक, कल्याण सम्पवङ्क (जिनके पास झुककर आदरपूर्वक सीखा जा सके) की आवश्यकता होती है - किसी भिक्षु के लिये। उसकी वह आकांक्षा करता है।"

शिष्यो - इस तरह कल्याण मित्र के समीप जुड़कर उदय-अस्त गामिनी प्रज्ञा, सम्यक

दृष्टि मग्गङ्ग से परिपूर्ण व्यक्ति उस प्रज्ञा सम्यक दृष्टि के कारण अपने संपूर्ण भिक्षु के करणीय कार्य को समाप्ति तक पहुंचा सकेगा। उस प्रज्ञा के कारण पहुंचा। उस प्रज्ञा को भी कल्याण मित्र के दिये जाने पर ही प्राप्त कर सका। अतः कल्याण मित्र के कारण भिक्षु के करणीय कृत्य से कृतकृत्य हो सका यह कहलायेगा। संपूर्ण करणीय पूरा कर लिया गया यह कल्याण मित्र द्वारा किया गया यह कहलायेगा। इसलिये भगवान ने इस तरह देशित किया है :-

कल्याण मित्र का बहुत बड़ा उपकार होता है : कल्याण मित्त सुत्त उपड्ढमिदं भन्ते ब्रह्मचरियस्स, यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कताति। माहेवं आनन्द अवच, माहेवं आनन्द अवच। सकलमिदं आनन्द ब्रह्मचरियस्स, यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता, कल्याणसम्पवङ्कताति। (महावग्ग संयुत्त, सकलसिद्ध ब्रह्मचरिय सुत्त पाठ)

एक समय आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - भन्ते भगवान! ब्रह्मचर्य वास का आधा कार्य तो कल्याण मित्र, कल्याण सहाय, कल्याण वङ्कत के समीप संयोग करने से ही पूरा हो जाता है। आनन्द के इस प्रकार निवेदन करने पर भगवान ने कहा - आनन्द! वस्तुतः केवल आधा ही पूरा होता है यह मत कहो। इस तरह मात्र आधा ही पूरा होता है - सचमुच में ऐसा मत कहो। इस तरह आनन्द को मना करते हुए भगवान ने उत्तरोत्तर कहा- "आनन्द! कल्याण मित्र, कल्याण सहाय, कल्याण वङ्कत के समीप वास कर संयोग करने से ब्रह्मचर्य वास का सकल करणीय कार्य पूर्ण हो जाता है। सकल सिद्धि हो जाती है।

सकल सिद्ध ब्रह्मचरिय सुत्त का अर्थ समाप्त हुआ।

कल्याण मित्त के अङ्गों की परीक्षा (जांच)

शिष्यो! इस तरह के कल्याण मित्र जो कि हम भिक्षु के सकल करणीय को कर देने का उपकार करते हैं - प्रज्ञा को प्रदान करने वाले हैं - वे किस प्रकार के गुणों से पूर्ण हैं। किन-किन अंगों से पूर्ण पुग्गल हैं। इसे भगवान ने इस प्रकार देशित किया है।

पियो गरु भावनीयो, वत्ताच वचनक्खमो।
गम्भीरञ्च कथं कत्ता, नो च ठाने नियोजिता।।

पृष्ठ - ४५

यम्हि एत्तानि ठानानि, संविज्जन्ति च पुग्गले।
सोमित्तो मित्तकामेन, भजितब्बो तथाविधोति।

(सत्तङ्गुत्तर - कल्याण मित्त सुत्त)

भिक्षुओ! जो कोई पुग्गल -

(१) पियो च– शील समाधि प्रज्ञा शिक्षा-त्रय; **दान, पेय्यवज्ज** (प्रिय वाणी), **अत्थ चरिया** (परोपकार), **समानत्थता** (निष्पक्षपात) यह चार संग्रह धर्म; इन सभी सात धर्मों से पूर्ण होकर प्रिय गुण वाला होता है –

(२) गरु च– उपरोक्त सात धर्मों से पूर्ण; आदर प्राप्त करने वाला गरु गुण वाला होता है –

(३) भावनीय च– उपरोक्त सात धर्मों से पूर्ण; भावनीय गुण वाला होता है–

(४) वत्ता च– दूसरों के आरोपों का समाधान कर उपदेश दे सकने के वक्ता के गुणों वाला होता है–

(५) वचनक्खयो च– नहीं जानते हुए दूसरों के द्वारा पूछे गये वचन को सहन कर वचनाक्षम गुणों वाला होता है।

(६) गम्भीरञ्च कथं कत्ता– नाम रूप खन्धा से संबंधित गंभीर धर्म कथा को देशित करने वाला, गंभीर कथा कर्त्ता के गुणों वाला होता है–

(७) अट्ठाने नोच नियोजिता– अस्थान - अनुपयुक्त स्थान में नहीं रहने वाले अट्ठाने नोच नियोजित गुणों वाला होता है।

भिक्षुओं - जिस पुग्गल में यह - प्रिय, गरु, भावनीय, वक्ता, वचनक्खम, गम्भीर कथा कर्त्ता, अस्थान में नहीं रहने वाला यह सात गुण हों - वह कल्याण मित्र के अंगों से भलीभांतिपूर्ण है। जो कल्याण मित्र की कामना

पृष्ठ– ४६

करते हैं उन्हें ऐसे स्वभाव वाले मित्र जो इन सात अंगों से पूर्ण होते हैं - का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

कल्याण मित्र सुत्त का अर्थ समाप्त हुआ।

चार संग्रह धर्म का वर्णन

शिष्यो! यह चार संग्रह धर्म भी उपरोक्त वर्णित - कल्याण मित्र के सात अंगों से पूर्ण पुग्गल में ही पाया जावेगा। तीन शील एवं चार संग्रह पाया जाता है - कल्याण मित्र में। यह सातों जिनमें पूर्ण नहीं होते उनमें चार संग्रह नहीं पाया जाता। इस शिक्षा संग्रह से पूर्ण व्यक्ति प्रिय, गरु, भावनीय इत्यादि कल्याण मित्र अङ्गों से पूर्ण होता है। कल्याण मित्र अपने पर आश्रित सभी लोगों के भिक्षु करणीय कृत्य को पूर्ण करने वाले

कल्याण मित्र होते हैं। इस दान आदि संग्रह धर्मों को भी भगवान ने इस तरह देशित किया है :–

एतदग्गं भिक्खवे दानानं, यदिदं धम्मदानं, एतदग्गं भिक्खवे पेय्यवज्जानं, यदिदं अत्थिकस्स ओहितसोतस्स पुनप्पुनं धम्मं देसेति। एतदग्गं भिक्खवे अत्थचरियानं, यदिदं असद्धं सद्धासम्पदाय समादपेति निवेसेति पटिट्ठपेति। एतदग्गं भिक्खवे समानत्थताने, यदिदं सोतापन्नो सोतापन्नस्स समानत्थो। सकदागामी सकदागामिस्स समानत्थो। अनागामी अनागामिस्स समानत्थो। अरहा अरहतो समानत्थोति। (नवङ्गुत्तर - चतुबलट्ठित पञ्चभयातिकून्त सुत्त)

पृष्ठ– ४७

१. भिक्षुओ! जितने भी दान हैं उनमें धर्म का दान भी एक है। यह धर्म का दान समस्त दानों में अग्र है। श्रेष्ठ है।

२. भिक्षुओ! जरूरतमंद (मुमुक्षु) को; खूब भलीभांति कान देकर सुनने वाले को, पुनः पुनः धर्म को देशित किया जाता है। इस प्रकार धर्म श्रवण करने वाले को पुनः पुनः धर्म को देशित कर कहना– समस्त **प्रिय वचनों (पेय्य वज्जानं) में अग्र होता है। श्रेष्ठ होता है।**

३. भिक्षुओ! अश्रद्धालु को श्रद्धा से परिपूर्ण करने के लिये; जो स्थापित करता है, जो घुसाता है, निवेसित करता है, जो प्रतिष्ठापित करता है; दुःशील व्यक्ति को शील से पूर्ण करने के लिये - कंजूस (मत्सर) को, त्याग सम्पदा से पूर्ण करने के लिये - दुष्प्रज्ञ को प्रज्ञा की सम्पदा से पूर्ण करने के लिये - जो स्थापित करता है, जो घुसाता (निवेसित) करता है, जो प्रतिष्ठित करता है; इन व्यक्तियों को श्रद्धा, शील, त्याग, प्रज्ञा से परिपूर्ण कर देना अन्य द्वारा किये जाने वाले **अत्थचरियाओं (परोपकारों)** में अग्र है - श्रेष्ठ है!

४. भिक्षुओ! कोई स्रोतापन्न हो गया। वह स्रोतापन्न नहीं हुए व्यक्ति को अपने ही समान स्रोतापन्न होने हेतु देशित कर अपने बराबर स्रोतापन्न के लाभ को उत्पन्न करता है।

पहले सकदागामी हो गया कोई व्यक्ति - देशना

पृष्ठ– ४८

करके बाद के व्यक्ति को अपने ही समान उसमें सकदागामी के लाभ को उत्पन्न करता है। पहले से अनागामी हुआ व्यक्ति - देशना करके बाद के व्यक्ति को अपने ही समान उसको अनागामी के लाभ को उत्पन्न करता है। पहले से अरिहंत हुआ व्यक्ति– देशना करके बाद के व्यक्ति को अपने ही समान उसमें अरिहंत के लाभ को उत्पन्न करता है। इस तरह **अपने स्रोतापन्न सकदागामी, अनागामी, अरिहंत की अवस्था के**

समान किसी अन्य में बराबरी का लाभ उत्पन्न करना - अपने बराबर बनाने वाले सभी बातों में सर्वश्रेष्ठ है।

यहां चार संग्रह धर्म पूरा हुआ।

यदि स्वयं कोई व्यक्ति पंचशील से परिपूर्ण है - यदि वह अन्य लोगों को भी पंचशील से परिपूर्ण होना सिखाता है - और वे अन्य लोग अपने समान पंचशील में प्रतिष्ठित हो जाते हैं... तो यह अपने बराबर लाभ उत्पन्न करने वाला समानत्थता कहलाता है। इसी तरह इसे क्रमशः अरिहन्त तक जानो। लोकीय संग्रह में भी इसी तरह समझना चाहिये।

तीन कल्याण मित्र को अधिक लाभ

शिष्यो! इस चार संग्रह धर्म से अपूर्ण व्यक्ति भले ही शील समाधि प्रज्ञा से पूर्ण क्यों न हो उसमें केवल गरु गुण ही है। उसमें पिय भावनीय इत्यादि गुण नहीं हैं। वह कल्याण मित्र पुग्गल नहीं। यह गरु गुण काले नाग अंगारे (अग्नि पिण्ड) आदि में ही होता है। पिय भावनीय इत्यादि गुण जो हैं ये चार संग्रह धर्म से भी पूर्ण होने पर ही मात्र रह सकते हैं। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :-

पृष्ठ- ४९

एते खो सङ्गहा नस्सु, न माता पुत्त कारणा।
लभेथ मानं पूजं वा, न पिता पुत्त कारणा।।

यस्मा च सङ्गहा एते, समवेक्खन्ति पण्डिता।
तस्मा महत्तं पप्पोन्ति, पसंसा च भवन्ति ते।।

(सुत्तपाथेय्य पाळि - सिङ्गालोवाद सुत्त)

गृहपति पुत्र! (सिङ्गाल° नामक गृहपति श्रेष्ठिका पुत्र!) यह चार सङ्गह धम्म (संग्रह-धर्म) यदि नहीं है - तब माता पुत्र होने के कारण उस पुत्र को मान-पूजा नहीं दे सकती, पिता भी पुत्र होने के कारण उस पुत्र को मान-पूजा, आदर-सत्कार नहीं दे सकता। अर्थात् चारों संग्रह नहीं होगा तो माता या पिता, पुत्र को मान-पूजा, आदर-सत्कार उसके पुत्र होने के कारण से नहीं करते। वह उसको प्राप्त नहीं हो सकता।

इसलिये पण्डित लोग इन चार-श्रेष्ठ अर्थों को चाहते हैं कि समभाव से इन्हें रखें। इन्हें पूरा रखवाना चाहते हैं। इसलिये इन चार संग्रह धर्मों से पूर्ण प्रज्ञावान, महत्वपूर्ण अवस्था को प्राप्त करते हैं। प्रशंसा भी होती है।

इसलिये - शिष्यो! यह चार संग्रह धर्म, तीन शिक्षा इन सात धर्मों से पूर्ण व्यक्ति

ही पिय, गरु, भावनीय इत्यादि कल्याण मित्र अंग पूर्ण कर उस सबको जो अपनी ओर आश्रित होते हैं - उन भिक्षुओं के कृत्य को पूरा कर सकने वाले कल्याण मित्र पुग्गल होते हैं। शिष्यो! उस प्रकार के कल्याण मित्र पुग्गल को भगवान ने इस तरह गुण उपकारों को अभिव्यक्त कर प्रशंसा किया है। उस तरह प्रशंसा करना भी तुम शिष्य गण सुनो। भगवान - श्रावस्ती

पृष्ठ– ५०

के जेतवन में विहार कर रहे थे। तब भिक्षुओं को सम्बोधित किया :–

तयो मे भिक्खवे पुग्गला लोके उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देव मनुस्सानं।

भिक्षुओ! तीन प्रकार के पुग्गल - बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, संपूर्ण मनुष्यों पर अनुकम्पा करने के लिये, देव मनुष्यों के अर्थ - हित सुख के लिये लोक में (उत्पन्न हुए हैं - उत्पन्न होते हैं।) यदि उत्पन्न होते हैं तो इसीलिए उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आये हुए चुण्णिय देशना को विस्तारपूर्वक देशित कर संक्षिप्त रूप में उपसंहार गाथा को इस प्रकार देशित किया :–

१. सत्था हि लोके पठमो महेसी।
तस्सान्वयो सावको भावितत्तो।।
प्रथापरो पाटिपदोपि सेक्खो।
बहुस्सुता सीलवतूपपन्ना।।

२. एतेतयो देवमनुस्स सेट्ठा।
पभङ्करा धम्ममुदीरयन्ता।।
अमतस्स द्वारं सुविवरन्ता।
योगा पमोचेन्ति बहुजनं ते।।

३. ये सत्थवाहेन अनुत्तरेन।
सुदेसितं मग्गमनुग्गमन्ति।।
इधेव दुक्खस्स करोन्ति अन्तं।
ये अप्पमत्ता सुगतसासनेति।।

- (इतिवुत्तक - बहुजनहित सुत्त पाठ)

पृष्ठ– ५१

१. भिक्षुओ! शीलक्खन्ध इत्यादि उपकार गुण विशेष को खोजकर निकालने वाले - तीनों मनुष्यों के आचार्य सर्वज्ञ बुद्ध, लोक में प्रथम पुग्गल हैं। उन सर्वज्ञ बुद्ध को आश्रित होकर (अन्वय होकर) उनके श्रावक निर्वाण को भावित कर अरिहन्त हो गये पुग्गल, द्वितीय पुग्गल हैं। इसके उपरान्त, बहुश्रुत शील एवं धुतंग से पूर्ण धर्म को आचरण करने में आरूढ़ शैक्ष्य पुग्गल, तीसरे पुग्गल हैं। (सम्यक सम्बुद्ध– श्रावक– शैक्ष्य– क्रमशः प्रथम - द्वितीय एवं तृतीय पुग्गल हैं।)

२. भिक्षुओ! यह तीनों पुग्गल देव मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। यह तीनों पुग्गल धर्म को उपदेशित कर लोकीय लोकोत्तर प्रज्ञा के प्रकाश को प्रकाशित करते हैं। अमृत के द्वार को खोल देते हैं। सुविवरित कर देते हैं। मृत्यु रहित अमृत पड़ाव स्वर्ण नगर के द्वार को पूर्ण विवर कपाट कर देते हैं (खोल देते हैं।) बहुत से जनों को मृत्यु के बन्धन से (योगा) मुक्त करते हैं।

३. भिक्षुओ! जो कोई व्यक्ति– अनुत्तर मुक्त, सत्वों को निर्वाण तक पहुंचाने वाले सत्व वाहन मुझ बुद्ध के सुदेशित (अष्टांगिक) मार्ग पर अनुगमन करते हैं, चलते हैं - वे अनवरत चलने वाले पण्डित जन मुझ सुगत के शासन में अप्रमत्त हो (बिना प्रमादित हुए = सतत जागरूक) वे पण्डित ज्ञानी जन इसी जन्म में ही

पृष्ठ– ५२

संसारावर्त्त दुःख का अन्त कर सकते हैं।

बहुजनहित सुत्त अर्थ समाप्त।

कल्याण मित्र चार बलों से (युक्त) पूर्ण होकर पांच भयों से मुक्त होते हैं।

शिष्यों! इस तरह भगवान ने प्रशंसा करने योग्य उन कल्याण मित्रों के संबंध में यह भी कहा कि उनमें - **पञ्ञाबल**, समाधिक्खन्ध का **वीरियबल**, सील का **अनवज्जबल**, चार संग्रह बल का **संग्रहबल** - इन चार बलों से वे पूर्ण होते हैं। जीविकोपार्जन का **आजीवक भय**; निन्दा-भय (व) प्रसिद्धि नहीं होने नामक **असिलोक भय**; परिषद् में डरने नामक **परिससारज्ज भय**; मृत्यु का **मरण भय**; अपाय गति में जाने का **दुग्गति भय** (अथवा)=माता के गर्भ में दुःख से प्रवेश करने में उत्पन्न दुग्गति, भय - (अथवा)=तीनों लोकों में उत्पन्न होने के दुग्गति भय - इन पांचों भय के परे - अतिक्रमण कर अपने पर आश्रित होकर आने वाले लोगों की सभी भिक्षु कृत्य को पूर्ण कर पायें ऐसे करने के सामर्थ्य वाले होते हैं। सभी संसार भीरूक धम्मकाम कुलपुत्तों के आश्रय त्राण, लेण, परायन पुग्गल होते हैं। शिष्यों - वे कल्याण मित्र पुग्गल चार बल से पूर्ण होते हैं; पांच भयों को पार किये होते हैं यह भगवान ने इस प्रकार देशित किया है–

इमेहि खो भिक्खवे चतूहि बलेहि समन्नागतो अरिय सावको इमानि पञ्चभयानि समतिक्कन्तो होतीति। (नवङ्गुत्तर, चार बल से पूर्ण होकर पांच महाभयों को लांघने को देशित चतुबलङ्कित पञ्चभयातिक्कन्त सुत्त का अंतिम उपसंहार अंश।)

पृष्ठ – ५३

भिक्षुओं, इस चार बल - प्रज्ञा, वीरिय, अनवज्ज, संग्रह बलों से परिपूर्ण आर्य श्रावक मेरे शिष्य - इन पांच भय - आजीवक, असि लोक, परिससारज्ज, मरण, दुर्गति भय नामक पांच भयों को भलीभांति समतिक्रमण कर लेते हैं। इन पांच भयों से मुक्त होते हैं।

वह वीर्यवान भयों को लांघ गया हुआ का सोचना भगवान ने इस प्रकार देशित किया है :–

भिक्षुओ! मेरे आर्य श्रावक उन बलों से पूर्ण - शैक्ष्य पुग्गल जो मार्ग पर आरूढ़ हैं इस तरह सोचता है :– मैं जीविका न मिलने के भय से भयभीत नहीं हूं। मैं जीविका न मिलने के भय से क्यों भयभीत रहूंगा? मेरे पास चार बल हैं :– प्रज्ञा-बल, पराक्रम-बल, निर्दोषता-बल तथा संग्रह-बल। जो दुष्प्रज्ञ हो, वह जीविका न मिलने के भय से भयभीत हो। जो आलसी हो वह जीविका न मिलने के भय से भयभीत हो।

पृष्ठ – ५४

जिसके शारीरिक कर्म, वाणी के कर्म तथा मानसिक कर्म सदोष हों, वह जीविका न मिलने के भय से भयभीत हो। जो संग्रह करने वाला न हो - जिनके चारों संग्रह के बल न हों वह जीविका न मिलने के भय से भयभीत हो।

इसी तरह से -

"नाहं असिलोकभयस्स भायामि। किस्साहं असिलोकभयस्स भायिस्सामि"... नाहं परिससारज्जभयस्स... नाहं मरणभयस्स... नाहं दुग्गतिभयस्स..."

इसी तरह - मैं निन्दा-भय से भयभीत नहीं होता हूं...। मैं परिषद में आने-जाने का संकोच होने से भयभीत नहीं हूं... मैं दुर्गति-भय से भयभीत नहीं हूं। (दुर्गति अर्थात् मां के गर्भ में शयन करने के भय अथवा - तीनों लोकों में उत्पन्न होने के भय से) मैं दुर्गति-भय से क्यों भयभीत रहूंगा। मेरे पास चार बल हैं– प्रज्ञा-बल, पराक्रम-बल, निर्दोषता-बल तथा संग्रह-बल। जो दुष्प्रज्ञ हो, वह दुर्गति-भय से भयभीत हो। जो आलसी हो, वह दुर्गति-भय से भयभीत हो। जिसके शारीरिक कर्म, वाणी के कर्म तथा मानसिक कर्म सदोष हों, वह दुर्गति-भय से भयभीत हो। जो संग्रह न करने वाला हो - जिनको संग्रह के चारों बल न हों वह दुर्गति-भय से भयभीत हो।

भिक्षुओ! इस तरह पांच भयों से मुक्त होकर निर्भय - पिय, गरु, भावनीय आदि

(७) अंगों से पूर्ण कल्याण मित्र को आश्रित होकर अपने भिक्षु धर्म के करणीय सम्यक दृष्टि मार्गज्ञ प्रज्ञा प्राप्त हो सकता है। इसलिये अपने भिक्षु कृत्य को पूर्ण करने की कामना वाले भिक्षु - तुम शिष्यगण सप्पुरिस भूमि में स्थित होकर उस प्रकार के कल्याण मित्र को आश्रित होकर सभी

पृष्ठ – ५५

दुक्खों से मुक्त हो जाओ। शिष्यों! जो यह सप्पुरिस भूमि कहा गया उसका वर्णन भगवान ने इस तरह किया है :–

सत्पुरुषों का आश्रय सप्पुरिस सिक्खा को वर्णित करने वाला सप्पुरिस भूमि सुत्त

असप्पुरिसभूमिञ्च वो भिक्खवे देसिस्सामि सप्पुरिस भूमिञ्च। तं सुणाथ साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामीति। एवं भन्तेति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच। कतमा च भिक्खवे असप्पुरिस भूमि, असप्पुरिसो भिक्खवे अकतञ्ञू च होति अकतवेदी च। असब्भि तं भिक्खवे उपञ्ञत्तं। यदिदं अकतञ्ञुता अकतवेदिता। केवला एसा भिक्खवे असप्पुरिस भूमि। यदिदं अकतञ्ञुता अकतवेदिता। सप्पुरिसो च भिक्खवे कतञ्ञू च होति कतवेदी च। सब्भि तं भिक्खवे उपञ्ञत्तं। यदिदं कतञ्ञुता कतवेदिता। केवला एसा भिक्खवे सप्पुरिस भूमि। यदिदं कतञ्ञुता कतवेदिता ति। (दुकङ्गुत्तर - सप्पुरिस भूमि सुत्त पाठ) भ.आ. कौसल्यायन - अं.नि. भाग १ - पृष्ठ ६३.

"भिक्षुओ, मैं अ-सप्पुरिस (असत्पुरुष)-भूमि तथा सत्पुरुष भूमि की देशना करता हूं। उसे सुनो अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"भन्ते, अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को उत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

पृष्ठ – ५६

"भिक्षुओ, असत्पुरुष-भूमि कौन-सी है ?"

"भिक्षुओ, असत्पुरुष अकृतज्ञ होता है, कृत-उपकार को न जानने वाला। भिक्षुओ, इस अकृतज्ञता की, इस अकृतवेदिता की असत्पुरुषों ने ही प्रशंसा की है। भिक्षुओ, यह जो अकृतज्ञता है, यह जो अकृतवेदिता है, यह सम्पूर्ण असत्पुरुष-भूमि है। भिक्षुओ, सत्पुरुष कृतज्ञ होता है, कृत उपकार को जानने वाला। भिक्षुओ, इस कृतज्ञता की, इस कृतवेदिता की सत्पुरुषों ने ही प्रशंसा की

पृष्ठ – ५७

है। भिक्षुओ, यह जो कृतज्ञता है यह जो कृतवेदिता है, यह सम्पूर्ण सत्पुरुष-भूमि है।"

अकृतवेदी वह जो कृतज्ञता को किसी पर प्रकट नहीं करता। परन्तु कृतवेदी - वह जो किसी के उपकार से उपकृत होकर कृतज्ञता को सब पर जाहिर करता है - प्रकट करता है।

सप्पुरिस भूमि सुत्त का अर्थ समाप्त हुआ

कृतज्ञता योग्य सप्पुरिस भूमि में स्थित तीन उपकारी पुग्गल गुरुजन

शिष्यों! इस तरह भगवान के द्वारा देशित सप्पुरिस भूमि में स्थित कृतज्ञता योग्य उपकारक तीन हैं। एक व्यक्ति के लिये ऐसे तीन उपकारक हैं। इसका वर्णन भगवान ने इस प्रकार किया है :–

बहुपकार - सुत्त तीन अङ्गुत्तर - (भ.आ. कौ.पृ. १२४)

१. तयो मे भिक्खवे पुग्गला पुग्गलस्स बहुपकारा। कतमे तयो, यं भिक्खवे पुग्गलं आगम्म पुग्गलो बुद्धं सरणं गतो होति। धम्मं सरणं गतो होति। संघं सरणं गतो होति। अयं भिक्खवे पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुपकारो।

२. पुन च परं भिक्खवे यं पुग्गलं आगम्म पुग्गलो इदं दुक्खन्ति यथाभूतं पजानाति। अयं दुक्खसमुदयोति यथाभूतं पजानाति। अयं दुक्ख निरोधगामिनि पटिपदा यथाभूतं पजानाति। अयं भिक्खवे पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुपकारो।

३. पुन च परं भिक्खवे यं पुग्गलं आगम्म पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेवधम्मे सयं

पृष्ठ– ५८

अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं भिक्खवे पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुपकारो।

इमे खो भिक्खवे तयो पुग्गला पुग्गलस्स बहुपकारा। इमेहि च पन भिक्खवे तीहि पुग्गलेहि इमस्स पुग्गलस्स नत्थञ्ञेव पुग्गलो बहुपकारोति वदामि। इमेसं पन भिक्खवे तिण्णं पुग्गलानं इमिना पुग्गलेन न सम्पटिकारं वदामि यदिदं अभिवादन पच्चुपट्ठानञ्जलिकम्म सामिचिकम्म चीवरपिण्डपातसेनासन गिलानपच्चयभेसज्ज परिक्खारानुप्पादनेनाति।

१. "भिक्षुओ, ये तीन जन किसी एक व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले हैं। कौन से तीन जन ?"

"भिक्षुओ! जिस व्यक्ति के कारण कोई व्यक्ति बुद्ध की शरण जाता है, धर्म की शरण जाता है, संघ की शरण जाता है, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

२. "और भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण कोई व्यक्ति यह दुक्ख है इसे यथाभूत जानता है, यह दुक्ख समुदय है इसे यथाभूत जानता है, यह दुक्ख निरोध है

पृष्ठ – ५९

इसे यथार्थ रूप से यथाभूत जानता है, यह दुक्खनिरोध गामिनी मार्ग है - उस ओर ले जाने वाला मार्ग है इसे यथाभूत जानता है - भिक्षुओं, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

३. "फिर भिक्षुओं, जिस पुग्गल (व्यक्ति) के कारण कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय करके इसी शरीर में अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है - वह पुग्गल उस व्यक्ति का (अरिहंत अवस्था तक पहुंचकर) बहुत उपकार करने वाला होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन जन - व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले हैं। भिक्षुओ, मैं कहता हूं कि इन तीन जनों से बढ़कर पुग्गलों का कोई उपकार करने वाला नहीं है। भिक्षुओं! यदि पुग्गल (मनुष्य=व्यक्ति) इन

पृष्ठ – ६०

तीन जनों का केवल अभिवादन, प्रत्युपस्थान, हाथ जोड़ना, योग्य क्रिया, चीवर, पिण्डपात, शयनासन, गिलान प्रत्यय, भैसज्य परिष्कार आदि देकर प्रत्युपकार करना चाहे तो यह सु-प्रत्युपकार नहीं होता।"

यहां बहुपकार सुत्त का अर्थ समाप्त हुआ।

उय्योजन (प्रेरणा)

शिष्यो! इस तरह भगवान द्वारा देशित सप्पुरिसभूमि सुत्त तथा बहुपकार सुत्त को कंठस्थ कर उसके अर्थ को जानो। अपने भिक्षु करणीय कृत्य को पूरा करो। सर्वोत्तम की प्राप्ति के इच्छुक तुम सभी शिष्य आयुष्मान सारिपुत्त के समान सत्पुरुष-भूमि पर स्थापित होकर कल्याण मित्र प्रज्ञावान सत्पुरुष की संगति करो। और संपूर्ण दुक्खों से मुक्त होओ। शिष्यो! आयुष्मान सारिपुत्र के सप्पुरिस-भूमि में स्थित होने की कथा को जानना चाहो तो मेरे धर्मोपदेश के आधार पर सुनकर मेरे शिष्य संघ सोभण संघ द्वारा संकलित **धम्मरासी** ग्रन्थ का अवलोकन करो।

सिस्सानुसासन गाथा

सब्भिरेव समासेथ, सयं ठत्वान संभूमिं।
सतं सद्धम्म मञ्ञाय, सब्बदुक्खा पमुच्चय।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

ओ शिष्यों, तुम सब स्वयं भी सप्पुरिस भूमि में अपने आपको स्थापित करो। कल्याण मित्र सत्पुरुषों से ही योग करो। उनकी संगति - उनका संयोग उनके द्वारा देशित सद्धम को जानकर सभी दुक्खों से मुक्त हो जाओ।

इति मग्गरथ विधान पब्बं

४ - मग्गरथपेसन खण्ड

निर्वाण नगरगामी मग्गरथों को लोकीय नगरगामी यंत्र रथ के उदाहरण से समझाना

शिष्यो! एक उदाहरण समझें। जंगली जन गामड़ों को रतनपूर्ण मन्धार (माण्डले) राजधानी पहुंचाने का इच्छुक एक पण्डित रथवान। अथवा रेलगाड़ी का अधिकारी। उन जंगलियों को मन्धार नगर का स्थिति स्थान सहित उसकी शांति का, सुख का वर्णन करता है। वहां जाकर निवास करने के गुणों का उन अनजानों को बताता है। उनके यह जान जाने पर उन्हें वहां चलने और पहुंचने हेतु पुनः कहता है। जिस साधन द्वारा जिस रेलगाड़ी द्वारा जाया जावेगा उसके प्रथम द्वितीय श्रेणी के यानों का वर्णन उस पर कैसे सवार हुआ जावेगा। सुख-शांतिपूर्वक उस पर सवार हो जाने का गुण-उपकार को भी कहता है। केवल इतना कह देने मात्र से काम पूरा नहीं होता, बिना समय गंवाये शीघ्रतापूर्वक सायरन बजते ही टिकिट देकर गाड़ी पर चढ़ाता है। जल्दी पहुंचने वाली गाड़ी पर सवार होकर जाते हैं। गाड़ी रुकती है। वे गांमड़ों को सेलक्खरा रुळ्ह पञ्चम संगायना करवाने वाले राजाओं द्वारा निर्मित रतनापुण्ण मन्धार (मान्डले) नामक राजधानी को गाड़ी से उतरकर शांतिपूर्वक पहुंचते हैं। अपने-अपने मन्तव्यानुसार ठहरते हैं। इसी तरह मेरे शिष्यो! इस लोकीय नगर जाने वाली गाड़ी का चालक अधिकारी नामक तुम्हारा आचार्य मैं लोकुत्तरा निर्वाण को, वहां पहुंचाने वाली अष्टांगिक मार्ग रूपी गाड़ी को, उसके स्थिति स्थान सहित वहां जाने की मनोभावना वहां की अच्छाइयां, गुण, उपकार को बतलाकर भलीभांति समझाकर पूरा किया। वह काम पूरा हुआ। अब उस रेलगाड़ी पर अष्टांगिक मार्ग रथ पर सवार होकर शीघ्रातिशीघ्र दौड़ते हुए उसमें वहां प्रविष्ट होओ।

उद्घोषण की तीन गाथाएं (सीटी (सायरन) संबंधी तीन गाथा)

गाथा पाठ और अर्थ

१. सुसुखं अमतं पूरं, लोकन्तं बुद्ध देसितं।
मग्गङ्गिकेन पानेन, एथ तिस्सा गमाम्हते।।

भगवान बुद्ध द्वारा भलीभांति देशित - लोकों के परे लोकों के अन्त में स्थित सुन्दर सुखों वाला अमृतपुर निर्वाण - जहां कभी मृत्यु नहीं उस स्वर्ण नगर को आर्य अष्टांगिक मार्ग नामक यान पर सवार होकर ऐसा यान जो न कभी टूटता-फूटता है न शोर करता

है - बहुमूल्य कीमती यान द्वारा शीघ्रता से गमन करो। ओ सर्वोत्तम को प्राप्त करने की कामना वाले शिष्यो - आओ।

२. सुसुखं अमतंपूरं, लोकन्तं बुद्धदेसितं।
समाधिकेन दासेन, एथ सिस्सा दिसाम्हसे।।

भगवान बुद्ध द्वारा देशित लोकों का अन्त सुन्दर सुखों से पूर्ण उस अमृतपुर निर्वाण को - उस अंतिम पड़ाव को - समाधि से पूर्ण

पृष्ठ– ६३

सदा साथ रखने वाले अत्यंत पारदर्शी अणुविक्षण यंत्र से निर्दिष्ट दिशा की ओर देखो। ओ सर्वोत्तम को प्राप्त करने की कामना वाले शिष्यो - आओ।

३. सुसुखं अमतंपुरं, लोकन्तं बुद्धदेसितं,
बोज्झङ्गिकेन मानेन, एथ सिस्सा पवेम्हसेति।

भगवान बुद्ध द्वारा भलीभांति देशित - लोकों के परे लोकों के अन्त में स्थित सुन्दर सुखों वाला, अमृतपुर निर्वाण - जहां कभी मृत्यु नहीं उस स्वर्ण नगर को सातों बोधि के अंगों से पूरित बोज्झङ्ग नामक यान पर सवार होकर - ऐसा यान जो न कभी टूटता-फूटता है - न शोर-शराबा करता है - उस बहुमूल्य कीमती यान द्वारा शीघ्रता से गमन करो। ओ सर्वोत्तम को प्राप्त करने की कामना वाले शिष्यो - आओ।

यहां सायरन बजाकर शिष्यों को बुलाने के समान तीन उद्घोषण गाथा पूरा हुआ।

पार गमन पत्र (टिकिट) देने संबंधी गाथा

(गाथा पाठ - अर्थ)

सीलं याव जरा साधु, सद्धा साधु पतिट्ठिता।
पञ्ञा तुम्हाकं रतनं, पुञ्ञं चोरेहि दुहरन्ति।

१. शिष्यो! अब सर्वोत्तम की कामना से पूर्ण होकर आचार्य के समीप याचना कर चुके तुम लोगों के लिए - सील समाधि संवत्तनिक निर्मल शील बचपन से जरा अवस्था तक पालन करने योग्य है - साधु है। कल्याणकर है।

पृष्ठ– ६४

२. तुम लोगों के लिए - श्रद्धा, आचार्य के शक्ति सामर्थ्य के प्रति श्रद्धा में दृढ़ता से प्रतिष्ठित होना, संपूर्ण देशित के प्रति श्रद्धा, देशित कृत्य पूरा करना - साधु है। कल्याणकारी है।

३. ... तुम लोगों के लिये - प्रज्ञा यह धातुओं को विभाजित कर साक्षात करने वाला सम्यक दृष्टि मग्गङ्ग प्रज्ञा - बहुमूल्य समस्त कृत्यों को पूरा कर कृत्य-कृत्य करवाने वाला श्रेष्ठ रत्न है। अतः साधु है। कल्याणकारी है।

४. ... तुम लोगों के लिये पुण्य अर्थात् दान, अपचायन, वेय्यावच्च, उट्ठान उपट्ठान, सुस्सुत, पारिचरिय इत्यादि कुशल कर्म - चोरों द्वारा हरण नहीं किया जा सकने वाला दुष्हरण है। अथवा यूं कहो कि - पांचों प्रकार के वैरी नष्ट नहीं कर सकते - ऐसी निजी सम्पत्ति है। दिन-रात वर्षोपर्यंत तुम्हें सुखपूर्वक भावित एवं बहुलीकृत करने के लिए है। यह तुम्हारे लिए साधु है। बहुत कल्याणकारी है। यहां पर मानो पारगमन पत्र देकर गाड़ी पर चढ़ने हेतु शिष्यों को कह दिया गया - ऐसा आदेश अनुसासनी गाथा पूर्ण हुआ।

इति मग्गरथपेसनपब्बं

पृष्ठ— ६५

५ - निब्बान गमन खण्ड

सुतन्त सुञ्ञत विधि से साधना

नमो तस्स छः धातु पारङ्गतस्स ममाचरियस्स अरहतो।

शिष्यो! छः धातु को विभाजित कर यथाभूत जान सकने वाला सम्मादिट्ठि मग्गङ्ग ञाण विद्या तुम्हारे संपूर्ण भिक्षु करणीय कृत्य पूर्ण करने के कारण उत्तम रत्न हैं। छः धातुओं की साधना विधि मार्ग, छः धातु विभङ्ग धातु कम्मट्ठान को मैं देशित करूंगा। तुम शिष्य गण भलीभांति, मन लगाकर सुनो। उसके अर्थ अभिप्राय को; स्वभाव अर्थ को; बींधकर जान सको इसलिये मन लगाकर सुनो। देशित करता हूं।

छः धातुकों को संक्षिप्त अभिव्यक्त करने वाली गाथा का पाठ अर्थ

पथवी आपो च तेजो च, वायो कासविञ्ञाणिदं।
नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।।

एवं विरत्तं खेमत्तं, सब्बसञ्ञोजनातिगं।
अन्वेसं सब्बठानेसु, मार सेनापि नज्झगाति।।

(सेक्ख्यभासित छः धातु विभङ्ग धातु कम्मट्ठान में उद्देसवार मातिका गाथा)

१. सर्वोत्तम की कामना करने वाले शिष्यो! लोक में पृथवी नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला पृथ्वी धातु है।

२. आपो = जल नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला आपो धातु है।

३. तेजो = अग्नि नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला तेजो धातु है।

४. वायो = वायु नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला वायो धातु है।

पृष्ठ– ६६

५-६. आकासविञ्ञाणञ्च = आकाश नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला आकाश धातु; विज्ञान = जानने के स्वभाव नामक ब्रह्मापञ्ञत्त कहलाने वाला विञ्ञाण धातु है।

शिष्यो! प्रज्ञावान पण्डितो ने इन छः धातुओं को मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरी सम्पत्ति नहीं इस तरह विपश्यना द्वारा साक्षात्कार किया है। इस तरह देखा हुआ होने के कारण उन छः धातुओं के प्रति आसक्ति रहित हुए हैं। विरज्जति।

शिष्यो! इस तरह विरक्त होकर, अनासक्त होकर सभी संयोजनों के बन्धन से मुक्त हो गये। क्षेमयुक्त भयमुक्त सत्य निर्वाण को प्राप्त हो गये। उन प्रज्ञावान पुग्गल को सभी स्थानों, भवों में अन्वेषित करने पर भी मार की सेना - जाति जरा द्वारा भी ढूंढ़े नहीं प्राप्त होता।

उद्देसवार मातिका गाथा पाठ अर्थ समाप्त

उपयोजन

शिष्यो! इस उद्देसवार मातिका गाथा पाठ-अर्थ को एक-एक पद को बिना भटके - बिना छोड़े भलीभांति कंठस्थ करो। भलीभांति हृदयंगम करो। अनुपादिसेस निर्वाण की प्राप्ति तक मत भूलना।

पृष्ठ– ६७

इति छः धातु विभङ्गे उद्देसवारो

यह सेक्ख्यभासित छः धातु विभङ्ग धातु कम्मट्ठान में उद्देसवार शीर्षक मातिका रखकर संक्षिप्त स्वरूप बतलाने वाला उद्देसवार है।

उद्देसवार मातिका पूर्ण हुआ

शिष्यो! इस छः धातुओं में, पृथ्वी में मागधी भाषा में पुकारा जाने वाला पृथ्वी धातु बाहिर पृथ्वी धातु, अज्झत्त पृथ्वी धातु इस प्रकार दो हैं। बाहिर पृथ्वी धातु के अंतर्गत

सत्व सन्तान (चित्तसंतति) विञ्ञाण को छोड़कर बहिद्ध सन्तान में जो भी आता है - यथा - महापृथ्वी, सुमेरू पर्वत, चक्रवाळ, पर्वत, वृक्ष, पहाड़ जंगल, घर, विराट, भव विमान इत्यादि सभी जो आंखों से दिखाई पड़ते हैं वह सभी ठोस वस्तुएं आती हैं। इन सबको बहिद्ध पृथ्वी धातु समझना।

पृथ्वी धातु के २० संक्षिप्त रूप का वर्णन

प्राण विञ्ञाण धारी सब्ब सन्तान (चित्तसंतति) में निम्न बीस समूहों को अज्झत्त पृथ्वी धातु कहते हैं। इन्हें अज्झत्त पृथ्वी धातु समझना : **"केश, रोम, नख हाथ के, नख पैर के, दंत, त्वक्, मंस, वाहिका (न्हारू), अस्थि, अट्ठिमिञ्जं, वृक्क, हृदय, यकृत, किलोमकं, पिटकं, फुप्फुस, बड़ी आंत, छोटी आंत, नया भोजन, पुराना भोजन, मस्तिष्क"। "मस्तिष्क, पुराना भोजन, नया भोजन, छोटी आंत, बड़ी आंत, फेफड़ा, पिहकं, किलोमकं, यकृत, हृदय, वृक्क, अट्ठिमिञ्ञं, अस्थि, वाहिका, मंस, त्वक्, दंत, हाथ के नख, पैर के नख, रोम, केश" इन बीस समूहों को अज्झत्त पृथ्वीधातु कहते हैं। इसे भीतरी पृथ्वी धातु समझना।**

१. केसा = मागधी भाषा का शब्द है। केश को हम सब आंखों से देखते ही हैं। इसको समझाने की आवश्यकता नहीं।

पृष्ठ– ६८

२. लोमा = मागधी में रोम को कहते हैं।

३. नखा = मागधी में नाखून को कहते हैं। हाथ-पैर के नाखून प्रत्यक्ष आंखों से दिखते हैं।

४. दन्ता = मागध भाषा में दांत को कहते हैं। इसकी स्थिति स्पष्ट है। जितना बाहर निकला है उतना जबड़े में भीतर धंसा है। वह भाग नुकीला है। रदनक सहित आगे के चारों दांत की एक ही जड़ हैं। दोनों छोटे चर्वणकों के भीतर के बड़े चर्वणक तीन में तीन शाखी जड़ें हैं। कुछ लोगों में दो जुड़कर एक ही हो जाता है। इस तरह स्थित उनकी (दांतों) की आकृति को समझना।

५. (त्वक्) तचो– बाहरी त्वचा की पपड़ी को हटाकर एक स्थान पर कर दें तो वह मात्र आंवले जितना बड़ा होगा। उसे **छवि** कहते हैं। यह ऊपर की त्वचा है। भीतर की चमड़ी को **धम्म** कहते हैं। इस तरह यह दो परतें हैं। छवि त्वचा को आंखों से देखते हैं। उसके संबंध में कहने की आवश्यकता नहीं। धम्म त्वचा (भीतरी त्वचा) का रंग सफेद है। कभी किसी कारणवश जब ऊपरी त्वचा खुरच जाती है तो भीतरी त्वचा का सफेदी झलकने लगता है। इन दोनों परतों को मिलाकर मागध भाषा में **तचो** कहते हैं। इसकी स्थिति साफ-साफ हमें दिखती है। उसकी स्थिति आकृति को कुछ धंसाकर जान सकते हैं। तेज धारदार औजार से काटकर पलट देने पर कैसा होगा, ऐसे भी जान सकते हैं।

६. मंसं– मांस का वर्ण लाल होता है। सेमल या पलाश के पुष्प के समान लाल होता है। मांस की स्थिति आकृति को आंखों से भी देखो। हाथ से भी अनुभव करो। ज्ञान बुद्धि से भी तौलकर जान सकते हो। रीढ़ की हड्डी, वक्ष की हड्डी-पंजरी की बाती इसके भीतर लटकने वाला पतली परत भी मांस का होता है।

पृष्ठ– ६९

उसका विभाजन, किलोमकं परत से भीतर दायें-बायें से अस्थि, न्हारू, किलोमकं के द्वारा विभाजित है।

७. न्हारू (वाहिका)– वाहिकाएं अस्थियों को बांधी गयी सारे शरीर में फैली हुई हैं। मस्तिष्क में जाल के समान जैसे भिक्षु अपना भिक्षा पात्र सूत के जाल में टांगता है वैसे ही जाल जैसा फैला हुआ नीचे उतरते हुए गर्दन में मिल जाता है - वहां वही वाहिका के रूप में आगे छाती में पांच शाखा - पीठ की ओर, पांच शाखा - अगल-बगल, दायें-बायें, पांच-पांच उतरते हुए नाभी के नीचे कमर की हड्डियों में उलझता हुआ - एक दूसरे से लिप्त होकर जुड़ता है - कुछ समाप्त हो जाता है। कुछ दोनों पैरों में आगे की ओर, पांच पीछे की ओर, पांच शाखाओं में बंटकर नीचे जाता है। पैर के अंतिम छोर तक जुड़कर समाप्त होता है। दायें-बायें हंसली के बगल से उतरकर आने वाली बड़ी वाहिकाएं - बांह कंधे-कांख में चली जाकर शाखाएं फूटती हैं। दोनों हाथों में सामने पांच - पीछे पांच - उतरती हुई अंगुलियों तक चली जाती हैं। वहां मिलती हैं - समाप्त होती है। पैरों के बीस, हाथों के बीस, धड़ में के बीस, ये ६० बड़ी वाहिकाएं संपूर्ण शरीर को नष्ट न होने देने के लिये, झुकने न देने के लिए संयोजन करने वाली - **कण्डर** नामक मुख्य बड़ी वाहिकाएं कहलाती हैं। इन मुख्य वाहिकाओं को गिनती कर बताने वाले– "सट्ठीकण्डर सम्बन्धो" नाम्क समन्तपासादिक क्षेत्र में अग्र की उपाधि प्राप्त आयुष्मान उपसेन थेर थे।

पूतिकायो– इस सड़ने वाली काया को - सट्ठिकण्डर सम्बन्धो - साठ मुख्य वाहिकाओं से बांधकर संबंधित किया गया है। इन मुख्य वाहिकाओं पास में लम्बवत उन्हीं के साथ-साथ भी चलती हैं। ऐसे छोटी-छोटी वाहिकाएं अनेकों हैं। उदर के मध्य भाग में आंतों के समानान्तर छोटी-छोटी वाहिकाएं भी अनेकों हैं। संपूर्ण शरीर में लम्बवत जाने वाली वाहिकाएं, आधारवत काटती हुई जाती वाहिकाएं, यह सब सैकड़ों, हजारों, दसियों हजार से भी अधिक हैं जो कि जाल के समान फैली हुई है। जो ऊपरी सतह के साथ हैं उन वाहिकाओं को देखा जा सकता है। हाथ से पकड़कर जांचा जा सकता है। बुद्धि से भी अनुमान लगाया जा सकता है।

पृष्ठ– ७०

रुधिर, वायु, शुक्राणु, दूध, आहार द्रव इत्यादि को ले जाने वाली वाहिकाएं खोखले पाईप के समान, नली के समान हैं। इन नलिका वाहिका को भीतरी तरल पदार्थ को

सरकने के लिये वायु फूंकने लायक नली होने के कारण - **धमनी** वाहिका कहते हैं। इन नली वाहिका को लक्ष्यकर– "धमनिं हेत्तु मत्तनो" यह पटिसम्भिदापत्त आयुष्मान सप्पदास थेर ने देशित किया। अत्तनो धमनि = हमारी धमनी गर्दन रुधिर वाहिका वायु नलिका को छेत्तुं = काटने के लिये -। मे = मैं। खुरो = उस्तरा को। परिनीतो आसि = साथ लिये हुए है। शेष वाहिकाओं में खोखलापन नहीं है - वह रस्सी के समान हैं। इन रस्सी के समान की वाहिकाओं को लक्ष्यकर– "न्हारुसुत्त निबन्धनो" इस तरह से आयुष्मान **उपसेनथेर** ने कहा है। **पूतिवायो न्हारुसुत्त निबन्धनो = इस सड़ने वाली काया को नाड़ी** रूपी (वाहिका रूपी) रस्सियों से, सूत्रों से निबंधित किया गया है। **कण्डर** नाड़ी, **सुत्त** नाड़ी, **धमनी** वाहिका यह तीन प्रकार की वाहिकानुमा रचनाएं हैं। इन तीनों का रंग-वर्ण सफेद है। आकृति के अनुसार मैल को साफ किये हुए (सन पाट आदि की) रस्सी के समान हैं। वेंत की पतली वल्लरी के समान भी कहा जा सकता है। इसकी सीमा इनके आस-पास की संरचनाओं द्वारा परिसीमित है।

८. अट्ठि = हड्डी का वर्ण श्वेत है। कुत्ते-बैल आदि की हड्डियों के समान। चित्रों में दिखाये जाने वाले कागजों पर बनाया गया कंकाल चित्र के समान है। रंगीन चिड़िया खाने रखे कंकाल के समान। मस्तिष्क कपाल सामने भौंह के बिन्दु से चारों ओर सूत से आवेष्टित कर देंगे तो उसके ऊपर वाले भाग में जो स्थान है, उसमें मस्तिष्क भरा हुआ है। मस्तिष्क के तत्व को निकाल दिया जाय तो नारियल की आधी खोपड़ी के समान खोखला बन जायेगा। खोपड़ी को दीवाल, नारियल के खोपड़ी की दीवाल के बराबर ही मोटा होता है। कनपट्टी के पास वाले गड्ढे में बहुत अधिक मांस रहता है। आंख के मांस कान को छूता है। गाल, जबड़ा के नीचे तक भी जाता है। इन मांसल भागों को निकाल दिया जाय तो एक खोखला पात्र बच जावेगा। आंख के गोलक के मांस को निकाल दें तो

पृष्ठ – ७१

नये ताड़ फल के बीज के जाने भर का छिद्र कोटर दिखेगा। यहां यह कोटर जितना अन्दर धंसता गया है - संकीर्ण होता गया है। मस्तिष्क में मात्र सूई के छिद्र के बराबर जाने भर का सुराख रहता है। नाक के दोनों छिद्र भीतर अंगुली के एक पर्व तक जाने के बाद काफी विस्तृत एवं चौड़ा होकर ऊपर की ओर दो पर्व तक घुसकर नीचे घूमकर जीभ के भीतरी भाग - गले के छिद्र से जुड़ जाता है। ऊपर मस्तिष्क की ओर छिद्र नहीं जाता है। इसकी ऊपरी सतह एक पतली दीवाल से मस्तिष्क से पृथक होकर बंद है - मस्तिष्क से छुपकर (सड़कर) नेंटा (श्लेषमा) के रूप में श्रापित होने वाला पारदर्शी छिद्र मात्र हैं।

कर्ण छिद्र मस्तिष्क गृह के नीचे तक जाती है। जिह्वा के निकट बगल गले के छिद्र तक पहुंच जाती है। निचला जबड़ा अंतिम छोर पर दो शाखाओं में बंट गया है। कंठ तालवे के ऊपरी सतह से लगा - चेहरे की हड्डी नामक ऊपरी गाल की हड्डी

पहुंचकर वाहिका से जुड़ता है। इस जबड़े की हड्डी का अन्तिम शाखित को ही बैलों के जबड़े का कपड़ा बुनने में उसका दांत बनाते हैं। इस निचले जबड़े और ऊपरी जबड़े के भीतर मुंह के पास कुछ नहीं, खाली विवर है। इस तरह सिर के कपाल आदि हड्डियों की आकृति व स्थिति है। यह सिर का कंकाल इसके भागों को, जोड़ों को पृथक कर तोड़ दें तो ऊपरी दांतों के पंक्ति वाला चेहरे की हड्डी, कपाल की चार हड्डियां, कनपटी की दोनों ओर दो हड्डियां केवल सात हड्डियां हैं। जोड़-तोड़कर पृथक करें तो केवल सात हड्डियों का टुकड़ा मिलेगा। इसी को लक्ष्य कर **"सत्तधा मे फले मुद्धा, मुद्धा फलतु सत्तधा"।** 'मेरे सिर के सात टुकड़े फट जायें। सिर फूट जाय सात टुकड़ों में।' इत्यादि लोक में प्रचलित कथन पालि के विभिन्न स्थानों पर आया है। खंड करने पर कपाल की हड्डियों की आकृति सिर के चार सीवन तीन खंड में बंट करके आँवले के फल के समान होते हैं। उस कपाल की हड्डी में आश्रित होकर रहने वाली कनपटी की हड्डी ताड़ फल के आवरण की परत के समान होती है। ऊपरी जबड़ा, गाल की हड्डी, चेहरे की हड्डियां आंख और गर्दन को हाथ से टटोलकर मन से अन्दाज कर जान सकते हैं।

गर्दन की हड्डियां रीढ़ से जुड़ी हुई सात में से पांच बड़ी को कनिष्ठा अंगुली के बराबर कटी हुई तली मछली को गूंथकर लटकाये हुए के समान है। गर्दन के आगे की ओर गर्दन की कोमलास्थियों को भी पकड़कर देखा जा सकता है। पूंछ विशेष हड्डी के ऊपर गर्दन तक सत्रह रीढ़ की हड्डियां - धागे के फूलों को एक से एक गूंथा हुआ कुछ-कुछ अन्तर पर जुड़ा हुआ पाते हैं। खूब निकट गांठ वाले कठबांसिन के समान भी प्रतीत होता है जिसकी गांठें छिला न गया हो। एक-एक के गुंथ जाने पर अंगूठा एवं तर्जनी द्वारा बने वृत्त जितना वर्तुल लम्बवत रीढ़ की हड्डियां हैं। अन्तिम छोर पर मुड़ी हुई तर्जनी के समान रचना पर इसके एकेक पर्व के बराबर जुड़ी हुई नुकीला रीढ़ की गांठों में अन्त है। संपूर्ण रीढ़ की हड्डी एक दृष्टि में आरे के समान दिखता है जिसके दांत बाहर हों। प्रत्येक गांठ में ऊपर तथा अगल-बगल कांटे सदृश रचना है। वह अंगूठे-बराबर लम्बा है। गर्दन से नीचे की ओर आने वाली दो बड़ी नाड़ियां इस कांटे वाली रचना से दबी हुई गुजरती है। अगल-बगल के कांटेनुमा रचना अपने आगामी गांठ के कांटेनुमा रचना पर टिकती हुई जुड़ी-सी है।

दायें-बायें बारह-बारह छाती की (पिंजड़े जैसी बनी हुई) हड्डियां पीठ के रीढ़ की इन्हीं कांटेनुमा संरचनाओं से दायें-बायें प्रत्येक गांठ से (१२ से) जुड़ती हैं। छाती के नीचे की ओर जो ऊपर आती हैं हड्डियां दोनों ओर से - वह दायें-बायें सात-सात हैं। यह सातों ऊपर की ओर मुड़-मुड़कर आपस में जुड़ जाती हैं। वह छाती के बीचोबीच वाली जिनमें पहले से बारह-बारह हड्डियां दोनों ओर से जुड़ी होती हैं उसी से जाकर जुड़ जाती है। बगल से पसली आकर जहां जुड़ती है छाती के ऊपरी हड्डी से गिनती करने पर दूसरा पसली जहां जुड़ा है - वहां कुछ उभरा हुआ है। जांचकर पहचान सकते हैं। उसके नीचे दो मांसल के मध्य छाती की कोमलास्ति और मध्य हड्डी में एक ही

जोड़ से दो जोड़ है। तीन गांठ है। यह तीन गांठ तीन नग छाती की हड्डी समानान्तर जुड़े हैं। एक में एक गूंथ जाने से मानो एक ही-सा लगते हैं।

पृष्ठ – ७३

दो अंगुलियों के बराबर चपटे हैं। नीचे कुछ संकरे हो गये हैं। दोनों ओर की रचना ठीक उसी तरह है जैसे ताड़ के फल के टपकने के बाद जो वृत्त शेष रह जाता है वैसे ही। इस छाती की हड्डी की ओर आता हुआ लम्बी-लम्बी तीन-तीन पसलियां दोनों ओर है जो बिना जुड़ी हुई रहती हैं। इन पसलियों का सबसे नीचे की पसली की हड्डी किलोमकं रेशे से जुड़ी हुई है। वे निचली दोनों ओर की पसलियां कहीं भी नहीं जुड़ती हैं। उदर को घेरे हुए छोटी ठूंठनुमा पसली है। ऊपरी ठूंठी पसली एक वालिश्त लम्बी है। निचली पसली एक मुट्ठी बराबर लम्बी है।

इस तरह जो बताया उन सब पसलियों को वर्तुल अर्धवर्तुल छल्लों की आकृति को मन ही मन देखो। हाथ से टटोलकर देखो और जांच करो। मन ही मन बुद्धि से अनुमान करके देखो। जान सकोगे। पसली की हड्डी जिनसे निकली है उन बारह रीढ़ की गांठों के नीचे - पांच गांठों में पसली की हड्डी नहीं निकलती। पूर्वा पर वर्णित दोनों ओर निकले कांटेनुमा रचना जो प्रत्येक रीढ़ के गांठ में हैं - लगभग दो-दो अंगुल निकले हैं। ऐसी पांच गांठों को **तनुमज्झिमा** कहते हैं। इन पांच गांठों के बाद पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी केवल एक ही है। इसके साथ दोनों ओर से पकड़ी हुई कमर की हड्डी जुड़ती है। कमर की हड्डी में जंघास्थियां जुड़ती हैं। नितंब की हड्डी नहीं है। ऐसा नहीं होने के कारण ही भगवान ने देशित नहीं किया। **"अञ्ञेन ऊरुट्ठिकं, अञ्ञेन कटिट्ठिकं, अञ्ञेन पिट्ठिट्ठिकं"** "इस तरह पण्णास पालि आदि में देशित किया गया है। अञ्ञेन - अन्य स्थान में ऊरुट्ठिकं - जंघास्थि - अन्य स्थान में - कटि अस्थि को और अन्य स्थान पर पीठ की (रीढ़ की) अस्थि को देखो"।

आजकल कुछ लोग पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी को नितंब की हड्डी कहते हैं। कुछ कमर (कटि की) की हड्डी को नितंब की हड्डी कहते हैं। लम्बी पसली की संरचना निकली हुई पांचों गांठ को कमर की हड्डी कहते हैं। पूर्व समय में भगवान बुद्ध ने इन लम्बी पसली की संरचना निकली हुई पांचों गांठ वाली रीढ़ की हड्डी को - रीढ़ की हड्डी ही कहा है। उसे कमर की हड्डी नहीं कहा है। नहीं कहने का कारण - भगवान देर-देर तक बैठे हुए - भिक्षुओं को

पृष्ठ – ७४

जब धर्मोपदेश देते थे तब उनके कमर में जलन होने लगता था तो कहते थे– "पिट्ठिमे आगिलायति" (अङ्गुत्तर)। **(पिट्ठि = पीठ = कमर)।**

यह पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी को खड़ा करके रखें तो सर्प के सिर के समान है। सर्प का सिर अथवा मुर्गे के मूत्राशय की आकृति का है। वे गोल वर्तुल हैं परन्तु

यह चपटा है। ऊपर से नीचे कतार में दायें-बायें दोनों ओर चार-चार छिद्र हैं। कुल आठ छिद्र। नाभि के ठीक पीछे कमर को टटोलने पर दोनों ओर लम्बवत दो हड्डियां पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी और कमर की हड्डी का जोड़ है। इससे जुड़ा हुआ पेट (उदर) को दोनों ओर टटोलने पर पता चलेगा कि वह कुछ गोल-गोल, कुछ चपटा-चपटा-सा है। ताड़ बीज को काटने पर उसके कटान-सा गोल है। नीचे सीधे भीतर की ओर घुसता है। अवस्कर छिद्र के बगल ऊपर की ओर पर्याप्त बड़ा होकर - गोल बड़ी जलेबी के समान दो छल्ला बनकर गुप्तांग के ऊपर दोनों छल्ले एक दूसरे से लगे हुए हैं। जुड़े नहीं हैं। जब उकड़ूं बैठते हैं - तब अवस्कर छिद्र से लगकर उसके चारों ओर दो हड्डियां इस कमर की हड्डी के दो छल्लों का निचला किनारा टिका हुआ होता है। कमर का ऊपर का भाग चपटा-चपटा-सा होता है। निचला भाग छल्लानुमा। पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी इसी के भीतर आंत, मूत्राशय आदि के रहने का बड़ा गुहा है।

इस कमर हड्डी छल्ला के ऊपरी किनारे में हड्डी बिठाने का गड्ढा (खल्लिका) होता है। यह दोनों ओर होता है। जिसमें दोनों जांघो की जंघास्थियों का ऊपरी कंदुक - उक्त खल्लिका में बैठ जाता है। इस जंघास्थि के ऊपरी कंदुक, कमर के छल्लों - पूंछ विशिष्ठ रीढ़ की हड्डी इन सबके बीच में बहुत सारी मांस पेशियां हैं। इसे ही नितंब (चुतड़) की मांसपेशियां कहते हैं। इस जंघास्थि की आकृति टांगी के हत्थे के समान है। एकदम सीधा नहीं थोड़ा मुड़ा हुआ। जड़ और अंतिम छोर पर्याप्त बड़ा और उभरा हुआ है।

पृष्ठ – ७५

संधियों की रचना कुछ अलग प्रकार की है। घुटने के ऊपर एक पृथक चकरीनुमा संरचना है। घुटने के नीचे दोनों पैरों में दो-दो लम्बी हड्डियां हैं। जोड़ वाले स्थान पर आगे खड़े रहने पर कोई बात नहीं। बैठने पर कब्जा संधी के समान जुड़ा है। वह कहीं पिचकता नहीं। मेढ़क के पैर के समान है।

इस पैर की हड्डी से जुड़ा हुआ पूरे शरीर को स्थिर रखने के लिए दोनों पैरों के पंजे में भीतर जुड़ने वाली बहुत हड्डियां हैं। इसे पंजे की हड्डी कहते हैं। जब सिकुड़ता है तो धामन सर्प जैसी आकृति का होता है। बाह्य संयोजन अस्थि छोटा है। एक प्रकार के धनुष की आकृति से मिलता है। इस पंजे की हड्डी के तलवे में गोप्फकट्ठि उसके आगे अग्र पंजे की हड्डी पीछे एड़ीं की हड्डी स्थित है। यह एक-एक और दो-दो हैं। अंगुलियों के अग्र दो जोड़ों के बराबर दो जोड़ों से कमती उबड़-खाबड़ उभार जो कि दो छोटे पत्थरों के समान है। दोनों पैरों को एक पर एक रखकर एक करवट सोने पर नीचे की ओर (सहारा) के रूप में रहने वाला - आते-जाते टकरा सकने वाला घुटने के भीतरी चकरी - पैरों की आंख कहलाने वाला यह उभार जंघस्थि छोरों पर का उभार है। अन्य हड्डियों से पृथक होकर इधर-उधर दिशा-विदिशा घुम सकने वाली दिसाविक्खित्त जाणुकट्ठि, गोप्फकट्ठि नहीं है। गुम्फस्थि से ही जाणुकट्ठि गोप्फकट्ठि हैं।

गोप्फकट्ठि के पीछे से एड़ीं के हड्डी एक-एक तरफ एकेक हैं। माध्यमिका अंगुली

की दो पर्वों के बराबर लम्बा-खुरदरा पत्थर के टुकड़े के समान हैं। इस गोप्फकट्ठि के आगे पंजे की मूल जड़ें एकेक तरफ पांच-पांच हड्डी है। अंगूठे के अंतिम पर्व के बराबर लम्बा चौकोर सदृश्य असमान छोटे पत्थर के टुकडों के समान हैं। पंजों के मध्य लंबे-लंबे जोड़ पैर के अग्र जोड़ को हड्डी आदि को स्वयं अपने आंखों को घुमाकर देखो - हाथ से भी स्पर्श कर टटोलकर देखो - अपने मन से - बुद्धि से भी अनुभव कर जान सकते हैं।

पृष्ठ – ७६

वक्षस्थि के ऊपरी छोर से जुड़ा हुआ कंधे की ओर उत्तल दत मुड़ा और उभरते हुए स्कंधस्थि छोर को टिका हुआ हंसली अस्थि दोनों ओर हैं। इन्हें इनकी आकृति आंखों से देखो। हाथों से स्पर्श कर बुद्धि से जान सकते हो। स्कंधास्थि - चपटी खन्ती (रामी) के समान है। बैलों के इस स्कंधास्थि से मिट्टी खोदने की खन्ती (रामी) भी बहुत से विद्यार्थी बनाते हैं। यह पीछे पीठ पर ढांककर रखने का-सा चपटा फैला है। गर्दन से गुजरती हुई आने वाली बड़ी नसें इसके दरार में छुपकर भीतर चली जाती हैं। उसकी शाखाएं बांहों में भी जाती हैं। बांह की हड्डी केवल एक ही होता है। अंश व स्कंधास्थि के खल्लिक में बांह का ऊपरी कंदुक जुड़कर कंदुक खल्लिक सन्धि निर्मित करता है। यह दोनों हड्डियां कण्डराओं से जुड़ी होती हैं। हाथों में दो-दो हड्डियां दोनों हाथों में होती है। दोनों पतली और कुछ टेढ़ी हैं। हथेली को सीधा रखने पर यह दोनों हड्डियां अलग रहती है। हथेली को उल्टा पंजे के बल रखने पर यह दोनों हड्डियां एक पर एक तराऊपरी चढ़ी होती हैं। कलाई में हाथ की आंखनुमा रचना दोनों हाथों के कलाईबन्ध, मणिबन्ध पर उभरी हुई रहती हैं। यह मणिबन्ध नहीं है। इस हाथ की हड्डी का अंतिम भाग - हाथ के पंजों की जड़ इस बीच में मणिबन्धट्ठि नामक रचना दोनों हाथों में एक-एक है। यह हाथ की अंगुली के एक पर्व के बराबर है। इस मणिबन्ध से जुड़कर स्थित हाथ के पंजे के जड़ वाले जौड़ में दोनों ओर पांच-पांच हड्डियां हैं। खुरदरा असमान आंवले के बराबर पत्थर के जैसा है। इस मूल से निकली लम्बी

पृष्ठ – ७७

अंगुलियों को अपनी आंखों से देखो - हाथ से स्पर्श कर जांचो। अपनी बुद्धी से अनुमान करो। उपरोक्त सभी हड्डियों की स्थिति स्थान प्रत्यक्ष हो गया। इनके विभाजन परिच्छेद को भीतर से अट्ठिमिञ्चं द्वारा बाहर से मांस नसों से विभाजित किया गया है।

९. अट्ठिमिञ्चं का वर्ण मक्खन जैसा हल्का सफेद है। ललाई भी उसमें है। अट्ठिमिञ्चं हड्डी के भीतर होता है। इसे मज्जा कह सकते हैं। ठीक मक्के के डंठल के भीतर जैसे सफेद संरचना होती है जो कार्क जैसा होता है - वैसे ही हड्डियों के भीतर खोखले स्थान में अट्ठिमिञ्चं होता है। हड्डियों की अंतड़ी कह सकते हैं। इसकी आकृति जिस हड्डी में है उसी की आकृति का होता है। लम्बी, नाटी, गोल, चपटी जैसे हड्डी वैसी इसकी आकृति। अत्यंत पतली हड्डी में नहीं होता। रीढ़ के हड्डियों के मध्य अंगुली

घुसाने भर का छेद होता है। प्रत्येक रीढ़ की हड्डी की गांठें एक सीध में होती हैं। अतः उनके मध्य एक सीध में दह छेद होता है - पाईप के समान। वह सीधा खोपड़ी में जाकर खुलता है। इस पाईपनुमा छेद में मस्तिष्क से अंगुली बराबर अट्ठिमिञ्चं लगातार पिरोये हुए की तरह चला गया है। रीढ़ की हड्डी ऊपर से पृथक गांठ होते हुए भी अट्ठिमिञ्च केवल मस्तिष्क के पास ही विभाजित होता है। अन्यथा एकदम पूरी रीढ़ की हड्डी में पिरोया गया है।

१०. वक्कं - (१) हदयं (२) यकनं (३) किलोमकं (४) पिहकं (५) पप्फासं (६) अन्तं (बड़ी आंत) (७) अन्त गुणं (छोटी आंत) (८) उदरियं (९) करीसं (१०) मत्थलुङ्गं (११) किलोमकं (झिल्ली)

इन ग्यारह भीतरी कोट्ठासों को साफ-साफ समझ में आ सके अतः उपयुक्त कोट्ठास से प्रारम्भ कर वर्णन करता हूं :– (अर्थात् यह क्रम नहीं भी होगा)

१. जैसा कि पहले वर्णन कर आया - यह काया अस्थि कंकाल से निर्मित है। मांस नसें आदि से यह पोता लपेटा गया है। जैसे घर को सीमेन्टादि से। काया के ऊपर अत्यंत महीन त्वचा से ढंका गया है। बैल आदि में बहुत मोटा चर्म होता है। जिसे **'धम्म'** भी कहते हैं। वैसे ही हमारी त्वचा में मोटी चमड़ी है - उसके ऊपर पतली महीन चमड़ी जिसे **'छवि'** कहते हैं। यह बाहर की स्थिति है। भीतर भी ऐसे ही समझो। जैसे बांस के भीतरी सतह पर भी एक पतली महीन परत होती है - उसी तरह इसकी भीतरी सतह पर भी यह संरचना है। (किलोमकं)

२. इस धड़ में पीठ की रीढ़ और छाती की वक्ष अस्थि के बीच लगभग एक बालिश्त का खोखला भाग है। यह एक अस्थि पिंजड़ेनुमा रचना है। अस्थि पंजर। इसमें दोनों ओर फेफड़ा है। एक-एक। यह इस खोखले अस्थि पिंजड़े के भीतर लटका है - इसके अंतिम छोर शाखित हैं। इन्हें शाखाओं के आधार पर इनकी गिनती पांच भी करते हैं - क्योंकि बायें फेफड़े में दो तथा दायें में तीन शाखाएं लटकी हैं। लेकिन जड़ में दोनों ओर दो ही हैं। इसका रंग लाल है। पके हुए गूलर फल के समान। इसकी आकृति लम्बा खोखला गोमांस के दो टुकड़ों के लटकते जोड़े-सा है। मांसल भाग सघन नहीं है। चिकना भी नहीं है। स्थिति मानो तले हुए मांस की झुर्री-सा है। इसकी सीमा परिच्छेद स्वयं फेफड़े के फैलाव द्वारा विभाजित है। पाचक धातुअग्नि पात्र (मटका) कहा जा सकने वाला बड़ी आंत - पाचक अग्नि के ताप (जठराग्नि ताप) के कारण क्षण-क्षण में यह (फेफड़ा) सूख-सूख जाता है। इस प्रकार जब सूखता है तो उसे आद्र रखने हेतु द्रव पदार्थों को अधिक शोषित करने हेतु यह फेफड़े की दीवाल ताड़ के बुल्ले जैसा - नारियल के बुल्ले जैसा।

पृष्ठ– ७९

अनेकों की संख्या में फुलने लगता है। ऐसा होने पर ऊपर से आने वाला तरल

पदार्थ को अधिक मात्रा में शोषित कर लेता है। छन-छनकर रिसता हुआ - बड़ी आंत को अनवरत गीला, आद्र किये रहता है। इस प्रकार अनेकों बार आद्र करने की बारम्बारता अधिक होकर यह फेफड़ा जल संरचना सूखने पर प्राणी को प्यास लगती है। यदि जल से पुनः इसे आद्रता नहीं प्राप्त हुआ तो वह मर जाता है। यह शुष्क फेफड़ा जल संरचना भी केन्द्रीय रुधिर वाहिका से रुधिर को एक छोटी धमनी वाहिका द्वारा शोषित कर अपने आपको गीला करता है। इस तरह शोषण करने की बारम्बारता होकर रुधिर वाहिका के भीतर रुधिर की कमी होने पर भी मृत्यु होती है। इस तरह फेफड़ा इसी तरह के बहुत से द्रवों को भीतर रिसाने वाला स्थान है। संग्रहित पानी के फेन, गाज के समान होने से अन्य मांस से भिन्न है। इसमें कोई स्वाद भी नहीं होता है।

३-४. इसमें पाचन तंत्र का वर्णन किया गया है। मुंह से प्रारम्भ कर अवस्कर छिद्र तक। आमाशय - बड़ी आंत - छोटी आंत– 'अन्तं गुणाति बन्धतीति अन्तगुणं' आदि के संदर्भ द्वारा अन्तगुणं वह झिल्ली का वर्णन है जो इस आहार नाल को संयोजित कर रखता है।

गुदा-द्वार के बाहर आने का सारिपुत्र द्वारा मोग्गलान को कहा गया वर्णन– "यदिपि मे अन्तगुणं, नीक्खमित्वा बहिचरे" के संदर्भ से दिया है। आहार नाल स्त्रियों में लगभग बारह हाथ एवं पुरुषों में लगभग बीस हाथ का होता है। (आज के विज्ञान के अनुसार सात मीटर होता है।) यह विशद वर्णन पृष्ठ ७९, ८० तथा ८१ तक दिया है। उसे छोड़ दिया। इन्हें भलीभांति जानने को कहा गया है।

५. पिहकं अर्थात् प्लीहा का सविस्तार वर्णन है जो कि आहार नाल से सटा हुआ एक संरचना है। यह आम की पत्ती की संरचना जैसा है। इसीलिये इसे आम की पत्ती भी कहते हैं।

इसी के अंतर्गत श्वास नली की रचना का सविस्तार वर्णन है। महाधमनी गर्दन के ऊपर दोनों बाहों और दोनों पैरों में किस प्रकार शाखाओं में विभाजित होकर गया है इसका वर्णन किया गया है। यह अंत में बहुत सूक्ष्म वाहिकाओं में बदल गया है। यह सारा वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक पृष्ठ ८१, ८२ तथा पृष्ठ ८३ पर किया है। (उसे भी छोड़ दिया।)

कुछ पृष्ठ ८३ - फिर पृष्ठ ८४

६. यहां हृदय का वर्णन किया है। इसकी आकृति आम के समान (या बंद मुट्ठी के बराबर) बताया गया है। रंग लाल। दो भाग में बंटा हुआ। बाहर एक पतली झिल्ली से टेका है। इत्यादि संपूर्ण वर्णन है। रंग पद्म के समान। आकृति कमल की कली के बराबर जो अभी खिली नहीं है। हृदय के भीतरी संरचना का भी वर्णन है। उसमें के रुधिर के माप को यहां माप की एक इकाई का भी वर्णन है– (इसका वर्णन पुच्छापकिण्णक में कर चुका हूं।) एक प्रश्तर (पसर) भर रुधिर हृदय में - हृदयवत्थु रूप

में फैला हुआ रहता है। इस हृदयवत्थु रूप में मनोधातु, मनोविज्ञान धातु चित्त चेतसिक आदि आश्रित होकर रहते हैं। यह हृदय चित्त चेतसिक को रखने की पिटारी ही है। पुग्गल सत्व कुछ नहीं है। इसलिये भगवान ने– "असरीरं गुहा सयं" तथा "मच्चुवेसो गुहासयो" का वर्णन धम्मपद, अङ्गुत्तर में देशित किया गया है।

"भिक्खवे इदं चित्तं असरीरं गुहासयं। भिक्खवे एस कोधो गुहासयो। मच्चुवेसो।"

(इसका अर्थ छोड़ा) फिर इसके संबंध में इस प्रकार वर्णन किया है। चित्त चेतसिक के शक्ति से - इस हृदय का विभिन्न वर्ण होता है। जब राग प्रबल होता है - तब लाल रहता है। जब क्रोध की अधिकता होती है तब नीला पड़ जाता है। जब मोह की अधिकता होती है तब विरल स्थान होता है। जब वितर्क अधिक होता है

पृष्ठ– ८५

तब यह मैला लाल होता है। जब श्रद्धा बहुत होता है तब हल्दी के पानी के समान पीला-सा होता है। जब प्रज्ञा का बल अधिक होता है तब अत्यधिक निर्मल जोतिरस रत्न के समान रंग बड़ा चमकीला होता है।

इसके उपरान्त हृदय की रचना के संबंध में बताया गया है (वह छोड़ा)। फिर चित्तज उप्पल वायु के कारण हृदय की गुफा - (अलिन्द तथा निलय) में का वाल्व खुलता-बन्द होता है। जिससे लब-डब, लब-डब का आवाज होता है। फिर यहां रुधिर का संपूर्ण शरीर में फैलने का वर्णन किया गया है।

यहां हृदय गुफा के उप्पल नामक वायु के कुपित होने पर रुधिर कुपित होता है। रुधिर के कुपित होने पर चित्त कुपित होता है। उन्मादी हो जाता है। उप्पल वायु को लक्ष्य कर

पृष्ठ– ८६

कण्ह जातक में विद्वान आमात्य ने देशित किया है–

तस्सो वाता चलयन्ति, घटो जप्पति केसव।

हे राजा केशव - आपके अनुज घट पण्डित के प्रति उप्पल वायु चलायमान हो गया है। इसलिये घट पण्डित जल्पना करता है।

यहां पर इसी वायु को लेकर विभिन्न प्रकार से मृत्यु का वर्णन है। उसी वायु के कारण नाम रूप थिनमिद्ध होता है - भवङ्ग में गिरकर बेहोश होता है। दोष वाला रूप होता है। भय वाला रूप बन जाता है। भय से हृदय का रुधिर ठंडा होकर चित्त मंद पड़ जाता है। थकता है। बेहोश होता है। अधिकता होने पर मृत्यु को प्राप्त करता है। इस तरह थककर बेहोश होकर रहने को– "छम्भितत्तं" कहते हैं।

पृष्ठ– ८७

भूत-प्रेत यक्ष भी किसी मनुष्य को खाना चाहते हैं तो सबसे पहले उसे भयानक आकृति - ध्वनि को दिखाते या सुनाते हैं। जिससे हृदय की रुधिर कुपित हो जाती है। चित्त मन्द होते हुए बेहोश हो जाता है। उस तरह जब भवङ्ग गिरता है - तो बेहोश होकर मुंह खुल जाता है। वे मुंह से हाथ द्वारा निकालकर हृदय को रोक देते हैं। वह मर जाता है। तब उसे खा जाते हैं। बिना हृदय को बन्द किये रुधिर के जम जाने से भी मृत्यु हो जाती है।

७. **यकनं**– यहां यकृत का वर्णन किया गया है। यहां इसकी शरीर में स्थिति - आकृति तथा वर्ण - इसका गुण स्वभाव का वर्णन है। उसे मैंने छोड़ा।

पृष्ठ– ८८-८९

८-९. **उदरियं** (जिसमें नया खाया भोजन रहता है)– **करीसं** (जिसमें पुराना भोजन, मल आदि रहता है) इन दोनों का वर्णन है। यहां मुख विवर से अवस्कर छिद्र तक भोजन की स्थिति का वर्णन है। (इसे मैंने छोड़ा)

१०. **मत्थलुङ्ग** (मस्तिष्क)– खोपड़ी के भीतर स्थित **'भेजा'** की स्थिति आकृति-वर्ण गुण स्वभाव का वर्णन है। (छोड़ा)

११. **किलोमकं**– वस्तुतः यह पतली झिल्ली है - जो उदर एवं वक्ष गुहा के भीतरी दीवार पर होती है। इस गुहा के भीतर जो अंग हैं उनको ढंककर रखी हुई है। वक्ष एवं उदर को पृथक करने वाली झिल्ली, हृदय, यकृत, पाचन नली आदि एवं मस्तिष्क पर भी यह किलोमकं (झिल्ली) होती है। इसका वर्णन पहले भी आ चुका है।

यह हुआ नौ बाह्य कोट्ठास तथा भीतरी कोट्ठास ग्यारह - कुल अज्झत्त पृथ्वीधातु बीस पूरा हुआ।

येवापनक पथवीधातुओं का वर्णन

इन बीस पृथ्वी धातु के अतिरिक्त कुछ पृथ्वी धातु भी हैं। (१) उण्डुकं = गुर्दा (२) बीजं = अण्डाशय (अण्डकोश) यहां पर इन दो की स्थिति आदि का वर्णन है। (छोड़ा)

यहां पर पृथ्वी धातु का विस्तृत विवेचन समाप्त हुआ।

पृष्ठ– ९०

बीस (२०) पृथ्वी धातु के प्रति विपश्यना साधना का वर्णन

शिष्यो! इस येवापनक पथवी धातुओं को भी जान लिये। अभी मेरे (आचार्य) द्वारा

बताया हुआ बीस पृथ्वी धातुओं को केश से लेकर सिर-मस्तिष्क सहित क्रमशः बिना रूके अनुलोम, पुनः मस्तिष्क सिर से शुरू कर केश तक शामिल कर बिना रूके प्रतिलोम। इस तरह अनुलोम प्रतिलोम बिना रूके लगातार दौड़ की स्पर्धा सदृश्य मुखस्थ करने हेतु सर्वप्रथम कंठस्थ करो। उसको पाठ करो। कहीं भी थोड़ी भूल हुई तो कर्त्तव्य पूरा नहीं हुआ। इसको वाणी से बोल-बोलकर - सरज्झाय करो! पाठ करो। एकदम मुखस्थ हो जाये, तो जैसा कि अभी मैं बता आया, उन बीस (२०) पृथ्वी धातुओं का वर्ण, आकृति, स्थिति. किस भाग में उसके परिच्छेदों को खूब अच्छी तरह सञ्ञा से स्मरण कर विञ्ञाण से जानकर - जाने हुए के अनुसार - स्मरण किये हुए के अनुसार - अब मुंह की वाणी से बिना बोले चित्त में प्रज्ञा द्वारा साफ-साफ दर्शन करने देखने का अभ्यास करो। लगातार क्रमवार अनुलोम-प्रतिलोम के अनुसार देखो - साधना करो। इस तरह एक दिन - दो दिन - ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९... दस दिनों तक साधना करो - देखने का अभ्यास करो। (मन से अनुभूति द्वारा देखने का अभ्यास।) ऐसा देखते-देखते ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर की यात्रा सरल हो जावेगी! निरीक्षण करना ऋजु हो जावेगा। प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा बेहतर होता जावेगा। अधिक स्पष्ट दिखेगा।

शिष्यो! सामान्य रूप से यह अभ्यास कम-से-कम एक दिन तथा अधिक-से-अधिक दस दिनों तक करना होता है। इस तरह सामान्य रूप से निरीक्षण कर चुकने पर - इसके वर्ण स्थिति, भाग सहित उसके भीतर पृथ्वी धातुएं जब यथार्थ कण-कण के समान - धूल-कणों के समान अनुभव होने लगे तब से इसी तरह के विशेषता से निरीक्षण करना होगा।

प्रज्ञा के चक्षु से प्रज्ञा के हाथ से संबंधित (उचित) श्मशान के मट्टी पर से (जले हुए चिते पर से) बाह्य मिट्टी को ले लो। केश धातु रूपी भीतरी (अज्झत) पृथ्वी धातु को भी लेकर हथेली पर (प्रज्ञा की हथेली पर) अज्झत - बाहिर दोनों पृथ्वी धातुओं को मिलाकर रख लो। यह मिट्टी का टुकड़ा (कण) मैं नहीं। मेरा नहीं। एक ही डाली की दो शाखाओं के समान है। दोनों पृथ्वी धातु ही है। इस मिट्टी के कण सदृश्य यह केश धातु भी मैं नहीं, मेरा भी नहीं।

पृष्ठ – ९१

दोनों एक ही डाल की शाखा के समान हैं। पृथ्वी धातु ही हैं। यह केश और यह मिट्टी दोनों के टुकड़े (कण) मैं नहीं... मेरा नहीं। एक ही डाल की दो शाखा के समान यह पृथ्वी धातु ही हैं। कोई अन्तर नहीं। कोई फर्क नहीं। दोनों में पृथ्वी धातु एक ही समान हैं। केश धातु एवं मिट्टी की डली को एक ही समान देखने योग्य निरीक्षण करना होगा। (अनुभूतिपूर्वक जानना होगा।)

ठीक इसी तरह रोम, नख हाथ के, नख पैर के, दंत, त्वक्, मंस, न्हारू, अट्ठि, अट्ठिमिञ्चं, वक्क, हदयं, इत्यादि शेष अज्झत पथवी धातु समूह को भी - एक-एक को अलग-अलग विभाजित कर बाहिर पृथ्वी धातु से मिलान कर-करके - भीतर-बाहर कोई

अन्तर नहीं - एक ही समान हैं, एक समान निरीक्षण करना होगा। अनुभव करना होगा। अनुलोम प्रतिलोम - ऊपर से नीचे - नीचे से ऊपर बार-बार चक्कर लगाते हुए निरीक्षण करना होगा। अनुभव करना होगा। शेष पृथ्वी धातु जिन्हें येवापनक पृथ्वी धातु में दर्णन किया उन्हें भी इसी तरह निरीक्षण करें। छूटने न पाये। कभी-कभी इस भीतरी धातुओं को ज्ञान के तलवार से काट-काटकर आठों दिशाओं में भिन्न-भिन्न अलग-अलग रखकर निरीक्षण करो। कभी-कभी एक साथ एकत्र करके - एक ही ढेर के समान देखो - निरीक्षण करो। बाहरी (बाह्य) पृथ्वी धातु को भी - केवल यही मिट्टी का टुकड़ा नहीं - इस श्मशान में चिता पर के पास, खर-पतवार माटी, लक्कड़-डंडे आदि वन में स्थित यह धरती के कण, यह कीचड़, यह पत्थर शीलाएं, लकड़ी के कुंदे, कूड़ा-करकट को भी समेट लो - इन सबको भी भीतरी (अज्झत) पृथ्वी धातुओं के साथ एक-एक का मिलान करो। मिलान कर निरीक्षण करो। (एक ही तो हैं।)

शिष्यो! इस तरह बार-बार, बार-बार निरीक्षण करते रहने पर तुम लोगों के चित्त में, ज्ञान में भीतरी पृथ्वी धातु तथा बाहरी पृथ्वी धातु के प्रति धातु की अवस्था से देखने पर कोई अन्तर नहीं रह जावेगा। एक समान - एक ही प्रकट होने लगेगा, दिखने लगेगा। इस तरह जब एक समान - एक जैसा दिखने लगेगा तब मिट्टी की डली या यह धरती, यह ठोस धरती, यह कीचड़ यह खर-पतवार, कूड़ा-करकट लकड़ी के कुंदे इत्यादि-इत्यादि बाहरी पृथ्वी धातु को – यह महा ठोस पृथ्वी मैं ही हूं। यह कीचड़ मैं ही हूं। यह खर-पतवार, कूड़ा-करकट मैं ही हूं। यह लकड़ी का कुंदा भी मैं ही हूं। ऐसी आसक्ति नहीं रहेगी - उसी तरह केश, रोम, नख, दंत, त्वचा, मंस, न्हारू, अट्ठि, अट्ठिमिञ्च, वक्क,

पृष्ठ – ९२

हदयं - इत्यादि जो भीतरी (अज्झत) पृथ्वी धातु हैं उसको भी "यह केश मैं ही हूं, यह लोम मैं ही हूं। ये हाथों से पैरों के नाखून मैं ही हूं, यह दंत, त्वक, मंस, न्हारू, अट्ठि, अट्ठिमिञ्च, हदय इत्यादि भी मैं ही हूं।" इस तरह समझने मानने की आसक्ति उत्पन्न नहीं हो सकेगी।

शिष्यो! इस तरह मैं के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं हो सकेगी। अपने मैं पने की आसक्ति टूटेगी। मैं रहित हो जायेगा। तब इस श्मशान राशि पर वन पर्वत में स्थित मिट्टी - ठोस धरती, खर-पतवार, लकड़ी के कुंदे, लक्कड़ डंडे को आस-पास के लोग आते हुए, जाते हुए खोदने की खन्ती से खोदने वाले खोदें, तलवार से काटने वाले काटें, डंडे से मारने वाले मारें, आग से जलाने वाले जलावें, उनके मन में जो आये वही करें - फिर भी उनके ऐसा करने पर भी तुम शिष्यगण उनके प्रति रोष प्रकट नहीं करोगे या बुरा नहीं मानोगे कि अरे हम लोगों को यह लोग खन्ती से खोदते हैं; हम लोगों को यह लोग तलवार से काट रहे हैं; हमें यह लोग डंडे से मारते हैं; हमें यह लोग आग से जलाते हैं; हमें यह लोग जो मन में आये वही करते हैं। ठीक इसी तरह

यह केशा, लोमा, नखा, दंता, त्वचा, मंसं, न्हारू, अट्ठि इत्यादि भीतरी (अज्झत) पृथ्वी धातुओं को भी आस-पास के लोग आकर भाले से मारने वाले मारें; तलवार से काटने वाले काटें; डंडे से मारने वाले मारें; आग से जलाने वाले जलायें - वे जो मन में आये भले ही वे वैसे ही करें - तुम शिष्य लोग - इस तरह करने पर भी रोष प्रकट नहीं करोगे या बुरा नहीं मानोगे कि– अरे, हम लोगों को ये मनुष्य भाले से बींध रहे हैं; हम लोगों को ये मनुष्य लोग तलवार से काट रहे हैं; हम लोगों को ये मनुष्य लोग डंडे से मार रहे हैं; हम लोगों को ये लोग आग से जला रहे हैं, वे जो मन में आता है वही कर रहे हैं... ऐसा नहीं कहोगे। शिष्यों, तुम शिष्य गण इस बाहरी पृथ्वी धातु और इस भीतरी पृथ्वी धातु को एक समान पृथ्वी धातु ही है यह जान रहे हो। मैं-पना नहीं रह गया। साफ-साफ जान लिया - देख लिया। जब मैं-पने नहीं रहता, आसक्ति नहीं रहती तब उस पृथ्वी को, मैं को मैं नामक इस काया को - मेरा है - मेरा शरीर है - यह आसक्ति रहित हो जाती है। इस प्रकार के विषय को लेकर– "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।" यह मैंने उद्देसवार में देशित किया था।

पृष्ठ– ९३

अनुसासनी पाठ का अर्थ

हत्थत्थले ठपेत्वान, पेक्खिय ञाणचक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।। अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, पथविं वो विरज्जथ। (सेक्ख्य भासित गाथा)

सर्वोत्तम की प्राप्ति के इच्छुक ओ शिष्यो! तुम शिष्य गण हथेली पर (अथवा) हत्थ पाश भीतर पूर्व चेहरे के सम्मुख - ज्ञान रूपी हाथ से दोनों पृथ्वी धातुओं को मिलाकर रखो। केश, लोम, नख आदि भीतरी पृथ्वी धातु (इदं) भी जिस तरह मैं नहीं, उसी तरह ठोस धरती, कीचड़ आदि बाहरी पृथ्वी धातु (एतं) भी मैं नहीं है। जिस तरह वह बाहरी ठोस धरती, कीचड़ आदि पृथ्वी धातु मैं नहीं है - उसी तरह यह भीतरी केश, लोम, नाखून, दंत, त्वक्, मंस इत्यादि भी पृथ्वी धातु भी 'मैं' नहीं है। ज्ञान-चक्षु द्वारा पर्येक्षण कर भीतरी (अज्झत) पृथ्वी धातु और बाहरी (बहिद्धा) पृथ्वी धातु में आसक्ति रहित होओ। (८)

इति धातुविभङ्गे पथवीधातु पब्बं

आपोधातु का वर्णन

यह आपोधातु अर्थात् जल धातु भी दो तरह का है। अज्झत (भीतरी) तथा बहिद्ध (बाहरी) जल धातुएं। इन दो आपो धातुओं में प्राण-विज्ञानधारी प्राणी सन्तान के अतिरिक्त बहिद्ध सन्तान में कल्प प्रलय जल, महासमुद्र का जल, जलाशय का जल, नदी, नाला, खांई, आकाश से बरसने वाला यह सब जल आंखों से दिखाई देने वाले सभी संयोजन

और बहावयुक्त स्वभाव वाले द्रव मात्र को बाहिर आपोधातु कहते हैं। इसे बाहरी जल धातु समझना।

बारह आपोधातु का संक्षिप्त स्वरूप वर्णन

प्राण-विज्ञानयुक्त सत्व के सन्तान में - (१) पित्तं, (२) सेम्हं, (३) पुब्बो, (४) लोहितं, (५) सेदो, (६) मेदो, (७) अस्सु, (८) वसा, (९) खेळो, (१०) सिङ्घाणिका, (११) लसिका, (१२) मुत्तं। यह बारह संयोजन तथा बहाव के स्वभाव वाले तरल पदार्थ को अज्झत (भीतरी जलधातु) आपोधातु कहते हैं। इन्हें भीतरी जलधातु समझना।

आपोधातु का विस्तृत वर्णन

प्रिय शिष्यो, इन बारह भीतरी आपोधातुओं का (१) वर्ण, (२) आकृति (सण्ठान), (३) स्थिति स्थान, (४) एक-से-एक बिना मिले विभाजन परिच्छेद इन चारों को सर्वप्रथम इस प्रकार जानते समझते हैं।

१. **पित्तं**– पित्त, पित्ताशय में स्थित पित्त, इस पित्ताशय के अतिरिक्त जहां-जहां रुधिर है वहां उस संपूर्ण काया में फैला हुआ स्थित पित्त इस तरह से दो प्रकार के हैं। पित्ताशय - यकृत मूल - यकृत वृन्त से एक वाहिका निकलकर ऊपरी आधार वाला - (आमाशय) तथा यकृत के मध्य में यकृत से ही चिपटा नीचे की ओर लटकता है। इसकी लंबाई लगभग चार अंगुल के बराबर है। इस पित्ताशय के भीतर स्थित

पृष्ठ– ९५

पित्त को एक घर-सा निर्मित कर स्थिर होने के कारण इसे **बद्धपित्त** के नाम से पुकारते हैं। दूसरा जो संपूर्ण काया में विस्तृत रूप से फैले हुए स्थित है - वह पित्त - पित्ताशय के समान घरनुमा किसी संरचना में आबद्ध नहीं होने के कारण इसे **अबद्ध-पित्त** कहते हैं। इन दोनों पित्तों का वर्ण भूरा-हरा है। हरा-हरा-सा मिट्टी के तेल के समान (जो पानी पर तैरता है) वर्ण वाला होता है। इसका स्वाद बहुत कड़ुआ होता है।

बद्ध पित्ताशय की आकृति घरनुमा लंबा सकरकन्द-सा है। इसका परिसिमन उसकी घरनुमा आकृति के भीतर है।

अबद्ध पित्ताशय की कोई आकृति नहीं। आंखों से भी इसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। ज्ञान-बुद्धि द्वारा जाना जा सकता है। आंख से देखकर, स्मरण कर, किया जाने वाला यह धातु कम्मट्ठान की दशा में - कायगता सति कम्मट्ठान के स्थान में इसका उपयोग नहीं हो सकता। (जिनकी कोई आकृति नहीं बनती - आंखों से दिखता नहीं ऐसे सभी पृथ्वी धातु, आपोधातु को इसी प्रकार स्मरण रखें।) इन दोनों पित्तों में - अबद्ध पित्त विनष्ट होकर काया में खुजली उत्पन्न करता है। फुन्सी होती है। पूरे सिर में चक्कर होता है। आंख पीला हो जाता है। आंख चकराता है। बद्ध पित्ताशय के फूटने पर

अत्यंत कड़ुआ पित्तों के हृदय रुधिर में प्रविष्ट होने से चित्त विक्षिप्त हो जाता है। पागलपन हो जाता है। दवा करने पर भी ठीक नहीं होता। इस प्रकार के पागलपन को पित्त-पागलपन कहते हैं।

२. **सेम्हं** (बलगम, खखार, कफ)– यह आहार नाल के ऊपरी भाग में एक सेम्ह शय में होता है। एक तरह से कहें तो जिह्वा के नीचे आहार नाल के प्रारम्भ से लेकर अवस्कर छिद्र (मल द्वार) तक आहार नाल पर्यंत स्थित है। उसके ऊपर न्यूनतम रूप में अबद्ध पित्त के समान पूरी काया में श्रावित होकर फैला रहता है। सेम्हाशय की स्थिति को निचली आंख के वर्णन के समय कर आया। (मैंने उसे छोड़ दिया) इस सेम्हाशय - या (सेम्ह गंथि) के भीतर सेम्ह आंत को चिपके हुए लटकता है। ऊपरी आहार नाल के ऊपर फैला रहता है। एक-दो मुट्ठी भर होगा। श्लेषमिक प्रकृति है। कभी-कभी

पृष्ठ– ९६

बहुत गाढ़ा हो जाता है। कभी-कभी बहुत विरल हो जाता है। पानी पर काई लगी रहने पर यदि ऊपर से कुछ गिरे तो वह हट जाता है। पुनः स्वयं अपने आप काई जुड़कर सतह भर जाता है। उसी तरह भोजन करने पर उसे निगलते समय वह फट जाता है - पुनः स्वयं जुड़ जाता है। यदि वह विरल हो जाये या कम हो जाये तो - आहार नाल आमाशय आदि से दुर्गंध आने लगता है। बड़ा ही घृणास्पद दुर्गंधि मुंह से आने लगती है। यदि यह सेम्ह बहुत सघन हो जाये तो भोजन बहुत धीरे-धीरे भीतर जाता है। तब खाया भोजन टंग जाता है। पेट भरा-सा लगता है। सेम्ह की अधिकता होने पर भी यही हाल होता है। वह ऊपर की ओर डकार में आने लगता है। लार एवं सेम्ह एक ही समान है। मूल अंत में थोड़ा भेद है। सेम्ह के वर्ण को देखकर जाना जा सकता है। लार अलग दिखता है। यदि यह सेम्ह विनष्ट होकर नीचे की ओर बहुत ज्यादा गिर जाने अथवा - संपूर्ण आहार नाल आंत पर्यंत सेम्ह नष्ट हो जाय (कुपित हो जाय) तो बन्द होने का व दर्द का रोग शुरू हो जावेगा। हम जो भी खाते हैं वह आहार नाल में इसी की चिकनाहट से आगे बढ़ता जाता है - सरकता जाता है। श्लेषमा के कारण। यह सेम्ह का बहुत भारी उपकार कहा जावेगा। आंतों में दोनों प्रकार के सेम्हों की आकृति को भी सेम्ह के स्थिति आकाश के अनुसार स्थित स्थान को देखकर जाना जाता है। उसके परिच्छेद को भी उसकी स्थिति, उसका आश्रय स्थल द्वारा परिसीमित किया जाता है। संपूर्ण काया में फैली हुई स्थित अबद्ध सेम्ह की आकृति को नहीं देखा जा सकता। अबद्ध-पित्त घट कर यह अबद्ध सेम्ह शक्तिशाली हो जाये तो बाल पकते हैं। लोम पकते हैं। सेम्ह (बलगम - कफ) घटकर जब पित्त बलशाली होता है तो बाल काले होते हैं। लोम का रंग गहरा काला होता है।

३. **पुब्बो** (पीप)– ठोकर लगने या कांटा धंस जाने पर जो जख्म हो जाता है

वहां अबद्ध पित्त, अबद्ध सेम्ह (कफ), लहू इन तीनों के मिलकर उनके बदल जाने से उत्पन्न द्रव को मागधी भाषा में पुब्बो कहते हैं। जिसे हम पीप जानते हैं।

पृष्ठ – ९७

किसी जख्म के होने पर ही यह पीप बनता है। हरदम शरीर में नहीं रहता। इन जख्मों के होने वाले स्थान पर जब लहू (रुधिर) अधिक रहेगा तो वह घाव पकेगा। दर्द करेगा। चीरने पर रुधिर निकलेगा। यदि पित्त की अधिकता होगी तो वह घाव खुजलायेगा। दर्द करेगा। चीरने पर उसमें से स्वच्छ पारदर्शी तरल पदार्थ (सिरम) निकलेगा ? यदि सेम्ह (कफ) अधिक रहेगा तो वह घाव पक गया। पीप बन गया। शीतल होगा। न खुजली देगा न दर्द करेगा। सेम्ह की तासीर शीतल है। घाव में पीप की वृद्धि करना चाहें तो केला खाते हैं। पीप का वर्ण स्पष्ट दिखता है। आंखों से भी देखा जा सकता है। जब तक पीप घाव के भीतर होता है तब तक अथवा फूटकर बाहर घाव पर लगा है तब तक वह 'अज्झत्त' ही है। जब विलग हो गया तब वह 'बाहिर' बन गया।

४. **लोहितं**– कहलाने वाला लहू - रुधिर प्रमुख महाधमनी के भीतर भरपूर रहता है और संपूर्ण शरीर में फैले हुए स्थित रहता है। इस महाधमनी से विभिन्न शाखाओं में - पुनः केश नलिकाओं तक सारे शरीर में फैला हुआ है। जिस तरह किसी खाईं का भरा जल उसके आधार तल के कीचड़ों में भी भरा होता है - उसके भीतर तक गया रहता है - ठीक उसी तरह यह केश नलिकाएं रुधिर को मांसपेशियों तक रुधिर को फैलाये हुए हैं। इसलिये शरीर के किसी भी भाग में भले वह धमनी शिरा से परे का स्थान ही क्यों न हो - यदि छिद्र कर दिया जाय - रुधिर को बहने दिया जाय तो महाधमनी व हृदय में रुधिर की न्यूनता होने लगेगी। उस समय यकृत हृदय भी बहुत थकेगा। यदि बहुत न्यून होता चला गया तो मृत्यु हो जावेगी। कुछ कैदी के शरीर के ऊपर रुधिर-चूषक लगा देते हैं। धीरे-धीरे हृदय, रुधिर से रिक्त हो जाता है। कैदी की मृत्यु हो जाती है। यदि किसी की बड़ी धमनी ही काट दिया जाय तो वह क्षण भर में ही मर जावेगा।

यह मुख्य धमनी (केन्द्रीय धमनी) छोटी नदी के समान है। जो हमेशा बहती रहती है। छोटी धमनियां उन नदियों से बनायी गयी नहरों के समान हैं। इन छोटी धमनी से रुधिर को शोषित करें तो संपूर्ण शरीर में स्थित सभी

पृष्ठ – ९८

कोट्ठास - नहर द्वारा सिंचित कृषि भूमि के समान होंगे। भीतर से निकलकर केन्द्रिय रुधिर वाहिका में प्रविष्ट होने वाला रस धातु कहलाने वाला ओज आहार द्रव वर्षा के जल के समान है। यथा अवसर एकत्रित संग्रहित होकर रहने वाला ऋतु रुधिरों को छोड़कर इस पूरी काया में प्रत्यक्ष अत्यधिक संग्रहित रहने वाला रुधिर जैसा स्थान नहीं है। रुधिर हमेशा गतिशील रहता है। हृदय के अलिन्द-निलय के भीतर हृदय-रुधिर भी नदी के

बगल झील जल के समान केन्द्रिय रुधिर के साथ नूतन, पुराना बदली होता है। उसमें से निकलता प्रविष्ट होता रहता है। इस तरह निरन्तर गतिशील रुधिर होता है। इस रुधिर का रंग लाख के समान लाल होता है। कहीं-कहीं पर रुधिर लाल, सूर्ख होता है। सामान्यतः गाढ़ा भी होता है। इसकी आकृति स्थित आकाश के अनुसार जहां जिस आकार में रहता है वैसा ही होता है। इसके रहने की सीमा परिच्छेद भी जिस स्थान, जिस वस्तु में रहता है - उसी के अनुसार परिसीमित होता है।

५. **सेदो**– यह पसीना है। श्वेद है। हमेशा शरीर में स्थित नहीं होता है। जब उसकी उत्पत्ति का कारण बनता है तब पैदा हो जाता है। वर्ण आकृति साफ-साफ दिखता है। आंखों से देखा जा सकता है। पीप की तरह इसको भी अज्झत्त बाहिर विभाजित करते हैं।

६. **मेदो** (पतली चर्बी - ठोस चर्बी)– इसका वर्ण पीला होता है। हल्दी का-सा वर्ण होता है। हल्का-हल्का रंग होता है। इसका स्थिति स्थान दुर्बल व्यक्तियों में हाथ, बांह, जांघ, पैर आदि की अस्थि, पीठ की हड्डी तथा वाहिकाओं, नाड़ियों के मध्य में कण्डरा झिल्ली इन सबको पकड़कर चिपटकर स्थित रहता है। बड़ी आंत, छोटी आंत उदर सतह की परतों में उन्नत दशा में संलग्न होकर झिल्लियों से उलझकर मिलकर स्थित रहता है। भरे-पूरे तगड़े व्यक्तियों में उपरोक्त वर्णित स्थानों के अतिरिक्त त्वचा तथा मांस के मध्य मिली हुई संलग्न झिल्लियों में भी बाहर-बाहर उभरा हुआ चिपका रहता है। संलग्न रहता है। आकृति त्वचा तथा मांस के मध्य स्थित पतली चर्बी की परत हल्दी में रंगे हुए महीन-पतला वस्त्र के समान अथवा पतली-पतली काटी गयी हल्दी के परत के समान होता है। इसके अतिरिक्त शेष शरीर में पतली एवं ठोस चर्बी (मेदो) चपटे-चपटे, लंबे-लंबे, अंटी के समान गोल-गोल आकृति के ज्यादा हैं। उसके स्थिति स्थान - आश्रित स्थान के आधार पर जानो। इसका विभाजन परिसिमन भी स्थिति एवं आश्रय स्थान के आधार पर होता है।

पृष्ठ– ९९

इस पतली-ठोस चर्बियों को धूप में सूखाने पर भी सूखता नहीं बल्कि अधिक गर्म होने पर इसमें से तरल द्रव निकलता है इसलिये इसे आपोधातु में ही गणना करते हैं।

७. **अस्सु**– यह आंसू में हमेशा बना बनाया तैयार नहीं रहता। जब वैसी स्थिति निर्मित होती है तो वह उमड़ती है। इसका वर्ण, इसकी आकृति तो प्रत्यक्ष जानते ही हैं। आंखों से देख भी सकते हैं। यह भी पीप के समान ही अज्झत-बाहिर विभाजित है - ऐसा जानना।

८. **वसा**– मेद का भी अर्थ हिन्दी में चर्बी दिया है - जबकि बर्मी में उसे तरल तथा ठोस चर्बी कहा है। वसा का भी अर्थ हिन्दी में चर्बी ही है। बर्मी में उसे पारदर्शी चर्बी दिया है। चर्बी तो दोनो है। यह पतली तरल चर्बी, ठोस चर्बी तथा निर्मल चर्बी

(पारदर्शी चर्बी = वसा) - इस प्रकार से इनमें निलता है। यह निर्मल चर्बी वसा हथेलियों, पगथलियों, नासिका इत्यादि में आद्र कर रहने वाला हाथ के पैर की चर्बी को ही कहते हैं। सिर में भी होता है। स्पष्ट नहीं दिखता। यह वसा भी कभी-कभार प्रकट रहता है - कभी नहीं रहता। इसका वर्ण इसकी आकृति साफ दिखती है। आंखों से देखा जा सकता है। पीप के समान ही इसे अज्झत बाहिर बांटते हैं।

९. **खेळो** – अर्थात् थूक के संबंध में क्या कहना। यह तो सर्वविदिन एवं सर्वप्रकट है।

१०. **सिङ्घाणिका** – अर्थात् नासिका से बहने वाला नासिका-मल (नेंटा) को तो सभी जानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं। (मस्तिष्क से अपशिष्ट पदार्थ - बहते हुए आता है।)

११. **लसिका** – दो अस्थियों के जोड़ों को तर रखने वाला स्नेहक पदार्थ है। यह बहुत ज्यादा नहीं होता। एकदम एक पतली परत के समान पुता हुआ है। सफेद-सफेद-सा वर्ण है। आकृति विभाजन को भी इससे जान जायेंगे। यह लसिका बहुत कम हो जावेगा तो अंगों को चालित करने पर हड्डियों के जोड़ों पर से आवाज आने लगती है। रास्ता चलने पर जल्दी थकान लगने लगता है। घुटने ढीले पड़कर मुड़ने लगते हैं। घुटनों में हवा प्रवेश करता है। परन्तु लसिका के अधिक होने पर ऐसा नहीं होता।

१२. **मुत्तं** – मूत्र मूत्राशय में रहता है। मूत्राशय आंत से सटी हुई नीचे ओट के स्थान सटकर स्थित है। मूत्राशय के भीतर से मूत्र को निष्कासित करने के लिये

पृष्ठ – १००

एक मूत्रवाहिनी नलिका जुड़ी होती है। इसमें मूत्र रिस-रिसकर जमा होता है - न कि किसी नलिका द्वारा। हम जो भोजन करते हैं वह आमाशय में जाता है (नया भोजन का घर)। पाचक इस जठराग्नि द्वारा विखण्डित होकर आधा द्रव, आधा ठोस हो जाता है। उसमें बुज-बुजी निकलते रहता है। वह उठने वाला बुज-बुजी - कफ में श्लेष्मा में मिलता है। कफ बनता है। भोजन का जो सार तत्व होता है वह ओज पाचक धातु अग्नि के वेग कहलाने वाला वायु उड़ने योग्य बनकर आंतों के बाहर रिस-रिसकर निकल जाता है। इस आंत पर बहुत सारी शरीर से जुड़ी वाहिकाएं रहती हैं। वह रस-हरणी धमनी वाहिकाओं में दौड़ती हुई सारे शरीर को पोषण देती है। जहां पोषण तत्व की कमी होती है वहां तक पहुंचाकर पूर्ण करती है।

बड़ी आंत की दीवाल में तीन परते हैं। ऊपरी परत रूखा होता है। रेशेदार मांसपेशियों से निर्मित है। मध्यम परत कोमल है। यह लम्बवत रेशेदार मांसपेशियों से निर्मित हैं। भीतरी परत (पर्त्त) झिल्ली से परिपूर्ण है। ओज रस बड़ी आंत के मांसल दीवाल में रिस-रिसकर शोषित होता है। मध्यम पर्त्त के लम्बवत रेशेदार मांसपेशियों में पहुंचने पर क्षण भर में ही वह संपूर्ण आहार नाल के उस परत में फैल जाता है।

जहां-जहां पहुंचता है वहां-वहां मांस और रुधिर की वृद्धि करता है। जहां आहार तत्व की कमी होती है वहां पूर्ति करता है। चर्बी (वसा) आदि शीघ्रता से छनकर रिसकर चारों ओर फैल जाता है। पानी से मिलने पर उसकी सतह पर रहता है। जल नीचे रहता है। यह सार-तत्व ओज द्रव नीचे से द्रव तथा ठोस उत्पन्न ओज द्रव के बाद पाचित तरल आहार भी, ठोस आहार भी पाचक जठराग्नि वायु के का·ण नली के बाहर निकलकर नीचे उतर जाता है।

उस तरह निकलकर उतर जाने के बाद यह पाचित तरल व ठोस आहार से उत्तरोत्तर ओज सार निकालने के लिये वह पाचक जठराग्नि पुनः पकाता है। क्रमशः इसी प्रकार आगे सरकते जाता है। पुनः तरल पदार्थ दीवार से रिस जाता है।

पृष्ठ– १०१

मूत्राशय में वह रिस-रिसकर एकत्र होता है। मूत्र निर्मित होता है। जो ठोस अपशिष्ठ पदार्थ बच जाता है वह छन-छनकर, रिस कर नहीं निकल सकता। फलतः आ!काशवत खाली अंत के निचले भाग में, अंतिम भाग में पहुंच जाता है। समय पाकर मल द्वार से वह बाहर निकल जाता है। इस तरह पाचक रस धातु जठराग्नि संपूर्ण आहार नाल में क्रमशः उसे पकाती चलती है। पक-पककर वह तरल पदार्थ के रूप में उसकी दीवालों से छन-छनकर बाहर आती जाती है। आंत के दस-ग्यारह बार जो यहां मुड़ा हुआ है - वहां बहुत अधिक छनता है। उसके बाद जठराग्नि भी मंद हो जाती है - भोजन का ओज भी शोषित हो चुका रहता है - अब अधिक नहीं निकलता। ओज रस निकल गया पर शोषण पश्चात आहार रहता है। उसे बड़ी आंत (नया आमाशय आहार नाल में पुनः) में पुनः पकाया जाता है। कुत्तों, सुअरों में वह चर्बी का टुकड़ा बनने तथा ओज रस निकलने के बाद लौट जाता है।

जठराग्नि से पका हुआ वह ओज आदि निकलकर रस-हरणी धमनी को जाता है। सारे शरीर को पोषण करता और वृद्धि प्रदान करता है। जहां आवश्यकता होती है वहां पूर्ति करता है। खराब तरल पदार्थ छन-छनकर मूत्राशय में पहुंचते जाता है। दायें-बायें दोनों किडनी (वृक्क) से दो रुधिर वाहिकाएं - केन्द्रिय बड़ी रुधिर वाहिका से रुधिर को वृक्कों से पुनः लेकर पीती है - नहाती है - तर होती है। यह रुधिर वाहिका मूत्राशय में घुसता है। मूत्र से मिलने। तब मूत्र पीलापन लिए हुए हो जाता है। कमर में ताप बढ़कर दोनों वृक्कों के भीतर से खंडित होकर, रुधिर होकर यदि अधिक आने लगे तो मूत्राशय में प्रविष्ट होकर मूत्र से मिल जाता है। ऐसा बार-बार होने लगने पर सारा मूत्र रुधिरपूर्ण होकर बाहर आने लगता है। बहुत बार ऐसा होने पर व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। यह मूत्राशय में मूत्र का पहुंचने का वर्णन हुआ। उस मूत्र का

पृष्ठ– १०२

वर्ण बाहर आने पर जो रंग होता है - वैसा ही होता है। आकृति तो मूत्राशय

के आकार का ही ग्रहण कर लेता है। मूत्राशय में मूत्र भरा हो तो इसे बाहर से टटोल कर अनुभव किया जा सकता है। पूरा भरा होने पर उसमें लगभग तीन अञ्जली मूत्र भरा होता है। मूत्राशय थैली - चमड़े की थैली जैसा है। अपनी ही दीवार से परिसीमित है।

येवापनक जल धातुओं का वर्णन (इसके अतिरिक्त जल धातुओं का वर्णन)

पित्तादि बारह (१२) अज्झत आपोधातु का वर्णन पूरा हुआ। इनके अतिरिक्त भी कुछ आपोधातु हैं। (१) सुक्कं (शुक्र), (२) थञ्ञं थन (दुग्ध) इस प्रकार यह दो हैं।

१. शुक्र विशेषकायिकसुख-वाहिका को पूर्ण कर - संपूर्ण काया में जहां रुधिर है वहां तक फैला हुआ है। वस्तुतः इसके निकलने का जब समय बनता है तब कमर, दोनों जांघ के मध्य, अण्डकोश, मूत्राशय के छोरों पर बहुत अधिक मात्रा में स्थित होता है। वर्ण श्वेत ललाई - पीलापन, भूरापन के रूप में अधिकतर पाया जाता है। जिस वस्तु पात्र को आश्रित होता है - वही आकृति बन जाती है।

२. थञ्ञं = थन - दुग्ध भी थञ्ञहरणी वाहिकाओं को परिपूर्ण कर- जहां-जहां रुधिर है वहां तक फैली रहती है। विशेषकर निष्काषित होने वाले द्वार दोनों स्थनों में अधिकांशतः स्थित रहता है। उत्तरी द्वीप वाली तर्जनी अंगुली से भी दुग्धपान करते हैं अतः हाथों में भी अधिकतर स्थित रहता है। इसका वर्ण जैसे बाहर आने पर दिखता है उसी के समान होता है। ग्रहण किये हुए पात्रादि वस्तु आदि के आकृति का हो जाता है। यह येवापनक दोनों जल धातुएं वयस्कों में ही पाया जाता है। अवयस्कों में ऐसा उद्वेग नहीं

पृष्ठ – १०३

होता अतः सुप्त होता है। वैसे उपस्थित तो रहता ही है। पुरिस सन्तान में शुक्र अधिक होता है। दुग्ध अल्पतम। इत्थि सन्तान में - दुग्ध ज्यादा।

येवापनक जल धातु (आपोधातु) समाप्त यहां पर आपोधातु का विस्तृत वर्णन समाप्त हुआ।

आपो धातुओं के प्रति विपश्यना साधना का वर्णन

शिष्यो, येवापनक जल धातु भी जान लिये। अब उपरोक्त वर्णित १२ (बारह) जल धातुओं को 'पित्त' से प्रारम्भ कर 'मुत्त' तक क्रमशः बिना रूके लगातार अनुलोम; 'मुत्तं' से लेकर 'पित्तं' तक क्रमशः बिना रूके लगातार प्रतिलोम - इस प्रकार अनुलोम, प्रतिलोम बिना रूके पानी की तरह वाणी द्वारा मुखस्थ होने योग्य सर्वप्रथम याद कर लो - सरज्झाय करो। तनिक भी कहीं रुकावट है तो समझना कि अभी नहीं पूरा हुआ। अभी कर्त्तव्य पूर्ण नहीं हुआ। बिना झिझक याद हो ऐसा कंठस्थ करो। जब खूब ठीक तरह से कंठस्थ

हो जाय तब उसके बाद जैसा कि अभी मैंने बताया ठीक उसी तरह बारहों आपो धातुओं का वर्ण, आकृति स्थिति, परिच्छेद आदि को भलीभांति सञ्ञा द्वारा स्मरण करो। विञ्ञाण द्वारा जानो। जाने और स्मरण किये हुए अनुसार बिना वाणी से बोले मन में ही, चित्त में ही प्रज्ञा से साफ-साफ दिखने योग्य क्रमशः लगातार अनुलोम प्रतिलोम दर्शन करो। देखो। साधना करो। इस तरह एक दिन तक - दो दिन तक - ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, दस दिनों तक ध्यान करने पर जाने का आने का मार्ग साफ स्पष्ट हो जावेगा। देखना सरल हो जावेगा। हरेक दिन - एक दिन से दूसरे दिन थोड़ा-थोड़ा, बढ़-बढ़कर दिखने लगेगा। शिष्यो, इस तरह न्यूनतम एक दिन - अधिकतम १० दिनों तक सामान्य रूप से ध्यान करना होगा।

इस तरह सामान्य रूप से साधना करें। तब उस आपोधातुओं का वर्ण, आकृति, स्थिति, परिच्छेद यह सब कणों के समान जब प्रतीत होने लगेगा तबसे इसके इसी विशेषता द्वारा देखना होगा। ज्ञान रूपी हाथ द्वारा

पृष्ठ – १०४

उपयुक्त समुद्र के, नदी के, जलाशय के - कीचड़ वाले तालाब के बाह्य जल को लेना। पित्ताशय नामक भीतरी जल धातु को भी लेना। इन्हें दो पात्रों में रखना (ज्ञान रूपी हाथों पर यह हो रहा है)। उन एक साथ रखे दोनों पात्रों के जल को देखते हुए – यह पर्येक्षण करना कि - यह जल मैं नहीं। मेरा भी नहीं। संयोजित बहाव पूर्ण स्वभाव वाला जल धातु मात्र ही है। यह पित्त तथा यह जल दोनों मैं नहीं, मेरा नहीं। यह दोनों संयोजित बहाव पूर्ण स्वभाव वाले जल धातु मात्र ही है। कोई अन्तर नहीं। एक ही जल धातु वाले - पित्त तथा जल हैं। एक समान देखना - पर्येक्षण करना होगा। साधना करना होगा।

इसी तरह सेम्हं (कफ) आदि के साथ भी जल धातु को भी पृथक-पृथक विभाजित कर बाहरी जल धातु के साथ - बाहर भीतर कोई भेद नहीं - अन्तर नहीं, एक ही तरह दिखने लायक देखना होगा - पर्येक्षण करना होगा। अनुलोम प्रतिलोम! दोनों ओर बार-बार देखना होगा। येवापनक जल धातु को भी देखो। मत छोड़ना। कभी उपस्थित रहने वाला कभी अनुपस्थित रहने वाला - पीप आदि - अनियम आपो धातुओं को भी अपनी काया में यदि है तो ऐसा देखो। नहीं है तो मत देखो। जो धर्म नहीं है - अर्थात् हमारे भीतर पीप धर्म नहीं है - तो कोई लाभ नहीं - कोई उपयोग नहीं - दुक्ख ही बढ़ेगा। कभी-कभी इस भीतरी जल धातु को ज्ञान रूपी तलवार से काट डालो। विभाजित, विखण्डित कर डालो। आठों दिशाओं में अलग-अलग बिखेरकर देखो। कभी-कभी उन्हें एक ही राशि समूह में रखकर देखो। बाहरी जल धातु को ही केवल जल है ऐसा नहीं - बल्कि चावल का धोवन, मांड़, मिट्टी का तेल, पारा, नील, वृक्षों का द्रव, बीजों का द्रव आदि को लेकर इस भीतर के जल धातु से एक-एक कर मिला-मिलाकर - तुलना कर-करके देखो।

शिष्यो, इस तरह बार-बार देखते रहने पर जब बारम्बारता अधिक हो जावेगी तब तुम शिष्यों के चित्त में, ज्ञान में, बाहर-भीतर का दोनों जल धातु - धातु अवस्था में विभाजित नहीं एक ही है - एक समान हो ऐसा स्पष्ट दिखने लगेगा - प्रकट होने लगेगा। जब दोनों एक समान अनुभव होने लगेगा तब - चावल का धोवन, मांड़, मिट्टी का तेल इत्यादि बाहरी जल धातु को - यह जल मैं ही हूं; यह चावल का धोवन (चाऊर धोवन) मैं ही हूं; यह मिट्टी का तेल मैं ही हूं; आदि जिस प्रकार हमारे चित्त में अनुभव नहीं होता - उससे हमारी आसक्ति नहीं होती - उसी तरह पित्त, कफ, पीप, रुधिर आदि यह भीतरी

पृष्ठ– १०५

जलधातु भी, यह पित्त मैं ही हूं; यह कफ, यह पीप इत्यादि - मैं ही हूं यह स्मृति - यह आसक्ति नहीं हो सकेगी।

शिष्यो, इस तरह मैं मेरे की आसक्ति नहीं उत्पन्न होकर मैं मेरे की स्मृति आसक्ति जब नहीं रहेगी - उसकी रहितता हो जाने पर इस समुद्र में, नदी में, जलाशय में स्थित जलों को - कोई भी आते हुए, जाते हुए - पीने वाला पिये - नहाने वाला नहाये - डंडे से मारने वाला मारे - आग की भट्ठी पर तपाने वाला तपाये - उनके मन में जो आये वह करें - तिस पर भी - तुम शिष्यों के मन में - अरे - हम लोगों को ये सब पी गये, हमें यह लोग नहा लिये, हमें ये लोग डंडे से मार रहे हैं - हमें यह लोग आग में जला रहे हैं, हमें यह लोग - जब जिसके मन में जो आया वही कर रहे हैं इस प्रकार का क्रन्दन करना, चिल्लाना, सोचना - अनुमान करना जिस प्रकार नहीं उत्पन्न होता - ठीक उसी तरह पित्त, कफ, पीप, रुधिर इत्यादि से भरा भीतरी जल धातुओं को भी कोई भी आकर तलवार से काटकर पित्त निकालने वाला चाहे निकाले; चाहे गर्दन के खून को पीने वाला पिये, चाहे हृदय के रुधिर को पीने वाला पिये - चर्बी को आग पर पकाने वाला पकाये - उनके मन में जो आये सो करें तो भी तुम शिष्यगण - अरे देखो हमें तलवार से काटकर ये लोग ले गये, हमें - ये लोग पी गये। हमें ये लोग आग में जलाने लगे। हमें - ये लोग जो मन में आता है - वही कर रहे हैं - यह परिदेवन - यह सोच-विचार उत्पन्न नहीं होगा।

शिष्यो, तुम शिष्यगण इस बाहरी जलधातु को, इस भीतरी जलधातु को - इसे एक समान जलधातु - जलधातु ही जानो। 'मैं नहीं', यह साफ-साफ प्रकट है। जब मैं की आसक्ति रहित होता है - टूटती है तब उन वह जलधातुओं को 'मैं' नामक अपने आपके रूप में; 'मेरा' नामक अपनी वस्तु के रूप में आसक्ति - इससे प्रेमासक्त होना टूट जाता है। इससे रहित हो जाता है। इस प्रकार के विषय को लेकर **"ने सो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति"** नामक उद्देसवार में मैंने कहा ही है।

पृष्ठ– १०६

अनुसासनीगाथा पाठ अर्थ

हत्थ तले टपेत्वान, पेक्खिय ञाण चक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्झत्तञ्च बहिद्धाच, आपस्मिं वो विरज्जथ।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

सर्वोत्तम के आकांक्षी ओ शिष्यो! तुम शिष्य गण हथेली के ऊपर (अथवा) अपने हस्थपाश के भीतर सामने खाने के तख्त पर ज्ञान रूपी हाथ से दोनों जल धातुओं को एक साथ रखो। यह पित्त, कफ, पीप रुधिर इत्यादि वाला - इदं - यह भीतरी जलधातु जिस तरह मैं नहीं - उसी तरह वह - चावल का पानी, मिट्टी का तेल इत्यादि वाला - एतं - वह बाहरी जलधातु भी मैं नहीं है। चावल का पानी, मिट्टी का तेल आदि वाला - एतं - वह बाहरी जलधातु भी मैं नहीं है - उसी तरह पित्त, कफ, पीप, रुधिर इत्यादि यह भीतरी जलधातु भी मैं नहीं हो सकता। इस तरह ज्ञान-चक्षु द्वारा साफ-साफ देखकर - अज्झत्त-बाहिर जल धातुओं में आसक्ति रहित हो जाओ।

इति छ धातु विभङ्ग आपोधातु पब्बं

पृष्ठ – १०७

तेजो धातु का वर्णन

शिष्यो, इन छः धातुओं में तेजो अर्थात् अग्नि धातु भी दो प्रकार का है : भीतरी अज्झत अग्नि धातु तथा बाहिर अर्थात् बाहरी अग्नि धातु। इन में से - प्राण-विज्ञान वाले सत्व प्राणी सन्तान को छोड़कर जो भी बहिद्ध सन्तान में उत्पन्न अग्नि है - यथा - कल्पांत प्रलय अग्नि, अवीचि निरय अग्नि, वनाग्नि, बिजली कड़कने से उत्पन्न अग्नि, भोजनादि पकाने वाली अग्नि, तीन-तीन चक्रवाळों के बीच-बीच में लोकन्तरिक - निरय भोगियों को चूर्ण-विचूर्ण करने वाला हिम द्वारा जलाने वाली अग्नि, हिमवन्त पर्वत में जल हिमपात जम जाता है वह अति ठंड द्वारा जलाने वाली अग्नि, शान पठार के घने जंगल (बर्मा में) आदि में जल आदि, हिमपात आदि जमकर सघन होकर शीतलीभूत बर्फ द्वारा जलाने वाली अग्नि, शीतकाल आदि में कंपकंपा देने वाली शीतलता से जलाने वाली अग्नि, इस तरह ताप का संपूर्ण क्षेत्र तथा शीतलता का सारा क्षेत्र - यह तप्त होने तथा शीतलीभूत होने वाला संपूर्ण स्वभाव बाहिर - बाहरी तेजो धातु अर्थात् बाह्य अग्नि धातु कहलाते हैं। इन्हें बाहरी अग्नि धातु समझना।

पांच तेजो धातु का संक्षिप्त स्वरूप वर्णन

प्राण-विज्ञानधारी सत्व सन्तान में– (१) ऊष्माग्नि (२) पाचकाग्नि (३) सन्तापन-अग्नि (४) दाह-अग्नि (५) जीरण-अग्नि यह पांच अग्नि है। इन पांच अग्नियों को अज्झतजेतो धातु - भीतरी अग्नि धातु कहते हैं। इसे भीतरी अग्नि धातु समझना।

तेजो धातु का सविस्तार वर्णन

शिष्यो, इन पांचों भीतरी अग्नि धातुओं के गरमाने, ठंडाने वाले स्वभाव, ज्वलन क्रिया, स्थिति स्थान उन सबको सर्वप्रथम इस प्रकार समझो :

१. **ऊष्मा अग्नि** (उस्मा तेजो)– शरीर का ताप - जो बाहर-भीतर सर्वत्र अनुभव किया जा सकता है उस प्राकृति शारीरिक ताप को ऊष्माग्नि धातु कहते हैं। त्वचा सहित

पृष्ठ– १०८

संपूर्ण काया के भीतरी भाग को गरम मात्र रखता है - सामान्य तथा प्रज्वलित रहते हुए स्थित है। कभी काल बाहरी छोटे-बड़े अंगों के छोरों पर ताप नहीं भी रहता है। भीतर ही स्थित रहता है। इस शारीरिक ऊष्मा के पूर्णतः समाप्त हो जाने पर सत्व की मृत्यु हो जाती है।

२. **पाचक अग्नि**– खाये हुए भोजन को पकाने वाली अग्नि ही पाचक अग्नि कहलाती है। यह पाचक अग्नि भी उष्ण अग्नि ही है। जीभ के नीचे आहार नाल के प्रारम्भ से अंतिम मल द्वार तक संपूर्ण पाचक तंत्र को, आंतों को - इसके भीतर के आहारों को जलाते हुए (पकाते हुए) स्थित रहता है। विशेषता यह है कि आमाशय आदि में यह बहुत प्रखर रहती है। कभी-कभी जब आमाशय खाली रहता है तब यह आंत - आंत गुहा में नहीं रहता। आमाशय के भीतर ही रहता है। यह पाचक अग्नि परिपूर्ण रूप से समाप्त हो जाय तो भी कोई प्राणी मर जावेगा।

३. **सन्तापन अग्नि**– यह ऊष्मा प्राकृतिक अग्नि से विशेष और उससे अधिक ताप वाला है। घास का जलन, अस्वस्थ होने पर जलन, बुखार का जलन, जुड़ी ताप का जलन, अधिक ताप बढ़ जाने का जलन, इस प्रकार किसी रोग व्याधि के कारण शरीर में बढ़ जाने वाला ताप, बिना ईर्य्या पथ बदले - एक ही अवस्था में देर तक रहने के कारण उत्पन्न ताप, दोनों हाथों के रगड़ से उत्पन्न ताप। अपने अथवा बाहर के किसी वीर्य व्यापार से उत्पन्न ताप - जैसे आग तापना, सूर्य के ताप को लेना, इनसे उत्पन्न ताप; अपने से बड़े किसी गुणी के प्रति बुरा खयाल लाने के कारण उत्पन्न ताप; क्रोध-द्वेष के कारण उत्पन्न ताप; शोक परिदेव की अधिकता से उत्पन्न ताप - ऐसे सभी तापों को सन्तापन अग्नि कहते हैं। इस तरह की ऊष्माओं - तापों को– **"संभुसं तापेतीति सन्तापनो"** इस वचनत्थ के अनुसार सन्तापन अग्नि कहते हैं। वह तेजो (=अग्नि, ताप=ऊष्मा) किसी को भी तापित करने वाली अग्नि प्राकृतिक अग्नि से विशिष्ठ तथा अधिक तीव्र होती है। बहुत ज्यादा तापित करती है। इसलिये यह सबको जलाने वाली अग्नि है।

पृष्ठ– १०९

सन्तापन अग्नि है। वस्तुतः यह सन्तापन अग्नि भी ऊष्माग्नि ही है। रोग वेदना

को उत्पन्न करने वाली अग्नि है। यह अग्नि कभी-कभी तो संपूर्ण शरीर को जलाती हुई स्थित रहती है। कभी-कभी, किसी-किसी अंग विशेष को ही जलती हुई स्थित रहती है। कभी-कभी तो संपूर्ण काया में कहीं नहीं होती है। सभी स्थानों पर समाप्त हो जाती है।

४. **दाह अग्नि** – यह सन्तापन अग्नि से भी अत्यधिक तीव्र होती है। यह असहनीय रूप से जलाती है। मर्मांतक ढंग से जलाती है। मरण तक जलाती है। इतना ज्यादा दाह उत्पन्न करती है। बिना ताप वाले स्वस्थ शरीर में प्राकृतिक शीतलता से कहीं विशिष्ठ बहुत बढ़कर पादरक्क रोग, मिरगी - आदि शीतलता द्वारा जलाने वाली अग्नि, जाड़ा लगकर शीतलता द्वारा जलाने वाली अग्नि - कंपकंपी कर बुखार की तरह शीतलता द्वारा जलाने वाली अग्नि, बिना बुखार के जाड़े के दिनों में - इत्यादि तक पहुंचने के कारण, घने हरे-भरे जंगल में पहुंच जाने के कारण, शीतकाल में पानी में डुबकी लेने - पानी से नहलाने, पंखा झलने इत्यादि अपने स्वयं के प्रयत्न द्वारा - दूसरे के प्रयत्न के कारण, किसी अपने से गुण आयु में बड़े के प्रति गलत कर देने के कारण, क्रोध से डरने, भयभीत होने के कारण, जाड़े की शीतलता द्वारा जलाने वाली अग्नि (शीतलता से व्याकुलता), कंपकंपाने वाले शीतलता से ज्वलन की आग, मर्मांतक ठंड से जलन की आग, मृत्यु तक पहुंचने वाला ठंड की ज्वलन; न बहुत ताप न बहुत ठंड वाला - दाद। सिहुला, कुष्ठादिइ चर्म रोग को करता है। चमड़ी और मांस को गला डालने वाला - ऐसा - जलाने वाला आग - इन जलाने वाली अग्नियों को कहते हैं। यह जलाने वाली अग्नियां –

"दहति परिदहतीति दाहो" – इस वचनत्थ के अनुसार ही दाह अग्नि कहते हैं। – **"यो तेजो दहति परिदहति**

पृष्ठ – ११०

"इतितस्मा सोतेजो दाहो" – यह भीषण अग्नि चारों ओर से भयंकर रूप से दहन करता है। परिपूर्ण रूप से दहन करता है। इसलिये यह तेजो (अग्नि) दाह अग्नि कहलाती है। अन्य अग्नियां भी जलाती ही हैं। अग्नि हो और न जलाये ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे जलाने वाला होते हुए भी वे बहुत मामूली सामान्य रूप से गरमाकर जलाती हैं। अतः उसे, उसके जलाने को दाह नहीं कह सकते। कहने योग्य नहीं। यह दाह अग्नि ही बहुत भयानक भीषण दहन करने वाला होने के कारण इस अग्नि को 'दाह' कहते हैं।

इसमें, इस दाह अग्नि में **ऊष्मा** अग्नि भी है। **शीत** अग्नि भी है। यह शीत-उष्ण दोनों अग्नि में समाया होने से यह रोग-दुक्ख वेदनाओं को उत्पन्न करने वाली - मृत्यु को पहुंचाने वाली दाहक अग्नि है। दाह अग्नि में दोनों समाया होने से - उष्ण दाह अग्नि कभी-कभी पूरे शरीर को जलाती हुई स्थित रहती है। कभी-कभी किसी-किसी अंग में होती है। कभी-कभी पूरी काया में ही नहीं होती। सभी निरुद्ध होती हैं। शीत, दाह अग्नि – कभी-काल रहती है। कभी नहीं भी रहती। सभी निरुद्ध होती है। उत्पन्न होने

पर भी संपूर्ण शरीर पर फैलकर स्थित नहीं रह सकती। नहीं जला सकती। शरीर के कुछेक अंग पर भी प्रभाव करती हुई स्थित होती है। यह शीत-दाह अग्नि सारे शरीर में फैल कर प्रभावित कर ले तो पाचन अग्नि भी, उसकी ऊष्मा भी सब समाप्त हो जाने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है। फिर मर कर वह अज्झत धातु नहीं - बाहिर धातु हो गया। इसी को लक्ष्य कर भगवान ने देशित किया है :–

आयु उस्मा च विञ्ञाणं यदा कायं जहन्ति मं।
अपविद्धो तदा सेति, पर भत्तं अचेतनं।। (खन्धवग्ग संयुत्त, फेणपिण्डोपम सुत्त)

भिक्षुओ! आयु अर्थात जीवितिन्द्रिय; ऊष्मा अर्थात् प्राकृतिक कायिक ऊष्मा तथा विञ्ञाण अर्थात् चित्त विज्ञान यह तीनों (आयु, ऊष्मा और विज्ञान) धर्म - जिस

पृष्ठ– १११

समय इस काया को - अर्थात् पृथ्वी, जल आदि धातुओं को छोड़ देता है, उस समय इसे श्मशान में फेंक देते (अपविद्धो) हैं। श्मशान भूमि में ही कभी नहीं उठने वाली सुख की नींद सो जाते हैं। अचेतन होकर। दूसरों का भक्षण होते हैं :– कौवे, चील, गिद्ध, कुत्ते, कीड़े-मकोड़े का आहार हो जाते हैं।

५. **जीरण अग्नि**– उपरोक्त ऊष्मा, पाचक, सन्तापन दाह - इन अग्नियों के अतिरिक्त - इस संपूर्ण काया में जब तक रहते हैं तब तक सभी प्रकार के शीत - ताप नामक उष्णाग्नि शीताग्नि; बिना उष्ण - शीत की प्रतीति के - मंद उष्ण - मंद शीत; यह सभी अग्नियां अपने आप जर्जरित होकर पृथ्वी धातु, जल धातुओं को बचपन से निरन्तर बदलते हुए - प्रतिदिन पकते हुए - वृद्धावस्था की ओर जरा-जर्जरित जीर्ण होने की शक्ति को धारण किये होने के कारण इसे जीर्ण अग्नि कहते हैं। इस जीर्ण अग्नि का स्वाभाविक कृत्य, स्थिति, स्थान प्रकट दिखता है।

यहां अग्नि धातु को सविस्तार विभाजन कर समाप्त हुआ

तेजोधातु के प्रति विपश्यना साधना का वर्णन

शिष्यो, इस भीतरी पांच अग्नि धातुओं का गरमाना, शीतल होने का स्वभाव, जलने का कृत्य, आश्रित स्थिति स्थानों को भलीभांति विभाजित करो। याद करो। समझो। जानो। बाहरी अग्नि के साथ एक समान संबंध को जानो, अनुभव कर दर्शन करो। कैसे देखोगे? इस तरह देखोगे। यह पांचों अग्नि धातुएं विषय (कारण), कृत्य, स्थिति के अनुसार समयानुसार व अवसर के मुताबिक ही पृथक होते हैं। इसकी स्वाभाविकता, काया में ताप नामक उष्णाग्नि, शीतलता नामक शीताग्नि नामक यह दोनों हमेशा रहती है। ऐसा रहता है इसे सर्वप्रथम अनुभव करो। ज्ञाण रूपी हाथ से बाहरी अग्नि (लोहार की भट्ठी वाली अग्नि, ठोस शीतल लोहा - तथा पिघलता हुआ लोहा) को

पृष्ठ – ११२

लो! दूसरी ओर अज्झत-भीतरी अग्नि (शरीर के भीतर - पित्त हृदय उण्ह ठोस ऊष्माग्नि, केन्द्रिय धमनियों में बहता हुआ तरल ऊष्माग्नि) को लो। दोनों को मिलान कर एक साथ रखो। प्रज्ञा चक्षु से ठोस अग्नियों को प्रज्ञा के हाथ पर परखो - दोनों तरल अग्नियों को परखो। बाह्य अग्नि लौह भी ऊष्मा होगा - भीतरी अग्नि - पित्त हृदय भी ऊष्मा होगा। वह तरल लौह भी ऊष्मा होगा। यह तरल बहाव वाला रुधिर भी ऊष्म होगा।

इस तरह दोनों के ताप में कोई अन्तर नहीं। उष्ण ही है। यह ठोस लौह, यह तरल लौह में जो ताप है वह बाह्य उष्ण अग्नि धातु मैं नहीं, मेरा नहीं। यह तप्त होने का स्वभाव, जलाने के कृत्य वाला अग्नि धातु ही है। इसी तरह यह पित्तों, हृदयों पर आश्रित जो ताप है व भीतरी उष्ण अग्नि धातु भी मैं नहीं, मेरा नहीं। यह तप्त होने का स्वभाव, जलाने के कृत्य वाला, अग्नि धातु ही है। यह बाहरी अग्नि, भीतरी अग्नि, दोनों 'मैं' नहीं - मेरा नहीं। तप्त होने का स्वभाव, जलने-जलाने के कृत्य वाली अग्नि धातु ही है। कोई अन्तर नहीं। एक समान अग्नि धातु ही है।

इन दोनों तरह की अग्नि धातु में 'मैं पन', 'मेरा पन' को आरोपित करने को जांचने पर साफ समझ में आता है कि - ठोस लौह, तरल लौह, ठोस पित्त, ठोस हृदय, तरल रुधिर - यह सभी पृथ्वी धातु, जल धातु ही हैं। अग्नि धातु नहीं है। यह पीला-पीला, लाल-लाल वर्ण है। अग्नि धातु नहीं। इस पृथ्वी धातु, जल धातु को आश्रित होकर जलते हुए रहने वाला ताप का स्वभाव मात्र अवस्था मात्र को ही अग्नि धातु कहते हैं। इस मात्र ताप के स्वभाव वाले अग्नि धातु में 'मैं पना', 'मेरा पना' समझने का कोई भी वस्तु नहीं दिखता। कुछ भी समझने को इसमें नहीं रहता। यह अज्झत, बाहिर दोनों अग्नि धातुएं - 'मैं' नहीं। मेरा नहीं। यह साफ है। एक समान है - इनमें कोई विशिष्टता नहीं। एकदम एक समान हैं। पृथ्वी धातु, जल धातु पर आधारित जलते हुए रहने वाला अग्नि धातु - केवल अग्नि धातु है। इस तरह बाहरी अग्नि धातु, भीतरी अग्नि धातु को बाहर-भीतर बिना अन्तर के एक समान - एक ही - पर्येक्षण करना होगा।

पृष्ठ – ११३

इसी तरह भीतर के पृथ्वी धातु नामक ठोस अग्नि; जल धातु नामक तरल अग्नि को - इन सबको अलग निकाल-निकालकर बाहरी लोहार के ठोस लौह अग्नि, तरल लौह अग्नि से तुलना कर एक समान जानो। एक जैसा एक ही समझो। लोहार के भट्ठी की ठोस तरल लौह की ही नहीं - बल्कि अवीचि के अग्नि पिण्ड, लौह कुम्भी के भीतर की तरल अग्नि, बिजली का ठोस व तरल अग्नि, वनाग्नि, वन पर्वत की अग्नि, भोजन पकाने की ठोस अग्नि। अग्नि की लपटें, गर्म जल नामक तरल अग्नि को लो। ठोस तरल - अग्नि से तुलना करो। वे सब एक ही हैं। इसकी पर्येषणा करो। देखो। इसी तरह अज्झत - शीत अग्नि जब उत्पन्न हुआ रहे तो उस शीत ठोस अग्नि - तरल अग्नि

को भी एक-एक को ले-लेकर बाहर के शीत-ठोस-तरल अग्नि से तुलना करो। हिमवन्त के हिमपात ठोस तरल से तुलना करो; बर्फ, बर्फ का पानी; आकाश से गिरता. झील; तरल शील (ओले); कोहरा; रंगून के बर्फ तथा तरल बर्फ इन सबको मिलान करो। एक ही तो हैं। इसमें उण्ह अग्नि का दर्शन करो। जैसे कि पहले किया। इनकी भी पर्येषणा करो। ऊष्मा स्वभाव को समझने वाले स्थान में शीत स्वभाव को रखकर देखने मात्र की विशेषता है। कभी-कभी इस अज्झत अग्नि को एकेक पृथक बिना निकाले यह पृथ्वी धातु, जल धातु इंधन हैं - खर-पतवार हैं। इनको आश्रय बनाकर जल रहा ताप-शीत को एक तरफ रखो। दूसरी ओर के पर्वत-पहाड़ को जलते अग्नि के स्थान पर रखकर देखो। पर्येषणा करो। एक ही तो है।

शिष्यो, इस तरह बारम्बार देखो। तब बारम्बार देखते हुए निरीक्षण करते हुए - बाहरी अग्नि धातु - इस भीतरी अग्नि धातु के समान ही समझ में आने लगेगा। जब ऐसा मालूम होने लगेगा, अनुभव होने लगेगा तब जिस प्रकार बाहरी अग्नि धातु के प्रति हम आसक्त नहीं होते उसी तरह भीतरी धातु के प्रति भी आसक्ति टूटने लगेगी। बाहरी अग्नि धातु 'मैं नहीं', 'मेरा नहीं' इसी तरह भीतरी अग्नि धातु भी मैं नहीं - मेरा नहीं हो जावेगा। तब उस बाहरी अग्नि धातु को कोई कुछ भी करे - काटे-पीटे या जो चाहे सो करे

पृष्ठ– ११४

हम क्रन्दन नहीं करते - परिदेवन नहीं करते - उसी तरह हमारे भीतर की अग्नि को भी कोई कुछ भी करेगा तो हम क्रन्दन नहीं करेंगे - परिदेवन नहीं करेंगे। क्योंकि शिष्यों - यह बाहर की - भीतर की दोनों अग्नि धातु एक ही जो है। मैं नहीं - इसमें मेरा नहीं - यह साफ-साफ दिख गया। मैं पना से रहित - आसक्ति रहित हो गया। उस अग्नि धातु को अत्त - अत्तनिय नहीं समझते - आसक्ति टूट गयी। आसक्ति रहित हो गया। इसी कारण को लेकर उद्देसवार में मैंने कहा– "नेसो हमस्मि नेतं मे एवं तत्थ विरज्जति।"

अनुसासनी गाथा पाठ अर्थ

हत्थतले ठपेत्वान, पेक्खिय ञाण चक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।। अज्झत्तञ्च बहिद्धाच, तेजस्मिं वो विरज्जथ।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

सर्वोत्तम के आकांक्षी ओ शिष्यो, तुम शिष्य गण हथेली ऊपर (अथवा) अपने हस्थपाश के भीतर सामने भोजन के तख्त पर ज्ञान रूपी हाथ से दोनों अग्नि धातुओं को एक साथ रखो। यह पित्त, कफ, पीप, रुधिर इत्यादि में स्थित यह तरल अग्नि धातु जिस तरह मैं नहीं उसी तरह ठोस लौह - तरल लौह, हिम ठोस, हिम तरल इत्यादि वह बाहरी ठोस अग्नि तरल अग्नि मैं नहीं। यह ठोस लौह - तरल लौह ठोस हिम - तरल हिम

इत्यादि वह बाहरी ठोस अग्नि - तरल अग्नि जिस तरह मैं नहीं, मेरा नहीं उसी तरह पित्त - हृदय रुधिर तरल, हाथों-पैरों के छोर त्वचा, मांस - इत्यादि यह भीतरी ठोस अग्नि

पृष्ठ– ११५

तरल अग्नि मैं नहीं हो सकता। इस तरह ञाण चक्षु से देखने लायक देखकर, भीतरी-बाहरी अग्नि धातु के प्रति अनासक्त होओ। विरक्त होओ।

इति छ धातु विभङ्गे तेजो धातु पब्बं

अग्नि धातु को विभाजित कर देखने का खण्ड पूरा हुआ।

वायोधातु का वर्णन

वायु धातु भी दो है। अज्झत्त, बाहिर। (१) अज्झत वायोधातु एवं (२) बाहिरवायो धातु। जो प्राणी के प्राण-विज्ञान के सन्तान के बाहर है वह नीचे आकाश में बहती वायु, ऊपर आकाश में चलने वाली वायु, कल्पांत प्रलय वायु, धरती की सतह पर वन-वृक्षों, झाड़ियों को झकझोरती, हिलाती-डुलाती वायु, संपूर्ण आकाश जो भी हैं उनमें चलने वाली वायु - पंखे से झलने वाली वायु, कपड़े सुखाने वाली हवा - इस प्रकार से वह सारा क्षेत्र जिसमें हलन-चलन का स्वभाव है, तनावपूर्ण तन जाने का स्वभाव का संपूर्ण क्षेत्र - **को बाहिर** वायु धातु कहते हैं। इसे बाहरी वायु धातु समझना।

छः वायुधातु का संक्षिप्त - स्वरूप वर्णन

(१) प्राण-विज्ञानधारी सत्व-सन्तान में आने-जाने वाला **'अस्सास पस्सास'**।

पृष्ठ– ११६

(२) **उद्धङ्गम वायु**– जो उदर पेट से उठकर ऊपर बाहर आती है। डकार।

(३) **अधोगम वायु**– उदर से नीचे जाने वाली वायु - जहां छिद्र हो वहां से बाहर निकल जाने वाली वायु।

(४) **कोट्ठासय वायु**– अंतड़ी में घुमड़ने वाली वायु।

(५) **कुच्छिसय वायु**– आंत के बाहर उदर गुहा, वक्ष गुहा में घुमड़कर (कुपित है।) रहने वाली वायु।

(६) **अङ्गमङ्गानुसारी वायु**– उदर गुहा एवं वक्ष गुहा को छोड़कर शरीर के अंग-प्रत्यंग में भ्रमण करने वाली वायु।

यह छः वायु हैं। हलन-चलन का स्वभाव है। *-तनाव के स्वभाव वाली है। इन्हें अज्झत वायोधातु कहते हैं। इन्हें भीतरी वायुधातु समझना।

वायो धातु का विस्तृत वर्णन

जिस समय **कुच्छिसय वायु** परिवर्तित होकर कुपित होता है - तब उदर को, वक्ष को फाड़कर निकल सकता है। उदर-वक्ष को विभाजित करने वाली झिल्ली (डायाफ्रागम) को फोड़ देती है। उस समय प्राणी की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार की मृत्यु को भी द त फट कर मरा - ऐसा कहते हैं। इस प्रकार भीषण, बुरी कुच्छिसय वायु को - चीड़-फाड़ डालने वाले कटार के समान होने से - सत्थकवात (शस्त्रक वात) तलवार सदृश्य कहते हैं। जिस समय अङ्गमङ्गानुसारी वायु दुषित होता है उस समय नेत्र-नाड़ी, कर्ण-नाड़ी, मुख-नाड़ी, जबड़े, ठूढ़ी की नाड़ी, गर्दन की नाड़ी, कायिक नाड़ी, हाथ की नाड़ी, पैर की नाड़ी इत्यादि छोटी नाड़ियों - इनके जोड़ों को खण्ड-खण्ड तोड़ देती है - काट देती है। उस समय प्राणियों के आंख ऐंची हो जाती है। कान बहरा हो जाता है, गूंगा, मुंह टेढ़ा हो जाता है। गर्दन टेढ़ी हो जाती है। आधा अंग को लकवा लग जाता है। हाथ शून्य हो जाता है। लूला।

पृष्ठ – ११७

पैर संज्ञाशून्य हो जाता है - लंगड़ा। इत्यादि-इत्यादि। इस तरह भयानक रूप से बुरा अङ्गभङ्गानुसारी वायु - छोटी नाड़ियों (वाहिकाओं) उनके जोड़ों को खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े कर डालने के कारण उस्तरा के समान (छूरे के समान) होने से इसे **खुरकवात** भी कहते हैं। सत्यकवात खुरकवात यह तलवार वायु, उस्तरा वायु भी कुच्छिसयवायु, अङ्गमङ्गानुसारी वायु ही हैं। केवल कोमलता-कठोरता का मात्र अन्तर है।

यहां बायोधातु को सविस्तार विभाजित कर वर्णन पूरा हुआ।

वायोधातु के प्रति विपश्यना साधना करने का वर्णन

शिष्यो – इस बीच छः वायु धातुओं का हलन-चलन स्वभाव, पृथ्वी धातु, जल धातुओं को प्रभावित करने का कृत्य, जहां - जिस स्थान में यह रहता है उसकी स्थिति को भलीभांति जानो। बाह्य वायु धातु के समान मिलान कर एक समान जानो। उसकी पर्येषणा करो। दर्शन करो। कैसे पर्येषणा करना होगा ?. कैसे दर्शन करना होगा। इन छहों वायु धातुओं का विषय, कृत्य, स्थिति-स्थान, अवसर के अनुसार ही केवल छः प्रकार के होते हैं। इनका स्वभाव तो वही एक-सा होता है। हलन-चलन का स्वभाव वही एक ही रहता है। इसे सर्वप्रथम समझते हुए जानें। समझें। ज्ञानरूपी हाथ से बाहरी - लोहार के भाथी की हवा को लो। नाक के पास आश्वास-प्रश्वास के साथ मिलान करो। प्रभञ्जन वायु को तेज तूफानी आंधी स्वभावी वायु के हलन-चलन को देखा होगा - उसे जानेंगे। पुनः नाक के द्वार को हथेली से अनुभव कर जांच करो। हवा द्वारा दबाव देकर वेग से हलन-चलन के आने-जाने के स्वभाव को देखोगे। जानोगे-।

इस तरह दोनों को एक साथ जान लेने के पश्चात इस लोहार के, भाथी के विवर से निकलने वाला वायु मैं नहीं, मेरा भी नहीं, यह तो मात्र दबाव देकर वेग से

हलन-चलन के आने-जाने के स्वभाव वाला वायु धातु ही है। बहाव के कृत्य वाला है। ठीक इसी तरह इस नासिका विवर से निकलकर आने वाला वायु धातु भी मैं नहीं, मेरा भी नहीं

पृष्ठ– ११८

यह तो मात्र दबाव देकर वेग से हलन-चलन के, आने-जाने के स्वभाव वाला, वायु धातु ही है। बहाव के कृत्य वाला है। यह दोनों वायु धातु, भाथी वाला - तथा नासिका वाला - मैं नहीं, मेरा नहीं। यह तो मात्र दबाव देकर वेग से हलन-चलन के, आने-जाने के स्वभाव वाला वायु धातु ही है। बहाव के कृत्य वाला। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं - वायु धातु, वायु धातु ही हैं। एक ही हैं।

इन दोनों प्रकार के वायु धातु में 'मैं पन''मेरा पन' कहने को कुछ नहीं। इससे आसक्ति होने के लिये - वत्थु, मांस, ठोस, ठोस वर्तुल, पिण्ड भी तो नहीं है। यह अज्झत्त, बाहिर दोनों प्रकार के वायु धातु - मैं नहीं - मेरा नहीं। दोनों एक ही है। इनमें कोई अन्तर तो नहीं। दोनों में हलन-चलन का ही स्वभाव है। दोनों वायु - वायु ही हैं। बाहर-भीतर कोई अन्तर नहीं। इस तरह एक समान होने की पर्येषणा करो - निरीक्षण करो - देखो। (अस्सास पस्सास वायु) बाहर निकलने वाले वायु को देखते हो तो भीतर जाने वाले वायु को भी जान सकते हो। उसी तरह सोड़ा-वाटर (थम्सअप - कोकाकोला आदि) की बोतल से निकलने वाली वायु, पानी के बुलबुली में से फूटकर निकलने वाली वायु, चिमनी आदि से निकलने वाली वायु - चबुतरे के छिद्र से, खिड़की-दीवाल आदि के विवर से आने-जाने वाली वायु - इन सब प्रकार के वायु की तुलना **उद्धङ्गम वायु अधोगम वायु** से करके देखो। दोनों एक समान हैं - निरीक्षण करो। जब कपड़ा पानी की बाल्टी में गीला करते हैं तो कपड़ा फूल जाता है - वह वायु, वायु वाला तकिया, वायु भरा गद्दा - इन सब वायु को - **कोट्ठालय वायु कुच्छिसय वायु** आदि से तुलना करके देखो। उनको हाथ से दबाकर देखो इसी तरह उदर को भी ऊपर से दबाकर जांचो। नीचे का वायु वेग ऊपर की ओर दाब डाल रहा है यह दिखेगा। इसका अनुभव करोगे। ज्ञानरूपी तलवार से इनको फोड़ो। उसमें से वायु का वेग सू... सू... करके निकलेगा - यह जानोगे। उसे अनुभव करो - जानो। वन-वृक्षों, झाडियों को झकझोरते समीरते हुए वायु की तुलना **अङ्गमङ्गानुसारी वायु से करके** उनको देखो। पर्येषणा करो।

साधना विधि– वायु से हिलते-डुलते वृक्ष और अपनी काया को तुलना करके रखो। यह जो वृक्ष है, पृथ्वी धातु ही तो है। पृथ्वी धातु है तो वह अपने आप हिल-डुल नहीं सकती। अपने स्थान से विस्थापित नहीं हो सकता। इस प्रकार जिसमें निजी हलन-चलन नहीं; विस्थापन रहित उस वृक्ष की शाखा, टहनी, पत्ती - जो कि पृथ्वी धातु हैं इस वायु के झोंके से झुकती हैं। अपने स्थान से भले थोड़ा-सा सही - विस्थापित होता है, हिलता-डुलता है - झोंका खाता है।

पृष्ठ– ११९

उस वृक्ष के समान ही; इस काया में, ये पैर भी पृथ्वी धातु ही हैं। यह हाथ भी पृथ्वी धातु ही है। यह सिर भी पृथ्वी धातु ही है। यह केश भी, लोम भी, त्वचा भी, मांस भी, न्हारू भी, अट्ठि भी पृथ्वी धातु ही हैं। चाहे कोई भी पृथ्वी धातु है स्वयं अपने आप हिल-डुल नहीं सकता। विस्थापन नहीं कर सकता। वैसे नहीं हिल-डुल सकने वाला; विस्थापन नहीं कर सकने वाला यह पैर, हाथ, सिर, केश, लोम, त्वचा, मांस, न्हारू, अट्ठि इत्यादि बड़े-छोटे अंग - पृथ्वी धातुएं - इस अङ्गमङ्गानुसारी वायु के झोंके से झुकता है। विस्थापन करता है। हिलता-डुलता है। आपस में टकराता है। जो भी जल धातु होगा उसका द्रव का (तरलता का) स्वभाव ही होगा। संयोजन - संबोधन का स्वभाव ही होगा। स्वयं अपने आप नहीं हलन-चलन कर सकता, विस्थापन नहीं कर सकता। इस तरह हलन-चलन नहीं कर सकने वाले - विस्थापन नहीं कर सकने वाले यह रुधिर द्रव, आहार द्रव आदि जल धातुएं भी इस अङ्गमङ्गानुसारी वायु के बहने के कारण हाथ, पैर, सिर इत्यादि छोटे-बड़े अंगों तक फैलने के लिए विस्थापन करता है; चलता है।

वृक्ष के पृथ्वी धातुओं को झकझोरने वाला बाह्य वायु धातु - मैं नहीं, मेरा नहीं, पृथ्वी धातु - जल धातुओं को, एक स्थान से दूसरे स्थान को विस्थापित करने वाला झोंका अथवा वेग वायु धातु ही है। यह अङ्गमङ्गानुसारी भीतरी वायु धातु भी मैं नहीं, मेरा नहीं। हाथ, पैर, सिर, रुधिर इत्यादि पृथ्वी धातु, जल धातुओं को सरकाने व विस्थापन करने वाला झोंका या वेग स्वभाव वाला वायु धातु ही है। इसके अतिरिक्त बाहरी वायु - भीतरी वायु यह दोनों वायु धातु मैं नहीं, मेरा भी नहीं। पृथ्वी धातु जल धातुओं को झोंके से विस्थापन करने वाला वेग स्वभाव वाला वायु धातु ही है। कोई अन्तर नहीं है। एक ही है। वायु धातु - वायु धातु ही है। इस तरह एक ही अनुभूति होने तक पर्येषणा करना होगा।

शिष्यो, इस अङ्गभङ्गानुसारी वायु को देखने की पर्येषणा करने की साधना मामूली सामान्य (कच्ची विधि) विधि का मात्र वर्णन करना ही है। इसी नियमानुसार आंख के भौंहों का फड़कना, आंखों का फड़कना, आंखों का फड़कना,

पृष्ठ– १२०

गालों का फड़कना, होठों का फड़कना, जिह्वा, ठूढ़ी, वक्ष, कमर इत्यादि अंग-प्रत्यंगों के फड़कने को भी अणु-अणु विभाजित कर पर्येषणा करो।

नृत्य करती नटी को देखकर अरिहन्त होने का वर्णन

भगवान बुद्ध के समय की घटना है। शिष्यो! **नागसमाल** नामक एक थेर थे। नगर में वे भिक्षाटन के लिये निकले। रास्ते में नगर के सड़क पर एक नर्तकी को नृत्य करते देखा। अरे... वाह - बड़ा मनोहर दृश्य है। ओ... इसीलिये प्राणीगण संसार-चक्र से नहीं निकल पाते। संसार-चक्र में ही मृत्यु राज की यंत्रणाओं को बारम्बार सहन करते हुए

रहते हैं। यह नर्तकी मृत्युराज की हथकड़ी के समान है। इसका खूब भलीभांति उचित प्रकार से हृदयंगम कर थेर ने मनसिकार किया। अपने आपको, अपने चित्त को इस विभिषिका से भयभीत किया। आदीनव है, आदीनव है - यह योनिसो मनसिकार किया। इस तरह वह विपश्यना के द्वारा उर्ध्व गमन करते हुए क्षणमात्र में अरहत्त फल को प्राप्त किया। आगे चलकर शिष्यों के लिये इसके संबंध में इस प्रकार देशित किया :

१. अलङ्कता सुवसना, मालिनी चन्दनुस्सादा।
मज्झे महापथे नारी, तूरिये नच्चति नाटके।।

२. पिण्डिकाय पविट्ठो हं, गच्छन्तो नं उदक्खिस्सं।
अलङ्कतं सुवसनं, मच्चुपासंव ओड्डितं।।

३. ततो मे मनसिकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ।।

४. ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धानुसासनन्ति।। (थेरगाथा - नागसमाल थेर गाथा)

१. आवुसो! सुवसना, अलङ्कता, चन्दनादि सुगन्धि से लिप्त, सिर पर सुगन्धित पुष्पमाल-मंडिता - (सुन्दर युवा) नारी

पृष्ठ– १२१

नर्तकी (नटी), महापथ के मध्य में वाद्यवादन करती हुई नाच कर (नृत्य कर) रही थी।

२. आवुसो! मैं पिण्डचार (भिक्षाटन) हेतु (नगर में उधर) प्रवृष्ट किया। जाते हुए मेरी नजर उस खड़ी बिछायी गयी (फेंकी गयी) मृत्युपाश के समान सुन्दर वस्त्राभूषण अलंकृता उस नर्तकी ओर उठ गयी।

३. आवुसो! उस नर्तकी को देखते समय मेरे चित्त में योनिसो मनसिकार उत्पन्न हुआ। संसारावर्त्त में स्पष्टतः दोष नजर आया। (अरे आदिनव है रे...)। निर्वेद ज्ञान सम्यक रूप से स्थित हो गया।

४. जब वह निर्वेद ज्ञान उत्पन्न हो गया तब मेरा चित्त विमुक्त हो गया। (आस्रव धर्मों से विमुक्त हो गया।) आवुसो! भगवान द्वारा देशित उस धम्म सुधम्म का अभ्यास

कर देखो। मैं तीनों विद्या ञाण को प्राप्त कर लिया। मैं बुद्धों के शासन में कृत-कृत्य हुआ। करणीय कर लिया।

नागसमाल थेर गाथा अर्थ समाप्त

उय्योजन (प्रेरणा)

शिष्यो, तुम शिष्य लोग भी इस नागसमाल थेर के समान चाहे पिण्डचार करते होओ, चाहे बुद्ध चैत्य के प्रांगण में होओ अचानक

पृष्ठ– १२२

किसी एक स्थान या क्षेत्र में नट का करतब या नटी का नृत्य दिख जाय तो उसे देखकर चित्त में योनिसो मनसिकार ही करना। अभी मेरे द्वारा उपदिष्ट अङ्गमङ्गानुसारी वायु के साधना विधि को भलीभांति पर्येषित करना। हिलते-डुलते समीरते वृक्ष को लेकर नर्तकी के स्थान पर रखकर तुलना करना। बाहर-भीतर कोई भेद नहीं, एक ही है। उन्हें मिलाकर देखो। इस प्रकार पर्येषण करते हुए शीघ्रतापूर्वक संसार-चक्र से मुक्त होओ! शिष्यो! यह अङ्गमङ्गानुसारी वायु धातु अच्छे सत्व का रूप धारण करता है। पृथ्वी धातु, आपो धातु को नहीं देखने वाले के लिये - जानने वाले के लिये यह भ्रमित करता है। दृढ़तापूर्वक जागरूक रहो। शिष्यो! इन छः वायु धातुओं को प्रत्येक को बिना विभाजित किये - एक साथ संयुक्त कर एक समान रखकर पाल वाली नौका की वायु, जहाज के पाल की वायु, उड़ता अग्नि घर आदि से तुलना कर देखो।

अनुसासनीगाथा पाठ अर्थ

नावा मालुतवेगेन, अग्यागारञ्च वायुना।
यथा याति तथा कायो, याति वाताहतो अयं।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

भो शिष्यो, (पाल वाली) नाव, वायु वेग के कारण जिस तरह जाती है; अग्यागार (उड़ता अग्निघर) भी धुआंरूपी वायुवेग के कारण जैसे जाता (दौड़ता=चलता) है; उसी तरह यह हमारी कायारूपी पृथ्वी धातु आपो धातु का सम्मिलित पिण्ड - वात से हनित होकर विभिन्न प्रकार का हलन-चलन करते हुए आते-जाते रहता है।

शिष्यो, इस तरह बारम्बार देखते रहना अधिक हो जाने पर यह भीतरी वायु धातुएं - बाहरी वायु धातु से अभिन्न - एक ही दिखती है। ऐसा हो जावेगा। वैसा जब दिखने लगे तब बाहरी वायु धातुओं को जिस प्रकार मैं नहीं, मेरा नहीं जानते हुए आसक्ति विहीन रहते हैं - उसी तरह इस भीतरी वायु धातु के प्रति भी

पृष्ठ– १२३

मैं नहीं, मेरा नहीं को जानते हुए आसक्ति रहित हो जावेंगे। उस बाहरी वायु धातु

के प्रति कोई कुछ भी करता रहे - जैसे हम उससे प्रभावित नहीं होते - ठीक उसी तरह इस भीतर के वायु धातु के प्रति भी किसी के कुछ कहने करने से हम अप्रभावित ही रहेंगे - क्योंकि जान लिया कि बाहर या भीतर का वायु धातु, कोई भी मैं नहीं, मेरा नहीं - फिर उसके प्रति आसक्ति भी नहीं। वायु धातु - वायु धातु ही तो है। जब 'मैं नहीं' यह स्पष्ट दिख जाता है - मैं की आसक्ति नहीं रह जाती तब वह वायु धातु को 'मैं - अत्त' या 'मेरा - अत्तनीय' की आसक्ति से रहित हो जाता है। इसी के आधार पर मैंने "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति" यह उद्देसवार में देशित किया।

अनुसासनी गाथा पाठ अर्थ

हत्थत्तले थपेत्वान, पेक्खिय ञाणचक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्झत्तञ्च बहिद्धाच, वायुस्मिं वो विरज्जथ।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

पृष्ठ– १२४

दोनों वायु धातु को ज्ञान रूपी हाथ पर रखो और ज्ञान चक्षु से देखो। जैसे भीतर की वायु धातु मैं या मेरा नहीं वैसे ही बाहर की वायु भी मैं या मेरा नहीं। जैसे बाहर की वायु मैं या मेरा नहीं वैसे ही भीतर की वायु भी मैं या मेरा नहीं। बाहर-भीतर की दोनों वायु धातुओं को देखते हुए उससे अनासक्त होओ। (विस्तार अर्थ छोड़ दिया)

इति छ धातुविभङ्गे वायोधातु पब्बं

आकास धातु का वर्णन

शिष्यो, आकाश धातु भी दो हैं - यह बाहरी आकाश तथा शरीर के भीतर का आकाश– (१) बाहिर आकासधातु (२) अज्झत्त आकासधातु। इन दोनों में से हमारे शरीर के बाहर - धरती, जल के नीचे अजटाकास; ऊपर का अजटाकास; सूर्य-चन्द्र नक्षत्र का गमन मार्ग आकाश; धरती के ऊपर खग - पक्षियों का गमन स्थान - आकाश; विहार के भीतर का आकाश; गृह आवास के भीतर का आकाश, महलों के भीतर का आकाश, काष्ट के भीतर का कोटर आकाश; पर्वत जंगल का आकाश - इस तरह पृथ्वी धातु, जल धातु को बिना स्पर्श किये रिक्त रहने वाला खाली अवकाश के स्थान को बाहिर आकाश कहते हैं। इसे बाहरी आकाश समझना।

पृष्ठ– १२५

छः आकास धातुओं का स्वरूप वर्णन

प्राण-विज्ञानधारी सत्व सन्तान में निम्न छः आकाश धातु इस प्रकार हैं :– (१) कण्णच्छिद्द (२) नासच्छिद्द (३) मुख द्वार (४) पवेसन सुसिर (=आहार प्रविष्ठ करने वाली

गुहा) (५) ठान सुसिर (=प्रविष्ट आहार के स्थित होने वाला खोंडर (सुसीर) (६) निक्खमन सुसिर (=पविष्ट आहार के निकलने वाला खोंडर। इन छहों में पृथ्वी धातु, जल धातु नहीं रहता। यह खोंडर - पोल वाला खाली आकाश है। इसे अज्झत आकाश धातु कहते हैं। इसे भीतरी आकाश धातु जानें।

यहां आकाश धातु को सविस्तार विभाजित करना समाप्त हुआ।

आकाश धातु के प्रति विपश्यना साधना करने का वर्णन

शिष्यो! इन छः आकाश धातु को जान लिये। इसको बाह्य आकाश से तुलना करो। पर्येषणा करो। कैसे? तो समझो– ञाणरूपी हाथ से बाहरी खोंडर, गुफाएं आदि को जांचो। उसी तरह भीतरी आकाश से उसकी तुलना करो। **बाहरी आकाश में हाथ मारने पर, छूने पर - पकड़ने पर कुछ भी नहीं मालूम होता है। आकाश ही आकाश, खाली ही खाली - भीतर भी ऐसा ही आकाश। कण्णच्छिद्द नासा - मुख - पवेसन आदि सभी को जांचों - खाली - रिक्त स्थान - आकाश** - बाहर-भीतर एक समान ही महसूस करोगे - दोनों आकाश एक समान जान जाने पर–

बाहर का आकाश - **मैं नहीं,** मेरा नहीं - इसमें न **पृथ्वी धातु है न** जल धातु - केवल रिक्त - **खाली - आकाश ही आकाश है।** यह **कण्णच्छिद्द भी मैं नहीं,** मेरा नहीं **- इसमें भी न पृथ्वी धातु है - न** जल धातु - केवल रिक्त, **खाली - आकाश ही आकाश धातु है।**

पृष्ठ– १२६

यह बाहरी पर्वत ग्रहा - **यह कण्णच्छिद्द** दोनों ही - **मैं नहीं, मेरा नहीं** - न **पृथ्वी** धातु है इसमें - न जल धातु **है** इसमें - केवल रिक्त आकाश धातु ही है इसमें। इस आकाश धातु में मैं पन - **मेरापन कहने** को, आसक्त होने **को कोई** वस्तु मांस, ठोस, पिण्ड भी तो कुछ नहीं। **स्पष्टतः खाली,** रिक्त आकाश मात्र ही **है। यह बाहरी खोंडर** या पर्वत गुहा का आकाश **धातु** और इस भीतरी आकाश **धातु कण्णच्छिद्द** आदि - **इन** दोनों में कुछ भी तो फर्क नहीं - अन्तर नहीं। एक समान - **एक ही जैसी तो है** - यह पर्येषणा करना होगा।

इसी तरह नासछिद्द, मुख द्वार, पवेसन सुसिर, ठान सुसिर, निक्खमन सुसिर में स्थित आकाशों को भी - पर्वत कन्दरा - गुहा से तुलना कर - बाहर-भीतर के आकाश में कोई अन्तर नहीं। इसकी पर्येषणा प्रत्येक के साथ करना हुआ। बाहर के काष्ठ खोंडर, गृह के भीतर का आकाश, विहार के भीतर का आकाश से पृथक-पृथक तुलना कर-करके देखो।

शिष्यो! इस तरह देखते-देखते - बारम्बारता अधिक हो जाने पर बाहर-भीतर के आकाश में कोई अन्तर नहीं यह अनुभव होने लगेगा। जब ऐसा लगने लगेगा तब बाह्य

आकाश धातुओं को मैं या मेरा मानने की आसक्ति जिस प्रकार नहीं है - उसी तरह भीतर में स्थित आकाश के प्रति भी मैं मेरे की आसक्ति उत्पन्न नहीं होगी। जब आसक्ति रहित हो जावेंगे तब जिस प्रकार बाहरी आकाश को कोई व्यक्ति कुछ भी करे - कुछ भी कहे - हम प्रभावित नहीं होते

पृष्ठ– १२७

उसी तरह भीतरी आकाश के प्रति भी कोई कुछ भी करे, कहे - तुम शिष्य गण अप्रभावित ही रहोगे। प्रभावित नहीं होओगे।

शिष्यो! तुम शिष्य गण इस बाहरी आकाश धातु को भी तथा इस भीतरी आकाश धातु को भी - एक समान आकाश धातु - आकाश धातु ही तो है। मैं नहीं हूं यह खूब साफ-साफ जानकर मैं मानने की आसक्ति के नही होने पर - उस आकाश धातु के प्रति मैं पन यह अपने रूप में तथा मेरापन यह अपनी सम्पत्ति के रूप में - प्यार करने, आसक्त होने का भाव रहित हो जावेगा। इसी विषय के आधार पर मैंने उद्देसवार में यह देशित किया था– "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति"

अनुसासनी गाथा पाठ अर्थ

हत्थत्तले थपेत्वान, पेक्खिय ञाणचक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्झत्तञ्च बहिद्धाच, आकासे वो विरज्जथ।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

शिष्यो! बाहर-भीतर के दोनों आकाशों को हथेली पर ज्ञानरूपी हाथ से रखकर तुलना करके ज्ञानरूपी चक्षु से जानो। जैसा कि यह भीतरी आकाश धातु (नासछिद्धादि...) न मैं है, न मेरा है - उसी तरह वे बाहरी आकाश धातु भी हैं। जैसा कि वह बाहरी आकाश धातु न मैं है - न मेरा

पृष्ठ– १२८

है - वैसे ही यह भीतरी आकाश धातु भी न मैं है, न मेरा, ऐसा ज्ञान चक्षु से जानो। बाहरी-भीतरी आकाश के प्रति रज रहित हो जाओ। विरज हो जाओ।

इति छ धातुविभङ्ग आकास धातु पब्बं।

सभी रूप धातुओं को एक साथ कर विपश्यना करने का वर्णन

शिष्यो! इन छः धातुओं में अभी जिन्हें बता आया, उनमें पांच धातुओं का वर्णन समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त अब केवल एक धातु - विञ्ञाण धातु शेष है। उस शेष - विञ्ञाण धातु को– **"नमतीतिनामं"** - आलम्बन की ओर झुकता है - नमन करता है - इसलिये नाम कहते हैं। इस पाळि वचनत्थ के अनुसार आरम्मण (आलम्बन) की ओर

भागने, जाने, झुकने के स्वाभाविक अर्थ के कारण नाम कहते हैं। अभी जिसे मैं कह आया, बता आया - वे पांचों धातु– **"रुप्पतीति खो भिक्खवे तस्मा रुपन्ति वुच्चति"** भिक्षुओ! जो भी धम्म जात हैं पृथ्वी धातु आदि स्थित धर्म स्वभाव है वह शीत ऊष्मा आदि के कारण स्पष्टतः बदलता है - उखड़ता है - रुप्पति। इसलिये उस धर्म स्वभाव को 'रुपन्ति' अर्थात् 'रूप' के नाम से पुकारते हैं। यह **खन्धवग्ग संयुक्त** में भगवान की वाणी है। भगवान के द्वारा विग्रह किया गया है। उसके अनुसार - शीत - ऊष्मा आदि से मिलने पर - स्पष्ट रूप से बदलने वाला - अर्थ होने के कारण रूप कहते हैं। इसीलिए इन छहों धातुओं को संक्षिप्त में यदि कहना चाहें तो **रूप धातु, नाम धातु** - इन दो नामों से कहना होगा।

पृष्ठ– १२९

शिष्यो, इस पांच रूप धातु के अतिरिक्त शेष छठवां नाम धातु है - उस विञ्ञाण धातु को अभी रहने दो - शिष्यो, अभी उसे छोड़ते हैं। इन पांच रूप धातुओं को पुनः कहें - उसे सुनो। शिष्यो, यह जो पांच धातुओं के संबंध में मैंने बताया - उन पांचों में बाहरी धातुओं को - पुग्गल है, सत्व है, मैं है - ऐसा सोचना-समझना आसक्ति के बिना होता है। इस भीतरी धातुओं को ही - पुग्गल ही है, सत्व ही है, मैं ही है - इस तरह तुम शिष्य गण समझते हुए आसक्त होते हो। इस तरह रहने-सोचने-आसक्त होने का कारण - यह भीतरी धातुएं - बाहरी धातुओं के समान अलग-अलग पृथक-पृथक नहीं हैं - बल्कि एक साथ - एक ही पिण्ड के रूप में होने के कारण तथा - जैसे बाहरी धातु स्पष्ट दिखते हैं - पर भीतरी धातु वैसा नहीं दिखते - इसलिये ऐसा सोचते और आसक्त होते हैं। यदि यह भीतरी धातुएं भी बाहरी धातुओं के समान ही पृथक-पृथक हो जावे, और जैसे बाहरी धातुएं दिखती हैं वैसे ही दिखने लगे - तो तुम लोग - इस भीतरी धातुओं को भी पुग्गल ही है, सत्व ही है, मैं ही है ऐसा कभी भी नहीं सोचोगे, विचारोगे और न आसक्त होओगे। अन्य लोगों के लिए यह भीतरी धातुएं पुग्गल ही हैं - सत्व ही तो है, हम ही तो हैं। वे ऐसा विश्वास करते हैं। कैसे भी समझाया जाय तुम शिष्य गण इसे विश्वास नहीं करोगे। तुम्हें कोई समझायेगा भी तो तुम उल्टा उसी को समझा दोगे– "महाशय! आप नहीं जानते - न ही देखने के कारण ऐसा कहते हैं। आपकी बातें गलत हैं - व्यर्थ हैं।"

धातुओं को घड़ी आदि से उपमा देना

शिष्यो! क्यों ऐसा होता है? समझो - कोई छोटा बच्चा चलती घड़ी के स्वभाव को नहीं जानने के कारण अज्ञानतावश उसे सजीव प्राणी समझ बैठता है। उसमें अलार्म हो। कोई आकृति वाला उसमें मशीन द्वारा चल-चलकर आगे-पीछे होकर बोले तो फिर क्या कहना। फिर तो सचमुच में मान बैठेगा कि देख इसके भीतर का प्राणी बोलता है। आदमी भी जब कभी स्वांग भरते हुए शेर, बाघ, घोड़ा आदि का चमड़ी ओढ़ लेता है - तो देखने वाले उससे भयभीत होते हैं या खुश होते हैं।

पृष्ठ– १३०

कठपुतली की राजकुमारी भी सजीव लगती है। उसके नृत्य को देख हम प्रसन्न होते हैं। यदि कोई खलनायक उसके साथ बलात्कार करता है, सताता है तो उसे देखकर करुणा आती है - उसकी पुकार और क्रन्दन आंखों में आंसू और मन में करुणा भर देता है। यही सब बड़ा सज्ञान होने पर, जब कोई हमें बता देता है कि देख यह मशीन वाली घड़ी है - इसमें कोई प्राण नहीं - यह काठ की कठपुतली है - यह कठपुतली का नाटक है - तो हम साफ-साफ समझने लगते हैं। घड़ी के एक-एक कल-पुर्जो को जान लेते हैं - स्वांग करने वाले के ऊपरी खोल को समझते हैं। कठपुतली उसके ऊपर रस्सी - ऊपर से खींचने वाला आदमी इन सबको अलग-अलग विभाजित कर उसके एकेक धातु को जब जान लेते हैं तब उसमें सत्व का आरोपण वाली संज्ञा नहीं रह जाती।

एक अन्य उदाहरण– किसी दिवंगत भिक्षु के सजे-सजाये ताबूत को देखकर दूर से कोई समझ ले कि यह तो बहुत सुन्दर प्रासाद है। सचमुच का प्रासाद मान ले। बाद में निकट से, ठीक से देखने पर समझे कि यह तो लकड़ी ही है - यह बांस है, यह पलाठी है, यह बेंत है, ये कागज है, यह चूना है, यह खड़िया है, यह फूल-माला है, यह नील है, इसके भीतर खोखला है - इस तरह एकेक धातु का विभाजन कर पहचान जाये तब वह पुरानी भ्रांति टूट जाती है - अब उसके सामने वह व्यर्थ का कूड़ा-सा हो जाता है।

एक अन्य उदाहरण– नन्हे-से अबोध बालक को - एक खूबसूरत थैली में पत्थर के टुकड़े, मूंगे, खपड़े, कोयला, ढेले, धूल, लकड़ी के काटन-कूटन, सूखी पत्तियां, खर-पतवार आदि भरकर पकड़ा दे और उससे फुसलाकर, बहलाकर बता दे कि यह सोने से भरी थैली है। वह मानकर उसे बड़े जतन से रख ले। उससे चिपके रहे - बाद में सज्ञान होने पर, समझदार होने पर

पृष्ठ– १३१

उस झूठी बतायी गई थैली को खोलकर एकेक वस्तु को पहचान ले - प्रत्येक धातु को समझ जाये और उसमें कहीं सोने का टुकड़ा न दिखे तो वह थैली उसके लिये व्यर्थ की हो जाती है। ऐसे ही इन्हीं उदाहरणों के समान समझना मेरे शिष्यो - भीतरी धातुओं को बाहर के धातुओं के समान देख लोगे, जान लोगे - तब इस भीतरी धातुओं को - पुग्गल ही है, सत्व ही है, मैं ही है, यह तुम शिष्य गण कभी भी नहीं मानोगे। जान जो गये। उसकी आसक्ति यह महा भ्रांति सब समाप्त हो जावेगी। सत्य को जान जाओगे। इसलिये पीछे जैसा कि इन धातुओं के संबंध में बाहर-भीतर को देखने हेतु बता आया उसे प्रयत्नपूर्वक जानो, पर्येषणा करो। इन भीतरी धातुओं को एक ही ठोस पिण्ड मत जानो - इसको विभाजित कर टुकड़े-टुकड़े करके जानो - ठीक वैसे ही जैसे बाहरी धातुओं को सरलता से संक्षिप्त में विभाजित कर जानते हो।

तरकारी की कड़ाही में पांच धातुओं को विभाजित कर वर्णन

कड़ाही में आधा पानी। उसमें सींझ रही है तरकारी। इसमें पांचों धातुओं को विभाजित कर जानना होगा।

(१) शिष्यों इस तरकारी वाली कड़ाही में जो भी ठोस - दिख रहा है - वह सब पृथ्वी धातु समझना।

(२) जो भी तरल द्रव पदार्थ है वह सब जल धातु समझना।

(३) उसमें हाथ डालने पर जो गर्मी (ऊष्मा) हाथ को जलायी वह अग्नि धातु ही है।

(४) वह तरकारी सींझ रही है। खदक रही है। नीचे से खौलता हुआ ऊपर विलीन होते जा रहा है - वह बुद्-बुद् की ध्वनि करता है - भाप बनकर उड़ता है - उस कड़ाही के पेंदे से ऊपर की ओर खोलने का वेग वाष्प को ही वायु धातु समझना।

(५) कड़ाही में तरकारी की सतह तथा कड़ाही के मुंह तक का खाली स्थान आकाश धातु है। इसे आकाश धातु समझना।

पृष्ठ– १३२

उसमें से कोई भी तरकारी का टुकड़ा पकड़ने पर वह लगता है। वह ताप ठोस तरकारी का टुकड़ा नहीं। वह ठोस टुकड़ा ताप नहीं। वह ठोस तरकारी का टुकड़ा पृथ्वी धातु है। उसमें जो ताप का स्वभाव है वह अग्नि धातु है। अग्नि धातु ठोस तो होता नहीं - नहीं होने के कारण उसे हाथ से पकड़कर महसूस करो जांचों। तुरन्त समझ लोगे। शोरबे में हाथ डालने पर वह तप्त लगता है। वह ताप - शोरवा (तरल पदार्थ) नहीं। वह शोरबा (तरल पदार्थ) ताप नहीं। तरल पदार्थ तो जल धातु है। उसमें जो ताप है केवल वही अग्नि धातु है। बुद्-बुद्, बुद्-बुद् करके जो भाप बाहर आ रहा है - उसके वेग को हाथ रखकर जांचों - वह तप्त है - गर्म है। वह ताप भाप नहीं। वह भाप ताप नहीं है। भाप का वेग वायु धातु है। उसमें जो ताप है केवल वही अग्नि धातु है। अग्नि धातु - पृथ्वी, जल, वायु धातुओं को आश्रित होकर जलते हुए स्थित है। यह तप्त उण्ह अग्नि के सहित पांच धातु हुए।

शीतलता का क्षेत्र भी अग्नि धातु में ही आता है। यह ताप की ही न्यूनतम अवस्था है। सोड़ा के बोतल में रखे बर्फ से यह सब देखा जा सकता है। शिष्यो, जैसे कि इस छोटे से कड़ाही में तरकारी सींझकर उससे ५ धातुओं को विभाजित कर समझे - उसी तरह प्रत्येक चक्रवालों को एक-एक तरकारी की कड़ाही समझ लो। अनन्त चक्रवाल है। उनमें नजर दौड़ाकर देखो कि यही बाहरी धातु चारों ओर भरे पड़े हैं। हर स्थान पर

वही तरकारी की हंडी नजर आयेगी। बहिद्ध सन्तान में इन पांच धातुओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है - मेरे शिष्यो! **"नत्थि किञ्चि"**। किंचित मात्र भी कुछ अन्य नहीं है।

काय स्कंध को धातुरूपी तरकारी की हंडी मानकर वर्णन

शिष्यो! जैसा कि बाहर के धातुओं को तरकारी की हण्डी से विभाजित कर जाना उसी तरह भीतर के पांचों धातुओं को देखें :–

(१) त्वचा को शरीररूपी हंडी का बाहरी भाग मान लें तो भीतर जो भी ठोस पदार्थ हैं वह सब पृथ्वी धातु ही है।

(२) जो तरल द्रव पदार्थ हैं वह सब जल धातु हैं।

(३) जो शीतलता से उच्च उष्णता है - वह सब अग्नि धातु ही है।

पृष्ठ– १३३

(४) जो वाष्प है - उड़ता है - वेग है - (अति) वह सब वायु धातु ही है।

(५) जो पोला, खोंखड़, रिक्त गुहा है - खाली स्थान है - वह सब आकाश धातु ही आकाश धातु है।

अज्झत सन्तान कहलाने वाली इस पूरी काया में नाम धातु को छोड़कर इस पांच धातुओं के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है - शिष्यो, "नत्थि किञ्चि" ही है।

शिष्यो! इन पांच धातुओं को पीछे मैंने बतला आया। उसके अनुसार घड़ी, कठपुतली, प्रासाद, सोने की गठरी, इन सबको धातु विभाजन करने के समान एक-एक विभाजन को पृथक-पृथककर बाहिर धातु से तुलना कर-करके देखो। कभी-कभी तरकारी की हंडी के समान मान कर बाहरी हंडी से तुलना करो। फिर बाहरी और भीतरी में कोई अन्तर नहीं, एक ही समान हैं ऐसा जानो। कभी-कभी अन्य के सन्तान को अपने स्वयं के सन्तान जैसा देखो - और जांचों। यह पृथ्वी धातु उसका और मेरा एक ही तो है - ऐसा जानते हुए - मैं वह का अन्तर हटाओ - केवल पृथ्वी धातु ही पृथ्वी धातु कहां मैं - कहां वह।

भीतर-बाहर निरीक्षण कर अत्त की भिन्नता का वर्णन

१. शिष्यो, इन पांच धातुओं में आकाश धातु को देखोगे तब यह काया पोली लकड़ी, पिण्ड फूला हुआ समझकर दिवंगत भिक्षु के खोखला पुराने ताबूत का-सा खण्डहर मकान के समान जान पड़ेगा।

२. जब वायु धातु को देखोगे तो यह काया लोहार के भाथी की धौंकनी, मील की चिमनी, वायु प्रभंजन से भंजित वृक्ष, उड़ता गुब्बारा - मरे व्यक्ति के समान दिख पड़ेगा।

३. जब अग्नि धातु देखोगे तो - यह रूप काया भट्टी में डालकर बनाये जा रहे पाव रोटी, भट्टी में जलते अंगारे - अवीचि की गर्म राख निरय में गिरे हुए निरयवासी की काया पर गिरने के समान एक जैसा ही दिखेगा।

पृष्ठ – १३४

४. जल धातु देखोगे तो यह काया ठीक वैसे दिखेगी जैसे सड़ी-गली बहुत पुरानी लकड़ी हो - लकड़ी का खूंटा हो - खोखला, गड्ढे, बील, छेद, खाली भाग जिसमें पानी भरे हों। ऐसा ही समझ में आयेगा।

५. पृथ्वी धातु को देखोगे तो - यह काया ठीक वैसी ही लगेगी जैसे - फूला हुआ भंवर द्वार, जल-मिट्टी का पिण्ड, कीचड़, फटा-पुराना जीर्ण-शीर्ण कपड़ा, सड़ी रस्सी, पाट आदि को एक साथ मिलाकर रखा हुआ बड़ा यह बच्चा हो - लंबी-चौड़ी थैली हो, बस वैसा ही लगेगा। इस पृथ्वी धातु अकेले को देखने पर बाकी चारों धातु दिख जाते हैं। स्वतः दिख जावेगा।

शिष्यो! तुम शिष्य गण इस भीतरी धातु, बाहरी धातु इन दोनों में से भीतरी धातु को - मैं ही हूं, मेरा ही है - ऐसा मान कर आसक्त होकर रहते हो। लेकिन बाहरी धातुओं को मैं ही हूं। यह समझना (मानना - आसक्ति) नहीं होती है। मैं ही हूं - यह आसक्ति किया जाने वाला भीतरी धातुओं की संगति मुलम्मा उत्पन्न होता है। मेरा ही है सम्पत्ति के रूप में आसक्त होकर इसे प्यार करते हुए रहते हैं।

इसीलिये - शिष्यो! - जो अभी तक कह आया - उन सारे उपमाओं को उनकी साधना करने, निरीक्षण करने की विधियों को - भलीभांति ठीक-ठीक याद कर लेना। इस भीतरी धातुओं को - बाहरी धातुओं से तुलना कर-करके देखना और देखते हुए बाहरी धातुओं को प्राकृतिक आंखों से जैसा देखा गया है उसी के समान - प्रज्ञा चक्षु से साफ-साफ स्पष्ट जब देखने लगोगे - तब बाहर-भीतर में अन्तर नहीं रह जावेगा - एकदम एक समान हो जावेंगे। ऐसा होने के कारण बाहरी धातुओं के प्रति मैं ही हूं यह आसक्ति जिस तरह उत्पन्न नहीं होती उसी तरह उन बाहरी धातुओं में 'मैं-पने' को ढूंढ़ने पर नहीं मिलेगा वैसे ही इस भीतरी धातुओं को भी 'मैं ही हूं' यह सोचना-समझना और आसक्त होना नहीं होगा - तथा भीतरी धातुओं में मेरा या मेरी संपत्ति ढूंढ़े नहीं प्राप्त हो सकेगा - अरे 'मैं' तो कहीं नहीं इसमें अरे... 'मेरा' तो वही नहीं इसमें। यह जानोगे। फिर 'मैं' समाप्त होकर लुप्त हो जावेगा। मेरी आत्मा (अत्त) तथा मेरा नामक अत्तनिय के रूप में आसक्ति की तृष्णा टूट जावेगी। फिर जिसके लिये प्रव्रजित हुए वह पूरा हो जावेगा। शिष्यो! प्रयत्न करो। प्रयत्नपूर्वक निरीक्षण करो। ध्यान करो। वीर्य करो। प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करो।

पृष्ठ– १३५

उन दोनों (धातुओं) को तुलना कर निरीक्षण करने वाला अधिमुत्त थेर वत्थु

भगवान के समय की एक घटना - शिष्यो!

तिणकट्ठसमं लोकं, यदा पञ्ञाय पस्सति।
ममत्तं सो असंविन्दं, नत्थि मेति न सोचति।। (थेर गाथा)

जो कोई व्यक्ति इस लोक को (मैं के प्रति आसक्त यह सत्व लोक को तृणवत, काष्ठवत समझता है - तृण तथा घास के समान समझता है - कब जबकि वह अपनी प्रज्ञा की आंखों से ऐसा देख लेता है - तब उस साक्षात करने वाले को मेरी आत्मा में मैं का भाव नहीं रह जाता है - मैं मेरे की आसक्ति उसमें नहीं रह जाती। ऐसा जानकर वह सोच नहीं करता - चिंता नहीं करता। (अरिहन्त हो गया तो अब सोच (चिन्ता) कहां।

इस तरह अधिमुत्त नामक एक अरिहन्त थेर द्वारा कही गयी यह गाथा है। इसके अनुसार तुम सब मेरे शिष्य - सोच से परे - पहुंचने के लिये प्रयत्न करो। अभ्यास करो।

तालपुत्त थेर वत्थु

भगवान बुद्ध के समय - शिष्यो! तालपुत्र नामक एक थेर थे। उन्होंने इस प्रकार कहा –

कदानु कट्ठे च तिणे लता च, खन्धे छमेहं अमिते च धम्मे।
अज्झत्तिकानेव बाहिरानिच, समं तुलेय्यं तदिदं कदा मे।। (थेर गाथा)

पृष्ठ– १३६

मैं काष्ठ, तृण, लता आदि इन बाहरी रूप धातुओं को अपनी सन्तति अन्य की सन्तति से तुलना कर नहीं पूरा होने वाला अमित ढेर, इस भीतरी नाम रूप धातु को - एक समान भीतर-बाहर को एक समान निरीक्षण करने का कब अवसर प्राप्त होऊंगा। तुलना करने का कब अवसर आयेगा। वह तुलना करने का अवसर - निरीक्षण कर पाने का अवसर मैं (तालपुत्त) कब पाऊंगा। कब वह समय आयेगा।

इस तरह के तालपुत्र अपने प्रव्रजित भिक्षु जीवन का कृत्य अभी पूर्ण नहीं किये थे - तब यह 'आसीस' = आशीष चाहते हैं - कि कब भीतर और बाहर को एक समान देखूंगा। उस शांति को प्राप्त कर भीतरी धातु, बाहरी धातु में कोई भेद नहीं। यह प्रज्ञा चक्षु से वे अचिर काल में ही जान लिये और निर्वाण को प्राप्त कर लिये। भिक्षु का करणीय कार्य पूर्ण कर कृत-कृत्य हुए। इन तालपुत्त थेर के समान ही अज्झत -

बाहिर को एक समान जानते हुए अनेकों आयुष्मान भिक्षुओं ने निर्वाण को प्राप्त कर लिया - जिसकी कोई गिनती नहीं। इसलिये मेरे शिष्यो :– तुम लोग भी अपने करणीय कार्य को करने में लग जाओ - आयुष्मान तालपुत्त के समान। बाहर-भीतर एक समान जानने का आशीष प्राप्त कर प्रयत्न में लग जाओ।

हमारे भगवान बुद्ध जेतवन विहार में जब विहार कर रहे थे तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित कर यह कहा–

रूप धातु को त्यागना होगा - की देशनाः न तुम्हाक सुत्त

"यं भिक्खवे न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय मुखाय भविस्सति। किञ्च भिक्खवे न तुम्हाकं? रूपं, भिक्खवे न तुम्हाकं तं पजहथ, तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। सेय्यथापि

पृष्ठ– १३७

भिक्खवे इमस्मिं जेतवने यं तिणकट्ठ ताखापलासं, तं जनो हरेय्य वा दहेय्य वा यथा पच्चयं वा करेय्य। अपिनु तुम्हाकं एवमस्स, अम्हे जनो हरति वा दहति वा यथा पच्चयं वा करोतीति। नोहेतं भन्ते! तं किस्स हेतु, न हि एतं भन्ते अत्तावा अत्तनियं वा ति, एवमेव खो भिक्खवे रूपं न तुम्हाकं, तं पजहथ, तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सतीति। (खन्धवग्ग संयुत्त, नतुम्हाक सुत्त)

भिक्षुओ! (अथवा) सुख चाहने वाले प्रिय पुत्रों! जो कि तुम भी नहीं हो, तुम्हारा भी नहीं है - उसे छोड़ दो, त्याग दो। वह न तो तुम हो न तो तुम्हारा ही है। उसका प्रहाण तुम्हारे हित के लिये, सुख के लिये होगा। भिक्षुओ! कौन-सी वस्तु न तुम ही हो न तुम्हारा ही है? भिक्षुओं यह पांच रूप धातु - न तुम ही हो न तुम्हारा ही है। यह रूप जो न तुम हो न तुम्हारा है उस रूप को छोड़ दो, त्याग दो। उसे, जो न तुम हो न तुम्हारा है उस रूप का प्रहाण कर लेने पर तुम्हारे हित के लिये होगा। सुख के लिये होगा।

"भिक्षुओ! उदाहरण से कहा जाय तो - इस जेतवन विहार में तृण काष्ठ वृक्ष, शाखाएं, पत्तियां हैं। उन्हें श्रावस्ती के जन आकर - लेने वाले लेने के लिये, आग लगाने वाले आग लगाने के लिये, अपने-अपने काम के लिये - जिन्हें जैसी जरूरत वैसा करते हैं। उनके वैसा करते समय तुम सब यह कहते हो कि ये जन हम लोगों का हरण करते हैं। हम लोगों को जला रहे हैं। उनको जो करने का मन होता है - वही हम लोगों के साथ कर रहे हैं। क्या इस तरह तुम लोगों के मन में विचार आयेगा?"

'नहीं भन्ते - हमारे मन में ऐसा विचार नहीं होगा।'

"ऐसा किस कारण से नहीं होता?"

"भन्ते! जो यह तृण काष्ठ वृक्ष, शाखाएं, पत्तियां हैं वह न तो हम (अत्ता) हैं, न तो हमारा (अत्तनियं) है।"

"भिक्षुओं! इसी तरह यह रूप धातु (यह तुम्हारा रूप धातु) न तुम ही हो, न तो रह तुम्हारा ही है। जो न तुम ही हो न तुम्हारा ही है - उस रूप को छोड़ो, त्यागो। जो न तुम हो न तुम्हारा ही है - उस रूप का प्रहाण कर लेना - तुम्हारे लिये हितकर, सुखकर है। (हित के लिए - सुख के लिये है।)

इस तरह भगवान द्वारा देशित धर्मोपदेश को सुनकर उस समय के अनेकों थेर उन भगवान की देशना के अनुसार जो मैं नहीं, जो मेरा नहीं इसकी पर्येषणा करते हुए - साक्षात्कार कर रूप धातु का प्रहाण कर, छोड़कर, त्यागकर, निर्वाण को प्राप्त किये।

पृष्ठ– १३९

इसलिये तुम शिष्य गण भी भगवान की देशना के अनुसार मैं नहीं - मेरा नहीं को जानकर - पजहथ के अनुसार उन थेरों जैसे इस रूप को प्रहाण कर - निर्वाण प्राप्ति के लिये - **सुखायभविस्सति** - नामक व्यादेश के अनुसार जो कुछ मैंने पीछे बता आया उस विधि के अनुसार प्रयत्न कर साक्षात्कार करो। प्रयत्न करो।

अनुसासनी सुत्त

१. अट्ठिनहारु संयुत्तो, लोहित मंसलेपनो।
धम्मकञ्चुक सन्नद्धो, नानाधातुस्स पूरितो।।

२. एतादिसेन कायेन, यो मञ्ञे उन्नमेतवे।
परंवा अवजानेय्य, कि मञ्ञत्र अदस्सना।।

३. ये मं कायं ममायन्ति, अन्धबाला पुथुज्जना।
वड्ढेन्ति कटसिं घोरं, आदियन्ति पुनब्भवं।।

४. ये मं कायं विवज्जेन्ति, गूथलित्तंव पन्नगं।
भवमूलं वधित्वान, परिनिब्बिं सु अनासवा।।

५. तस्मा वो नुस्सरं तेसं, सुखाय धातुमण्डिकं।
मुच्चित्वा नु पेक्खेय, कुसलो थविकं कथा।।

६. हत्थत्तले थपेत्वान, पेक्खिय ञाण चक्खुना।
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, धातुकुम्भिं विरज्जथ।। (सेक्ख्यभासित अनुसासनी सुत्त)

(१) भो सिस्सा! यह काया न्हारुओं से संयुक्त हड्डियों की ढेर है। जैसे ईंट की दीवाल गारे से लिपा पोता गया है, वैसे ही लहू-मांस से

पृष्ठ – १४०

लिपा पोता गया है। चर्म से आच्छादित है - धम्म कञ्चुक सन्नद्ध है। नाना धातु पूरित है।

२. भो सिस्सा! जो व्यक्ति, इस स्वभाव वाली काया से - मैं कैसा - कितना उन्नत वाला जानता है - दूसरे को - तू कैसा गया गुजरा मानता है - मेरे शिष्यो, उसका ऐसा सोचना अदर्शन है। इस धातुपूरित को नहीं जानने के विषय को छोड़कर अन्यत्र और क्या कारण हो सकता है भला?

३. भो सिस्सा! अन्धे बाल (मूर्ख) ये पृथग्गजन इस काया को - मेरी काया है - ऐसा आसक्ति करते हैं। वे पृथग्गजन घोर श्मशान के ढेर को बढ़ाने वाले होते हैं। बार-बार पुनर्जन्म में आते हैं - पड़ते हैं।

४. भो सिस्सा! जो उत्तम जन - गुह लिप्त - सड़ते सर्प के समान, इस काया को त्यागता है - इससे बचता है - वे उत्तम जन

पृष्ठ – १४१

भव-मूल को काट डालते हैं। उसका वध कर देते हैं। इस कारण से अनास्रव होकर परिनिर्वृत्त हो जाते हैं।

५. भो सिस्सा! वैसे उस तरह से शांत तुम शिष्य गण, वैसे शांति को प्राप्त उत्तम जनों का अनुस्मरण करो। उनकी नकल करो। कुशलता की थैली को प्राप्त व्यक्ति जैसे थैली को खोलकर उसके भीतर के स्वर्ण को मुक्त कर देखता है उसी तरह सुख के धातुभाण्ड को खोलकर मुक्त कर बार-बार देखो। जिससे देख सको।

६. भो सिस्सा! हाथ के हथेली पर अथवा सामने अपने आधीन पड़े भोजन के मेज पर - ज्ञानरूपी हाथ पर बाहरी धातु के कुम्भ (कड़ाही, हंडी) को; भीतरी कुम्भ को रखते हैं। जैसे इस भीतरी कुम्भ में मैं नहीं वैसे उस बाहरी कुम्भ में भी मैं नहीं। जैसे इस बाहरी कुम्भ में मैं नहीं वैसे हम भीतरी कुम्भ में भी मैं नहीं। यह ज्ञान चक्षु से देखकर - अज्झत धातु कुम्भी में - बहिद्ध धातु कुम्भी में आसक्ति रहित हो जाओ। (१४)

पृष्ठ – १४२

इति छ धातु विभङ्गो पञ्चधातु संपिण्डनानुसमनी पब्बं।

शिष्यो! अभी वर्णित पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश धातुओं को विभाजित कर जानने की विधि को– **"नेसो हमस्मि नेतंमे"** नामक उद्देस के मुताबिक मैं नामक अत्त, मेरा नामक अत्तनीय से मुक्त हो सकने लायक **सुत्तन्त विधि** द्वारा विभाजन कर देखने की विधि - सुञ्ञ की एक विधि समझना।

अभिधम्मा सुञ्ञत विधि द्वारा साधना

ऊपर 'नेसो हमस्मि नेतं मे' को सुत्तन्त विधि द्वारा जानने के बाद अब पुनः पांचों रूप धातु को ही - अभिधम्म विधि से विभाजित कर देखने की विधि सुञ्ञ की एक विधि को देशना करता हूं।

शिष्यो, इस पांचों रूप धातुओं को अभिधम्म नियम के अनुसार इस तरह विभाजित कर देखना होगा। यह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि - चारों महाधातुओं में :–

(१) पथराने की क्रिया मात्र वाले ठोस को परमत्थ पृथ्वी धातु समझो।

(२) आद्र बनाने, गीला करने के क्रिया मात्र वाला द्रव स्वभाव मात्र को परमत्थ जल धातु समझो।

(३) शीतलता से उष्मता के संपूर्ण तापमान के क्षेत्र - इस क्रिया मात्र वाले को - परमत्थ अग्नि धातु समझना।

(४) झकझोर कर वहने की क्रिया मात्र वाले शक्तिशाली वेग के स्वभाव वाले को - परमत्थ वायु धातु समझना।

पृष्ठ – १४३

ठोस स्वभाव, तरल द्रव स्वभावों में वस्तु स्वभाव है। ताप स्वभाव - वेग स्वभावों में शक्ति स्वभाव है। इसमें वस्तु स्वभाव नही है।

चार महाभूतों का संयोग - रूपकलाप का वर्णन

इस तरह सर्वप्रथम परमत्थ चारों महाभूत के स्वभाव को भलीभांति जानो। शिष्यो - यह चारों महाभूत - सहजात, अञ्ञमञ्ञ निस्सय - अत्थि - अविगत नामक पांच पच्चय शक्तियों से परस्पर उपकार करते हुए एक को एक आश्रित होकर उत्पन्न हो सकते हैं। एक दूसरे के बिना सहारे स्वतंत्र होकर उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये भगवान ने अभिधम्म पट्ठान में देशित किया है– "एकं महाभूतं, पटिच्च तयो महाभूता, तयो महाभूते पटिच्च एकं महाभूतं, द्वे महाभूते पटिच्च द्वे महाभूता"

(कोई) एक-एक महाभूत को, तीन-तीन महाभूत आश्रित होकर परिवर्तित होता है। तीन-तीन महाभूतों को (कोई) एक-एक महाभूत आश्रित होकर प्रवर्तित होता है। (कोई) दो-दो महाभूतों को कोई दो-दो महाभूत आश्रित होकर प्रवर्तित होते हैं (अर्थात् उत्पन्न होता है)।

इस तरह परस्पर उपकार करते हुए एक दूसरे को आश्रित होकर संयुक्त रूप में एक समूह होकर रहने वाला यह चारों महाभूत - इस ठोस समूह को अर्थात् एक रूप कलाप कहते हैं। इसे एक रूप कलाप समझना। कलाप शब्द अर्थात् संयोग, समूह (बंडल)। अट्ठकलापो = काष्ठ बण्डल। उच्छु कलापो = ऊख का बण्डल। जैसे कहते हैं - उसी तरह रूप एक ही न होकर बहुत रूप एकत्र होकर संयोग कर

पृष्ठ – १४४

रहते हैं। उसे रूप कलाप कहते हैं। रूप कलाप कहना अपना रूप बण्डल (रूप समूह) कहना एक ही बात है। इस रूप कलाप को ही परमत्थ रूप कलाप भी समझना।

दो परमत्थसमूह रूप कलाप को विभक्त कर वर्णन

परमत्थ रूप कलाप है तो वह एक दूसरे को बिना आश्रित हुए उत्पन्न नहीं हो सकता। स्थित नहीं रह सकता। इसी कारण से कौन रूप नीचे से, कौन रूप ऊपर से, बायें से, दायें से, भीतर से, बाहर से इस तरह भी बिना चुनाव किये - एक समूह में एक ही होकर रहता है। उस तरह होकर रहने के कारण एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। अतएव अविनिब्भोग द्वारा समूह में एकत्र होकर रहते हैं। एक होकर न रहे - आश्रित होने - स्थित होने के लिए कुछ न हो तो पूरा का पूरा समूह ही नहीं रह सकेगा। जब एक समूह होता है - आश्रय होता है - तो सहजात द्वारा सभी एक साथ, एक-ब-एक उत्पन्न होकर रहते हैं। कोई एक सिसकता है - तो आश्रय आधार नहीं होने से - सहभङ्ग द्वारा सभी एक साथ, एक-ब-एक नष्ट हो जाता है।

कम्मज, चित्तज, उतुज, आहारज, अज्झत्त, बहिर संपूर्ण रूपकलाप एक के साथ एक - उप्पादकाल, ठीतिकाल, भङ्गकाल लंबे अर्से तक भी एक ही साथ रहते हैं। कलाप एक-दूसरे से एक भी एक ही के समान रहने के योग्य संयोग नहीं होता। मात्र एक दूसरे से केवल सटे हुए ही होते हैं। इस तरह परमत्थ रूपकलाप के लक्षण को खूब ठीक-ठीक भलीभांति समझो। जानो। शिष्यों, यह परमत्थ रूपकलाप भी, पृथ्वी धातु की अधिकता वाला कलाप; जल धातु की अधिकता वाला कलाप; अग्नि धातु की अधिकता वाला कलाप; वायु धातु की अधिकता वाला कलाप; इस तरह प्रमुख रूप से चार तरह के होते हैं। जैसे कि इस संसार में मनुष्य अकेला नहीं रहता - साथी-संगी के साथ घर बनाकर रहता है। घर भी अकेले कहीं बनाकर नहीं रहता बल्कि गांव, खेड़ा, क्षेत्र बनाकर रहता है। उसी तरह ये परमत्थ रूपकलाप भी एक ही अकेले नहीं रह सकते। अनेकों मिलकर एक साथ रहते हैं। इस तरह परमत्थ कलाप अनेकानेक मिल-जुलकर

पृष्ठ – १४५

रहने वाला वस्तु समूह (वत्थु समूह) है। उसे समूह रूपकलाप समझना।

सयंकतकलाप तथा परंकतकलाप का वर्णन

शिष्यों, परमत्थ कलाप स्वतः अपने आप निबंधित (संरचित) होकर सयंजात मात्र ही होते हैं। यह समूह कलाप अपने आप निबंधित (संरचित) होकर होने वाले सयंजात कलाप भी हैं। दूसरों द्वारा निबंधित (संश्लिष्ट निर्मित) परंकत कलाप भी हैं। बालू का एक कण स्वतः अपने आप निबंधित होकर उत्पन्न एक सयंजात कलाप है। एक पत्थर का टुकड़ा, बड़ा शिला खण्ड, एक पर्वत, एक चक्रवाल अपने आप स्वतः निबंधित होकर उत्पन्न सयंजात कलाप हैं। एक फल स्वतः अपने आप निबंधित होकर उत्पन्न एक सयंजात कलाप है। एक वृक्ष, एक पत्ती, यह सब स्वतः अपने आप निबंधित होकर उत्पन्न एक सयंजात कलाप है। एक नन्हा-सा केश भी स्वतः निबंधित होकर उत्पन्न एक सयंजात कलाप है। एक दांत, एक वृक्क, यकृत, एक मनुष्य भी स्वयं अपने आप निबंधित होकर एक सयंजात कलाप कहलाते हैं। इस नियम के अनुसार सभी सयंजात समूह कलापों के निबंधित होकर रहने को समझो।

एक लकड़ी की तख्त अन्य किसी व्यक्ति द्वारा निर्मित एक परंकत कलाप है, दरवाजे का कपाट, दीवाल, इमारत, विहार अन्यों द्वारा निर्मित एक परंकत कलाप ही है। एक ईंट अन्यों द्वारा निर्मित परंकत कलाप है। शेर की मूर्ति, नरसिंह की मूर्ति, एक चैत्य अन्यों द्वारा निर्मित एक परंकत कलाप है। एक पाव रोटी, एक अंगूठी, एक चूड़ी, एक

पृष्ठ – १४६

कर्णफूल, एक चम्मच, एक थाली, एक कुम्भ अन्यों द्वारा बनाया हुआ परंकत कलाप कहलाता है। शिष्यों, इसी प्रकार सभी परंकत समूह कलाप की रचनाओं को समझना, जानना।

पृथ्वी धातु को परमाणु की अवस्था तक विखण्डन

(१) पृथ्वी धातु अत्यंत सूक्ष्म, परमत्थ रूप कलापों लाखों-लाखों करोड तक समूह कलापों की रचना एकत्रित होकर, परमाणु होते हैं। जिनका प्रमाण इस प्रकार जान सकेंगे। सिर के एक जूं को सात भाग में बांटने पर उसका एक भाग उसके एक अण्डे 'लीख' के बराबर होता है। (२) इस लीख का ३६ भाग का एक भाग - एक रथरेणु कहलाता है। (३) एक रथरेणु को छत्तीस भाग का एक भाग **तज्जारी** कहलाता है। (४) एक तज्जारी को छत्तीस भाग करने पर उसका एक भाग **अणु** कहलाता है। (जो

सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकेगा - सुबह-शाम कमरे में आने वाली किरणों में उड़ता हुआ दिखता है।)

अणु को छत्तीस भाग करने पर उसका एक भाग **परमाणु** कहलाता है। (यह परमाणु मनुष्य द्वारा नहीं देखा जा सकता, उच्च बलवान देव ब्रह्माओं द्वारा देखा जा सकता है।)

१/७ जूं– १ लीख। १/३६ लीख– १=रथरेणु। १/३६ रथरेणु– १ तज्जारी। १/३६ तज्जारी– १ अणु। १/३६ अणु– १ परमाणु।

पृष्ठ– १४७

१. पृथ्वी धातु के कलाप रचना का वर्णन

यह परमाणु - गंध कण, पराग कणों से प्रवाहित होने वाला गंध कण पृथ्वी धातु से सूक्ष्म वस्तु है। वायु धातु भी बहुत सूक्ष्म होने से उड़ता रहता है। वह धरती आकाश हर स्थान में है। बहुत सूक्ष्म एवं हल्की वस्तु है। अतः हवा के जाने वाले स्थान का भी अतिक्रमण कर चला जाता है। इस परमाणु से **शत शत कोटि** गुना तक अधिक सूक्ष्म, एक परमत्थ रूपकलाप को प्राकृतिक मांस चक्षु से कोई भी नहीं देख सकता है। जो समाधिरूपी चश्मा लगाया हो - ञाण चक्षु से देखता हो - तब ही दिख सकता है। इतना सूक्ष्म है - पृथ्वी धातु से परे - कुल शत-शत कोटि तक परमत्थ कलाप - समूह कलाप की रचना जुड़ती हैं - तो वह परमाणु के बराबर परिमाण का होता है। कुल परमत्थ कलाप लाख - दस हज़ार करोड़ गुना ३६ के बराबर समूह कलाप जुड़ती है - तब एक अणु के बराबर की रचना का परिमाण होता है।

इस तरह पृथ्वी धातु के परे अतिक्रमित - कुल परमत्थ कलाप अनेकों-अनेकों समूह कलाप संरचित मिल करके बहिद्ध सन्तान में वृक्ष, वन, पर्वत, तीन हजार योजन चौड़ा, पांच सौ योजन ऊंचा हिमवन्त पहाड़, चौरासी हजार योजन जल में डूबा हुआ - पानी के ऊपर उभरा हुआ सुमेरू पर्वत; २०४००० - दो लाख चार हजार योजन मोटी - १२०३४५० योजन चौड़ी चक्रवाल महापृथ्वी, ८२,००० योजन जल में डूबा हुआ - इतना जल के ऊपर उभरा हुआ चक्रवाल, भवन, विहार, सूर्य विमान्न, चन्द्र विमान, तारे, देव ब्रह्मा, लोक आदि सभी द्रव्य वस्तुएं - भीतरी अज्झत्त सन्तान में केश, लोम, नख, दंत, त्वचा, मंस, न्हारू, अट्ठि, अट्ठिमिञ्चकं, वक्क, हदयं, आदि द्रव्य वस्तुएं - प्राणधारियों में दीमक, जूं, खटमल से

पृष्ठ– १४८

लेकर चार-चार गव्यूति, एकेक योजन बर्मा देश जैसे छः देश चार सौ में हैं। तीन गव्यूति तक ऊंचाई वाले तावतिंसा देव प्राणी; एक ग्राम प्रधान के अधिनस्थ एक ग्राम क्षेत्र, ऐसे तीन ग्राम क्षेत्र के बराबर शरीर वाले सुद्धावास अविहा ब्रह्मलोक के ब्रह्मा प्राणी एक हजार योजन लंबी महातिमिर, पिङ्गल, आनन्दा मछलियों - कायिक ऊंचाई आठ

हजार चार सौ योजन ऊंचा असूर लोक के राहु असूरिन्द्र - देव प्राणी जैसे बड़े-बड़े - ठोस प्राणी हैं।

असूरिन्द्र की काया-विशालता में अग्र है

रूप वाले समस्त प्राणियों में - मूल प्राकृतिक शरीर रचना में विशाल शरीर वालों में - राहु असुरिन्द्र की काया सबसे विशालतम है। राहु असुरिन्द्र से विशालतम काया किसी का भी नहीं। इसीलिये चतुक्कङ्गुत्तर में भगवान ने अग्र की उपाधि देते समय– "राहुग्गं अत्तभावीनं" विशाल काया वालों में अग्र की उपाधि दीं है।

इस तरह पृथ्वी धातु को अतिक्रमित परमत्थ रूपकलाप नन्हे-नन्हे अनेकों समूह कलाप संगठित होकर ठोस वस्तु बनकर बड़े बन गये हैं। यह पृथ्वी धातु का वर्णन हुआ।

२. आपोधातु के कलाप रचना का वर्णन

जल धातु का अतिक्रमण - परमत्थ कुल रूपकलाप लाख-लाख करोड़ तक समूह कलाप सयुक्त करें तब एक नन्हा-सा परमाणु में रहता है। अर्थात् जल धातु के सबसे छोटे-से-छोटे कण में लाख-लाख करोड़ तक समूह कलाप संयोग कर एक परमाणु में होते हैं। परमत्थ रूपकलाप कुल (१०००००,०००००,०००००००) लाख-लाख करोड़ का ३६ गुना समूह कलाप के मिलने पर एक अणु होता है। इस तरह जल धातु अतिक्रमण परमत्थ रूपकलापों के अनेकानेक समूह कलाप के मिलने के बाद

पृष्ठ– १४९

बहिद्ध सन्तान में एक ओश का कण, वर्षा जल, ताड़ द्रव, नारियल द्रव, कुंआ का जल, तालाब का जल, खांई का जल, नदी का जल, झील का जल, चौरासी हजार योजन गहरा अन्तो - समुद्दरा जल, बयासी हजार योजन गहरा बहिस समुद्दरा जल, चौरासी हजार योजन मोटी चक्रवाल धारक जल; अज्झत सन्तान में पित्त, कफ, पीप, रुधिर इत्यादि वाले तरल द्रव इत्यादि द्वारा जल परिमाण विशाल हो गया है। यह जल धातु का वर्णन हुआ।

३. वायो धातु के कलाप रचना का वर्णन

वायु धातु का अतिक्रमण - परमत्थ रूपकलाप कुल १०००००००००००००००००० (लाख दस लाख कोटि) तक समूह कलाप मिलाकर वायु का एक परमाणु बनता है; जो कि आकाश में फैलकर पूर्ण है। आकाश में स्थिर रहते हुए वायु, आते-जाते हुए बहता वायु - एक परमाणु तक स्थान में वायु धातु परमत्थ कलाप कुल १०००००००००००००००००० हैं। वायु धातु परमत्थ कलाप कुल १०००००००००००००००००० का ३६ गुना समूह कलाप के मिलने पर एक अणु में होता है। इस तरह वायु धातु अतिक्रमण परमत्थ कलाप अनेकानेक जब संयुक्त होता है

- तब अज्झत्त, बहिद्ध दोनों में ही इतना बड़ा आकाश इस वायु से भर जाता है। विशेष रूप से चक्रवाल-धारक जलों को नीचे आकाश में नहीं चू पड़ने हेतु ओट लगाकर धारण किया हुआ अनन्त वायु संग्रह - १६०००० योजन मोटा है। इस वायु मण्डल को विश्व (पृथ्वी) धारक वायु होकर विशेष वर्णन करना पड़ा। यह वायु मण्डल जहां तक आकाश है उनमें भी अनन्त वायु हैं।

नासिका से बाहर आने वाला वायु - जलपूर्ण पाईप के सुराख से निकलते फव्वारा जैसे जल के समान होता है। सिगार पाईप से निकलता धुआं का-सा, श्वास नली नाशा छिद्र से पूर्ण वायु बाहर निकलता है।

पृष्ठ – १५०

वायु घुसता है तो फिर उसी तरह वह भीतर घुसता भी है। अणु के नीचे सूक्ष्म परमाणु धुआं वाष्प भी हवा आकर जाते समय हवा के साथ जाता है - घुसकर साथ चलता है। उसमें यदि वातावरण में सुगन्धि रहा तो वह भी सुगन्धित लगता है। नहीं रहने पर नहीं महसूस होता है। हाथ सक्रिय करने पर हाथ के भीतर का जो भी आकाश है - उसमें हवा भर जाता है। सारा शरीर सक्रिय होकर हिलने-डुलने लगेगा तो पूरे शरीर के भीतर के आकाश में वायु भर जाता है। यदि कोई बहुत तेज धावन करता है तो वह एक आंधी ही है। नट-नटी जो करतब दिखाते हैं वे भंवर जैसे वेरम्भ चक्रवात ही हैं। सामान्य रूप से चलने-फिरने वाला व्यक्ति सामान्य बहने वाली वायु ही है।

संपूर्ण वन पर्वत में आंधी आने पर - जिस तरह सभी नदियों में जल बहने लगा - वैसे ही उस वन पर्वत में भी भीतर जो खाली स्थान आकाश है उन सब में हवा भरकर बहने लगा। बहुत सघन बलशाली वायु झुकाकर हर जगह बहता है - तो बिना कोई स्थान छोड़े सभी जगह बहता है - उसी तरह उसका स्थान आकाश को पूरा भर देना ही है। इस वायु धातु परमत्थ कलाप के एक-से-एक समूह कलाप की रचना धधकती अग्नि में ज्वाला के कण जैसे बना है - ठीक वैसे ही है। कुछ वायु धातु भी धुआं के कणों के समान बने हुए हैं। यह अग्नि ज्वाला धुआं भी वायु धातु ही है। इस अग्नि ज्वाला - धुआं नामक वायु धातु में पृथ्वी धातु के भी थोड़े बहुत धूल-गर्द आदि शामिल रहते ही हैं। बहुत ज्यादा एकत्र होने पर वह कालिख - आदि ठोस वस्तु बन जाते हैं। इस प्राकृतिक आने जाने करने वाला वायु धातु, पृथ्वी धातु अत्यंत मंद भी है - अत्यंत मृदुल भी है - इस अग्नि धातुओं के समान ठोस नहीं है। मोटा रूक्ष नहीं है। वर्ण भी बहुत मंद है। इस अग्नि ज्वाला - धुआं को जैसे देख पाते हैं - वैसे वायु धातु को आंख से देख भी नहीं सकते। इस आंख से वही दिखती है - जिसकी शक्ति सामर्थ्य छोड़कर वर्ण अत्यधिक सुदृढ़ धातु हो - तो दिखेगा। यदि वर्ण बहुत मंद धातु है - तो नहीं दिखेगा। सूर्य, चन्द्र, तारे, रत्न, अग्नि के प्रकाश

पृष्ठ – १५१

दर्पण में दिखता प्रतिबिम्ब, मनुष्य, वृक्ष का प्रतिबिम्ब इत्यादि - धातुओं में वत्थु ही बहुत मृदुल होने पर भी वर्ण अत्यधिक से अधिक दृढ़, तीव्र है। इसलिये दिखता है। कुछ कांच (दर्पण) कहलाने वाले धातु ठोस वस्तु के रूप में रूक्ष - बड़ा होने पर भी वर्ण अत्यंत मंद होने के कारण अचानक सामान्य तौर पर देखने पर नहीं दिखता। उसको स्पर्श करने पर ही समझ में आता है। इसीलिए सिङ्गाल जातक में - पुराने समय में - हिमालय में शेर के छः भाई कांच गुहा को रिक्त आकाश समझकर दौड़े और उससे टकराकर मर गये। यह वायु धातु को समझाना ही हुआ।

४. तीन धातुओं से मिलाने पर तेजो धातु का अतिक्रमण

अग्नि धातु अतिक्रमण करने वाला कलाप अर्थात् वह अग्नि धातु - वायु, जल, पृथ्वी धातुओं के साथ समानान्तर - समानान्तर अतिक्रमण करने के कारण यह वायु, जल, पृथ्वी आदि को अतिक्रमण करने वाला कलापों को ही कहते हैं। उष्म - शीत ठोस वत्थुओं में पृथ्वी धातु से समानान्तर स्पर्धा कर अतिक्रमण किया। गर्म, शीत तरल द्रव में जल धातु से समानान्तर स्पर्धा कर अतिक्रमण किया। गर्म, शीत वायु धुआं भापों में अग्नि ज्वालायें, अग्नि ज्वाला वेगों में वायु धातु से समानान्तर स्पर्धा कर अतिक्रमण किया।

अकेले शुद्ध तेजो धातु के अतिक्रमण का वर्णन

अकेले मात्र अग्नि का ही अतिक्रमण करने वाले कलाप भी अज्झत, बहिद्ध दोनों में हैं। सूर्य विमान से अकेले शुद्ध अग्नि अतिक्रमण करने वाला (प्रकाशित होने वाला) परमत्थ कलापें निःसृत होकर जहां-जहां सूर्य की किरणे जाती हैं उन सभी क्षेत्र में रहती है। फैली होती हैं। इन अग्नि कलापों से स्पर्श कर ताप को निःसृत करने वाला मूल प्रत्यक्ष स्थान को आश्रित होकर सूर्य गरम है - यह कहते हैं। मरिचिका भी उसी सूर्य से, नीचे के आधार वस्तु से निःसृत होकर स्थित यह अग्नि कलापें ही तो हैं। अग्नि में वेग का होना उसकी धर्मिता है - स्वभाव है। यह मरिचिका अग्नि कलापें सघन शक्तिशाली होने पर उसकी वेग-तरंगें तनिक तीव्र होती हैं। उन वेगों के लिये ये मरिचिका

पृष्ठ – १५२

अग्नि कलापें बहुत सक्रिय रहती हैं। ग्रीष्म काल में जब गर्मी बढ़ती है तब धरती की सतह, पर्वत शिखर, विहार के छत की सतह इत्यादि को दूर से देखना। प्रतीत होगा कि उसके समीप निर्मल जल दौड़ रहा है। इसे जानने भर, समझने भर देखना - मेरे शिष्यो! विपश्यना करते समय इसका बहुत उपयोग होगा। चन्द्रमा से भी सीत अग्नि कलाप निःसृत होती हैं। जहां तक चन्द्रमा की चन्द्रिका फैलती है वहां तक वह सीत अग्नि कलाप भी फैल जाता है। ग्रह नक्षत्र तारों से भी किसी से उण्ह अग्नि - किसी से शीत अग्नि निःसृत होती हैं। वर्षा के बादल, चक्रवाल पर्वत, सुमेरू पर्वत, सत्तरम्मण पर्वत, हिमवन्त पर्वत, संपूर्ण वृक्ष-वन-जंगल, सीदा (शीत) समुद्र इत्यादि इन सबों से भी

सीत अग्नि कलाप निःसृत (विकिरणित) होकर इससे चक्रवाल परिपूर्ण है। हमारी महापृथ्वी इस धरती से भी उण्ह, सीत दोनों विकिरणित होती हैं।

ठोस दृश्यमान वत्थुओं से निःसृत अग्नि कलाप का वर्णन

सभी वस्तुओं से अग्नि कलाप निःसृत होता है। शीतल वस्तुओं से शीतल अग्नि कलाप तथा उष्मा वस्तुओं से उण्ह अग्नि कलाप। इन शीत - उण्ह कलापों से यह चक्रवाल, ओकास लोक, परिच्छेद आकाश, परिपूर्ण है। सूर्य की किरणें, चन्द्रमा की चन्द्रिका, तारों-ग्रह-नक्षत्रों की किरणें इत्यादि सभी किरणें जो भी किरणे हैं वह सब इस अग्नि कलापों के वर्ण रंग ही हैं। धूल एवं बादल रहित स्वच्छ आकाश में दिखने वाला वह नीला आकाश उल्टी महाविशाल कड़ाही सदृश्य सुमेरू पर्वत से निःसृत अग्नि कलापों का भी रंग वर्ण तो है। कोहरा - धूम मिश्रित दिखने पर वह सफेद-सफेद-सा नीला-नीला-सा रहता है। आंखों का गोलक खुला हुआ-सा वह दिखने से - उल्टी महाविशाल कड़ाही के समान प्रतीत होने वाला उस महाव्योम को छूने के लिये जाने पर कहीं पर भी उसमें मरिचिका का जल ढूंढ़े नहीं मिलेगा के समान वह है। जैसे-जैसे मूल निःसृत वस्तु से दूर होता जाता है - उसकी अग्नि मंद पड़ती जाती है। कुछ किरणों की भी अग्नि मंद हो जाती है। कुछ अग्नि कलापों में भी वर्ण मन्द पड़ जाता है। अत्यंत मद्धिम मंद हो जाता है - यह भी समझना।

पृष्ठ– १५३

तीन आकाशों का वर्णन

चक्रवाल धरती के नीचे जल, जल के नीचे वायु उसके नीचे बिना किसी उलझन के विशाल आकाश है - अजटाकास है। उस आकाश से यदि कभी भी नष्ट नहीं हो सकने वाला एक योजन का लौहपिंड वर्त्तुल जो कल्पारंभ से ही गिरा दिया जाता, तो वह आज तक गिर ही रहा होता। कल्प प्रलय तक भी गिरता ही रहता असङ्ख्येय्य कल्पों से गिर ही रहा होता - किसी भी काल में, किसी भी समय वह बिना विराम के गिरते ही रहेगा। उसका अंत नहीं। (अर्थात् इतनी दूरी है) इस महापृथ्वी धरती से ऊपर ७,१८,५६,००० योजन (सात करोड़ अट्ठारह लाख छप्पन हजार योजन) दूर आकाश में नेवसञ्ञानासञ्ञायतन अरूप लोक स्थित है। इस लोक को सभी लोकों का शिखर कहते हैं। अतः इसे भवग्ग (भवाग्र) कहते हैं। इस भवाग्र अरूप लोक के परे कुछ भी नहीं। बिना किसी उलझन के अजटाकास स्थित है - विशाल अंतरिक्ष आकाश। यह आकाश भी नीचे अजटाकास जितना ही विस्तृत (चौड़ा) है। यह ऊपर-नीचे दोनों अजटाकास के बीच में जितना आकाश बचता है - उसको लोकों को उसके वत्थु को विभाजित करने वाला परिच्छेद आकाश कहते हैं। तीनों आकाश किसी भी वत्थुओं से बिना निकले सर्वप्रथम प्रथम संसरा के स्थिति होने के प्रारम्भ से उत्पन्न हुए। सीत अग्निकलापों से परिपूर्ण हैं।

अन्धेरा रूप अग्नि कलाप और मनुष्य-छाया आदि

अंधेरा - इस सीत - अग्नि कलापों का वर्ण (रंग) ही है। मनुष्य-छाया, वृक्ष-छाया इत्यादि छायाएं - छाया नामक ये अंधेरा रूप अग्नि कलाप ही हैं। मनुष्य - वृक्ष आदि ठोस वस्तुओं से नहीं निकलता। सूर्य-चन्द्र किरण से मिलकर मिश्रित होकर काली-काली छाया के रूप में प्रतीत होता है। वह मनुष्य की छाया - आदमी जब-जब चलता है। उसके साथ चलना भी - उस ठोस आदमी द्वारा सूर्य के किरणों को रोक लेने के कारण - जहां-जहां चलता जाता है - अत्यंत रूप अग्नि कलापें दिखती ही हैं। प्रथम ठहरकर खड़े रहने के समय

पृष्ठ– १५४

वह अन्धेरा रूप (छाया) चलता नहीं। छाया का हिलना-डुलना भी उसी के अनुरूप (मनुष्य के) ही होता है। सभी अन्धेरा रूप ठीक ऐसे ही होते हैं। बिना किसी आड़ के प्रकाश के मध्य - धूप में प्रकाश की तीव्रता अधिक होने से नहीं दिखता। वह रहता तो है - पर दिखता नहीं जैसे तेज दिन के प्रकाश में तारे नहीं दिखते; जैसे हिमालय में स्वर्ण पूर्ण - स्वर्ण प्रकाश एक साथ निकलने वाले नेरू पर्वत पर पहुंचने पर कौवे, बगुले इत्यादि सभी पक्षी सोने के टुकड़े जैसे ही प्रतीत होते हैं; जैसे छः परतों से प्रकाशित अवीचि नरक के अग्नि ज्वाला के भीतर यदि भगवान बुद्ध के केश काली आंखों आदि से काली-काली प्रकाश को प्रवाहित करें तो वे (अवीचि के) पीले-पीले प्रकाशित अग्नि प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता और मात्र अंधेरा-ही-अंधेरा, काला-काला दिखता है। उण्ह की तीव्रता वाले स्थान में सीत अग्नि कलापें उण्ह ही बन जाती है। सीत की तीव्रता वाले स्थान में उण्ह - सीत बन जाती हैं। दोनों की तीव्रता जहां एक समान हो - वहां दोनों मंद हो जाती हैं। बिना किसी ठोस वत्थु से स्पर्श किये उष्मा, शीतल जाना जाने वाला संपूर्ण को इन कलापों से स्पर्श कर जानना मात्र समझो।

जब हवा तनिक भी नहीं डोलती हो तब अपने हथेली को चेहरे पर पंखा-सा झलो। तब इन अग्नि कलापों से तीव्र वेग निकलकर चेहरे पर दबाव डालेगा। पंखा झले तो भी ऐसा ही होगा। चिड़ियों के पंख को झलो कि गरूड़ के पंख को झलो एक ही-सा है। जिस किसी से भी हवा झलो - उसी तरह अग्नि कलाप से उठने वाला वेग ही होगा। अग्नि धातु तीव्रता से उठेगी तो भीषण चक्रवाल उत्पन्न होता है।

आठ स्तरों के निरय - अग्नि की ताप तीव्रता का वर्णन

अज्झत सन्तान में भी उष्माग्नि, पाचकाग्नि, कुछ सन्तापन अग्नि, कुछ दाह अग्नि, कुछ जीरणं अग्नि आदि शुद्ध अग्नि से भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक (तीव्र) अग्नि कलाप ही हैं। कुछ सन्तापन, दाह, जीरण अग्नि तो शेष तीन धातुओं की तुलना में बहुत अधिक ताप वाली हैं। शुद्ध अग्नि से भी बहुत तीव्र

पृष्ठ– १५५

अज्झत्त अग्नि कलापें भी - जिस तरह बहिद्ध अग्नि कलापें संपूर्ण आकाश में जहां तक आकाश है वहां तक फैली है वैसे ही संपूर्ण काया के भीतर के आकाश में फैली हुई है। इस अज्झत बहिद्ध दोनों में कथित अग्नि धातु परमत्थ कलापों का परस्पर समूह कलापों में संरचित होकर रहना - वैसे ही है जैसे - पानी में जल धातु परमत्थ कलाप संरचना, जैसे अग्नि ज्वाला में अग्नि ज्वाला कणों की संरचना; विशाल परिमाण में भी १०००००००००००००००००० (लाख - दस लाख करोड़) यह अग्नि धातु समूह कलाप की संरचना में मिलकर एक अकेला परमाणु आकाश मैं फैल जाता है - पूर्ण हो जाता है। १०००००००००००००००००० का ३६ गुना– की संरचना में मिलकर एक अकेला परमाणु ही आकाश में फैल जाता है - पूर्ण हो जाता है। इसी तरह अनेकों-अनेकों परस्पर संगठित होकर कहे अनुसार बहुत अधिक हो जाते हैं। इस अग्नि कलाप में कोई ठोसपना नहीं होता वायु कलाप जैसा ही। पर वायु कलाप से अत्यधिक सूक्ष्म। चक्रवाळ सहित चक्रवाळ के भीतर जो कुछ भी पदार्थ, वायु, ठोस आदि है - वह ठीक उसी तरह है जैसे जल में कंकड़-पत्थर, शीलामय पर्वत चट्टान, मूंगे आदि डूबे हैं - वे सब अग्नि धातु नामक जल में डूबे हुए हैं। यह पर्वत मानो क्रमशः घी या खारे पानी में डूबे गुड़ या नमक के समान है। यह वृक्ष इत्यादि विशाल जल भरे कुम्भ के भीतर तालाब में उगे जल पौधों के समान हैं। थल के, आकाश के, प्राणी पानी में डूबे हुए चलने-फिरने वाले मछलियों के समान हैं। मछलियां पानी में अपनी पखों का प्रयोग कर तैरती हैं - उसी तरह मनुष्य देव ब्रह्मा भी इस अग्नि कलाप को हाथों-पैरों से चीरकर तैरने के समान चलते-फिरते हैं। पक्षियां भी अपनी पंखों से आकाश में उड़ती हैं। वैसे ही अग्नि कलाप में हम सब चलते-फिरते हैं। मगर, मछली, के समान ही।

निरय के आठों स्तर ठीक वैसे ही हैं जैसे आठ खूब सुदृढ़ चौकोर लोहे की पेटियां होती हैं। जिसे चारों ओर से वेल्डिंग कर बनाया गया होता है।

पृष्ठ– १५६

यह कथित संदूक भीतर में सौ-सौ योजन चौड़ी है। पूर्व के दीवाल से उठने वाली अग्नि की ज्वाला पश्चिम के दीवाल को छूती है। और पश्चिम की ज्वाला पूर्व को। इसी तरह उत्तर की ज्वाला दक्षिण तथा दक्षिण की ज्वाला उत्तर को छूती है। नीचे की अग्नि ज्वाला ऊपर और ऊपर की नीचे को छूती है। बाहर के प्रत्येक तल के बाहर सौ-सौ योजन तक ज्वालायें लपकती हैं।

निरय अग्नि की तीक्ष्णता– भगवान के नहीं रहने के बाद 'मलय' नामक एक थेर ने अपने आचार्य से निरय अग्नि की तीक्ष्णता के संबंध में पूछा। तब उनके आचार्य ने जो बताया वह इस प्रकार है– एक गाड़ी गीली लकड़ी को विस्तृत शिला खण्ड पर रखकर उसमें आग लगाने की चेष्टा करने पर भी वह नहीं जलती। अवीचि निरय से तिल बराबर अग्निकण को कोई ऋद्धि से लाये - उसे हथेली पर रखे तो भी नहीं दिखने वाले को - उस गीली लकड़ी की ढेर में डाल दे, तो वह गीली लकड़ी पलक झपकते

धंसने लगता है। एक परमत्थ रूप कलाप के विशालतम परिमाण को बता आया। उसी प्रकार के ब्रह्माओं के लोक में उत्पन्न - अत्यंत सूक्ष्मतम अत्यंत लघुतम रूप कलाप को लक्ष्य कर कहा - एक करोड़ तक, देवलोक के मध्यम परिमाण के रूप कलाप को लक्ष्य कर - दस लाख तक, मनुष्य लोक में उत्पन्न, मनुष्य लोक के पशु-प्राणी लोक में रहने वालों का अत्यंत स्थूल रूप कलाप को लक्ष्य कर एक लाख तक समूह कलाप संगठन (संरचित) होने पर एक परमाणु बराबर - एक के बराबर बड़ा होता है - अधिक होता है - फैलता है - यह बता आया हूं।

ब्रह्मा के रूप की सूक्ष्मता की उपमा - वर्षा बरस जाने के बाद धरती से निकलने वाले भाप को पूरा को एकत्र करो। मरिचिका के जल के समान - सूक्ष्म जल और

पृष्ठ– १६०

ठोस आकार वाला जलों के समान। ब्रह्माओं की काया सूक्ष्म होती है। तो फिर धरती में धंसने पर उनकी काया टूट-फूटकर फट क्यों नहीं गयी। नहीं, ऐसा नहीं होता। जैसे तारों की जालीदार कई परतें अग्नि की ज्वाला पर ढंकने के लिए रखते हैं तो उसको बींधकर ज्वाला जैसे बाहर आ जाती है - हटा देने पर ज्यों की त्यों हो जाती है - वैसे ही समझना। अग्नि ज्वाला को ही हटा लें तो वह जस-की-तस रहेगी।

प्रभावान देवादि (योगिनियों आदि) का मनुष्य में चिपटना (प्रेत चिपटना, देव चिपटना आदि) योगिनी

इसी तरह मनुष्यों में प्रविष्ट होने वाले (चिपटने वाले) देवता भी सर्वप्रथम हृदय स्पंदन बन्द कर या, हृदय रुधिर बदलकर अथवा किसी-न-किसी - तरीके से चित्त को मन्द कर देते हैं। भवङ्ग में गिरा देते हैं। ऐसे बेहोशी के क्षण में वह देवता अपना रूप यदि स्थूल हो तो उसे अति सूक्ष्म बना लेते हैं; फिर मनुष्य के संपूर्ण काया में, रेत में घी के समान - प्रविष्ठ कर फैला देते हैं। जैसे दूध और पानी। जैसे धरती में वह ब्रह्मा - वैसे ही मनुष्य रूप और देव रूप एक के भीतर एक समा जाते हैं। सारे स्थान में फैल जाता है। फिर जब तक वह देवता बाहर नहीं निकल जावेगा तब तक उस मनुष्य का चित्त, भवङ्ग से जागृत नहीं होगा। संपूर्ण काया का रूप, देव रूप परिमाण हो जाता है। वह देव अपनी इच्छानुसार क्रिया करता है तथा कहता है। जब उस मनुष्य के शरीर से वह देवता बाहर निकल जाता है तब उस आदमी के संपूर्ण कायिक रूप कुछ रिक्त एवं खाली-खाली हो जाता हैं - जिससे वह आदमी थकान महसूस करते हुए शिथिल पड़ा रहता है। इस तरह चिपटने (प्रविष्ट होने) में पहली बात यह कि जिसके (मनुष्य के) शरीर में चिपटना है उसे किसी-न-किसी विधि से उसके चित्त को मन्द करना, भवङ्ग में गिराना, अचेत कर देना - आना चाहिये - फिर जो प्रविष्ट करेगा (प्रेत या देव प्राणी) उसे अपने आपको सूक्ष्मतम निर्मित करने आना चाहिए - तब ही यह चिपटना संभव होता है। अन्यथा प्रविष्ट होना चिपटना संभव नहीं। डाय-डायन, भूत-प्रेत, भूमि-भूत, देव भी इसी तरह अन्य के शरीर में धंसते हैं और पूरे शरीर रूप में फैल जाते हैं। प्रभा

देव भी मनुष्य ही हैं। परन्तु (प्रभा देवी (योगिनी स्त्री) को भी कहते हैं।) विद्या की शक्ति, देव के प्रभाव, के संयोग के कारण चित्त को भी मन्द कर अचेत करने में समर्थ होता हैं। होते हैं। रूप को भी सूक्ष्म निर्मित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्धान होना,

पृष्ठ– १६१

कुत्ते इत्यादि का रूप धारण करना, अपने बारे में बहुत दूर की जा रही मंत्रणा को सुनना, चक्ररज्जु से उतरकर आकाश में चले जाना, इत्यादि विभिन्न (ऋद्धि) प्रभाव शक्ति को जानते हैं। जानती हैं।

सात प्रकार के योगिनी का वर्णन

इस योगिनी की ऋद्धि को देव शक्ति सामर्थ्य से संबलित (मिला हुआ) आदि को पाळि में देशित १० प्रकार की इद्धियों में से **कम्मजिद्धि** कहा गया है। शिल्प विधा (सीखने की प्रज्ञा) प्रभाव से संबलित इद्धि को **विज्जामयिद्धि** कहा गया है। (१) हस्ति जंजीर (२) नकेलिन (३) गामणा (४) गामणी (५) कवि (६) विमानिक (७) जोगिनी– इस प्रकार सात योगिनियों को लिखा गया है। इन सातों में भी सिर के जूड़ा या पगड़ी के आधार पर अनेकों विभाजन है - इनका (जोगिनों का)। इन सातों में ६वां एवं ७वां प्रज्ञा (शिल्प) योगिनी न होकर अपनी काया के भीतर विमान सहत्थ उत्पन्न कर उसमें वास करने वाले गन्धब्ब देव के प्रभाव के कारण अपने सोचे-विचारे अनुसार करती हैं। किसी को पकड़ती (चिपटती) हैं। यह दोनों प्रकार की योगिनियां - बिन सिखाये सीखी होने के कारण पेट के भीतर की योगिनी पुकारते हैं। शेष पांच योगिनियां - सीखकर शिल्प प्रज्ञा (विधा) द्वारा बनती हैं। प्रज्ञा (विधा) द्वारा विमान निर्मित कर देती है - तो गन्धब्ब देवता भी काया में रहने लगता है। प्रज्ञा (विधा) के बल प्रभाव से देव के बल प्रभाव से दोनों की शक्ति से मिला होता है। मनुष्यों में होने वाले, रहने वाले उन देवताओं को पाळि में गन्धब्ब देवता कहते हैं। लोक में योगिनी कहते हैं। उन योगिनी देवों का आश्रय मनुष्य को जोगिनी कहते हैं। योगिनी कहते हैं।

(जो) योगिनीनं आयतनं, असीति किमिआलयं।
अवीचिखेन संयुत्तं, पूतिगतं जिगुच्छियं।। (सेक्खभासित गाथा)

पृष्ठ– १६२

ओ शिष्यो! योगिनियों का आश्रय विमान वाला यह आयतन; अस्सी (८०) प्रकार के जीवाणुओं का आश्रय पांथशाला सदृश्य भी; रिक्त स्थान रहित - सब भरा हुआ बन्द - छिद्र गुहा आकाश से भी संयुक्त यह सड़ता-गलता-सा शरीर (पूतिगत्तं) - जुगुप्सा का स्थान है रे। घृणास्पद है रे।

इस मनुष्य रूप और योगिनी देवों के रूप के एक के मध्य एक जिस प्रकार धंस जाते हैं - समाहित हो जाते हैं - उसी तरह - मिट्टी के घड़े के मध्य जल का रिसना, काष्ठ तख्त में मिट्टी तेल का समाना, मिट्टी के पात्र में सिंह का तेल सोख जाना, धरती में पानी का रिसना, निर्मल जल में सूर्य की किरणों का आर-पार चले जाना, वर्ण आकृति का कांच के आर-पार दिखना। आदि।

छः रश्मियों का (बुद्ध की काया से) निःसृत होना

भगवान बुद्ध। बोधि प्राप्ति के चतुर्थ सप्ताह। रतनाघर में अभिधर्म की पर्येषणा कर रहे थे। अभिधम्म की अंतिम पुस्तक पट्ठान की जब पर्येषणा करने लगे तो उसके बाद उनकी काया से छः प्रकार की रश्मियां निःसृत हो उठी : नील, पीत, लोहित, ओदात, मञ्जिठ, पभस्सर (***) - भगवान बुद्ध के अधिष्ठान के कारण दसों दिशाओं में फैल गई। व्याप्त हो गई।

नीचे की ओर निःसृत छः रश्मियां एक लाख बीस हजार योजन धरती की मोटाई को - इसके घन में स्थित पृथ्वी कण **पंसुपठवी** को भी आर-पार करती हुई निरय के आठों परतों को - उसके लौह दीवारों को भी **बे-रोक-टोक** पार करती हुई चली गई। एक लाख बीस हजार योजन वाली **शिलापथवी** को; उसके नीचे चार लाख अस्सी हजार योजन मोटी परत वाले **जल घन** को; उसके नीचे नौ लाख साठ हजार योजन मोटी परत वाली **वायु घन** को पार कर उसके नीचे **अजटाकास** अनन्तकाश में फैलती चली गई।

उत्तर दिशा में जाने वाली रश्मियां यह छः रश्मियां - चार रतन - स्वर्ण, रौप्य, इन्दनील, नील मणि, स्फटिक - अतिकठोर शैल

पृष्ठ– १६३

पूरित चौरासी हजार योजन मोटी परत वाले सुमेरू पर्वत से भी बिना विचलित हुए आर-पार पार करती हुई - मरकत मणि (पन्ना) से पूरित चक्रवाळ को भी बेझिझक चीरती उसके भीतर भी आर-पार चली गई। उत्तर दिशा के सभी चक्रवाळ स्थित सुमेरू पर्वतों को भी पार करती हुई उत्तर दिशा स्थित अनन्त चक्रवालों के परे तक फैलती चली गई।

इसी तरह अन्य आठों दिशाओं में यह छः किरणें प्रवाहित हुई और उसके रास्ते के बड़े-छोटे सजीव-निर्जीव समस्त पदार्थों के भीतर से आर-पार करती हुई निकलती चली गई।

आकाश धातु को संक्षिप्त स्मरण हेतु वर्णन

इस तरह छः रश्मियां जो भगवान के शरीर से निःसृत हुई वह हर पदार्थों में से आर-पार बिना रुकावट के चली गई - ठीक उसी तरह जैसे दूध में पानी। धरती में - 'अविहा सुद्धावास रूप लोक का ब्रह्मा' एक के भीतर एक चले गये। इसलिये यह

समझना चाहिए कि जो हमारी आंखों से नहीं दिखती वैसी वस्तुएं वैसी पदार्थों के बीच-बीच में भी भारी पोल हैं। इस तरह यह आकाश धातु उन समूह कलापों से पटा हुआ है। इसे केवल कल्पना द्वारा ही तुम समझ सकते हो। संक्षिप्त में सार-सार की बात यह कि - **पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि** - नामक चारों समूह कलाप - परस्पर एक जाति वाले; परस्पर विपरीत जाति वाले समूह कलाप एक दूसरे से टकराते हैं, जुड़ते हैं, कटते हैं, पिचकते हैं, विस्फोटित होते हैं, खण्डित होते हैं, यूं ही रह जाते हैं, अर्ध खण्ड, चतुर्खण्ड, खण्ड-खण्ड - चूर्ण-चूर्ण होते रहते हैं। सबका यही स्वभाव है - यह सारा कुछ पोलों (आकाशों) के बीच आकाश धातु की स्थिति में ही घटित होते रहता है यह जानना होगा। इसलिए बीच-बीच के पोल, आकाश, आकाश धातु जहां यदि नहीं होता - परमत्थ कलाप ठोस को वज्रास्त्र से ही क्यों न प्रहार किया जाता तो वह सब एक-ब-एक

पृष्ठ– १६४

नष्ट हो जाते हैं। पिचककर, फूटकर, खण्डित होकर, कटकर, अर्ध, चतुर्खण्ड, आदि नहीं होते। यह आकाश धातु का वर्णन हुआ।

पांच रूप धातुओं का फैलकर रहने का वर्णन

शिष्यो, अभी जो बता चुका - उस पृथ्वी धातु, जल धातु, अग्नि धातु, वायु धातु, आकाश धातु - इन पांच रूप धातुओं को, उसकी स्थिति को उन सबको व्यापक रूप से देख लो। उस उत्तर दिशा के अनन्त छोर तक फैला अनन्त चक्रवाळ से लेकर इस दक्षिण दिशा के अनन्त छोर तक फैला अनन्त चक्रवाळ तक यह दोनों दिशाओं में फैला आकाश धातु परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए एक ही आकाश धातु हैं। अविभक्त - अविभाजित। दक्षिण-उत्तर अनवरत फैलाव है। वायु धातु भी लगातार जुड़ा हुआ है। अग्नि धातु भी लगातार जुड़ा हुआ है। जल धातु भी लगातार जुड़े हुए हैं। पृथ्वी धातु भी लगातार परस्पर जुड़ा हुआ ही है। इसी तरह पूर्व के सुदूर अनन्त आकाश धातु - अनन्त चक्रवाळ - उस पश्चिम के सुदूर अनन्त आकाश धातु - अनन्त चक्रवाळ एक साथ लगातार जुड़ा हुआ ही है। इसी तरह वायु धातु, अग्नि धातु, जल धातु, पृथ्वी धातु, लगातार एक छोर से दूसरे छोर तक जुड़ते हुए चले गये हैं - अनन्त-अनन्त तक। इसी तरह दिशाओं के चारों कोनों के दिशा के अनन्त चक्रवाल के, अन्तिम छोर के आकाश धातु, वायु धातु, अग्नि धातु, जल धातु, पृथ्वी धातु (अपने-अपने दूसरे छोरों से) परस्पर अनवरत एक साथ जुड़े हुए ही हैं।

ऊपरी दिशा - अजटाकास के अन्तिम छोर से लेकर आकास धातु और नीचे की दिशा अजटाकास के अन्तिम छोर भी एक साथ अनवरत जुड़े हुए हैं। एक ही फैलाव है। वायु धातु

पृष्ठ– १६५

अग्नि धातु, जल धातु, पृथ्वी धातु परस्पर एक साथ अनवरत जुड़े हुए हैं। किसी

भी दिशा के रूप - किसी अन्य दिशा के रूप से एक साथ अनवरत बिना जुड़े हैं ही नहीं। सब एक साथ परस्पर जुड़े हुए ही हैं। इसीलिये ही तो - पृथ्वी के भीतर से तीव्र अग्नि धातु अतिशय बढ़ जाता है तो घर पर, विहार पर, राजभवन पर - रहने वाले लोगों का शरीर, उनकी संपूर्ण काया - भी धातु की तीव्रता बढ़ जाती है - फिर उमस होना, पसीना आना आदि होने लगता है। सभी दिशाओं से अग्नि धातु की प्रखरता बढ़ती है - तो दिशा-दाह भी लोगों में बदलाव लाता है। नक्षत्रों में, तारों में इसी प्रकार अग्नि धातु में परिवर्तन होता है तो मनुष्यों में भी वह परिवर्तन होने लगता है। चन्द्र पर का परिवर्तन मनुष्य में भी परिवर्तन लाता है। सूर्य का परिवर्तन मनुष्य में परिवर्तन लाता है। वृक्ष, वन-पर्वत, चक्रवाळ पर्वत, सुमेरू पर्वत, समुद्र, घन बादल - आदि के अग्नि धातु में होने वाला परिवर्तन भी इसी तरह मनुष्य में परिवर्तन लाता ही है। इस तरह पांच रूप धातु हैं। उसकी स्थिति को भलीभांति जानो - समझो।

दुब्बोधं अभिगम्भीरं, अभिधम्मनयं इमं।
अभिञ्ञाणेन जानाथ, ममसिस्सामि ञाणिका।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

सर्वोच्च विशिष्ठ धर्म के मुमुक्षु भिक्षुओ - शिष्यो! अतिगंभीर, दुर्बोध इस अभिधम्मनय को (विधि को), विशिष्ठ प्रज्ञा ज्ञान वाले मेरे शिष्यो, तुम अभिञ्ञाण द्वारा जानो।

यहां पर पांच रूप धातुओं को अभिधम्मनय द्वारा विभाजित करना पूर्ण हुआ।

पृष्ठ– १६६

उन पांचों रूप धातुओं के प्रति विपश्यना साधना करने का वर्णन

शिष्यो! इन पांचों रूप धातुओं में आकाश धातु अखण्ड है - यह तो साफ झलकता है। वह अमूर्त है - उसमें न तो क्रिया है - न शक्ति, न कोई धर्म काया। शुद्ध रूप से निरा खाली स्थान के रूप में प्रज्ञप्त असङ्खत धातु हैं। उस असङ्खत धातु में यह चारों सङ्खत महाधातु (चारों) - परमत्थ कलाप समूह कलाप दो तरह से - संगठित (संरचित) होकर आकाश से परिपूर्ण होकर स्थित है। इस प्रकार से स्थित इन चारों महाभूतों को जैसे कि मैं पीछे वर्णन कर आया उसी तरह से - ज्ञान द्वारा प्रत्येक को विभाजित कर उनके केवल स्वभाव क्रियाओं को देखना होगा। उसके क्रिया स्वभाव का निरीक्षण करना होगा। शिष्यों निरीक्षण करो। ठोस कलाप के समान हृदयंगम मत करना - निरीक्षण मत करना। वैसे मत मन में लाना।

शिष्यो, इस प्रकार निरीक्षण करते हुए - आंखों से जिसे हरदम देखा है - वे वर्ण रंग - बीच में आयेंगे। ओदात, पीत, इत्यादि चित्त में, ज्ञान में, प्रतीत होने लगेंगे - उभरेंगे। ऐसा होने पर उन वर्णों को मन में मत धारण करना - जब उसकी उपेक्षा कर दोगे तब वे वर्ण बाधक नहीं होंगे। ठोस वस्तु समूह बड़े कलाप भी बाधा के रूप में अवरोध करेंगे। लंबे, छोटे, वर्तुल, चपटे आदि आकार प्रतीत होंगे। यदि ऐसा आने लगे

चित्त के सम्मुख तो उस आकृति समूह कलाप को मन में मत धारण करना - जब उसकी उपेक्षा कर दोगे तब वह आकृति समूह कलाप बाधा नहीं डालेंगे। ठोस, घन वाला बीच में बाधा डालेगा। चारों ओर से बन्द घन बाधा के रूप में अवरोध करेगा। उसे बिना तोड़े भीतर बिना ध्यान दिये - ऊपरी सतह पर ही केवल ञाण घुमड़-घुमड़कर (अतिरेक होकर) रहता है। जैसे मुर्गी के अण्डे का आरम्भ ढूंढ़े नहीं मिलता, उसी तरह; मुर्गी के अण्डे के समान पत्थर से कौवे को मारने पर नहीं मिलता - वैसे ही रहता है। वैसे रहने पर बीच के आकाश छिद्र में ञाण को गुप्त रूप से घुसाकर परमत्थ कलापों को एकेक विभाजित कर तोड़ते हुए बिखेरते हुए - मारो।

शिष्यो, इस तरह तोड़कर बिखेरकर जब प्रहार करोगे घनत्व टूटकर परमत्थ कलाप एकेक हो रहेगा - तब अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ (ठोस) हो जावेगा। चित्त में, ज्ञान में, वह दिखेगा नहीं वे वस्तु पदार्थ धूल

पृष्ठ – १६७

के कण - चारों महाभूत सबके सब शून्य होकर - लुप्त होकर विलीन हो जावेंगे - सारा लोक आकाश ही आकाश प्रतीत होने लगेगा। शिष्यो, जब ऐसा प्रतीत होने लगे तो जैसे जल से परिपूर्ण फुग्गे को आकाश में खींचकर रखा गया हो - उसमें अग्नि प्रज्वलित हो जावे तो जल उसमें बिना स्थिर रहे चू जावेगा और लुप्त हो जावेगा। जो फुग्गा जल रहा है वह भी जलावन समाप्त कर बुझकर लुप्त हो जावेगा ठीक ऐसे ही, 'मैं' या मेरा कहने के लिये आसक्ति के लिये ठोस वस्तु कुछ भी न रहकर - 'मैं' समझकर आसक्त होने का सक्कायदिट्ठि 'मेरा' समझकर आसक्त होने की तृष्णा यह दोनों मिथ्या दृष्टि समाप्त होकर अवरुद्ध हो जायेगी। उसका निरोध हो जावेगा। प्रयत्न कर निरीक्षण करो।

सुञ्ञत मान कर (प्रतीतकर) भाग खड़ा होने वाला ब्राह्मण

शिष्यो, इस तरह निरीक्षण करने की विधि को ठोस (वस्तु पदार्थ ठोस) सहित अत्त (मैं), अत्तनिय (मेरा), सभी कुछ विलीन होकर जो, शून्य होने तक निरीक्षण विधि है; इसे सवत्थुक सुञ्ञत विधि समझना। शिष्यो - इस तरह सवत्थुक साक्षात्कार होने तक निरीक्षण करने में अपने आपको (काया को) निरीक्षण नहीं करते, अपने से बाहर के रूपों का निरीक्षण करते हैं, वह विलीन हो जाने पर अपने स्वयं के स्थित रहने का आधार कुछ नहीं रह जाता। अनन्त विस्तृत खांई में गिरने के समान प्रतीत होता है। इस तरह प्रतीत होने पर सिंहल द्वीप लोह पासाद में एक थेर सुञ्ञत प्रवचन को विहार के नीचे से सुनकर प्रतिदिन उसी तरह महसूस कर भयभीत हुआ और एक-ब-एक उठकर भागने लगा। इस तरह उस असुतवा (असुतपाल ?) ब्राह्मण के तरह डर और भय भी उत्पन्न हो सकता है - शिष्यों।

शिष्यो, इस तरह ध्यान करने में प्रधान उद्देश्य बहिद्ध रूपों को विलीन करना नहीं

होता है। यह लक्ष्य नहीं होता है। स्वयं अपनी काया को ही विलीन करना मुख्य उद्देश्य होता है। इसलिये अपनी रूप काया सहित सम्पूर्ण बाह्य रूप को शून्य होने तक निरीक्षण करो। वैसे निरीक्षण करते-करते जब अपनी काया सहित समस्त बाह्य पदार्थ भी विलीन हो जावेगा - शून्य, तब - गिरने वाला कोई बचेगा ही नहीं। फिर भयभीत होने या डरने की बात नहीं रह सकती।

पृष्ठ– १६८

फिर तो प्रसन्नता ही प्रसन्नता। प्रीति प्रमोद ही प्रीति प्रमोद उत्पन्न होता है। शिष्यो! इस तरह चारों महाभूतों का विलीन हो जाने में भी अत्यंत सूक्ष्म सूक्ष्म टुकड़े कर, विभाजन कर ध्यान करेंगे तब चित्त भी लुप्त हो जावेगा, उसका निरोध हो जावेगा। वह भी नहीं बचेगा। वस्तुतः यह चार महाधातुओं का निरोध होना नहीं है - यह तो परमत्थ कलाप, समूह कलाप दोनों से संरचित संरचना की स्थिति के रहने तक स्थित था। जैसे एक योगी एक स्त्री को हड्डियों का समूह निरीक्षण किया - इससे वह स्त्री हड्डी मात्र हो गई हो सो नहीं - इस उपमा के समान जानो।

शिष्यो, इस अभिधम्मा सुञ्ञत के क्षेत्र में साधारण ज्ञान बुद्धि से - सवत्थुक सुञ्ञत को साक्षात करने की साधना कठिन है। नहीं कर सकते। पर्याप्त प्रज्ञावान, बुद्धिमान ही यह साधना कर सकेगा। कोई बहुत प्रज्ञावान हो ज्ञानी बुद्धिमान हो तो भी बहुत ध्यान लगाकर वह लुप्त या निरुद्ध नहीं कर सकता, शिष्यों। घन का विघटन कर तोड़ डालने पर संपूर्ण घन टूटेगा - बीच के आकाश सहित ठोस परमत्थ कलाप को देखता रहेगा। प्रतीत होने लगेगा। तुम शिष्यो को भी - बिना विलीन निरोध हुए - इस तरह जब पुनः प्रतीत होता रह जाय तो भी भला है - बहुत भला है। बहुत तीक्ष्ण प्रज्ञावान बुद्धिमान ही कहे जाओगे। शिष्यो - जब ऐसा प्रकट होने लगे - प्रतीत होने लगे - तब उस ठोस परमत्थ कलापों को - उन एक-एक में चार-चार महाधातुओं और उन प्रत्येक के स्वभावों का विचार कर ध्यान करो, बार-बार, बार-बार विचारते, ध्यान करते जाओ। ऐसा अर्से तक करते-करते पथराने की क्रिया मात्र वाली पृथ्वी स्वभाव, नम - गीलापन की क्रिया मात्र वाला जल स्वभाव ऊष्मा, शीतलता की क्रिया मात्र वाला तेजो (अग्नि) स्वभाव, हलन-चलन की क्रिया मात्र वाला वायु स्वभाव - ये चार तरह के स्वभाव पृथक-पृथक अपने-अपने स्वभाव गुण-धर्म के अनुसार चार तरह विभाजित होकर बिना ठोसपना के मात्र क्रियाओं के रूप में साफ-साफ प्रकट होने लगेंगे। इस तरह होता है इसी को लक्ष्य कर भगवान ने यह उदान कहा–

पृष्ठ– १६९

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा,
आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।। (उदान)

कठोर तप करते हुए - तपते हुए ध्यान करने वाले ब्राह्मण तपस्वी साधक को ध्यान के समय परमत्थ स्वभाव वाले सभी धर्म प्रकट होते हैं।

शिष्यो, इस तरह प्रत्येक महाधातुएं अपने स्वभाव के अनुसार साफ-साफ प्रकट होते हैं। ऐसे प्रकट होने पर अज्झत्त सन्तान, बहिद्ध सन्तान सम्पूर्ण लोक को देखकर संपूर्ण लोक में नाम धातु के अतिरिक्त केवल यह पांच रूप धातु मात्र ही हैं। इस पांच रूप धातुओं के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। "नत्थि किञ्चि" ही है - इसे भलीभांति जानकर यह पथराने वाला स्वभाव मैं नहीं, मेरा नहीं - केवल पृथ्वी धातु है। यह गीला होने वाला (आद्र होने वाला) स्वभाव भी 'मैं नहीं', 'मेरा नहीं - केवल जल धातु है। यह उष्णता एवं शीतलता का स्वभाव भी 'मैं नहीं', 'मेरा नहीं' - यह केवल अग्नि धातु है। यह कहना - दबाव डालने का स्वभाव भी मैं नहीं, मेरा नहीं - केवल वायुधातु ही है। मध्य का आकाश धातु भी मैं नहीं - मेरा नहीं। मैं, मेरा समझने के लिये उससे आसक्त होने के लिये इसमें कुछ भी नहीं है। यूं ही व्यर्थ का केवल आकाश का स्वभाव मात्र ही है। इसकी पर्येषणा करनी होगी। निरीक्षण करना होगा - ध्यान करना होगा। ध्यान करो।

शिष्यो, तुम लोग ध्यान द्वारा इसे जब स्पष्ट जान जाओगे तब इस पांचों रूप धातुओं को 'मैं' कहकर आसक्त ही नहीं हो सकोगे। इसमें इन पांच रूप धातुओं में 'मैं' जैसा कुछ ढूंढ़े नहीं मिलेगा। अरे इसमें तो मैं है ही नहीं, अरे यह तो मैं है ही नहीं। यह जानते हुए मैं के प्रति जो आसक्ति है चिपकाव - सक्कायदिट्ठि का जड़ ही कट जावेगा। गिर जावेगा। जब सक्कायदिट्ठि नहीं रहेगा तब यह पांचों रूप धातुओं को मैं नामक 'अत्त' तथा मेरा नामक अत्तनिय और इनके प्रति आसक्ति भी कट जावेगी - गिर जावेगा। इसी कारण को आधार करके मैंने उद्देसवार में यह कहा—

"नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।"

शिष्यो, भगवान ने मोघराज नामक एक भिक्षु को बुलाया और उसे कहा—

सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सु, मोघराज सदा सतो।
अत्तानुदिट्ठिं उहच्च, एवं मच्चुतरो सिया।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति।। (सुत्तनिपात पाळि)

मोघराज तुम सक्कायदिट्ठि को अर्थात् अत्तानुदिट्ठि को हटाकर तीनों लोकों को शून्यवत देखो। ऐसे देख लेने पर मृत्यु से पार - तर जाओगे। मोघराज! इस तरह शून्य होने तक निरीक्षण कर लेने वाले को मृत्युराज नहीं देख सकता।

मोघराज ने भगवान के इस प्रोत्साहन वचन को सुनकर उस तरह अभ्यास करते हुए जहां मृत्यु नहीं देख पाता उस निर्वाण को प्राप्त कर लिया। उस मोघराज के समान - मेरे शिष्यो, तुम लोग भी - जहां मृत्युराज न देख सके उस परम सुख अमृत स्वर्ण

नगर पहुंच सकने के लिये मेरे बताये हुए नियम और रास्ते के मुताबिक प्रयत्न कर ध्यान करो। प्रयत्न करो। पर्येषणा करो।

पृष्ठ– १७१

अनुसासनी गाथा पाठ अर्थ

(१) सुदुद्दसं भिगम्भीरं, अभिधम्मनयं इमं।
अभिञाणेन तिक्खेन, पस्सथ मम सावका।।

(२) पस्सित्वान धातुमु, विरत्ता होथ साधवो।
एवं विरत्ता मे सिस्सा, मच्चुधेय्यं तरिस्सथाति।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

(१) शिष्यो, धर्म विशिष्ठ का साक्षात्कार करने को उत्सुक ओ शिष्यों, अभिगम्भीर है। सुदुर्दर्श है। ऐसे इस अभिधम्मनय को पांच रूप धातु का विभाजन कर दर्शन वाले इस अभिधम्म नियम को - मेरे श्रावकों, तुम लोग तीक्ष्ण अभिज्ञान से देखो।

(२) तुम लोग दर्शन कर मैं मेरा वाले इस पांच रूप धातुओं से विरक्त हो जाओ। इस तरह विरक्त मेरे शिष्यों, मृत्युराज के राज्य इन इकत्तीस लोकों को तीर्ण वर जाओ - तैरकर पार कर जाओ। यहां पर शिष्यों को प्रोत्साहित करने वाली अनुसासनी गाथा पूरा हुआ। (१७)।

इति अभिधम्मेत सुञ्ञतनयो

पृष्ठ– १७२

अनिच्च द्वारा सुञ्ञत की साधना

शिष्यो, इन पांच रूप धातुओं को "ने सो हमस्मि नेतंमे" वाले उद्देस के अनुसार मैं नामक 'अत्त', मेरा नामक 'अत्तनिय' निरुद्ध होने के लिये अभिधम्मा नियम के अनुसार निरीक्षण करने की विधि को दिखाने एवं बताने के पश्चात - अब पुनः इस ५ रूप धातुओं को ही अनित्य द्वारा अत्त-अत्तनिय निरूद्ध हो जावे ऐसा दर्शन करना - सुञ्ञत नियम की देशना करता हूं। धर्मोपदेश करता हूं :

शिष्यो, इन पांचों धातुओं में जो आकाश धातु है उसका कोई आकार नहीं, काया नहीं। ऐसा बिन आकार वाला प्रज्ञप्त असङ्खत धातु है। इस अनिच्च के अनुसार, ऊपर के बताये दुक्ख, अनत्त के अनुसार इनमें इसकी (आकाश धातु) की आवश्यकता नहीं यह कह आया। वे चार धातु जो **सङ्खत** हैं उसकी व्याख्या यहां करेंगे। शिष्यो, यह चारों धातु सङ्खार धर्म हमेशा नित्य स्थित होकर नहीं रहते। उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। इसलिये अनित्य धर्म मात्र ही हैं।

उप्पज्जित्वा निरुज्झनतो साधवे सङ्खारा अनिच्चा।
हुत्वा अभावतो साधवे सङ्खारा अनिच्चा।।

साधवे! सभी सङ्खार धर्म उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाने के कारण अनित्य हैं। साधवे! सभी सङ्खार धर्म उत्पन्न होकर अभाव को प्राप्त हो जाते हैं - (होकर अभाव में बदल जाते हैं) - इसलिये वह सब अनित्य धर्म ही हैं।

विश्व नष्ट होकर पुनः स्थित होता है

शिष्यो, यह चारों महाधातु सङ्खार धर्म किसके समान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है? तो शिष्यो, इस विश्व (कल्प) से पूर्व अनन्तर दुतिय

पृष्ठ– १७३

विश्व अग्नि द्वारा जलकर नष्ट हुआ। एक लाख करोड़ चक्रवाल जलकर नष्ट हो गये। कुछ नहीं बचा। इन चक्रवालों को आधार देकर रहने वाला ४,८०,००० योजन मोटी परत का जल घन भी ओस के बूंद बराबर भी नहीं बचा - सब सूख गया। मनुष्य लोक, छहों देवलोक, प्रथम ध्यान ब्रह्मलोक के तीनों लोकों तक कोई भी ठोस वस्तु - सङ्खार धर्म नहीं बचा - सब जल गया। कोयला या भस्म भी नहीं रहा। सभी कुछ निरुद्ध होकर विलीन हो गया। ऊपर का आकाश और नीचे का आकाश एक साथ मिलकर एक हो गया अन्धकारमय रिक्तता। चार अपाय लोकों के सत्व, मनुष्य, देव, प्रथम ध्यान लोक ब्रह्मा - सभी सत्व भी मरकर विलीन हो गये। वे सब ऊपर के तृतीय ध्यान - ब्रह्मलोक आदि में पहुंच गये। वे सब ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हो गये। अधिकांशतः आभस्सर ब्रह्मलोक में पहुंच गये।

शिष्यो, अग्नि से प्रत्यय के पश्चात उस रिक्त स्थान में - जैसा कि पीछे वर्णन किया। उस अभिधम्म नियम रसायन शाला में (धातु विभाजन कक्ष) में वर्णित अन्धकार रूप मात्र अग्नि कलाप ही शेष रहे। यह अन्धकार रूप अग्नि कलाप अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण, लोक में उन्हें रूप अथवा सङ्खार भी नहीं कह पाते, उसकी गिनती नहीं के समान हो जाती है। उसको आकाश धातु में ही गिनती करते हैं। शिष्यो, इस तरह अग्नि में जलकर नष्ट होने के बाद बहुत लम्बी अवधि, बहुत लंबा काल व्यतीत हो जाता है तब ऊपरी अन्धकार रूप अग्नि कलाप अत्यधिक शीतल होता है। निचला अन्धकार रूप अग्नि कलाप अत्यधिक उष्ण होकर ऊपर उठ जाता है। शीत अग्नि से संयोग कर द्रव उत्पन्न हो जाता है। कल्पारम्भ वर्षा बरसती है। नीचे भी ९,६०,००० योजन मोटी परत वाली महावायु मण्डल को छूती है। ऊपर भी प्रथम ध्यान के ब्रह्मलोक के तीनों लोकों के किनारे चारों ओर को भी १०००००००००००००० (= करोड़ लाख) चक्रवाल के हर स्थान में जहां अग्नि प्रलय हुआ उन सभी स्थान में जल पूरित हो जाता है।

पृष्ठ– १७४

देव ब्रह्म लोकों की पुनः उत्पत्ति

उस जल में लहरें उठती हैं। अवसादित होता है। धीरे-धीरे सूखकर घटता जाता है। बहुत लंबी अवधि के व्यतीत होने पर प्रथम ध्यान ब्रह्मलोक के नीचे के स्थान को पहुंचता है। उस समय वह प्रथम ध्यानलोक के स्थान में सत्व विहीन निर्जन शांत ब्रह्मलोक अचानक उत्पन्न होते हैं। उस समय ऊपरी ब्रह्म लोकों से ब्रह्म सत्व लोग आयुक्खय उभयक्खय नामक तीनों मरणुप्पत्ति में से किसी एक-न-एक के कारण च्युति को प्राप्त कर उक्त प्राणि विहीन इस पुनः नवीन निर्मित ब्रह्म लोकों में आकर ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न होते हैं। नष्ट लोक का पुनः नवीन निर्माण होना - उत्पत्ति होना - मेरे शिष्यों भलीभांति समझो।

इस तरह वह जल धीरे-धीरे सूखता है - घट जाता है। तब वसवत्ती देवलोक के नीचे पहुंचने पर वह वसवत्ती देवलोक के स्थान पर प्राणि रहित शांत निर्जन देवलोक अचानक उत्पन्न होते हैं। उस समय उसके ऊपर के ब्रह्म लोकों से ब्रह्मा लोग च्युति को प्राप्त कर प्राणि शून्य निर्जन शान्त इस देवलोकों में पहुंचकर वसवत्ती देव होते हैं। इसी तरह क्रमशः जल मण्डल सूखता जाता है - घटता जाता है - तो क्रमशः निम्मनरति देवलोक उत्पन्न होता है। तुसिता देवलोक उत्पन्न होता है। यामा देवलोक उत्पन्न होता है। उपरोक्त वर्णित लोक समूह आकाश में स्थित आकासट्ठ लोक समूह है।

चक्रवाळ उत्पन्न होकर स्थित होना

इसी तरह शिष्यों, वह जल-मण्डल धीरे-धीरे सूखता हुआ कम होता जाता है तब जहां तावतिंस देवलोक स्थित रहता है वहां सुमेरू पर्वत शिखर क्षेत्र को पहुंचने पर उस सुमेरू पर्वत की उत्पत्ति स्थान में जल का घनत्व बढ़ता हुआ - एक भाग कण दो भाग जल हो जाता है। इस तरह वह और सघन होता जाता है

पृष्ठ – १७५

और कीचड़ का रूप धारण करते हुए ठोस-सा बन जाता है। उसके ऊपर पपड़ी पड़ जाती है। यह कीचड़ के ऊपर की परत (पपड़ी) गाड़ी के चक्के के समान मण्डलाकार। शिष्यों - उसकी चौड़ाई भी चतुरङ्ग ८४,००० योजन चौड़ा। इस सघन कीचड़ के किनारे के छोर का जल बहुत निर्मल जल और जब दरारें होता है। कालान्तर में यह निर्मल जल, यह जल दरारें सूखकर घट जाता है - सुमेरू कीचड़ परत का विशाल ठोस परत बिना घटे ठोसवत जहां स्थित होता है वहीं स्थित होकर नीचे की ओर बढ़ते हुए ठोस होता हुआ - मोटी परत होते जाता है। निर्मल जल - जल दरारें इस तरह घटती हुई - चक्रवाल दीवाल शिखर और उचित स्थान तक पहुंचने पर चक्रवाल दीवाल होने वाले स्थान पर जल गाढ़ा हो जाता है। कालान्तर में कीचड़ पर्पटी - कीचड़ पुनः ठोस हो जाता है। शेष स्थानों में जल अत्यधिक निर्मल होता है। खाई होता है।

सात पर्वतों का वर्णन

जैसा कि पहले वर्णन किया उसी तरह शिष्यों, कीचड़ बचकर निर्मल जल, जल दरार ही सूखकर घटते-घटते - जल सतह छोड़-छोड़, बीच-बीच में– (१) युगन्धर (२) ऋषिन्धर (३) करविक (४) सुदस्सन (५) नेमिन्धर (६) विनत (७) अस्सकण्ण– यह सात पर्वत कीचड़ों के ठोस जमने पर बन गये।

चार द्वीपों की उत्पत्ति - समुद्र खड्डों का परिमाण वर्णन

कालान्तर में हिमवन्त पर्वत ठोस कीचड़, हिमवन्त के नीचे छोटे-बड़े, छोटे-पर्वत ठोस कीचड़, द्वीप, कीचड़ परत, ठोस कीचड़ भी लगातार उत्पन्न होते हैं। हिमवन्त ठोस कीचड़ के भीतर सात सरोवर होने वाले स्थानों में तथा

पृष्ठ– १७६

समुद्र होने वाले स्थान में - प्राकृतिक निर्मल जल - जल दरार के जैसे ही पहले से ही बना रहा। अस्स कण्ण पर्वत के बाहर को चारों ओर से घिरकर स्थित समुद्र और चक्रवाल के मूल में के समुद्र - सुमेरू पर्वत से चारों कोने में परस्पर एक साथ लगातार हैं। इन दोनों समुद्रों के बीच सुमेरू पर्वत से चारों दिशाओं में पांच सौ छोटे द्वीपों से घिरा हुआ चारों महाद्वीप उत्पन्न होते हैं। पूर्व द्वीप - पश्चिम द्वीप दोनों ज्ञात - सात हजार योजन चौड़े हैं। उत्तरी द्वीप आठ हजार तथा दक्षिणी द्वीप दस हजार योजन चौड़ा है।

पर्वत एवं समुद्रों का परिमाण वर्णन

शिष्यो, जैसे कि दुगने जल में मोम द्रव को ठंडाया जाय तो मोम उस जल के सतह पर आकर ऊपरी सतह से लेकर नीचे तक धीरे-धीरे जिस तरह जमते हुए ठोस हो जाता है - जैसे (उसी तरह) पिघलाया घी को ठंडाते हैं तो वह भी जल के ऊपरी सतह पर आ जाता है, फिर ऊपरी सतह से प्रारम्भ कर निचले सतह तक धीरे-धीरे ठोस होता चला जाता है। ठीक इसी तरह यह उपरोक्त वर्णित सुमेरू ठोस कीचड़ इत्यादि परत, ठोस परत आदि ऊपरी परत से नीचे की ओर बढ़ते हुए जमकर मोटा होकर महापृथ्वी से नीचे ६५६ योजन एक गव्यूति तक मोटा हो जाता है तब द्वीप और अस्सकण्ण पर्वत की धरती आपस में मिलकर एक ही होकर नीचे बढ़ते हुए ठोस होकर मोटा होते जाता है। इसलिये यह अस्सकण्ण पर्वत पानी में ६५६ योजन एक गव्यूति डूबा हुआ है। पानी के ऊपर भी उतना ही ऊपर उठा हुआ है। उसकी मोटाई भी उतनी ही है। इस तरह दोनों पर्वतों का वर्णन कर इस पर्वत के बाहर मूल में स्थित बहिसमुद्र उस ६५६ योजन एक गव्यूति गहरा नामक कथन बिना कहे स्वतः अवुत्तसीद्धि द्वारा परिपूर्ण है। चौड़ाई भी उतनी ही है।

पृष्ठ– १७७

विनतक पर्वत, अस्सकण्ण पर्वत से थोड़ा अधिक ही बढ़कर जल में डूबा है। जल से ऊपर निकला है। मोटा भी है। यहां पर समुद्र की गहराई-चौड़ाई का परिमाण इस विनत पर्वत के गहराई के बराबर ही गहरा है यह कथन बिना कहे ही स्वतः अवुत्त सिद्धि से पूरा हो जाता है। चौड़ाई भी उसकी गहराई के बराबर ही चौड़ी है। इस तरह शिष्यों, सुमेरू का मूल आधार, समुद्र और सुमेरू पर्वत तक शेष समुद्र, शेष पर्वत क्रम - हमेशा थोड़ा-थोड़ा बढ़ते हुए गहरे हैं - तथा चौड़े हैं। पानी में डूबा जल ऊपर चढ़ गया। इसलिये नेमि जातक पाळि में–

एते सीदन्तो नगा, अनुपुब्ब समुग्गता,
महाराजान मावासा, देवयक्खनि सेविता।।

यह मातलि देवता नेमि राजा को कहा।

महाराज सीदा के बीच-बीच में यह पर्वत क्रम - क्रमशः एक से एक बढ़ते क्रम में जल से ऊपर उभरे हुए हैं। चतुमहाराज देवताओं का आवास है। देव यक्खनि सेवित है।

इन पर्वतों के बीच-बीच में सात समुद्र जल बहुंत निर्मल है। सूक्ष्म है। उस तरह निर्मल सूक्ष्म होने के कारण अत्यंत हल्का मोर पंख भी गिरने पर पानी पर बिना रूके डूब जाता है। इस तरह डूबाने की शक्ति के कारण "सीदा पेन्तीति सीदा" वे सातों समुद्र - अत्यंत हल्की वस्तु को भी डुबो लेते हैं। इसलिये वे सातों समुद्र सीदा कहलाते हैं। इस वचनत्थ के अनुरूप सीदा कहते हैं। पर्वतों के भीतर रहने के कारण अन्तोसमुद्दरा भी कहते हैं। यह सीदा

पृष्ठ– १७८

सात - पर्वत क्रम, सात - सुमेरू पर्वत को प्रारम्भ करके लगातार क्रमशः स्तर-दर-स्तर घेरे हुए छल्लों के समय पिरोये विशाल जल छल्ला - पर्वत छल्ला - शिष्यों, द्वीप धरती से नीचे ८२,००० योजन जब गहरा जाता है - द्वीप धरती और चक्रवाल दीवाल मिलकर एक ही बन जाते हैं। इसलिये चक्रवाल दीवाल जल के भीतर ८२,००० योजन डूबा है। जल भी उतना ही बाहर उछला है - यह कहा जाता है। इसका घनत्व भी उस जल में डूबने जितना ही है। इस तरह चक्रवाल डूबने के कहने के बाद - इस चक्रवाल के मूल में स्थित बहिसमुद्र ८२,००० योजन डूबा है। यह बात अपने आप बिना कहे पूरा हुआ। चौड़ाई भी उसके गहराई के बराबर ही विस्तृत है।

शिष्यो, पर्वत क्रमों के भीतर स्थित सीदा नामक अन्तो समुद्दरा, अस्सकण्ण पर्वत से बाहर चक्रवाल दीवाल तक स्थित बहिसमुद्दरा ये सारे समुद्र इस तरह किनारे से चारों ओर, नीचे से, धरती अलग कर बन्द कर दिया जाय तबसे खारा स्वाद अधिक होकर

अत्यंत खारा जल उत्पन्न हो गया। हिमवन्त पर्वत में सात बड़े सरोवर का जल खारा न होकर अत्यंत निर्मल सूक्ष्म मीठा जल है। देवताओं के उपयोग करने योग्य स्वादिष्ट है।

असुर लोक और आठ स्तरीय निरय की उत्पत्ति

शिष्यो, नीचे के जल के भीतर ८४,००० योजन गड़ा हुआ सुमेरू पर्वत के आधार तल के अंतिम छोर में - जब ठोस होने के पहले जल के भीतर तीव्र चक्रवात चलकर जल को तरंगायित करते हटाते चारों ओर १० हजार योजन तक चौड़ा वायु ठोस - वायु मैदान बंद होकर रहता है। बाद में ऊपर-नीचे किनारों से जल ठोस हो जाने पर यह वायु मैदान वायु ठोस निरुद्ध होकर शांत हो गया। विशाल उम्मग्ग (गुहा) बनकर असूरों का लोक बन गया। यह हमारा जम्बूद्वीप से नीचे की ओर १५,००० योजन तक गहरे स्थान में तीव्र चक्रवात उठकर, शांत होकर

पृष्ठ – १७९

वहां **सिञ्जीव** निरयलोक उत्पन्न होता है। इसी तरह शिष्यों नीचे की ओर १५,००० - १५,००० - १५,००० योजन के अन्तर से उम्मग्ग गुहा उकेकेर कर– काल सुत्त, संघात, रोरुव, महारोरुव, तापन, महातापन अवीचि नामक शेष सात निरयलोक उत्पन्न हो गये। उसके अतिरिक्त वसुन्धरा देव गणों, नागों के रहने हेतु अप्रसिद्ध छोटे-छोटे उम्मग्ग गुहाएं भी महापृथ्वी धरती के भीतर अनेकों स्थित हैं। इस अवीचि नर्क से धरती के सतह तक १,२०,००० (एक लाख बीस हजार) योजन का अन्तर है। यह एक लाख बीस हजार योजन **पंसुपथवी** होने हेतु ठोस कीचड़ ही है। इस अवीचि नर्क से नीचे की ओर **सिलापथवी** होने हेतु एक लाख बीस हजार योजन तक सारा जब ठोस हो गया है। इस सिला पंसु दोनों का योग कर महापथवी दो लाख चालीस हजार (२,४०,०००) योजन मोटी है।

शिष्यो, दो भाग जल में एक भाग मोम या घी द्रव के ऊपर तैरने लगते हैं। तथा तैरते हुए जब जम जाते हैं तब नीचे की ओर शेष दो भाग जल द्रव जिस तरह उसके ऊपर वाले ठोस मोम या ठोस घी का आधार (सहारा) रहता है - वैसे ही इस कल्पारम्भ वर्षा - (यह विश्व निर्माण करने वाली वर्षा) में घी मक्खन के समान सार तत्व ऊपर तैर आते हैं। चक्रवाल हो सके इस तरह ठोस होने लगते हैं - अर्थात् जमने लगते हैं। **सिलापथवी** से नीचे का जल बिना जमे सार तत्वों से रहित प्राकृतिक विरल जल मात्र ही बचकर चक्रवाल आधार (सहारा) का जल बनकर रहता है। इस चक्रवाल आधार धारक जल की मोटाई महापृथ्वी से अधिक होती है। चार लाख अस्सी हज़ार योजन होती है। इस जल के नीचे जल को धारण करने वाला नौ लाख साठ हजार योजन हवा की मोटी परत स्थित है। इस विस्तृत वायु मंडल के नीचे में अन्धकार रूप अग्नि कलाप पूर्ण **अनन्त अजटाकास** है।

सुमेरू पर्वत की स्थिति का वर्णन

शिष्यो, सुमेरू पर्वत जैसा कि ऊपर बता आया - सब कीचड़ ठोस होने लगता है तो पूर्व-पूर्व के कल्प में जैसे निर्मित था - ठीक उसी के तरह जहां स्वर्ण होना है - वहां स्वर्ण,

पृष्ठ– १८०

रजत के स्थान पर रजत, शिला के स्थान पर शिला, लोहे के स्थान पर लोहा, रेत के स्थान पर रेत, मिट्टी के स्थान पर मिट्टी, वन के स्थान पर वन इत्यादि इत्यादि द्वारा सुमेरू के शिखर से नीचे तक क्रमशः उत्पन्न हो जाता है। शिष्यो, सुमेरू पर्वत का पूर्वी भाग रजतपूर्ण है। उत्तरी भाग स्वर्णपूर्ण है। पश्चिमी भाग कांच से पूर्ण है। दक्षिणी भाग नील रत्न परिपूर्ण है। धूल कीचड़ भरी धरती नहीं है। केवल उस चार शील रत्नों से ही परिपूर्ण है। इसलिए मातलि देव पुत्र राजा नेमि को रथ से गिराते (उतारते) समय "अरजंभूमिमक्कम" यह निवेदन किया। महाराज रजरहित भूमि पर चलें। (अक्कम) करें। इस रजत, स्वर्ण, कांच, नील रत्न नामक चार रत्नों का वर्ण उनके उनके सम्मुख स्थित समुद्रों को भी अपने समान रंजित करते हैं। और वह चक्रवाल के छोर दीवाल तक फैल जाता है। बादल, कोहरा, तुषार आदि के न रहने पर आकाश में जो नीला रंग दिखता है - सुमेरू पर्वत का वही नील रत्न का-सा रंग होता है। कोहरा आदि रहने पर कुछ-कुछ सफेद नीला।

चौरासी हजार चौड़ा इस सुमेरू शिखर के मध्य भाग में शक्रों के रहने का सुदस्सन नामक नगर, दस हजार योजन चौड़ा नगर प्राचीर, खांई सहित है। प्रत्येक दिशाओं में दो सौ पचास, दो सौ पचास कुल एक हजार दरवाजे हैं। शक्र एवं अन्य देवताओं का निवास प्राणि रहित शांत विभान भी उत्पन्न होते हैं। नन्दवन, चित्तलता, फारुसक इत्यादि उद्यान पुष्प-लताएं भी उत्पन्न होते हैं। पांच प्रकार के कमल पुष्पों से आच्छादित नदियां, सरोवर भी होते हैं।

सप्त वृक्षों का वर्णन

इस सुमेरू पर्वत के शिखर पर सर्वप्रथम उत्पन्न वृक्ष पारिछत्तक (*) ही है। इसके तने की गोलाई पन्द्रह (१५) योजन है।

पृष्ठ– १८१

धरती से शाखित होने तक तने की लम्बाई पचास (५०) योजन है। शाखित स्थान से ऊपर शिखर तक पचास (५०) योजन है। चारों दिशाओं में फैली शाखाएं पचास-पचास योजन (प्रत्येक दिशा में) है। इस तरह वह सौ (१००) योजन तक चौड़ाई में फैला है। जब संसार का प्रलय होता है (कल्पांत होता है) तब वह नष्ट होता है। उसके समान एक भी वृक्ष नहीं उत्पन्न हुआ रहता है - उस समय, सर्वप्रथम कल्पारम्भ में उत्पन्न होकर - कल्पांत

होने पर नष्ट होने वाले ये सब वृक्ष सुमेरू पर्वत के मूल में - प्रथम आलिन्द में नाग, दुतिय आलिन्द में गरूड़, उस गरूड़ लोक में - सिम्बली (सेमर), असूर राज्य में पाटली; पूर्वी द्वीप हिमवन्त उत्तर समुद्र किनारे शिखर द्वीप प्रारम्भ में सिरीष; उत्तरी द्वीप हिमवन्त उत्तरी समुद्र किनारे शिखर-द्वीप प्रारम्भ में कप्परुक्ख (कल्पतरु); पश्चिमी हिमवन्त - उत्तरी समुद्र किनारे शिखर द्वीप प्रारम्भ में कदम्ब; दक्षिणी हिमवन्त उत्तरी समुद्र किनारे शिखर - द्वीप प्रारम्भ में जम्बू (जामुन) वृक्ष तथा पारिछत्तक को साथ लेते हुए सात महा वृक्ष ही हैं। इसीलिए लोकविद विद्वानों ने इस प्रकार कहा है :–

पाटली सिम्बली जम्बू, कदम्बो पारिछत्तको।
सिरीसो कप्परुक्खो च, कप्पट्ठा सन्ति मे दुमा।।

असुर लोक में सर्वप्रथम उगने वाला पाटली वृक्ष; गरूड़ लोक में सर्वप्रथम उगने वाला सिम्बली वृक्ष; दक्षिण द्वीप में सर्वप्रथम उगने वाला जम्बू वृक्ष; पश्चिमी द्वीप में सर्वप्रथम उगने वाला कदम्ब वृक्ष; तावतिंसा में सर्वप्रथम उगने वाला पारिद्दत्तक वृक्ष; पूर्वी द्वीप में सर्वप्रथम उगने वाला सिरीस वृक्ष; उत्तरी द्वीप में सर्वप्रथम उछने वाला कप्परुक्ख (कल्पतरू) वह सप्त महावृक्ष असङ्ख्येय्य कल्प तक स्थित रहते हैं।

इन सातों वृक्षों का तना, विस्तार, ऊंचाई-निचाई आदि सभी एक समान हैं।

पृष्ठ– १८२

तावतिंसा देवलोक की उत्पत्ति स्थिति का वर्णन

शिष्यो, यह उच्च सुमेरू पर्वत क्षेत्र - संपूर्ण धरती का क्षेत्र उत्पन्न होने के पहले सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। इसीलिये इस सुमेरू पर्वत शिखर धरती क्षेत्र को "ताव पठमं तिसति पातु भवतीति तावतिंसो। यह भूमि प्रदेश अन्य भूमियों से प्रथम उत्पन्न हुई। इसलिये यह भूमि प्रदेश तावतिंस कहलायी" इस वचनार्थ के अनुरूप तावतिंस नाम से कल्पारम्भ के विद्वान लोगों ने इसे पुकारा। इस तावतिंस प्रदेश में उत्पन्न देवलोक तावतिंस देवलोक कहलाया। तावतिंसा देवलोक जब व्यवस्थित हो गया तब ऊपर के ब्रह्म लोकों से ब्रह्मलोक के सत्व आयु आयुक्खय इत्यादि मरणुप्पत्ति के तीन कारणों में से किसी एक कारण से च्युत होकर इस सत्व शून्य तावतिंसा देवलोक में आकर देवता के रूप में उत्पन्न हुए।

चतुमहाराज देवलोक की उत्पत्ति स्थिति का वर्णन

चक्रवाळ दीवार (सीमांत) भी विशेष रत्न-शिलाओं से निर्मित पाषाणमय प्राचीर उत्पन्न हुआ। युगन्धर पर्वत भी विशेष-विशेष रत्न-शिलाओं से परिपूर्ण पाषाण पर्वत उत्पन्न हुआ। शेष पर्वत क्रम भी उसी प्रकार उत्पन्न हुई। इस युगन्धर पर्वत के शिखर के मध्य में चार लोकपाल देव राजाओं के रहने हेतु उद्यान पुष्प लताओं सहित सत्व शून्य विमानें उत्पन्न हुई। इन चारों चतुमहाराजों के अतिरिक्त शेष देवताओं को रहने के लिए भी विमान उत्पन्न हुए।

सूर्य, चन्द्र नक्षत्रों की उत्पत्ति का वर्णन

इस युगन्धर पर्वत शिखर के साथ ही संपूर्ण आकाश में भी सत्वों से शून्य सूर्य चन्द्र सहित नक्षत्र विमान भी अचानक उत्पन्न हो गये।

पृष्ठ– १८३

संपूर्ण आकाश में फैल गये। सुमेरू पर्वत को दायां भ्रमवत भ्रमण कर तीर के गति की तीव्रता से भी दस गुना तीव्रता से चक्कर लगाने लगे। इस सूर्य चन्द्र नक्षत्रों की उत्पत्ति क्षेत्र आकाश तल सहित युगन्धर पर्वत शिखर प्रदेश को लोकपाल चतुमहाराजिकों का स्थान उनके शासनार्थ उत्पन्न होकर - चतुमहाराज देवलोक नाम पड़ा। इस चतुमहाराज देवलोक के सुव्यवस्थित हो जाने के बाद ऊपरी ब्रह्मलोक से ब्रह्मा सत्व लोग आयुक्खय इत्यादि तीन मरणुप्पत्ति के कारणों में से किसी न किसी एक कारण से च्युत होकर सत्व शून्य इस चतुमहाराजिक देवलोक में आकर देवता हुए।

क्रमशः लोकों की दूरी का परिमाण वर्णन

इस चतुमहाराज देवलोक से मनुष्य लोक की दूरी भी ४२,००० (बयालीस हजार) योजन है। उधर तावतिंसा देवलोक भी इतना ही दूर है। इसी तरह ऊपर-ऊपर के देवलोकों की भी परस्पर एक दूसरे से बयालीस हजार ही प्रत्येक में दूरियां होती चली गई हैं। सबसे ऊपर वसवत्ती देवलोक से ब्रह्मलोक तक ५५,०८,००० (पचपन लाख आठ हजार योजन की दूरी है। इसी तरह ऊपर के ब्रह्मलोक भी एक दूसरे से क्रमशः प्रत्येक ब्रह्मलोक ५५,०८,००० (पचपन लाख आठ हजार) योजन की दूरियों पर हैं।

समुद्र के भीतर असूर लोक में विशेष विविधता की उत्पत्ति का वर्णन

समुद्र में भी विशेष विविध रत्न शिलादि– स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, लौह, स्फटिक (फणिक) उत्पन्न हुए। चक्र रत्न भी उत्पन्न हुआ। शिला गुहा, पाषाण गुहाएं भी उत्पन्न हुई। शिला, मूंगा भी उत्पन्न हुए। असूर लोक में भी उपरोक्त सभी रत्न उत्पन्न हुए। उद्यान पुष्प वाटिकाएं भी। सत्वों से शून्य देव विमान भी प्रकट हुए। जब असूर लोक की स्थिति व्यवस्थित रूप से हो गई तो जैसा पहले बता आया उसी तरह ब्रह्मलोक के सत्व च्युति प्राप्त कर असूर देव हुए। इन असुर देव को तावतिंस देव से आयु, अवधि, वर्ण प्रभाव सभी परस्पर एक समान

पृष्ठ– १८४

होने के कारण तावतिंस देव को संग्रह प्रदान किये तावतिंसा देवों के बराबर बलशाली एवं शूरता न होने के कारण उनका नाम असूर पड़ा।

आठ स्तरीय निरय में विशेष विविधता की उत्पत्ति

आठों निरयों में साधारणतया लौह भूमि ही है। सब में अग्नि धधकती रहती है। ज्वालाएं फूटती रहती हैं। सर्वत्र गड्ढे, खांई, डील, डाबर, कांट-कुश, धारदार उस्तरे पूर्ण भूमि ही है। नदी नालों में भी उबलता जल ही बहते रहता है। वृक्ष भी तलवार सदृश्य वृक्ष जिनसे अग्नि ज्वालाएं धधकती रहती है - लौह कांटे वृक्ष ही वहां उगते हैं।

आठ स्तरीय निरय में आठ कारागृहों का वर्णन

इस आठ स्तरीय निरय में नरकवासी बंदियों को बंद कर रखने हेतु एक-एक कारागृह भी होता है। इसीलिये संकिच्च आयुष्मान ऋषि ने इस तरह कहा है–

(१) चतुक्कण्णा चतुद्वारा, विभत्ता भागसो मिता।
अयोपाकार परियन्ता,. अयसा पटिवुज्जिता।।

(२) तेसं अयोमया भूमि, जलिता तेज संयुता।
समन्ता योजनसतं, फुटा तिट्ठन्ति सब्बदा।। (सङ्किच्च जातक)

(१) लोहे की दीवाल से घिरा हुआ लोहे से जोड़कर बंद अष्ठ स्तरीय नरकों में आठ बंदीगृह हैं। उसमें चार कोने हैं। चारों ओर चार लौह द्वार हैं। अब्बुद निरब्बुद्ध इत्यादि समूह-समूह से विभक्त हैं। सामान्य रास्ता से भिन्न मापा जाने वाला तुलना किया जाने वाला है।

पृष्ठ– १८५

(२) उन आठों का निर्माण लोहे से परिपूर्ण है। भूमियां अग्नि ज्वालाओं से परिपूर्ण हैं। लपटों से जलती हैं। अग्नि अर्चियां अर्थात् उसकी आंच वातावरण के सौ-सौ योजन तक फैलकर सर्वदा स्थित रहती हैं।

हिमवन्त पर्वतों का वर्णन

मनुष्य लोक में कुछ स्थानों पर पर्वत, कहीं समतल भूमि, कहीं पठार उत्पन्न हुआ। पर्वत में भी कुछ मिट्टी के, कुछ पाषाण वाले उत्पन्न हुए। हिमवन्त पर्वत अधिकांशतः शिला से परिपूर्ण है। चौड़ाई तीन हजार योजन है। ऊंचाई पांच सौ योजन हैं। पाषाण पर्वत शिखर ८४,००० (चौरासी हजार) हैं। **नेरु (मेरू)** नामक पर्वत स्वर्ण परिपूर्ण है। स्वर्ण वर्ण प्रस्फुटित होता है। इस तरह स्वर्ण वर्ण के एक साथ निकलने से तथा उसके चमक-दमक के कारण इस मेरू पर्वत में पहुंचे कौवे, बगुले (हंस) इत्यादि सभी पक्षी स्वर्ण वर्ण ही हो जाते हैं।

केलास नामक पर्वत-श्रेणी रजतमय है। **काल** नामक पर्वत-श्रेणी नीलमणिमय है। **चित्र**

पर्वत-श्रेणी स्वर्ण, रजत, मुक्ता, मणि, स्फटिक इत्यादि विशिष्ठ रत्न शिलामय है। **सुदस्सन** पर्वत-श्रेणी भी देखकर तृप्त न होने लायक विशिष्ठ रतनशिलामय है। **वेपुल्ल** पर्वत में मणि शिला बहुतायत से हैं। इस वेपुल्ल पर्वत के मणि शिला को साठ हाथ के बांस के ऊपर रख देने पर चारों ओर एक योजन के भीतर प्रकाशमान कर देता है। मानो सूरज उदित हो रहा हो। उसकी पीली रोशनी भली होती है। **गन्धमादन** पर्वत में स्वर्ण गुफा, रजत गुफा, स्फटिक गुफा, मणि गुफा, मुक्ता गुफा, मणिक्य गुफा आदि अधिक हैं। वृक्षों से सुगन्ध निकलते रहती है। वहां गन्ध युक्त वृक्ष ही उगते हैं।

पृष्ठ– १८६

अप्सरा वृक्ष का वर्णन

हिमालय पर्वत में कौन रत्न कौन शिला नहीं है? सब हैं। सभी प्रकार के वृक्ष उगते हैं। ऐसा कोई वृक्ष नहीं जो उसमें न पाया जाता हो। ऐसा कोई गन्ध नहीं, ऐसा कोई पुष्प नहीं, ऐसी कोई वृक्ष प्रजाति नहीं जो हिमवन्त में न हों। सभी हैं। अप्सरा के समान सुन्दर स्त्री रूप फल वाला अप्सरा वृक्ष - अप्सरा वन है। यह अप्सरा वृक्ष हिमालय के दक्षिणी ढलान **तण्हावड्ढन** पर्वत में उगती है। हिमवन्त से उत्तर के द्वीप प्रारम्भ जम्बूवृक्ष इन दोनों के मध्य भी उगते हैं। वह अप्सरा फल टपकने के बाद चार-पांच माह के बाद सड़ते हैं। उन्हें खा लेने वाले को चार माह बाद होश आता है।

सात सरोवर (दहः) अनवतत्त दह की स्थिति का वर्णन

सातों सरोवर भी हिमवन्त में हैं। इनमें कुछ मूल में ही स्थित है। कुछ पर्वत के मध्यम ऊंचाई पर स्थित हैं। अनवतत्त सरोवर ठीक केलास, काल, चित्र, सुदस्सन, गन्धमादन इन पांच पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। पूर्व में सिंह मुख, उत्तर अश्व मुख, पश्चिम हस्ति मुख, दक्षिण वृषभ मुख की आकृति के चार सोते हैं। सिंह मुख से निकलने वाला जल पूर्व के क्षेत्र तिब्बत देश की ओर नदियां बनकर बहती हुई पूर्वी समुद्र में जा गिरती हैं। अश्व मुख से निकलने वाले जल सोत उत्तरी क्षेत्र मनुष्य रहित यक्षों के स्थान में नदी बनकर बहती हुई उत्तरी समुद्र में जा गिरती हैं। हस्ति मुख से निकलने वाला जलस्रोत पश्चिमी क्षेत्र अंग्रेजों के देश में नदी बनकर बहती हुई पश्चिमी समुद्र में जा गिरती हैं। वृषभ मुख से निकलने वाला जल स्रोत अपने निकलने वाले उद्गम मुहाने में ही घुमड़कर पुनः अनवतत्त सरोवर को दक्षिणाभ्रम से दो-तीन बार चक्कर लगाती है। उस बायें घुमने वाले स्थान को आवड्ढ गङ्गा कहते हैं।

पृष्ठ– १८७

पांच महानदियों की उत्पत्ति का वर्णन

उस आवड्ढ गङ्गा से वन क्षेत्र **कण्ण** नामक शिला खण्ड पर साठ योजन तक बहती है। उस क्षेत्र में उसे **कण्ण** गङ्गा कहते हैं। इस **कण्ण** गङ्गा से दक्षिण नीचे खाईं में

धरती को बिना स्पर्श किये आकाश मार्ग से साठ योजन लगभग जाकर नीचे **तिरङ्गल** नामक शिला खण्ड पर गिरती है। इस आकाश मार्ग से बहकर जल दो योजन एक गव्यूति का भंवर निर्मित करती है। इस स्थान पर इसका नाम **आकास गङ्गा** है। इस आकाश गंगा के गिरने वाला स्थान तिरङ्गल शिला खण्ड में पचास योजन चौड़ा खड्डनुमा सरोवर विशेष बन जाता है। इस सरोवर को **तिरङ्गल सरोवर** कहते हैं। इस तिरङ्गल सरोवर से दक्षिण शिला के अरार को तोड़कर पर्वत क्षेत्र में साठ योजन तक बहती है। इस क्षेत्र में इसे **बहल गङ्गा** कहते हैं। इस बहल गङ्गा से दक्षिण क्षेत्र की ओर भूमिगत होकर अन्तःस्रावी बनकर गुहा के अन्दर से (उम्मग्ग = गुहा) साठ योजन तक यह बहती जाती है। उस क्षेत्र के **उमङ्ग (=उम्मग्ग)** गङ्गा कहते हैं। अमङ्ग गङ्गा से बाहर आने पर विज्जा नामक पर्वत से टकराती है। पांच शाखाओं में विभक्त हो जाती है। गङ्गा, यमुना, अचिरवती, मही, सरभू यह पांच नदियां बनकर पर्वत क्षेत्र से बहती हुई दक्षिण समुद्र में गिरती है।

इन पांच नदियों के बहने वाले क्षेत्र के ऊपरी भाग को पांच धाराओं वाला क्षेत्र होने के कारण पञ्च जल कहते हुए 'ज' का लोप कर 'अ' को आ-दीर्घ बनाकर **"पञ्चाळ"** क्षेत्र - पञ्चाळ राज्य कहने लगे। बाद के लोग 'जल' का परियाय 'आप' शब्द से जोड़कर 'पञ्चापी' राज्य कहने लगे। आज वर्तमान में अक्षरों में विकार कर पंजाबी राज्य कहते हैं।

वृक्ष आदि रूप धातुओं की उत्पत्ति का वर्णन

समतल क्षेत्र पठारी क्षेत्रों में भी कुछ स्थानों में श्वेत भूमि है, कुछ स्थानों पर लाल तथा कुछ स्थानों पर पीली भूमि है। कुछ स्थानों पर काली है। कुछ स्थानों पर

पृष्ठ– १८८

खारी है। जल भी खारा है। कुछ स्थानों पर तैलीय दुर्गंध युक्त जल है। कुछ स्थानों पर स्वर्ण शिला, मणि शिला, मुक्ता शिला, मणिक्य शिला अधिक है। कुछ स्थानों में ताम्र शिला, लौह शिला, गंधक शिला, दुत्था शिला, चूना शिला अधिक हैं। कुछ स्थानों पर संगमर्मर, गवं शिला, कछुआ शिला, तलवार पर धार देने का शिला। कसौटी शिला, चकमक शिला, श्वेत शिला। बहुतायत से होते हैं। कुछ स्थानों पर विशिष्ठ प्रकार के घास विशिष्ठ धान उत्पन्न होते हैं। कुछ स्थानों पर विशेष प्रकार की लताएं, विशेष प्रकार के कांटेदार पौधे, कटीली झाड़ियां, विशिष्ठ वृक्ष उत्पन्न होते हैं। कुछ वृक्षों में हीड़ होता है - कुछ में नहीं होता है। पत्ती, फल, फूल विभिन्न प्रकार के हैं। कुछ वृक्ष खट्टे होते हैं। कुछ वृक्ष खारे होते हैं। कुछ कसैला, कुछ कड़ुवा होते हैं। कुछ मीठे होते हैं, कुछ स्वादिष्ट होते हैं। कुछ वृक्ष खाने में अच्छे होते हैं। कुछ खाने में खराब। कुछ को खाने पर नशा होता है। कुछ खाने पर मर सकते हैं। कुछ वृक्ष कोमल होते हैं, कुछ स्पर्श करने पर अच्छे होते हैं। कुछ स्पर्श में बुरे होते हैं। कुछ खुरदरा तो कुछ खुजली करते हैं। दर्द करते हैं। कुछ स्थानों पर मैदान हैं तो कुछ स्थानों पर वन है। कहीं सघन

वन हैं। शिष्यों, यह सारा कुछ जिसका वर्णन किया ठीक इसी प्रकार शेष एक करोड़ लाख १००००००००००००० चक्रवालों में भी साथ ही साथ उत्पन्न होते हैं।

विश्व, संसार (*) को निर्मित करने वाले कारीगर की खोज, पूछताछ

[शिष्यों से सेक्ख्य पब्बत सयाडो ने प्रकृत के रूप में पूछा है– कि इस विचित्र विविधता भरे चक्रवालों लोकों को किसने निर्मित किया? फिर उन विचित्रताओं को एक-एक कर गिनती करते हुए बार-बार प्रश्न करते गये हैं कि किस चित्रकार ने - किस विद्याधर ने, किस विश्वकर्मा ने, यह रंग-बिरंगा - विभिन्नताओं से भरा ब्रह्माण्ड को बनाया? मैंने यहां पृष्ठ १८८ - पृष्ठ १८९ के इनका वर्णन छोड़ दिया है। (अनुवादक)]

पृष्ठ– १९०

इस तरह विधि-विधान से नियमानुसार इसको निर्माण करने वाला कोई अवश्य होगा तब ही यह संसार इतना व्यवस्थित बना। उस बनाने वाले को उस निर्माता - कर्त्ता को प्राप्त करना अवश्य अत्यंत आवश्यक है।

केनस्सु निम्मितो लोको, केनस्सु अभिसङ्खतो,
अवस्सं इच्छितब्बो व, मापको पण्डितेहि सो। (सेक्ख्य भासित गाथा) १८

लोक को किसने निर्मित किया? किसने इसका अभिसंस्कार किया। उस मापक रचनाकार की प्राप्ति की कामना अवश्य ही पण्डित जन करते हैं।

लोकों के निर्माण कर्त्ता को खोजकर बताना

शिष्यो, इस लोक का निर्माता कोई अन्य नहीं है। वह तो चित्त ही है। चित्त ने ही इस लोक का निर्माण किया। किनका चित्त? ऊपर-ऊपर के ब्रह्मलोक में पहुंच चुके आर्यसेक्ख पुग्गल लोग नीचे-नीचे के लोक में तो पुनः उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं। इसलिये उनको छोड़कर इस लोक में पुनः उत्पन्न होने वाले सभी पृथग्जनों का चित्त समूह ही इसे निर्मित किया।

चक्रवाल (लोक) निर्माण का वर्णन

वे चित्त भी स्वयं अपने आप निर्मित नहीं किये। अपनी आवश्यकता भर संपूर्ण को कर्म से कहा। कर्म के द्वारा निर्मित करवाया। वह कर्म भी चित्त के कहे अनुसार उसके प्रत्येक आदेश को याद रख अग्नि धातु नामक उतु (ऋतु) को सब कुछ कहा। उतु को कहने को कहा। उसे निर्माण करने को कहा। उतु ने उस कर्म के द्वारा बताये गये संपूर्ण को याद रखा और

पृष्ठ– १९१

सबको स्वयं निर्मित किया। उत्पन्न किया। यह कथन सत्य है। शिष्यो, चित्त की इच्छा कर्म प्रभाव शक्तियों से संयुक्त उतु मात्र ने ही लोक का निर्माण किया। उत्पन्न किया। चित्त की कामना कर्म प्रभाव शक्तियों से असंयुक्त ऊपर-नीचे अजटाकासों में स्थित उतु - चक्रवालों (लोकों) को निर्मित नहीं करते हैं। चित्त ही प्रधान मालिक है। कर्म बढ़ई के समान है। उतु उस बढ़ई का प्रमुख शिष्य अन्तेवासी के समान हैं। चित्त, कम्म, उतु यह तीनों धर्म गूढ़ स्वभाव के अनुसार इस प्रकार मन्त्रणा किये - यह कहलाता है।

(उनका) मन्त्रणा (विचार विमर्श) करना

शिष्यो - आचार्यवर "प्रिय कम्म - मेरी सभी इच्छाओं को तुम समझे कि नहीं? देर मत लगाना। सबको पूर्ण करना "यह आदेश चित्त ने दिया। तब कम्म ने कहा–

"आम अय्यचित्त मा सोचि, सब्बं पूरयिस्सामि। आयुष्मान चित्त। मैं जान गया। आप चिन्ता न करें। सभी कामनाओं को मैं पूरा करूंगा।"

इस तरह स्वीकार कर सभी सत्वों के कम्म एक साथ एकत्र मिलकर - साथियों हमारे मालिक महाराज चित्त की इच्छा को परिपूर्ण करने के लिये प्रमुख शिष्य उतु को निर्देशित किया जाय। इस तरह विचार विमर्श कर - "शिष्य उतु, हमारे मालिक ब्रह्मलोक में बहुत काल से रहते हुए ऊब चुके हैं। वे नीचे पुनः घुमना चाहते हैं। हमारे अपने मालिक के निवास हेतु लोक (चक्रवाळ) को अतिशीघ्र पूर्ण करो। निर्मित करो।" यह आदेश दे दिया।

तब उतु ने स्वीकार करते हुए यह कहा–

"आम आचरिय अहं उतु नाम इमस्मिं ठानेन भारियं।

हे आचार्य कम्म! ठीक है। मुझ (शिष्य) उतु के लिए इस तरह के लोक को निर्मित करना कोई भारी नहीं है।

पृष्ठ– १९२

इस तरह स्वीकार कर कल्पारम्भ बारिश महावर्षा को बरसाता है। सत्वों में चित्त की इच्छानुसार कम्म आचार्य के आदेशानुसार नियमानुसार आकासट्ठ ब्रह्मलोक, देवलोक आदि लोकों को तत्काल अचानक ही उत्पन्न किया। उसके स्थान के अनुसार उन-उन लोकों के निर्माण हेतु जल को जम जाने दिया। गुहा-कन्दरा (उम्मग्ग =धमङ्ग) उत्पन्न किया।

"शिष्य उतु - हमारे मालिक जब आगे चलकर प्रभावशाली देवता बनेंगे तब स्वच्छ सुन्दर स्थानों पर रहना पसंद करते हैं। उस कामना के अनुसार पूर्ण हो सके ऐसा कर चुके। यह कर्म आचार्य के निर्देश के कारण सुमेरू पर्वत आदि देवताओं के स्थान में कहे अनुसार सब कुछ निर्मित किया।

हमारे मालिक आगे चलकर स्वयं प्रभा वाले नहीं रहेंगे और मनुष्य होंगे तब उन्हें प्रकाश की आवश्यकता पड़ेगी। अतः प्रकाशमान वस्तु उत्पन्न हों यह आदेश देने के कारण सूर्य, चन्द्र नक्षत्र, तारा आदि निरन्तर चक्कर लगाने वाले ग्रहादि उत्पन्न किया।

हमारे मालिक जल को चाहने वाले जल में रहने वाले सत्व होंगे। अतः जल उत्पन्न हो कहा। इस कारण से समुद्र, सरोवर, नदी आदि उत्पन्न किया। कुछ मीठा जल चाहते हैं - कुछ खारा जल चाहते हैं, लोक नमक बनाकर उपयोग करना चाहते हैं। कुछ तो घर-विहार पोतने के लिये - अग्नि प्रज्वलन के लिये मिट्टी का तेल पसंद करते हैं। यह उत्पन्न हो। ऐसा कहने से - सरोवर नदी को मीठा बनाया। समुद्र को खारा बनाया। कहीं कहीं द्वीपों पर भी धरती, जल को खारा बनाया। जैसे हमारे यहां 'येनां द्वीं' में मिट्टी का तेल उत्पन्न किया।

हमारे मालिक स्वर्ग, रजत इत्यादि रत्नों को पसंद करने वाले होंगे। ऐसे होने में हमारे मालिक अधम (निम्न), मध्यम, श्रेष्ठ तीन तरह के होंगे। उन तीनों के अनुकूल अनुकूल तीन-तीन तरह के रत्न उत्पन्न हों। ऐसा निर्देश देते ही उत्तम, मध्यम, निम्न स्वर्ण, उत्तम रजत, मध्यम रजत, निम्न रजत; उत्तम शिला, मध्यम शिला, निम्न शिला इत्यादि हुआ। इस तरह तीन-तीन तरह के विशेष रत्नों को उत्पन्न किया।

पृष्ठ– १९३

हमारे मालिक चक्र रत्न चाहने वाले होंगे। ऐसा कहने के कारण प्रत्येक कल्पों, प्रत्येक चक्रवालों में जम्बूद्वीप के पूर्वी समुद्र में रत्न शिला परिपूर्ण चक्र रत्न उत्पन्न किया।

हमारे मालिक पर्वत चाहेंगे, पठार चाहेंगे, समतल भूमि चाहेंगे, निम्न भूमि चाहेंगे - यह निर्देश भी उन्हें प्राप्त था इस कारण से ऐसा उत्पन्न किया। हमारे मालिक शिला भूमि चाहते हैं, धूलयुक्त भूमि चाहते हैं, श्वेत धरती, लाल धरती आदि चाहते हैं, शिला खण्ड, शिला चट्टान, रेत चाहते हैं, समतल मैदान चाहते हैं, जंगल चाहते हैं - झाड़झंखाड़ चाहते हैं, काटें कटिली झाड़ियां चाहते हैं - नुकीली काटेंदार झाड़ चाहते हैं - लिपटाने वाले कांटेदार पौधे चाहते हैं - लकड़ी, बांस चाहते हैं - लता वल्लरियां चाहते हैं, धान चाहते हैं, घास चाहते हैं - पत्तियां, फूल, फल चाहते हैं; श्वेत, पीला इत्यादि चाहते हैं, सुगंधि चाहते हैं। उस सुगन्ध को नहीं चाहने वाले भी, मक्खियां भी दुर्गंधि चाहती हैं। खट्ट, मीठा इत्यादि चाहते हैं, खुजली वाले वृक्ष, खुजली धातु चाहते हैं; नशीले वृक्ष - नशीली धातु चाहते हैं; तत्काल मारने वाले विषवृक्ष विष धातु चाहते हैं; बहुत प्रभावशाली संवेदन शीलवृक्ष, धातु, हिलने वाले वृक्ष, हिलने वाले धातु; आकर्षण करने वाले चुम्बकीय धातु, औषधि वृक्ष, औषधि धातु चाहते हैं, इत्यादि-इत्यादि उत्पन्न होवे। अप्सरा प्रिय, अप्सरा फल, वृक्ष उत्पन्न होवे। पुरुष प्रिय पुरुष आकृति कन्द वाले वृक्ष होवे। नरक चाहने वाले नरक बृहद - नरक लघु उत्पन्न होवे - इस तरह उपरोक्त सभी को कम्म आचार्य ने जैसे-जैसे आदेश दिया - उन निर्देशों के कारण उत्पन्न किया।

नरक को चाहने वाले लोगों का वर्णन

शिष्यो, उपरोक्त कथनानुसार भला नरक को कौन चाहता है? किसे इच्छा होगी भला नरक की। ऐसा पूछा जा सकता है? शिष्यो, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सताता है। वह सताया जाने वाला दलित व्यक्ति अपने आपको सताये जाने वाले को - उस

पृष्ठ– १९४

बैरी को अपने दुश्मन को बड़े से बड़े दण्ड द्वारा दण्डित करने के लिए, बड़ा से बड़ा भयंकर कष्ट देना चाहता है - सबसे बड़ा दण्ड नरक में पड़े ऐसा चाहता है। इसलिये लोक में हम उसे कुछ करने में समर्थ नहीं होते हैं तो उसको श्राप दिया करते हैं। अपने दुश्मन को सताने वाले की हम कामना करते हैं। दूसरे को भयंकर दण्ड से दण्डित करने वाले दण्ड देने वाले में तो वह बृहद नरक, लघु नरक ही हैं। इसलिये यह सताये जाने वाले दलित लोक उन आततायियों के लिए नरक चाहते हैं। उसकी कामना करते हैं। इसलिये भगवान ने इस प्रकार कहा है :

सपत्तो सपत्तस्स एवं इच्छति अहोवतायं कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गत्तिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्याति। (सत्तङ्गुत्तर - सपत्तकन्त सुत्त)

भिक्खवे, एक विरोधी वैरी अपने विरोधी वैरी के प्रति यह कामना करता है कि यह मेरा दुश्मन मरने पर - मरने के बाद अपाय की दुर्गति में पड़े। विनिपाक निरय में उत्पन्न होवे। ऐसी इच्छा करता है।

शिष्यो, इस बुद्ध वचन के अनुसार नरक में जावे इस कामना द्वारा - गिरने वाला स्थान नरक को सर्वप्रथम कामना करना ही ठहरता है। उदाहरण स्वरूप राजा अपने वैरी डाकू को कारागृह में डालना चाहकर सर्वप्रथम जिस प्रकार कारागृह की इच्छा करता है - शिष्यों, ये सभी नरक - राजा बुरा हो तो मैं नरक में डालूं, मैं बुरा होऊं तो राजा डाले - परस्पर एक दूसरे को डालने के लिये सहमति हो जावे तो संपूर्ण लोक कारागृह ही से भर जावेगा। यह पृथग्जन सत्व लोग आपस में एक दूसरे को सताते हैं, ताड़ित-प्रताड़ित करते हैं। वे लोग ही सर्वप्रथम इस निरय के कारागृह में गिरने वाले, उसे भोगने वाले लोग होते हैं। नरक में गिराने की इच्छा करने वाला, कम्मपथ बनाने वाला अकुशल दुःचारित वह व्यक्ति भी अपनी चित्त सन्तान में अकुशल धर्म की उत्पत्ति को

पृष्ठ– १९५

हटा नहीं पाता - निकाल नहीं पाता, उसे बिना क्षमा किये चाहता ही रहता है - उस अकुशल का अनिष्ठ फल को भी चाहने वाला ही होता है। उस अनिष्ठ फल को उत्पन्न करने वाले नरक को भी इच्छित करना ही कहलायेगा। यह कामना है ही कहेंगे।

खुजली इत्यादि के पौधे की, अन्य को खुजलाहट करने की इच्छा वाले लोगों ने;

विज्जाधर वैद्यों ने चाहत की। खैंनी, तम्बाकू, धतुरा, अफीम इत्यादि नशा करने वाले पौधों, विष युक्त पौधे, हीरा आदि जहरीला धातु आदि को स्वयं नशाखोरी या मरने के इच्छुक लोगों ने : अन्यों को नशायुक्त करने या मारने की इच्छा करने वाले लोगों ने; वैद्यों ने - चाहना की। कांट वाले वृक्ष, कटीली झाड़ियां, उन वृक्षों पौधों में आश्रय ग्रहण कर निर्भय होने वाले इनका उपयोग करने वाले प्राणी ने - चाहना किया। शिष्यों, यदि कांटेदार वृक्ष कंटीली झाड़ियां नहीं होती तो इस प्रकार के पौधों पर आश्रित प्राणी बेचारे असुरक्षित होकर सभी भय को प्राप्त हो जाते - मारे जाते - नष्ट हो जाते। इसलिये शिष्यो चक्रवाल धारक वायु, जल सहित चक्रवाल सहित चक्रवाल के भीतर स्थित अच्छे-बुरे सभी को सत्व गण चाहत रखते हैं ही।

शिष्यो, संक्षिप्त में कहें तो इन पृथग्जन सत्वों का चित्त विशिष्टताओं, प्रकारों, विचित्रताओं से परिपूर्ण छः आरम्मणों को चाहते हैं। कामना करते हैं। इच्छा करते हैं। उस चित्त के चाहत करने के अनुसार कम्म को व्यवस्था करना पड़ता है। उतु (ऋतु) निम्न, मध्यम, श्रेष्ठ तीन-तीन प्रकार के सत्वों के अनुरूप निम्न, मध्यम, श्रेष्ठ तीन-तीन तरह के विशिष्टताओं, प्रकारों, विचित्रताओं से परिपूर्ण रुपारम्मण, सद्दारम्मण, गन्धारम्मण, रसारम्मण, फोट्ठब्बारम्मण, धम्मारम्मण नामक छः ठोस आरम्मण वाला चक्रवाल, लोक को निर्मित किया। बनाया। उत्पन्न किया। लंबे-लंबे, छोटे-छोटे, नाटे-नाटे, गोल-गोल, वर्तुल-वर्तुल, चपटे-चपटे, कोण वाले, सपाट, स्तरीय, वक्र, हस्ताकार, कुत्ते के दंताकार आदि आकार के भी आरम्मणों को प्रविष्ट कर रूपारम्मण समझना होगा।

पृष्ठ – १९६

दस सिद्धियों का वर्णन

शिष्यो, आरोग्य सिद्धि, योब्बन सिद्धि, आयु सिद्धि, काय सिद्धि, पिय सिद्धि, धन सिद्धि, पथवी सिद्धि, उदक सिद्धि, आकास सिद्धि, इद्धिविध सिद्धि – इन सिद्धियों की प्राप्ति कामना को लक्ष्य कर (दवा-दवाधातु) आदि को कामना करने के समय वे औषधि - औषधि धातुएं धम्मारम्मण भाव में स्थित होकर धम्मारम्मण की चाहत हुई। अत्यंत सुन्दर रूपालंबन वाले स्वर्ण को ही उस सिद्धियों की कामना हेतु जरूरत के समय वह स्वर्ण धम्मारम्मण स्वभाव में स्थित होकर धम्मा लम्बन की चाहत हुई। इन दसों सिद्धियों को पूर्ण कर सकने वाले नदियों के पास औषधि वृक्ष हिमवन्त में बहुत अधिक हैं। शिष्यों - इस सिद्धि के अतिरिक्त धम्मारम्मण की आवश्यकता वाले अनेकों स्थान हैं।

शिष्यो, उदाहरण से समझो। यद्यपि जेतवन विहार को वास्तुविदों कारीगरों ने बनाया फिर भी उस विहार की उत्पत्ति के मूल में वे वास्तुविद कारीगर प्रधान नहीं। मजदूरी प्रदान कर बनवाने वाले अनाथ पिण्डिक ही प्रधान होने के कारण उसे अनाथ पिण्डिक द्वारा बनाकर दान किया हुआ विहार ही कहा जाता है। श्वेटिगोन पगोडा को भी वास्तुविदों और शिल्पियों ने ही बनाया - फिर भी पगोडा बनाने वाले वे कारीग्रह प्रमुख नहीं हैं। मजदूरी देकर बनवाने वाले **उक्कलाप** राजा ही प्रधान प्रमुख हैं। राजा उक्कलाप

ने श्वेटिगोन पगोडा बनवाया ऐसा कहते हैं। **मन्धरे नगर** शिलालेख को वास्तुविदों ने ही उत्कीर्ण किया। फिर भी वे शिल्पी शिलालेख उत्कीर्ण करने वाले प्रमुख नहीं हैं। मजदूरी देकर बनवाने वाले महाराज **मेंडोंमिन** ही ने वह शिलालेख लिखवाया - वही प्रधान हैं ऐसा कहा जाता है। ठीक इसी तरह से, मेरे शिष्यों,

पृष्ठ – १९७

इन वन पर्वत, जल, धरती, चक्रवाल लोक आदि को यद्यपि **कम्म** ने व्यवस्था देकर उतु (ऋतु) ने निर्मित किया तिस पर भी इन सब के निर्माण में वह उतु कम्म प्रधान नहीं है। छः आरम्मणों को चाहने वाले सत्वों का चित्त ही मात्र प्रधान होने के कारण इन वन, पर्वत, जल, धरती, लोकों को चित्त ने निर्मित किया। चित्त ही ने उत्पत्ति किया। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि छहों आरम्मण को चाहने वाला चित्त लोक में नहीं होता तो यह लोक कभी भी उत्पन्न नहीं होता। ऊपर-नीचे अजटाकाश के तरह मात्र केवल अजटाकाश ही सर्वत्र फैला होता।

चित्तेन निम्मितो लोको, चित्तेन अभिसङ्खतो।
तंयेव मापको सिस्सा, ञातब्बं पण्डितेहिवो।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

शिष्यों, लोक को (वन, पर्वत, जल, धरती, चक्रवालादि) चित्त ने निर्मित किया। लोक को चित्त ने अभिसङ्खारित किया। अभिसंस्कृत किया। रचना किया - बनाया। शिष्यों, मुझ पंडित द्वारा तुम समझदार विद्वानों को समझाया गया - यह चित्त ही मापन कारीगर है - इसे जानो। समझो।

पृष्ठ – १९८

यही कारण है कि लोकन्तगू, लोक विदू, लोक पारगू कहलाने वाले उन भगवान सम्यक सम्बुद्ध ने यह देशित किया :–

चित्तेन **निय्यति** लोको, चित्तेन **परिकस्सति**। चित्तस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू।। (सगाथावग्ग संयुत्त)

लोक को चित्त ने **निर्मित किया। बाहर लाया**। इसे चित्त ही **नष्ट भी करता** हैं। लोक को चित्त ही **सुधारता है - खींचता** है। चित्त नामक अकेले धर्म के वश में सभी धर्म क्रमशः पीछे-पीछे चलते हैं।

यहां पर राजा मिलिन्द के आचार्य आयुष्मान नागसेन थेर का व्याकरण में - समुद्र जल बहुत काल व्यतीत होने पर खारा हुआ - शिष्यों।

चक्रवाल के माप परिमाण का वर्णन

शिष्यो, चित्त द्वारा निर्मित लोक (चक्रवाल) की स्थिति को इस तरह जाना जाता

है। शिष्यों, चौबीस अङ्गुल का एक हाथ। चौबीस अङ्गुल = एक हाथ। ७ हाथ = एक ता (*)। २० ता = एक उसभ। २० उसभ = एक गव्यूति। ४ गव्यूति = एक योजन। ५०० ता = एक कोस। दो कोस = १००० ता।

उस एक हजार ता को बर्मी लोग माप विकसित कर "अटांय" कहा - ("अटांय" कहते हैं) १० टांय में १०००० ता होता है। दस हजार का रास्ता (दूरी) कहते हैं। एक योजन की दूरी को बर्मी टांय के अनुसार छः टांय और ४०० ट्वें होता है। "४०० ता को ४०० ट्वें, ५०० ता को ५०० ट्वं इत्यादि कहते हैं।" शिष्यों, एकेक चक्रवाल लम्बाई-चौड़ाई परिमाण के अनुसार– १२,०३,४५० (बारह लाख तीन हजार चार सौ पचास) योजन चौड़ा है। वृत्त का परिमाण– ३६,१०,३५० (छत्तीस लाख दस हजार तीन सौ पचास) योजन हैं। आकृति वर्तुलाकार है। कोणयुक्त नहीं। गोल-गोल पत्थर के समान हैं।

पृष्ठ– १९९

चक्रवालों के साथ-साथ रहने का वर्णन

अभी जैसा कि बताया वे सभी चक्रवाल एक साथ उत्पन्न होते हैं। ऐसे एक साथ उत्पत्ति स्थिति विनाश वाले चक्रवाल एक करोड़ लाख १०००००००००००००० हैं। इन एक करोड़ लाख १०००००००००००००० चक्रवालों को एक महालोक धातु समझना होगा। शिष्यों, इस एक महालोक धातु के भीतर में सभी चक्रवाल - दस-दस हजार (१००००) के एक-एक समूह में रहते हैं। एक ही शिला पट्ट को परिपूर्ण जोड़-जोड़कर छोटे शिला कुल दस हजार बनाकर रखने के समान - एक समान संलग्न हैं। इस चक्रवाल दस हजार संलग्न कर एक-एक को मज्झिम लोक धातु एक-एक समझना होगा शिष्यों। यह प्रत्येक मज्झिम लोक धातु नदी में जैसे नावों को एक के पास एक समान रूप से रखा गया होता है वैसे ही रहते हैं। एक समान रहते हैं - पर जुड़े नहीं होते। इसलिये जब एक चक्रवाल भ्रमण करता है - तो अपने साथ के सभी संलग्न - सब मज्झिम लोकधातु भ्रमण करते हैं। जो इनके साथ संलग्न नहीं होते वे सब मज्झिम लोक धातु इनके साथ भ्रमण नहीं करते।

चक्रवालों के भ्रमण का वर्णन

किस समय से इस तरह मज्झिम लोक धातु भ्रमण कर रहे हैं? शिष्यों, हमारे बोधि सत्व सुमेध ऋषि भगवान दीपङ्कर से व्यादेश प्राप्त कर - बुद्ध होने का कारण - १० पारमियों को स्वयं विचार कर ज्ञात क्षण में उन पारमी पविचयञाण के प्रभाव के कारण वे हमारे मज्झिम लोक धातु कुम्हार के चाक के समान घूमने लगा। इसीलिये भगवान ने यह कहा है :–

१ - इमे धम्मे सम्मसन्तो, सभावरस लक्खणे।
धम्मतेजेन वसुधा, दस सहस्सी कम्पथ।।

२ - चलति रवति पथवी, उच्छुयन्तंव पीळितं।
तेलयन्तं यथाचक्कं, मेदनी सम्पकम्पथ।। (बुद्धवंस)

पृष्ठ– २००

(१) भिक्षुओं, जब मैं वह सुमेध ऋषि का स्वभाव इस लक्षण अर्थात् किच्चरस स्वभाव लक्षण से परिपूर्ण हुआ। इस धर्म, इस दस पारमिताओं को खोज कर रहा था तब उस धर्म तेज के कारण दस सहस्त्र लोक धातु (चक्रवाल) स्थित संपूर्ण वसुधा - (मज्झिम लोकधातु) कांप उठी।

(२) दस हजार चक्रवाल स्थित मज्झिम लोक धातु (पृथ्वी) चलयमान हो उठी - हिल उठी। गंभीर ध्वनि (रव) होने लगी। पेरने वाले ईख यंत्र, के समान, तेल यंत्र के समान (कोल्हू के समान), कुम्भार के चाक के समान भ्रमण करने (घूर्णन करते) मेदनी (मज्झिम लोकधातु) बहुत तेजी से प्रकम्पित हो उठी।

पच्छिम भविक बोधिसत्व के जन्म लेने के समय, बुद्ध होने के समय आदि समयों में भी इसी तरह प्रकम्पन होता है। इस मज्झिम लोक धातुओं के भीतर एक-एक चक्रवालों को एकेक चूळ लोक धातु समझना

लोकन्तरिक निरय लोक

यह चूळ लोक धातु मज्झिम लोक धातु गोल वृत्त होकर आपस में तीन-तीन, चार-चार के संगम स्थान पर तिकोना, चौकोर क्षेत्र निर्मित हो जाता है। नीचे चक्रवाल धारक जल गिरने वाला छिद्र दिखता है। यह क्षेत्र लोकन्तरिक नरक वासियों के उत्पत्ति स्थान, दुक्ख भोगने का स्थान - लोकन्तरिक नरक कहलाता है।

तीन लोक धातुओं का वर्णन

शिष्यो, इस तरह एक चक्रवाल - एक चूळ लोक धातु, दस हजार चूळ लोक धातु - एक मज्झिम लोक धातु, कुल दस करोड़ मज्झिम लोक धातु के सभी साथी-संगी एक महालोक धातु होते हैं। इस एक महालोक धातु के भीतर में कुल एक करोड़ लाख चूळ लोक धातु होते हैं। (१०००००००००००००० चूळ लोक धातु हैं।)

पृष्ठ– २०१

बुद्ध उत्पाद वाला लोक धातु

शिष्यो, इस महालोक धातु के भीतर में सम्यक सम्बुद्ध की उत्पत्ति मनुष्य लोक में ही होती है। इस तरह उत्पन्न होने के समय भी इस महालोक धातु के मध्य केन्द्र मज्झिलोक धातु में उत्पत्ति होती है। अन्य किसी मज्झिमलोक धातुओं में नहीं उत्पन्न होते। ऐसे उत्पन्न होने पर मज्झिम लोक धातु में भी बीचों-बीच के केन्द्र भाग चूळ लोक धातु में ही उत्पन्न होते हैं। अन्य चूळ लोक धातुओं में जन्म ग्रहण नहीं करते। इस तरह जन्म लेते हुए भी चूळ लोक धातु में भी चार द्वीप वाले जम्बुद्वीप दायें दक्षिण द्वीप में ही केवल जन्म ग्रहण करते हैं। शेष तीन द्वीपों में जन्म नही ग्रहण करते हैं।

एक लोक धातु के भीतर - दो बुद्ध नहीं उत्पन्न होते

ऐसे उत्पत्ति के समय - एक ही काल में दो बुद्ध एक साथ उत्पन्न नहीं होते। यह धर्मिता नहीं। एक के बाद दूसरे बुद्ध - इस प्रकार आगे-पीछे ही उत्पन्न होते हैं। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :–

अट्ठानमेतं भिक्खवे अनवकासो, यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्तो सम्मासम्बुद्धस्स अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युन्ति, नेतं ठानं विज्जति। (१५) (एकङ्गुत्तर) पृष्ठ २१

भिक्षुओ, इस बात की सम्भावना नहीं कि एक ही लोक धातु में एक ही समय में दो अर्हत सम्यक सम्बुद्ध एक साथ उत्पन्न हों, इस बात की तनिक गुंजाइश नहीं है।

पृष्ठ– २०२

महापृथ्वी के विकसित (बढ़ने) होने का वर्णन

एक ही पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले एक बुद्ध से दूसरे बुद्ध के मध्य काल का अन्तराल कितना होता है? शिष्यो, महापृथ्वी नवीन हो-होकर बढ़ती हुई विकसित होकर सौ वर्षों में एक अंगुल ऊपर उठ जाती है - बढ़ जाती है। पहले के बुद्ध के सासन के अन्त होने के दिन से लेकर महापृथ्वी जब एक योजन ऊपर चढ़ जावेगी - तब दूसरे बुद्ध उत्पन्न होंगे। इस तरह एक बुद्ध से दूसरे बुद्ध के बीच बहुत बड़ा अन्तराल होता है।

सुञ्ञ कल्प - असुञ्ञ कल्प को विभाजित कर वर्णन

जिस कल्प में सम्यक सम्बुद्ध उत्पन्न नहीं होते उसे शून्य कल्प तथा जिस कल्प में बुद्ध उत्पन्न होते हैं उसे अशून्य कल्प कहते हैं। उस बुद्ध उत्पन्न होने वाले अशून्य कल्प में भी एक बुद्ध उत्पन्न होने वाले को **सार कल्प,** दो उत्पन्न होने वाले कल्प को **बर कल्प,** तीन उत्पन्न होने वाले कल्प को **मण्डकल्प,** चार बुद्ध उत्पन्न होने वाले कल्प को

सार मण्ड कल्प, पांच बुद्ध उत्पन्न होने वाले कल्प को **भद्र कल्प** कहते हैं। इस प्रकार पांच हैं। पांच से अधिक बुद्ध किसी कल्प में नहीं उत्पन्न होते हैं। यह वर्तमान कल्प पांच बुद्धों के उत्पन्न होने वाला भद्र कल्प है। जब कल्प उत्पन्न हो गया और बुद्ध के उत्पन्न होने वाला कल्प है - तो कल्पारम्भ मनुष्य लोक द्वीप धरती उत्पन्न होने के शुरू में आठ परिक्खार - एक ही फलने वाला पद्म एक ही उत्पन्न होता है। दो उत्पन्न होने पर दो; तीन बुद्ध के उत्पन्न होने पर तीन; चार बुद्ध के उत्पन्न होने पर चार; पांच के समय पांच फलने वाला पद्म का एक ही पौधा उत्पन्न होता है। उन परिक्खारों को - बुद्ध उत्पन्न होने वाला कल्प है या बुद्ध उत्पन्न होने वाला कल्प नहीं है - इस पूर्व निमित्त को जांचने वाले सुद्धावास के ब्रह्मा लोग देखकर अत्यंत प्रसन्न होकर आगामी पच्छिम भविक बोधिसत्वों के वन-गमन के समय दान करते हैं; प्रत्येक बुद्ध, मनुष्य आर्य भी इस सम्यक सम्बुद्धों के उत्पाद स्थान चूळलोक धातु दक्षिणी द्वीप में ही केवल उत्पन्न होते हैं, देव, ब्रह्मा, आर्य लोग भगवान के उत्पत्ति स्थान मज्झिम लोक धातु नामक दस हजार चक्रवालों के भीतर ही उत्पन्न हो सकते हैं। शेष मज्झिम लोक धातुओं में उत्पन्न नहीं हो सकते। यह मनुष्य, देव, ब्रह्मा आर्य जन सम्यक सम्बुद्धों के शिष्य ही होते हैं।

पृष्ठ -- २०३

प्रत्येक बुद्धों की उत्पत्ति

प्रत्येक बुद्ध सुञ्ञकप्प या असुञ्ञकप्प दोनों में सम्यक सम्बुद्ध के शासन के बाद के समय में बिना आचार्य की आवश्यकता के स्वतः बोधि प्राप्त करने वाले छोटे बुद्ध होते हैं। एक भी उत्पन्न होते हैं। दो-तीन सौ - दो सौ भी एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। चक्रवर्ती राजा भी प्रत्येक कल्पों में, प्रत्येक चक्रवालों में, प्रत्येक दक्षिण द्वीप में ही केवल उत्पन्न होते हैं, और चारों द्वीपों पर शासन करते हैं। ऐसा होने पर एक चक्रवाल में दो चक्रवर्ती राजा एक ही साथ उत्पन्न नहीं होते हैं।

महालोक धातु का वर्णन

शिष्यो, उदाहरण से समझो। एक राजा। उसकी राजधानी। उसका राजमहल। उसका पास-पड़ोस। उपचार के समान। यह हमारा एक चक्रवाल - चूळलोकधातु उस धर्मराज बुद्ध की राजधानी के पास-पड़ोस हैं। उस पास-पड़ोस को बाहर घिरे हुए हैं - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर क्षेत्र के घर समूहों के समान - इस हमारे चक्रवाळ चूळलोकधातु को बाहरी वातावरण से जुड़े हुए घेरकर स्थित एक कम दस हजार चक्रवाळ चूळ लोक धातुएं हैं। उस धम्मराज सर्वज्ञ बुद्ध की राजधानी के भीतर पास-पड़ोस को बाहर से घिरे हैं - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर क्षेत्र समूह घर समूहों के समान ही हैं।

एक राजा का राज्य। उसके पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व क्षेत्र घर सहित सारे नगर को चारों ओर से घिरकर रहने वाला एक छोटा आमात्य, जो शासन करता है - अपने

अधिनस्थ जनपद के समान यह हमारे मज्झिम लोक धातु को चारों ओर से घिरकर स्थित मज्झिम लोक धातुएं जो धम्मराज महाराज हैं

पृष्ठ– २०४

ऐसे एक सम्यक सम्बुद्ध के राज्य करने का मज्झिम लोक धातु नामक राजधानी को आस-पास से घिरे हुए जनपद ही कहलाते हैं। चारों ओर स्थित जनपदों पर शासन करने वाला जैसे एक राजा होता है - उसके शासन का वह जैसे अधिकार क्षेत्र होता है ठीक उसी तरह से इन दस करोड़ तक विस्तृत मज्झिम लोक धातु नामक जनपदों के बड़े समूह नामक एक महालोक धातु का अधिपति धम्मराज सम्यक सम्बुद्ध - (सभी बुद्धों का) का अधिकार के भीतर आने वाला एक राज्य कहलाता है।

यह कथन सत्य है। शिष्यो, रतन सुत्त, खन्ध सुत्त, मोर सुत्त, धजग्ग सुत्त, आटानाटिय सुत्त परित्राण सुत्तों को जब भगवान ने देशित किया तब-तब उन परित्त का प्रभाव आणा दस संपूर्ण महालोक धातु में फैल गया। इस महालोक धातु के भीतर स्थित देव ब्रह्मा हाथ जोड़े, सिर झुकाये उस परित्त अधिकार आणा को ग्रहण करते हुए हैं। राजा अपने राज्य के भीतर कुछ जनपदों, कुछ क्षेत्रों में कभी-कभी स्वयं भी जाता है - उसी तरह मेरे शिष्यों - ये हमारे धर्मराज सम्यक सम्बुद्ध भी अपने आणा क्षेत्र (अधिकार क्षेत्र) में आने वाले कुछ जनपदरूपी लोक धातुओं में धर्म देशना के लिये कभी-कभी जाते हैं।

अनन्तलोक धातु का वर्णन

इसी तरह शिष्यों, इस हमारे महालोक धातु में जिस तरह एक सम्यक सम्बुद्ध का अधिकार शासन होता है उसी तरह इस लोक धातु के आठों दिशाओं में ऐसे ही महालोक धातु असङ्खेय्य हैं - अनन्त हैं। लोक धातुओं का अन्त नहीं। इन अनन्त महालोक धातुओं को उन सबको एक अनन्त लोक धातु मानना होगा। शिष्यों, इसलिये **लोक धातु - चूळ लोक धातु, मज्झिम लोक धातु, महालोक धातु, अनन्त लोक धातु**

पृष्ठ– २०५

इस तरह चार तरह के लोक धातुओं को भलीभांति जानना होगा। उन अनन्त अन्य महालोक धातुओं का विनाश और उत्पत्ति की समस्त प्रक्रिया, उसके अतिरिक्त महालोक धातुओं में चक्रवर्ती राजा का क्षेत्र, मनुष्य देव ब्रह्मा अरिय लोगों की उत्पत्ति, प्रत्येक बुद्धों की उत्पत्ति, सम्यक सम्बुद्धों की उत्पत्ति यह सारा कुछ हमारे महालोक धातु के समान ही होता है - जिसका वर्णन किया जा चुका।

एक महालोक धातु में एक बुद्ध का उत्पन्न होना

शिष्यो, शेष संपूर्ण अनन्त महालोक धातुओं में किस कारण से बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध,

आर्य लोग उत्पन्न होते हैं? शिष्यों, इस सत्त (प्राणि) लोक में जरा-भय, व्याधि-भय, मरण-भय हमेशा प्रत्यक्ष रूप से रहते हैं। उस जरा, व्याधि, मरण के तीनों भय के बिना नहीं रह सकते। उस भय से हमेशा दबे रहते हैं यदि बुद्ध उत्पन्न न हों तो उन्हें प्रोत्साहित करने वाला कोई नहीं होगा। अतः बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध आर्य आदि को उत्पन्न होना होता है। यह कथन सत्य है। शिष्यो, यदि सत्तलोक में जरा-भय, व्याधि-भय, मरण-भय यह तीनों भय नहीं होता - अतीत, अनागत, पच्चुप्पन्न किसी भी काल में बुद्ध - प्रत्येक बुद्ध, आर्य कभी भी उत्पन्न नहीं होते। क्योंकि शिष्यों - वे जरा, व्याधि, मरण के तीनों भय प्रत्यक्ष हैं - इसलिये लोक में बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, आर्य पूर्व में भी उत्पन्न होते रहे। वर्तमान में भी उत्पन्न हो रहे हैं - बाद में भी उत्पन्न होते रहेंगे।

जरामरण दुक्खेहि, चोदिता भूसपीळिता।
सब्बासु लोकधातूसु, उप्पज्जन्ति महेसिनो।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

पृष्ठ – २०६

शिष्यो, जरामरण दुक्ख के अनवरत दोषों के आरोपित अनवरत पीड़ित संपूर्ण अनन्तलोक धातुओं में बुद्ध उत्पन्न होते हैं।

शिष्यो, एक-एक बुद्धों का शासित देश उनके राज्य के समान है। यह एक-एक अनन्त महालोक धातु एक दूसरे से बीच में नौ लाख साठ हजार (९,६०,०००) योजन मोटी वायु मण्डल से पृथक हैं। एक-एक अनन्त महालोकों को विभाजित करने के कारण इस वायु मण्डल की मोटी सतह को लोकन्तरिक वायु कहते हैं। ऐसा समझना। इन लोकान्तरिक वायु से प्रत्येक अनन्त महालोक धातु बंटे होने के कारण बहुत दूर-दूर हैं। महालोक धातु को धारण करने वाला जल भी निकट नहीं है। इस तरह बिना निकट रहे - वायु मण्डल पृथक-पृथक विभाजित रहने के कारण - यदि अचानक किसी एक महालोक धातु में अग्नि से प्रज्वलन होता है तो भी उस प्रज्वलित लोक धातु के पड़ोस में स्थित अन्य महालोक धातुओं को वह नहीं फैलती है। जहां जिस महालोक धातु में वह अग्नि प्रज्वलन होता है केवल उसी लोक के ब्रह्मलोक तक परिपूर्ण कल्पारम्भ वर्षा जल भी अन्य पड़ोसी महालोक धातुओं तक नहीं आप्लावित करता है। यह **चित्त द्वारा निर्मित लोक की स्थिति है।**

कल्पारम्भ में मनुष्य लोक में मनुष्यों की उत्पत्ति

शिष्यो, इस तरह चित्त द्वारा निर्मित लोक में इस मनुष्य लोक में - मनुष्य किस समय उत्पन्न हुए? धरती पर आये? शिष्यों, सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र-तारे भी उत्पन्न नहीं हुए थे। कुछ काल के अनन्तर ऊपर के ब्रह्मलोक से ब्रह्म सत्व जिनकी आयु वहां पूरी हो चुकी थी, आयुक्खय; कर्म पूरी हो चुकी थी - कम्म क्षय;

पृष्ठ – २०७

आयुक्खय, कम्मक्खय दोनों के उभयक्खय - इन तीन-तीन मरणुप्पत्ति में से किसी एक-न-एक द्वारा च्युत हुए। वे मनुष्य लोक में द्वीप पर उपपत्त पटिसन्धे द्वारा मनुष्य सत्तव उत्पन्न होकर आये।

कल्पारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति व स्थिति

उन प्रारम्भिक मनुष्यों की न तो पुरुष आकृति थी न स्त्री। ब्रह्माओं के आकृति के समान ही मुसल्लम थे। न कोई वस्त्र ही वे धारण करते थे। भोजन भी नहीं करते थे। भोजन पर आश्रित नहीं थे। वे आभस्सर ब्रह्माओं के समान पीतिभक्ख (प्रीतिभक्षी) के समान कुछ काल तक रहे। ब्रह्माओं के समान आकाश में चलने की कम्मजिद्धि भी उनमें थी। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र का प्रकाश भी नहीं था। अपने स्वयं के प्रकाश से ही अन्धकार को दूर कर घूमते फिरते थे। उसके बाद कुछ काल व्यतीत हुआ। धरती पर भी विभिन्न स्थानों पर पपड़ियां उभर गईं। वर्ण, गन्ध रस से पूर्ण वह धरती का रस उन्हें आकर्षित की। उनके मन में तृष्णा उत्पन्न हुई। हाथ से उसको स्पर्श कर चखा। स्वादिष्ट लगा। राग चित्त उत्पन्न हुआ। चाटा और निगल लिया। इस प्रकार खाना सीख लिया। अब हमेशा आहार स्वरूप खाने लगे। आहार आश्रित हुए।

कल्पारम्भ में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों की उत्पत्ति

रस पृथ्वी की पपड़ी का ठोस आहार लेने के फलस्वरूप उनका स्वयं प्रभापन लुप्त हो गया। अन्धेरे में भयभीत होने लगे। इसे दूर करने एवं निर्भय होने हेतु

पृष्ठ – २०८

पचास योजन लंबा-चौड़ा सूर्य उत्पन्न हुआ। उस समय के कल्पारम्भी लोग यह सोचे कि उन्हें निर्भय करने के लिये यह उत्पन्न हुआ है। इसलिये उसको 'सूरिय' नाम दिया। सूर्य दिन भर प्रकाश कर सायंकाल ढलकर लुप्त हो गया। फिर अन्धकार हो गया। उन्हें फिर भय लगने लगा। तब प्रकाश प्राप्ति हेतु उनकी कामना बढ़ी। उनकी कामना के अनुकूल नक्षत्र, तारों सहित उनचास योजन विस्तार वाला चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। तब उन कल्पारम्भी मनुष्यों ने सोचा कि यह हमारी कामनाओं के कारण उत्पन्न हुआ। हमने चाहा। इसलिये उसका नाम 'चन्दा' दिया। वे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे जब उत्पन्न हुए तब चन्द्रमा-सूर्य के एक साथ ही उत्तरफरगुणी नक्षत्र के संग निकला इसलिये फग्गुण पुण्णमी (फाल्गुन पूर्णिमा) पुकारा। इस फाल्गुन पूर्णिमा को ही बर्मी भाषा में टपौंलाप्ये कहते हैं। तबसे प्रारम्भ कर लगातार दिन, रात, माह, ऋतु, वर्ष प्रकट रूप में हो गया। दिशाएं भी स्पष्ट हो गईं।

प्रारम्भ में स्त्री पुरुष की उत्पत्ति

वे कल्पारम्भी लोग ठोस आहार लेना आरम्भ किये तो उनके रूप में भी परिवर्तन आ गया। कुछ का वर्ण सुन्दर, कुछ का कुरूप। सुन्दर वर्ण वाले, कुरूप वर्ण वालों को

छोटा मानकर उन्हें हेय समझते थे। इस तरह मान अहंकार होने के कारण उसके लुप्त होने पर - **पदालता** नामक

पृष्ठ– २०९

लता वल्लरियां उत्पन्न हुई। इसी मीठी लता को आहार के रूप में लेने लगे। कालान्तर में पदालता भी उन लोगों के अतिमान के बढ़ने से लुप्त हो गया। उसके बाद बिना छिल्के का शाली धान उत्पन्न होने लगा। उस चावल को मटके में पकाकर खाने लगे। अब उसके साथ खट्टा-मीठा, साग-सब्जी की कामना होने लगी। उस कामना के अनुसार होने लगा।

जब अत्यधिक ठोस अन्न ग्रहण करने लगे तो मल-मूत्र उत्पन्न होने लगा। उसको त्यागने के लिए संबंधित गुदा द्वार व मूत्र नली उत्पन्न हुई। जो स्त्रियोचित थी उनको स्त्री का अंग तथा जो पुरुषोचित थे उनको पुरुष का अंग उनकी आकृति रचना बन गई। तबसे उनमें लज्जा का भाव उत्पन्न हुआ। कल्पतरू से वस्त्र को निकालकर अपने आपको ढंकने लगे। इस तरह वस्त्र पहनना शुरू किये। कल्पारम्भ से ही हर द्वीप में कल्पतरू थे। बाद में चलकर उत्तरी द्वीप में ही हमेशा होते हैं।

आगारिय - अनागरिय दो तरह के मनुष्यों का विभाजन

तब पुरुष स्त्रियों को गंभीरतापूर्वक ललचायी आंखों से घूरते थे। स्त्रियां भी पुरुषों को गंभीरतापूर्वक ललचायी आंखों से घूरा करती थीं। इस तरह घूरते देखते - चिन्तन करते, अरसे के बाद कामराग की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होने लगी। फलतः मैथुन क्रिया में उतर गये। जो ऐसा नहीं करते वे विद्वान लोग वासना का सेवन करने वालों को धिक्कारते हुए कहते– "धी-वसला, धी-वसला" वृषलों निकृष्टों, घृणास्पद। "वृषलों घृणास्पद" - और थू-थू कहते तथा ढेले से मारते। डंडों से, भालों से मारते थे। अतः इन दुत्कारों से बचने के लिये - निंदा एवं मार से छुटकारा पाने के लिए वासना को चाहने वाले जोड़े अपने को बचाते हुए मैथुन सेवन हेतु आड़ करने के विचार से घर बनाये। वे घर-आगार में रहने लगे। मैथुन को बुरा समझने वाले लोग वृक्ष मूलों में ही रहने लगे। वे अनागारिय हो गये।

पृष्ठ– २१०

इस प्रकार घर में रहने वाले आगारिय मनुष्य तथा बिना घर के रहने वाले अनागारिय - यह दो तरह के मनुष्य हुए।

संग्रह करने के कारण शालि धान के क्षेत्रों का बंटवारा हुआ

उन आगारिय लोगों में कुछ आलसी लोग थे। प्रतिदिन कौन जावे शालि चावल के खेत में। दो-तीन दिन का एक साथ लेते आये। घर में लाकर मटके में संग्रहित कर

लिया। उनका देखा-देखी बाकी आलसी लोग भी इसी तरह करने लगे। वह दो-तीन दिन का लाया तो यह चार-पांच दिनों का लाया। इस संग्रह जैसा **सन्निधि** कृत्य करने के कारण अब शालि चावल पर छिलके होने लगा। पहले जहां शालि चावल काट लेते थे वहां दूसरे दिन पुनः ज्यों का त्यों शालि चावल उग आता था। फल लगा हुआ मिलता था। लेकिन इस **सन्निधि** कृत्य करने के बाद से ऐसा होना बन्द हो गया। जहां से एक बार काट लिये वहां केवल कटा हुआ भाग ही रहता था। तब सब एकत्र हुए। सत्वों में अधर्म उत्पन्न हो गया है। हम सबका भला भाव समाप्त हो चला है। अच्छाई से गिर चुके हैं। इस तरह शालि धान के खेत को आपस में बांट लिया। अपने-अपने खेत का भाग अलग-अलग कर लिये।

सर्वप्रथम (कल्पारम्भ के समय) सम्मत राजा को नियुक्त करना

खेत का विभाजन हो गया। उसके बाद कोई एक आदमी किसी दूसरे के खेत से जाकर धान ले आया। उसके मालिक को बिना बताये चोरी कर लाया। खेत का मालिक एक-दो बार पकड़ा। उसे डांटा। मना किया। तीसरे बार भी उसको चुराते पाया था तो पकड़कर खूब पिटाई कर दिया। लोग इकट्ठा हो गये। सबने मिलकर सभा किया। लोक में बुरे दुर्जन उत्पन्न हो गये। उनको दबाने के लिये, सुधारने के लिये एक व्यक्ति को जो कि समझदार हो - नियुक्त किया। जिसे नियुक्त किया वह राजा हुआ।

पृष्ठ– २११

तय किया कि वह व्यक्ति केवल न्याय करेगा। उसे सभी लोग अपने शालि चावल का दसवां भाग प्रति वर्ष दिया करेंगे। इस तरह सबने एक मत से सहमति जाहिर की और राजा का चुनाव कर दिया। उस समय जो नियुक्त होकर राजा बनाया गया वह हमारे बोधिसत्व थे। सबकी सहमति से नियुक्त किया गया था अतः उस राजा का नाम **महासम्मत** पड़ा। धरती - कृषि भूमि पर शासन करने वाला होने के कारण **खत्तिय** (क्षत्रिय) नाम पड़ा। धर्मानुसार अन्यों को, प्रजा को स्नेह करने के कारण **राजा** कहलाया। इस राजा के अतिरिक्त शेष लोग, आगारिय लोग कृषि, व्यापार इत्यादि कार्य को करने के कारण - **वेस्स (वैश्य)** कहलाये। अपने-अपने गृह के स्वामी होने के कारण **गृहपति** कहलाये। कालान्तर में वैश्यों में से कोई-कोई किसी कारणवश बहुत गरीब हो गये तो वे दास का कार्य करने लगे। निम्न कार्य तथा निम्न विचार व निम्न आजीविका के कारण वे **सुद्द** (शूद्र) कहलाये। इस तरह आगारिय लोगों में राजा, वैश्य और शूद्र यह तीन विभाजित हो गये।

प्रारम्भ में ब्राह्मणों की उत्पत्ति

घर में नहीं रहने वाले अनागारिय लोग ब्रह्मचर्य शील से पूर्ण होने के कारण आगारिय लोगों से श्रेष्ठ थे। इसलिये उन्हें **ब्रह्मण** कहा जाने लगा। ब्राह्मण शब्द उत्तम बोधक है। एक प्रकार से मैथुन धर्म को कुशल जल में बहा देने वाले होने के कारण

ब्राह्मण नाम पड़ा। ये ब्राह्मण लोग आगारिय मनुष्यों के घर से भिक्षान्न प्राप्त कर भिक्षु धर्म से जीवन-यापन करते थे। आगारिय उनकी वंदन-पूजन करते थे। दान देते थे। ये ब्राह्मण कुछ भिक्षावृत्ति से जीविका चलाते थे। कुछ कन्दमूल फल-फूल पर जीविका चलाते थे। वे वन-पर्वत, गिरि-कन्दरा, वृक्ष-मूल में रहते थे। कसिण इत्यादि

पृष्ठ– २११

कर्म स्थानों का अभ्यास करते थे। धर्म भावना करते हुए लोकीय ज्ञान, अभिञाण को प्राप्त होते थे। इस तरह ज्ञान अभिञ्ञाण को प्राप्त होने से वे लोक में भलीभांति जाने-पहचाने जाने वाले सदाचारी थे। लोक की भलाई हेतु साम, यजु, इरु (ऋग्) नामक तीन वेदों को उत्पन्न किये। उसकी देशना किये। अक्षर, पद, पाठ, वाक्य, नाम में खूब निपुण होने के लिये शब्द, छंद, अलङ्कार, अभिधान ग्रन्थों की भी रचना की। उसकी देशनाएं की। कालान्तर में कुछ गृही जीवन के आगारिय लोग भी गृहस्थ जीवन त्यागकर अनागारिय ब्राह्मण जीवन में प्रविष्ट होकर व्याकरण सहित तीनों वेदों का अध्ययन करने लगे। ज्ञान, अभिञ्ञाण की प्राप्ति हेतु अभ्यास में लगे कुछ ब्राह्मण जटा-जूट रखे हुए ऋषि रूप में साधना करते थे। कुछ मुंडित केश परिव्राजक होते थे। बहुत काल व्यतीत होने पर वेदों के जानकार ब्राह्मण लोग ज्ञान अभिञ्ञाणों की प्राप्ति हो सके ऐसा बिना प्रयत्न किये - वन, पर्वतों, अरण्यों में बिना निवास किये - श्वेत वस्त्र धारण कर - पगड़ी बांधकर गांव के मुख द्वार के निकट आश्रम बनाकर गांव के बालक-बालिकाओं को वेद पढ़ाने लगे। इस प्रकार रहने वाले ब्राह्मण लोग ध्यान की प्राप्ति नहीं कर पाने के कारण "अझायको = ज्ञान अप्राप्त व्यक्ति" कहलाते थे। इस प्रकार हेय संबोधन का नामकरण कर दिये। जब बहुत समय व्यतीत हो गया तो वे वेदों को कंठस्थ करने वाले ब्राह्मण "अज्झायको = वेद को कंठस्थ किये लोग" इस तरह से गरिमायुक्त अर्थधारी शब्द बन गया।

प्रारम्भ में चार जातियों की उत्पत्ति

यह अज्झायक ब्राह्मण लोग बहुत समय व्यतीत होने पर ब्रह्मचरिय सील में स्थापित नहीं रह पाये। वे विवाह करने लगे तथा घर-गृहस्थी वाले आगारिय लोगों के समान हो गये। राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र इस तरह चार वर्णों की उत्पत्ति हुई।

पृष्ठ– २१३

जातियों, भाषाओं में विभिन्नता

इन प्रारम्भिक ऋषि, सहित चारों वर्णों की भाषा एक ही रही। भिन्नता नहीं रही। अकेले मागध भाषा एक ही था। मागध भाषा में ही बातचीत किया करते थे। बहुत समय व्यतीत होने पर देश, ऋतु, जलवायु धरती के अनुसार विभिन्न भाषाएं - विभिन्न जातियां विभाजित हो गई।

ब्रह्मा (बर्मी) जाति की उत्पत्ति

इस तरह बदलता हुआ - हमारे बर्मी (बह्मा) जाति के प्रारम्भिक आदिपुरुष अपना नाम ब्रह्म रखे। हमारी जाति विकसित हो। जनसंख्या बढ़े। दिन पर दिन विकास हो - इसके लिये - इस अर्थ का बोधक शब्द **बह्म (ब्रह्म) का उपयोग अपनी जाति के लिये किया।**

शिष्यो, यह बह्मा शब्द - बह धातु वुड्ढि = दृहद होने - विकसित होने के अर्थ में। मा - प्रत्यय। बह्मा - बह्मानो। हे बह्मे = हे बह्मानो - इत्यादि से ब्रह्म शब्द जैसा सात विभक्तियों से रूप पूरा होने के लिए पुल्लिंग - आकारान्त राजादि गण है। ब्रो बस्स नामक योग विभाग द्वारा - 'ब' - को - 'ब्र' बनाने पर - ब्रह्मा पद प्राप्त होता है। इसलिये **बह्मा जाति, ब्रह्मा जाति** जो कहना चाहें कह सकते हैं। यह मनुष्य लोक में मनुष्यों के उत्पत्ति का वर्णन हुआ।

चार अपायों के सर्वप्रथन उत्पत्ति का वर्णन

इस मनुष्य लोक, देवलोक इन छः लोकों से मनुष्य देव सत्व लोग - आयुक्खय, कम्मक्खय, उभयक्खय, उपच्छेदक नामक चारों परणुप्पत्ति में से किसी एक के कारण मरने पर, सत्व अपने अकुशल कर्मों के कारण, अपाय लोक में जाते हैं। निरय, तिरच्छान, प्रेत, असूरकाय नामक इन चार अपाय लोकों में उत्पन्न होकर स्थित होते हैं। इस तरह उत्पन्न होकर स्थापित होने में सर्वप्रथम उत्पन्न तिरच्छान प्राणी केवल उपपत्त, संसेदज दोनों द्वारा

पृष्ठ– २१४

ही उत्पन्न हुए। शिष्यो, **कल्पारम्भ वर्षा वर्षण के समय से लेकर अभी तक जो सारा कुछ वर्णन किया, दह रूप धातु सङ्खारों के उदय स्वभाव का ही केवल वर्णन है।**

मनुष्यों के आयु ह्रास का कारण

शिष्यो, यह रूप धातु सङ्खार धर्म इस तरह उत्पन्न होकर पुनः नष्ट हो जाता है। कैसे ? तो समझो : शिष्यो, कल्पारम्भ में मनुष्यों की आयु प्रत्येक द्वीपों में असङ्ख्येय्य वर्षों तक होता था। मन में ज्यों-ज्यों अकुशल धर्म बढ़ता गया - तो वह असङ्ख्येय्य वर्ष लम्बी आयु उनके ऋतु, आहार के प्रतिकूलता के कारण उनमें आई विकृतियों के कारण, मनुष्यों की आयु क्रमशः घटने लगी। इस तरह उत्तरी द्वीप वासियों की आयु घटती हुई एक हजार वर्ष पर आकर स्थिर हो गई। पूर्वी एवं पश्चिमी द्वीप वासियों की आयु सीमा ५०० वर्ष पर आकर स्थिर हो गई। दक्षिणी द्वीप वासियों की आयु घटकर १० वर्ष (दस वर्ष) की रह गई। सौ वर्ष की आयु वाले समय में शालि चावल, शालि भात जिस प्रकार राजसी भोजन राजाओं के लिये था उस दस वर्ष की आयु वाले समय में रुक्ष चावल, रुक्ष भात उत्तम राजसी भोजन हो गया।

अनन्तरकल्प का युद्ध

पांच वर्ष की आयु में लड़कियां जवान हो जावेगी। शादी-विवाह होने लगेगा। पुत्र मां के साथ, पुत्री पिता के साथ, भाई बहन के साथ व्यभिचार करने लगेंगे। कुत्ते सुअर के समान लज्जा विहीन हो जावेंगे। हीरी ओत्तप्प नामक लोकपाल धर्म रहित होंगे। राग, द्वेष, मोह की शक्ति अत्यधिक बढ़ जावेगा। राग की अतिशयता से रोग भय पीड़ित **रोगन्तर कल्प**; दोष की अतिशयता से अस्त्र-आयुध पीड़ित **सत्थन्तर कल्प**; मोह की अतिशयता से अकाल पीड़ित

पृष्ठ– २१५

दुब्भिक्खन्तरकल्प - इन तीन कल्पों में से कोई एक न एक कल्प सात दिवस तक आत्यंतिक प्रखरता से पीड़ित करेगा। मनुष्य मरेंगे। अभी १८ वर्ष की आयु सीमा वाले काल में अस्त्र-शस्त्र का युद्ध वाला सत्थन्तर कल्प युद्ध होगा। शिष्यो, उस समय कोई एक तलवार से काटने के लिये आयेगा तो दूसरा पास में पड़ा चाहे कुछ भी उठायेगा। लकड़ी, बांस, घास - कोई भी वस्तु उठायेगा - वही तलवार बन जावेगा। आपस में कटेंगे, मरेंगे। उन सात दिनों के, कल्प भय के आत्यंतिक प्रखरता से पीड़ित होने की अवधि में, कुछेक पूर्व के संचित पुण्य वाले प्रज्ञावान मृत्यु भय से भयभीत हो जंगल गीरि-गह्वर में छुपकर जान बचायेंगे। समझ लो हर गांव से एक-दो बच जायेंगे। अल्प संख्या में कुछ बचेंगे।

दस वर्ष आयु वाली स्थिति से बढ़ने लगना

जंगल-झाड़, गिरि-गह्वर में छुपे लोग सात दिनों के बाद पुनः अपने-अपने ग्राम निगम लौटने पर आपस मे एक दो मिलेंगे। एक के गले एक लिपटकर रोयेंगे। सभी तो मर चुके। हम थोड़े से बचे हैं। हम आपस में द्वेष न करें। मैत्री युक्त होवें। करुणा युक्त रहें। मुदिता को विकसित करें। पंचशील का पालन करें। एक दूसरे का आदर करें। परस्पर संरक्षण प्रदान करते हुए गांव बसाकर एकता से रहेंगे। इस तरह कुशल धर्म के प्रभाव से उनकी संततियां १० वर्ष की स्थिर आयु से २० वर्ष रहने लगेंगी। २० वर्ष की स्थित आयु वालें की संतान ४० वर्ष और क्रमशः पीढ़ी-दर-पीढ़ी आयु बढ़ते हुए ८० वर्ष - १६० वर्ष की आयु प्राप्त करने लगेंगे।

पृष्ठ– २१६

कल्पों का विभाजन

इस तरह शिष्यों, पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ते हुए असङ्ख्येय्य वर्षों की आयु वाले होते हैं। आयु सीमा बढ़ते क्रम में बहुत तीव्र गति से बढ़ती है। अर्थात् कल्प की चढ़ाई में आयु का बढ़ता क्रम तीव्र होता है। शिष्यों, कल्प का उतार अर्थात् उतार कल्प में आयु के घटने का क्रम धीमी गति से घटता है। इस समय हम उतार कल्प में हैं। देख ही रहे

हो कि आयु सीमा धीमी गति से घटती जा रही है। पूर्व में वेस्सन्तर महाराज के समय सौ वर्षों की आयु सीमा भगवान बुद्ध के समय तक रही। आज वर्तमान समय में भी आयु सीमा सौ वर्ष ही कह रहे हैं। **इस प्रकार मनुष्यों की आयु सीमा असङ्ख्येय से दस वर्ष की आयु सीमा तक, दस वर्ष - आयु सीमा में असङ्ख्येय आयु सीमा तक एक अनन्तर कल्प कहलाता है।** इस अन्तर कल्प में जहां-जहां, जब-जब मनुष्य जन्म लेता है उस अवधि की आयु सीमा उनकी **आयुकल्प** कहलाती है।

लोक (विश्व) के विनाश होने के समय का वर्णन

उपरोक्तानुसार असङ्ख्येय आयु सीमा से दस वर्ष आयु सीमा तक; पुनः दस वर्ष की आयु सीमा से असङ्ख्येय आयु सीमा तक; बार-बार घटते क्रम - बढ़ते क्रम में चलना। इस प्रकार ६४ (चौंसठ) अन्तर कल्प - असङ्ख्येय आयु सीमा तक जाकर रुकता है। उस असङ्ख्येय आयु सीमा वाले कल्प में कुशल कर्म का चरमोत्कर्ष काल सम्पत्ति काल होता है। वहां उस काल में विनाश (प्रलय) नहीं हो सकता। पुनः असङ्ख्येय से नीचे घटते क्रम से एक हजार वर्ष की आयु सीमा पहुंचने पर विश्व में प्रलय होता है। विनाश होता है। थोड़ा अधिक या कम भी हो सकता है जो उपेक्षणीय है। अतः ६४ (चौंसठ) अन्तर कल्प आने पर विनाश होता है ऐसा कहेंगे। इतनी बड़ी सांङ्खिकीय गणना में थोड़ा कम-बेशी को नहीं लेते। ऐसा विद्वान मानते हैं।

लोक (विश्व) विनाश के संबंध में (विषय)।

शिष्यो, इस प्रकार प्रलय या विनाश जब होता है तब कुछ विश्व तो अग्नि द्वारा विनष्ट होते हैं। कुछ जल द्वारा। कुछ वायु, द्वारा विनाश को प्राप्त होते हैं। इस तरह विनाश को प्राप्त होते समय भी केवल अग्नि से लगातार

पृष्ठ– २१७

सात विश्व नष्ट होते हैं। उसके बाद आठवां विश्व जल द्वारा विनष्ट होता है। उसके पश्चात पुनः अग्नि द्वारा विश्व का पुनः सात बार विनाश होता है। उसके बाद फिर आठवें बार पुनः एक बार विश्व का विनाश जल के द्वारा होता है। इसी नियमानुसार अग्नि द्वारा विश्व का विनाश सात बार, जल द्वारा विश्व का विनाश एक बार - यही क्रमवार चौंसठवें विश्व विनाश पर रुकता है। वहां पर यह पूर्ण होता है। चौंसठवां विश्व जल द्वारा ही विनाश को प्राप्त होना चाहिए था परन्तु वह वायु के द्वारा विनष्ट होता है। निम्न रेखाचित्र में (१) अग्नि से विनाश तथा (०) जल से विनाश... चौंसठ बार विश्व के विनाश का क्रम है : (वायु) ....०, ...०, ...०, ...०, ...०, ...०, १ २ ३ ४ ५ ६ ....०, ...० ७ ८ ८ गुणित ८ = ६४

उसके उपरान्त पुनः अग्नि द्वारा विनाश को यह विश्व सात बार - फिर एक बार जल द्वारा आठवां बार - यह क्रम पुनः ६४ बार जावेगा। चौसठवां बार विश्व का

विनाश जल द्वारा न होकर वायु द्वारा होगा। इसी प्रकार बार-बार विश्व का विनाश होते रहता है। इसी को लक्ष्य कर अट्ठकथाकार ने यह देशित किया है :

सत्त सत्तग्गिना वारा, अट्ठमे अट्ठमे दका।
चतुसट्ठि यदा पुण्णा, एको वायुवरो सिया।।

अग्गिना भस्सरा हेट्ठा, आपेन सुभकिण्हतो।
वेहप्फलतो वातेन, एवं लोको विनस्सति।।

सात-सात बार अग्नि से लोक का विनाश होता है। आठवें-आठवें बार लोक का विनाश जल से होता है। जब चौंसठ (६४) पूर्ण होता है तब (उस बार) एक बार वायु द्वारा लोक का विनाश होता है।

आभस्स लोक से नीचे अग्नि द्वारा विनाश होता है। सुभकिण्ह लोक से नीचे जल (आपो) द्वारा विनाश होता है। वेहप्फल लोक से नीचे वायु (वातेन) द्वारा विनाश होता है। इस प्रकार लोक का विनाश होता है।

पृष्ठ– २१८

लोक-विनाश की स्थिति

विनाश की स्थिति को इस प्रकार समझो मेरे शिष्यो, जिस समय चौंसठ अन्तर कल्प पूर्ण हो गया। फिर एक हजार वर्ष की आयु सीमा वाले समय के आने पर (उतार पर) लोक विनष्ट होता है। उस विनाश के समय - विनाश से पहले एक लाख वर्ष पूर्व से ब्रह्मा लोगों के कहने से कामावचर लोक के व्यूहा देवता जानते हैं। वे मनुष्य लोक में लाल वस्त्र धारण कर लाल पुष्प धारण कर - केशों को बिखेरकर रोते हैं। दया जनक भयानक रूप बनाकर मनुष्य लोक के मार्ग पर घूम-घूम कर घोषणा करते हैं - ओ मनुष्यो, आज से प्रारम्भ कर एक लाख वर्ष पूरा होने पर लोक का विनाश होगा। अग्नि द्वारा विनाश होना होगा तो लोक विनाश की अग्नि की स्थिति का वर्णन करते हैं। जल द्वारा लोक विनाश होगा तो उसकी स्थिति बताते हैं। वायु द्वारा लोक विनाश होगा तो उसकी स्थिति बताते हैं। ओ मनुष्यो, इस लोक विनाश भय से मुक्त होने के लिये ब्रह्मलोक पहुंच सकने योग्य कुशल कर्मों का संपादन अप्रमादी होकर करो। माता-पिता की भलीभांति सेवा करो। गुण और आयु में बड़े लोगों का आदर करो। शील का पालन करो। परस्पर मैत्री भावना का विस्तार करो। करुणा, मुदिता, उपेक्खा धर्मों का बहुलीकृत करो। कुशल ध्यान भावना करो। अप्रमादी बनो। यह कहकर वे अपने-अपने निवास स्थान देवलोक चले गये। इस प्रकार जो कहे - वे महालोक धातु के भीतर में अपने चक्रवाळ में (लोक में) अपने देवताओं द्वारा - प्रत्येक चक्रवाळों में ही कहा - ऐसा समझना।

उस समय लोग देवताओं की वाणी सुनकर भयभीत होते हैं। कुशल कर्मों के

संपादन में प्रयत्नशील होते हैं। ब्रह्म-विहार, कसिण का खूब अभ्यास करते हैं। उस समय कुछ मनुष्य उसी वर्तमान जीवन में ही ध्यान को प्राप्त होकर मरने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाते हैं। उस तात्कालिक जीवन में

पृष्ठ– २१९

ध्यान न भी प्राप्त होता है तो भी वे मरने पर उस प्रयत्नशील कुशल कर्मों के कारण देवलोक प्राप्त करते हैं। देवलोक में ही प्रयत्न रत रहते हुए ध्यान भावना करते हुए वहां से च्युत होकर ब्रह्मलोक में पहुंच जाते हैं। देवलोक में देवता लोग भी ध्यान का अभ्यास करते हुए च्युति प्राप्त करने पर ब्रह्मलोक में ही पहुंचते हैं। तारा देवता, चंद्रमा देवता, पूर्व देवता भी ध्यान को प्राप्त करने हेतु प्रयत्न कर च्युति के बाद ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। तारा गण, चन्द्र विमान, सूर्य विमान सत्व विहीन हो जाता है - खाली रहते हुए अपने कक्ष में भ्रमण करते ही रहते हैं। जो-जो ब्रह्मलोक विनाश को प्राप्त करेगा - उनके ब्रह्मा लोग भी उससे ऊपर के ध्यानों का अभ्यास करते हुए च्युति प्राप्त कर विनाश नहीं होने वाले ब्रह्मलोकों में उत्पन्न हो जाते हैं।

मिच्छादिट्ठि वालों का अपाय से लोक-विनाश-पूर्व मुक्त होने का कारण

उस समय चारों अपाय के प्राणी भी अपने पूर्व के किये हुए अपरापरियवेदनिय कुशल कम्म के सहारे सभी अपाय लोक से मुक्त होकर मनुष्य लोक, देवलोक, सुगतिभव पहुंच आते हैं। ध्यान भावना प्राप्त करते हैं। प्रयत्न करते हैं। इस तरह अन्ततः ब्रह्मलोक को ही प्राप्त होते हैं। अपरापरियवेदनिय कर्म रहित कोई भी सत्व नहीं है - शिष्यो! उस समय अपरापरियवेदनिय कुशल कम्म सदा सहायक होता ही है - यह धर्मिता है। नियतमिच्छादिट्ठि निरयवासी भी क्या मुक्त होते हैं? तो हां - मेरे शिष्यों, वे भी मुक्त होते हैं।

"संसार खाणुको हेत बालो पथवीगोपको" यह नियतमिच्छादिट्ठि मूढ़ (बाल) भव संसरण से कभी भी मुक्त नहीं हुए - हमेशा संसरण कर रहने वाले खूंथ के समान ही हैं। कभी भी ऊपर के ब्रह्म लोकों में बिना उठे - धरती में हमेशा उसके रखवाले गोपक सदृश्य ही रहेंगे ऐसा नहीं कहना चाहिए। शिष्यो - आगामी मुक्ति के समय आने पर धर्म का अभ्यास कर

पृष्ठ– २२०

अरिहन्त होते हैं। भव संसरण से मुक्त हो सकते हैं। निकलते हैं। इसलिये भगवान ने देशित किया है :–

अरिया मिच्छत्तनियते पहीने किलेसे पच्चवेक्खन्ति, पुब्बे समुदाचिण्णे किलेसे जानन्ति, मिच्छत्तनियते खन्धे अनिच्चतो विप्पस्सन्ति– (पट्ठानपाळि)

पूर्व में नियतमिच्छादिट्ठि वाले आर्यपुद्गल, मार्ग द्वारा स्वयं प्रहीण कर चुके नियतमिच्छादिट्ठि क्लेशों को पर्यवेक्षण कर पूर्व के मिच्छादिट्ठि रहने के समय में - अपने चित्त सन्तति में उत्पन्न क्लेशों को पुर्वेनिवासानुस्सति ज्ञान द्वारा पुनः जान लिये। अपने चित्त सन्तान में रहते आये मिच्छादिट्ठि क्लेश खण्ड को अनित्य द्वारा विपश्यना किया। देख लिया।

शिष्यो, इस प्रकार मिथ्या दृष्टि वाले पुग्गल इस मनुष्य के रूप में ही अपनी मंद ज्ञान बुद्धि के कारण नहीं जानकर कम्म कम्मफल की उपेक्षा कर जब अपाय गति को प्राप्त किये, कम्म के फल को स्वयं अपनी आंखों से देखा भी, तब अपाय गति को प्राप्त होते ही उन मिथ्या दृष्टियों को त्याग दिया। कुछ थोड़ा समय व्यतीत होने पर उसको त्यागा। सुरट्ठ नगर के पिङ्गल नामक राजा का एक आमात्य नन्दक मिथ्या दृष्टि सम्पन्न था। अपाय गति को पाते ही उसने मिथ्या दृष्टि का परित्याग कर दिया। मिथ्या दृष्टि त्यागने के बाद भी कर्मानुसार वह अपाय के दुःखों को भोगने के पश्चात ही मुक्त हुआ। इस लोक (कल्प) में उत्पन्न हुए नारद जातक में नियतमिच्छादिट्ठि वाले गुणकस्सप अपाय गति पाया। निरयलोक गया। इस हमारे भगवान बुद्ध के समय में नियतमिच्छा मत वाला पूरणकाश्यप भी उत्पन्न हो चुका है। शिष्यो, इस तरह नियतमिच्छादिट्ठि पुग्गल कल्प दूर नहीं होता, उसके भीतर थोड़े समय में ही मुक्त हो जाते हैं। कल्पांत निकट आने पर भी मुक्त होते हैं।

पृष्ठ– २२१

कल्पांत के समय कल्प कोलाहल होने के समय तो निश्चित रूप से मुक्त होते हैं। कब तक भोगना पड़ेगा कोई शाश्वत नियम नहीं है। जितना दोष होता है उतने समय तक भोगकर उसके मुक्त होने का जब समय आता है तो मुक्त होते हैं। धरती के रखवारे के तरह वहीं नहीं रहते। इस प्रकार कोई शाश्वत नियम नहीं होने के कारण भगवान ने भी कब तक भोगना होता है इसकी देशना नहीं की है। अपाय निरय में गिरा - भोगा इतना ही मात्र देशित किया है।

संघभेदक पुग्गल पूरे कल्प पर्यंत निरयलोक में रहता है–

"आपायिको नेरयिको, कप्पट्ठो संघभेदको"

इस तरह - चूळवापाळि, इतिवुत्तक पाळि - में देशित्त किया है।

भिक्षुओ, संघभेदक पुग्गल आपाय लोक में जाता है। निरयलोक में जन्म पाता है। निरयलोक में पूरा कल्प भर रहता है।

शिष्यो, भगवान ने जो यह देशना किया है– "कप्पट्ठो संघभेदको" अथवा "कप्पं निरयम्हि पच्चति" इसका अर्थ यह नहीं कि जब कल्पारम्भ हुआ तब से ही संघभेदक कल्प पर्यंत निरयलोक में पड़ा रहा। जिस समय वह संघ में भेद डाला उसके उपरान्त

कल्प का जो शेष समय बचा उस समय पर्यंत वह निरयलोक में सड़ता रहा। लोक का विनाश होगा– कप्प कोलाहल हुआ तब वह निरयलोक से मुक्त हुआ - यह समझना चाहिए।

इसलिए कल्प विनाश के बाद भी निरय से बिना मुक्त हुए हमेशा नरक भोगने वाला एक भी नहीं होता। सब मुक्त हो जाते हैं। सभी ब्रह्मलोक

पृष्ठ– २२२

ही जाते हैं। क्या केवल ब्रह्मलोक में ही जाते हैं? क्या वे महालोक धातु चक्रवाळ से बाहर नहीं चले जाते? दूसरे महालोक धातु के चक्रवाळ में नहीं चले जाते? अपने ही लोक धातु चक्रवाळ में ही हमेशा चक्कर लगाना होगा, ऐसा कोई शाश्वत नियम नहीं है। ऐसा नहीं होने पर भी एक महालोक धातु के भीतर के सत्व का किसी अन्य महालोक धातु में बदलकर चले जाना कठिन है। शिष्यों, प्राणि स्वभाव है कि वह अपने जाने-पहचाने, सुने-सुनाये स्थान पर ही पुनः उत्पन्न होना चाहता है। अनजाना, अनसुना - जहां कभी उत्पन्न नहीं हुआ - उसमें उत्पन्न होना कठिन होता है। उस प्रकार उत्पन्न होना कठिन है इस बारे में - रोहितसवत्थुक, अङ्गुत्तर पाळि में आया दानुपपत्ति सुत्त आदि को उदाहरण स्वरूप देखकर जान सकते हैं - मेरे शिष्यो!

लोक विनाश की अवस्थाएं

१. शिष्यो, इस तरह कप्पकोलाहल होकर कामावचर के प्राणी जब ब्रह्मलोक को जा रहे होते हैं, तब मनुष्य लोक में सभी मनुष्यों के जाने के पूर्व दस लाख वर्ष बीतने पर लोक विनाशक वर्षा एक बार घनघोर होती है। तब धरती पर बचे शेष लोग फसलों का बीज निकालकर बो देते हैं। बोया हुआ बीज पुनः वापस नहीं लौटता है। परिपूर्ण रूप से अनावृष्टि हो जाती है। अकाल पड़ जाता है। उस समय लोग मर कर देवलोक जाते हैं। वहां ध्यान आदि का अभ्यास करते हुए ब्रह्मलोक पहुंच जाते हैं। वह लोक विनाशक घनघोर वर्षा एक बार बरस चुकने के बाद आकाश, अश्व के हिनहिनाने के समान, ध्वनि करता है। फिर उसके बाद, एक बूंद भी बरसात नहीं होती। एक लाख वर्ष व्यतीत होने पर यदि अग्नि द्वारा लोक विनाश होना होता है तो - महालोक धातु के भीतर प्रत्येक चक्रवाळ में दो सूर्य उदित होते हैं। उसके बाद क्रमशः तीन, चार, पांच, छः, सात सूर्य निकलकर चक्रवाळधारित जल सहित चक्रवाळ - महालोक धातु को प्रज्वलित कर देते हैं। सूर्य विमान सहित देव, प्रथम ध्यान ब्रह्म लोकों को भी जलाकर - सारा जलावन समाप्त होने पर अग्नि ज्वालाएं समाप्त हो जाती हैं। ऊपर और नीचे का सारा आकाश एक साथ मिल जाता है। यह रिक्त महाविशाल आकाश घोर अन्धकारमय हो जाता है।

पृष्ठ– २२३

२. यदि जल द्वारा लोक विनाश होना होता है तो - अत्यंत खारा घनवर्षण होता

है। चक्रवाळ - महालोक धातु को - संपूर्ण को, कण-कण को, घोलकर द्रव बना देता है। देवलोक, प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान ब्रह्म लोकों के सहित धूल-कण-सा पिघलाया घोल - द्रव बना देता है। चक्रवाळ धारक जल सहित वह लोक विनाशक खारा जल अतिशीघ्र विलुप्त हो जाता है। ऊपर एवं नीचे का आकाश एक साथ मिलकर एक हो जाता है। यह रिक्त महाविशाल आकाश घोर अन्धकारमय हो जाता है। तमसाच्छादित।

३. यदि जल द्वारा विनाश होने वाला लोक होता है तो प्रचंड वायु उठती है। धूल, ढेले, पत्थर को आकाश में उड़ा देता है। थोड़ी देर में ही चट्टान - शिलामय शिखरों को भी आकाश में उड़ा देता है। हिमालय पर्वत, चक्रवाळ पर्वत, सुमेरू पर्वत को भी यह प्रचंड वायु वेग उड़ा देता है। चक्रवाळ महापृथ्वी भी खण्ड-खण्ड, चूर्ण-चूर्ण होकर आकाश में उड़ जाता है। चक्रवाळ धारक जल को भी अस्त-व्यस्त, तितर-बितर, तहस-नहस कर आकाश में उड़ा देता है। तारे, सूर्य, देवलोक, प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान ब्रह्म लोकों को भी दबाव डालते हुए - ऊपर-नीचे सबको धूल के समान उड़ा देता है। लोक विनाशक वायु को प्रचण्डता से उड़ गये सभी ठोस वस्तुएं, चक्रवाळ चक्रवाळ से, सुमेरू सुमेरू से, सुमेरू चक्रवाळ से, सुमेरू से लोक आदि परस्पर एक दूसरे से टकरा-टकराकर चूर्ण-विचूर्ण होकर, ध्वंस होकर विलीन हो जाते हैं। तब लोक विनाशक वायु थोड़ी देर के लिए थमती है।

ऊपर एवं नीचे का आकाश, सब एक हो जाता है। इस महारिक्त स्थान में केवल महाअन्धकार ही होता है।

असङ्ख्येय कल्प - महाकल्पों को पृथक-पृथक वर्णन (असङ्ख्येय कल्प तथा महाकल्प में अन्तर)

शिष्यो, इस लोक विनाशक वर्षा के बरसने से प्रारम्भ कर महारिक्त अन्धकारमय आकाश के होने तक - इस विनाशकालीन अवधि को

पृष्ठ– २२४

एक संवट्ट असङ्ख्येय कल्प कहते हैं। महारिक्त अन्धकारमय आकाश के होने के समय से लेकर लोक निर्माणकारी वर्षा के बरसने तक विनष्ट होकर पुनः स्थित होने के शुरू तक **एक संवट्टट्ठायी असङ्ख्येय कल्प** कहते हैं। लोक निर्माणकारी वर्षा के बरसने से लेकर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र के उत्पन्न होने के समय तक विनष्ट होकर पुनः निर्मित होने की अवधि (निर्माणाधीन अवधि) - **एक विवट्ट असङ्ख्येय कल्प** कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र उत्पन्न होने के दिन से लेकर पुनः लोक विनाशक महावर्षा बरसने तक उत्पन्न होकर स्थित रहने तक - एक **मनुष्य निवास विवट्टट्ठायी असङ्ख्येय कल्प** कहते हैं। इन चार–

१. **संवट्ट**– लोक विनाश वर्षा से अंधकारमय आकाश तक।

२. **संवट्टट्ठारी**– अंधकारमय आकाश से लोक निर्त्राणकारी वर्षा तक।

३. **विवट्ट**– लोकनिर्ज्ञाणकारी वर्षा से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र उत्पत्ति तक।

४. **विवट्टट्ठायी**– सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र उत्पति से लोक विनाशक वर्षा तक।

असङ्खेय्य कल्पों की अवधि का **परिमाण** परस्पर बराबर होता है। ६४ (चौंसठ) अन्तर कल्प प्रत्येक ही होता है। इन चारों असङ्खेय्य कल्पों को योग करने पर एक **महाकल्प (१+२+३+४) कहलाता** है। इस एक महाकल्प को ही एक कल्प (*) कहा करते हैं। इस तरह कल्पों का विभाजन करना भी भलीभांति जानो, मेरे शिष्यों। खयाल में रखं लेना।

शिष्यो, जैसा कि पीछे समझा आया उसी के अनुसार उत्पन्न होकर स्थित रहने वाला इस हमारे लोक का - इन तीन - अग्नि, जल, वायु में से अग्नि द्वारा विनाश होगा। शिष्यो, इस वर्तमान समय में ११ (ग्यारह) कल्प व्यतीत होकर १२ (बारहवें) कल्प में पहुंच गये हैं। अभी पहुंचे १२ (बारहवां) से बढ़कर असङ्खेय्य में गिरेंगे। पहुंचेंगे तब पूरा १२ कल्प पूर्ण होगा। आगे - ५२ कल्प व्यतीत होने पर एक हजार आयु सीमा में पहुंचने पर लोकव्यूह देवताओं का कोलाहल, कप्पकोलाहल होने के पश्चात कल्पांत होगा। शिष्यो, उस प्रकार विनाश के बारे में भगवान बुद्ध ने **अनिच्च विपस्सक** अरण्य वाली - पांच सौ भिक्षुओं को सविस्तार देशित किया है। धर्मोपदेश के अन्त में वे पांच सौ भिक्षु अरिहंत हुए। शिष्यो, भगवान द्वारा देशित लोक विनाश की अवस्था - इस सत्तसूरिय सुत्त को मैं यहां उद्धृत कर बता रहा हूं। तुम शिष्य गण भलीभांति सुनो। इसके अर्थ को समझने योग्य हृदयंगम करो। चक्रवाळ लोक धातु का स्थित होकर रहने की अवस्था को भी पीछे

पृष्ठ– २२५

जैसा कि वर्णन किया उसी के अनुसार धारण करना। अब मैं उद्धृत करता हूं :

लोक विनाश पर देशित - सत्तसूरिय सुत्त

१. एवं मे सुतं एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति अम्बपालिवने। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– "भिक्खवो"ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच –

अनिच्चा, भिक्खवे, सङ्खारा; अधुवा, भिक्खवे, सङ्खारा; अनस्सासिका, भिक्खवे, सङ्खारा। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं अलं विरज्जितुं अलं विमुच्चितुं। सिनेरु भिक्खवे पब्बतराजा चतुरासीति योजन सहस्सानि महासमुद्दे अज्झोगाळ्हो। चतुरासीति योजन सहस्सानि वित्थारेन। चतुरासीति योजन सहस्सानि महासमुद्दा अज्झुग्गतो। होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन बहूनि वस्सानि बहूनि वस्ससतानि बहूनि वस्ससहस्सानि देवोन वस्सति। देवे खो पन भिक्खवे अवस्सन्ते ये केचि मे बीजगाम भूतगाम ओसधितिणवनपतयो। ते उस्सुस्सन्ति विसुस्सन्ति न भवन्ति। एवं

अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यवञ्चिदं भिक्खवे अलनेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।

२. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन दुतियो सूरियो पातुभवति। दुतियस्स भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा याकाचि इन्नदियो इसुम्भा, ता उस्सुस्सन्ति विसुस्सन्ति न भवन्ति। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा, यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं। अलं विमुच्चितुं।**

३. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन ततियो सूरियो पातु भवति। ततियस्स

पृष्ठ– २२६

भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा याकाचि महानदियो। सेय्यथिदं गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही, ता उस्सुस्सन्ति विसुस्सन्ति न भवन्ति। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।**

४. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन चतुत्थो सूरियो पातुभवति, चतुत्थस्स भिक्खवे सुरियस्स पातुभावा, ये ते महासरा यतो महानदियो पवत्तन्ति। सेय्यथिदं अनोतत्ता, सीहपताता, रथकारा, कण्णमुण्डा, कुणाला, छद्दन्ता, मन्दाकिनी, ता उस्सुस्सन्ति विसुस्सन्ति न भवन्ति। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितं।**

५. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन पञ्चमो सूरियो पातुभवति। पञ्चमस्स भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा योजन सतिकम्पि महासमुद्दे उदकं ओगच्छति। द्वि योजन सतिकानिपि महासमुद्दे उदकानि ओगच्छन्ति। ति योजन सतिकानिपि चतु योजन सतिकानिपि पञ्च योजन सतिकानिपि छ योजन सतिकानिपि सत्त योजन सतिकानिपि महासमुद्दे उदकानि ओच्छन्ति। सत्त तालम्पि महासमुद्दे उदकं सण्ठाति। छः तालम्पि पञ्च तालम्पि चतु तालम्पि ति तालम्पि द्वि तालम्पि ताळमत्तम्पि महासमुद्दे उदकं सण्ठाति। सत्त पोरिसम्पि महासमुद्दे उदकं सण्ठाति। छ पोरिसम्पि पञ्च पोरिसम्पि चतु पोरिसम्पि ति पोरिसम्पि द्वि पोरिसम्पि पोरिसमत्तम्पि अड्ढपोरिसम्पि कटिमत्तम्पि जण्णुकमत्तम्पि गोप्फकमत्तम्पि महासमुद्दे उदकं सण्ठाति। सेय्यथापि भिक्खवे सरदसमये थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते तत्थ तत्थ गोप्फकपदेसेसु उदकानि ठितानि होन्ति। एवमेव खो भिक्खवे तत्थ तत्थ गोप्फकमत्तानि महासमुद्देसु उदकानि ठितानि होन्ति। पञ्चमस्स भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा

पृष्ठ– २२७

अङ्गुलि पब्बमत्तम्पि महासमुद्दे उदकं न होति। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।**

६. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन छट्ठो सूरियो पातु भवति। छट्ठस्स भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा अयञ्च महापथवी सिनेरू च पब्बतराजा धुमायन्ति संधुमायन्ति सम्पधुमायन्ति। सेय्यथापि भिक्खवे कुम्भकारा वाटो आलेपित्तो पथमं धुमेति संधुमेति सम्पधुमेति। एवमेव खो भिक्खवे छट्ठस्स सूरियस्स पातुभावा अयञ्च महापथवी सिनेरू च पब्बतराजा धुमायन्ति संधुमायन्ति सम्पधुमायन्ति। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं; अलं विरज्जितुं। अलं विमुच्चितुं।**

७. होति खो सो भिक्खवे समयो। यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन सत्तमो सूरियो पातु भवति। सत्तमस्स भिक्खवे सूरियस्स पातुभावा अयञ्च महापथवी सिनेरू च पब्बतराजा - आदिप्पन्ति पज्जलन्ति एकजाला भवन्ति। इमिस्सा च भिक्खवे महापथविया सिनेरुस्सच पब्बतराजस्स झायमानानं डय्हमानानं अच्चिवातेन खित्ता याव ब्रह्मलोकापि गच्छति। सिनेरुस्स भिक्खवे पब्बतराजस्स झायमानस्स डय्हमानस्स विनासमानस्स महता तेजोखन्धेन अभिभूतस्स योजन सतिकानिपि कूटानि पलुज्जन्ति। द्वि योजन सतिकानिपि, ति योजन सतिकानिपि, चतु योजन सतिकानिपि पञ्च योजन सतिकानिपि कूटानि पलुज्जन्ति, इमिस्सा च भिक्खवे महापथविया सिनेरूस्स च पब्बतराजस्स झायमानानं डय्हमानानं नेव दारिका पञ्ञायति, न मसि। सेय्यथापि भिक्खवे सप्पिस्स वा तेलस्स वा झायमानस्स वा डय्हमानस्स वा नेव द्वारिका पञ्ञायति, न मसि। एवमेव खो भिक्खवे इमिस्सा च महा

पृष्ठ– २२८

पथविया सिनेरुस्स च पब्बतराजस्स झायमानानं डय्हमानानं नेव द्वारिका पञ्ञायति, न मसि। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा, यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं, तत्र भिक्खवे को मन्ता को सन्धातो** अयञ्च महापथवी सिनेरु च पब्बतराजा डय्हिस्सन्ति विनस्सिस्सन्ति न भविस्सन्ति अञ्ञत्र दिट्ठपदेहीति। (सत्तङ्गुत्तरपाळि, सत्तसूरिय सुत्तं ७-७-२)

भन्ते महाकाश्यप, इस सत्तसूरिय सुत्त को मैं (आनन्द) इस तरह सुना। एक समय भगवान वैशाली के अम्बपालि वन में विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया– "भिक्षुओं!" इस तरह उन ५०० भिक्षुओं को जो कि अनिच्च विपस्सक भिक्षु थे उन्हें पुकारा तो उन्होंने भगवान को प्रतिवचन दिया जो कि सब-के-सब अरण्यवासी थे– "भन्ते!" कहकर वे अनिच्च विपस्सक अरण्यवासी भिक्षु भगवान की देशना को ध्यान से सिर नवाकर सुना। भगवान ने इस 'अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा' इत्यादि से शुरू कर उपदेश दिया।

भिक्षुओं सङ्खार धर्म अनित्य हैं। सङ्खार धर्म अध्रुव हैं। भिक्षुओं सङ्खार धर्म अनस्सासिक है। इसका आश्वासन नहीं दिया जा सकता। भिक्षुओं, अन्त तक सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है।

पृष्ठ– २२९

वैराग्य (अनासक्ति) उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है। भिक्षुओं, पर्वतराज सुमेरू, चौरासी हजार योजन तक महासमुद्र में नीचे गड़ा हुआ है। विस्तार के अनुसार चारों ओर चौरासी हजार योजन है। महासमुद्र के ऊपर की ओर चौरासी हजार योजन बाहर उभरा हुआ है।

भिक्षुओ, कभी-कभी बहुत दीर्घकाल व्यतीत होने पर - बहुत वर्षों तक, अनेकों सैकड़ों वर्षों तक, अनेकों हजार वर्षों तक वह वर्षा नहीं बरसता। उस लोक विनाशक भयानक वर्षा के बाद वर्षा नहीं होता। सैकड़ों, हजारों वर्षों तक ऐसी ही स्थिति रहती है। भिक्षुओं, वस्तुतः अनेकों, सैकड़ों, हजारों वर्षों तक वर्षा नहीं बरसने पर लगभग सब कुछ समाप्त हो जाता है - यह बीजगाम, भूतगाम, औषधि, तृण, वन-पत्र (वृक्ष-वन-घास इत्यादि) सभी सूख जाते हैं। विशेष रूप से सूख जाते हैं। एक भी नहीं होता।

पृष्ठ– २३०

भिक्षुओ! इसी तरह सङ्खार अनित्य हैं। भिक्षुओं, इसी तरह सङ्खार अध्रुव हैं। इसी तरह भिक्षुओं सङ्खार धर्म आश्वासन रहित है। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद की प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित हैं।

२. भिक्षुओ! कभी-कभी इन वनस्पतियों के न रहने पर अनेकों काल व्यतीत होने पर वर्तमान सूर्य जैसा एक और सूर्य उगता है। दो सूर्य हो जाते हैं। नया सूर्य उत्पन्न हो जाता है। इस तरह दो सूर्यों का भी उदय होता ही है।

पहला सूर्य पश्चिम में डूबता है - तो दूसरा सूर्य पूर्व में उदित होता है। रात होती ही नहीं।

भिक्षुओ! दो सूर्यों के उदय होने लगने से अस्थिर, सभी समाप्त होते हैं। छोटी नदियां, छोटे-मोटे तालाब जो भी होते हैं वह सूख जाते हैं। एक बूंद भी जल उनमें नहीं बचता है। इस तरह भिक्षुओं, सङ्खार अनित्य हैं। भिक्षुओ! इसी तरह सङ्खार अध्रुव हैं। इसी तरह भिक्षुओं सभी सङ्खार धर्म, भरोसे वाले नहीं, आश्वासन रहित हैं।

पृष्ठ– २३१

भिक्षुओ, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

३. भिक्षुओ, फिर अचानक दो सूर्यों के उगते बहुत समय व्यतीत हो जाने पर तृतीय सूर्य उदित होता है। तीन सूर्यों का एक साथ उदित होना भी होता ही है। भिक्षुओं, तीसरे सूर्य के उदित होने के कारण सभी (अस्थिर) महानदियां जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही जैसी पांचों बड़ी नदियां सूख जाती हैं। जल का एक भी बूंद नहीं शेष बचता। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार अनित्य है। भिक्षुओ! इस तरह सङ्खार अध्रुव है। इसी तरह भिक्षुओ यह सङ्खार धर्म भरोसे वाले नहीं - आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

पृष्ठ– २३२

४. भिक्षुओ! इस तरह से कभी-कभी (अचानक?) तीन सूर्यों के उदित होने के लंबे अर्से के बाद चौथा सूर्य उदित होता है। जब चार सूर्य एक साथ उदित हो जाते हैं - ऐसा भी समय आता है। भिक्षुओं, इस चौथे सूर्य के उदित होने से वे बड़े-बड़े सरोवर उनसे निकलने वाली बड़ी-बड़ी महानदियां जो सदा बहती रहती हैं जैसे अनोतत्त सरोवर, सीहपतास, रथकार, कण्णमुण्ड, कुणाल, छदन्त, मन्दाकिनी ये सातों सरोवर सूख जाते हैं। एक बूंद भी जल उसमें नहीं बचता। भिक्षुओं, सङ्खार अनित्य हैं, इसी तरह अनित्य ही हैं। भिक्षुओं, इसी तरह सङ्खार अध्रुव हैं। भिक्षुओं, इस तरह संस्कार भरोसे योग्य नहीं - यह आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, जो भी सङ्खार हैं अन्ततः उन सब सङ्खारों में निर्वेद की प्राप्ति ही उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति ही उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

पृष्ठ– २३३

५. भिक्षुओ! इस तरह से कभी-कभी चार सूर्यों के उदित होने के लंबी अवधि, लंबे काल के बाद, पांचवा सूर्य उदित होता है। ऐसा भी समय आ जाता है जब पांच सूर्य एक साथ उदित होते हैं। ऐसा समय आता ही है। भिक्षुओ! उस पांचवे सूर्य के उदित होने के कारण महासमुद्र में सौ योजन तक जल घट जाता है। दो सौ योजन तक महासमुद्र का जल घट जाता है। तीन सौ योजन तक महासमुद्र का जल स्तर कम हो जाता है। चार सौ... पांच सौ... छः सौ... सात सौ योजन तक समुद्र का जल स्तर नीचे चला जाता है - घट जाता है।

सात ताड़ वृक्ष के बराबर जल महासमुद्र में स्थित रहता है। छः ताड़ वृक्ष के बराबर... पांच ताड़ वृक्ष के बराबर... चार ताड़ वृक्ष के बराबर... तीन ताड़ वृक्ष के बराबर... दो ताड़ वृक्ष के बराबर... एक ही ताड़ वृक्ष के बराबर... उस महासमुद्र में जल शेष रह जाता है। सात पोरिस तक ही महासमुद्र में जल शेष रह जाता है। छः पोरिस... पांच पोरिस (एक पुरुष के बराबर ऊंचाई का माप)... चार पोरिस... तीन पोरिस... दो पोरिस... एक पोरिस... तक ही महासमुद्र में जल शेष रह जाता है।

पृष्ठ– २३४

आधा पोरिस... कटि प्रदेश (कमर भर) बराबर ही महासमुद्र में जल रह जाता है। जांघ भर... घुट्ने भर... गोप्फक (सुपली) बराबर... ही महासमुद्र में जल रह जाता है।

भिक्षुओ! जैसे शरद ऋतु के समय कार्तिक माह में स्थूल बारिश हो जाने पर कहीं-कहीं गोपदों में (गोप्फक), सुपली डूबने भर छिप-छिप, पानी भर जाता है - उसमें जितना पानी स्थित होता है - उतना ही पानी महासमुद्र में रह जाता है। भिक्षुओं पांचवे सूर्य के उदित होने के कारण अंगुली के एक पोर के बराबर भी जल महासमुद्र में नहीं रहता।

भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार अनित्य है, भिक्षुआं इस तरह सङ्खार अध्रुव हैं। इसी तरह भिक्षुओं! यह सङ्खार धर्म भरोसे वाले नहीं। आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, सभी सङ्खारों के प्रति निर्वेद-प्राप्ति उचित है। वैराग्य -(अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

पृष्ठ– २३५

६. भिक्षुओ! इस तरह से पांच सूर्यों के उदित हो जाने के बहुत लम्बे अन्तराल के पश्चात छठवां सूर्य उदित होता है। भिक्षुओ! ऐसा समय भी आता है जब यह सूर्य एक साथ उदित होते हैं। ऐसा समय आता ही है। भिक्षुओ! उस छठवें सूर्य के उदित होने पर - उसके उदित होने के कारण - यह महापृथ्वी, पर्वतराज सुमेरू धुआंने लगता है। इसमें से धुआं निकलने लगता है। बहुत ज्यादा धुआं निकलने लगता है। काला-काला धूम निकलने लगता है। भिक्षुओं, ठीक वैसे जैसे कुम्भार के कुम्भ पकाते समय उसके आंवे (भट्टी) से धूम निकलता है। जब प्रज्वलित नहीं हुआ रहता है तब खूब धुआंता है - काली-काली धूम निकलती है। इसी तरह छठवें सूर्य के निकलने के कारण भिक्षुओं, यह महापृथ्वी, पर्वतराज सुमेरू धुआंने लगता है। अतिशय धुआं आने लगता है। काला-काला धूम उमड़ने लगता है।

भिक्षुओ! सभी सङ्खारों के प्रति निर्वेद-प्राप्ति उचित है। भिक्षुओ! इस तरह सङ्खार अध्रुव हैं। भिक्षुओं इस तरह सङ्खार धर्म आश्वासन रहित हैं।

पृष्ठ– २३६

भिक्षुओं! सभी सङ्खारों के प्रति निर्वेद-प्राप्ति उचित है। वैराग्य प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

७. भिक्षुओ! इस तरह छः सूर्यों के उदित हो जाने के बहुत लंबे अन्तराल के बाद सातवां सूर्य उदित होता है। भिक्षुओ! ऐसा समय भी आता है जब छः सूर्य एक साथ उदित होते हैं। ऐसा समय आता ही है। भिक्षुओ! उस सातवें सूर्य के उदित होने

के कारण - यह महापृथ्वी, पर्वतराज सुमेरू आदिप्त हो जाते हैं। दहकते अंगारे बन जाते हैं। प्रज्वलित हो उठते हैं। महालोक धातु के भीतर एक समान रूप से अग्नि का प्रज्वलन मात्र हो जाता है। भिक्षुओं, प्रज्वालित होते हुए, दहन होते हुए इस महापृथ्वी - इस पर्वतराज सुमेरू पर्वत को उसकी अर्चियों को प्रचण्ड वायु वेग उड़ा देता है। यह प्रज्वलन प्रथम ध्यान ब्रह्मलोक तक पहुंचकर सब कुछ भस्मीभूत कर देता है।

पृष्ठ– २३७

भिक्षुओ, प्रज्वलित, दह्यमान महाअग्निपूञ्ज से अभिभूत, विनाशमान सुमेरू पर्वतराज स्थित सौ योजन का शिलाकूट भी चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। दो सौ योजन... तीन सौ योजन... चार सौ योजन... पांच सौ योजन का शिलाकूट भी चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। भिक्षुओ! प्रज्वलित, दह्यमान यह महापृथ्वी - यह पर्वतराज सुमेरू पर्वत जलकर कुछ भी नहीं बचता। राख या कोयला (मसि) कुछ भी नहीं बचता। भिक्षुओं, जैसे प्रज्वलित, दह्यमान घी के जल जाने पर न राख बचता है - न कोयला (मसि) उसी तरह :

भिक्षुओ! प्रज्वलित, दह्यमान इस महापृथ्वी - इस सुमेरू पर्वत के जल जाने के बाद न राख बचता है न कोयला। (न कालिख = मसि) - भिक्षुओ, इस तरह सङ्खार अनित्य हैं।

पृष्ठ– २३८

भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार अध्रुव हैं। इसी तरह भिक्षुओं यह सङ्खार धर्म भरोसे वाले नहीं - आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, सभी सङ्खारों के प्रति निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है!

भिक्षुओ, यह महापृथ्वी, यह पर्वतराज सुमेरू पर्वत भी प्रज्वलित होकर, दहन होकर, विनष्ट हो जावेगा। कुछ भी शेष नहीं बचेगा। भिक्षुओ! इस तरह प्रज्वलित होकर नष्ट हो जाने वाले स्वभाव - इस अनिच्च स्वभाव को - भलीभांति साक्षात्कार कर निर्वाण को प्राप्त आर्य पुद्गलों को छोड़कर अन्यत्र किस पर भरोसा करोगे - विश्वास करोगे। कौन जान सकेगा। (यहां सत्तसूरिय सुत्त समाप्त हुआ)

इस सुत्त के अंतिम वचन पर ध्यान दें। आर्य स्रोतापन्न अवस्था प्राप्त होने पर - सङ्खार धर्म अनिच्च स्वभाव वाले हैं - इसकी निःशेष जानकारी होती है। साक्षात होता है। पृथग्जन इसका दर्शन नहीं कर सकते। इसलिये पृथग्जन महापृथ्वी, सुमेरू पर्वत को सङ्खार धर्म में निच्च सञ्ञा, धुव सञ्ञा को दृढ़ता से पकड़े होते हैं। अर्थात् धरती और सुमेरू को नित्य मानते हैं। ध्रुव मानते हैं। अतः अनित्य स्वभाव को समझना - विश्वास करना - जानना उनके लिये बड़ा कठिन है। इस तरह जानने-समझने में कठिन को लक्ष्य करके

पृष्ठ– २३९

धर्म पथ पर चलने वाले पुग्गल के अज्झासय उनकी चित्त की चेतना को ध्यान में रखकर– **"को मन्ता को सन्धाता अञ्ञत्र दिट्ठपदेहि"** इस पद की देशना की। इसे खयाल में ले लेना मेरे शिष्यों। इस तरह सङ्खार धर्म उत्पन्न होकर नष्ट होता है मेरे शिष्यों। शाश्वत नहीं है। हमेशा स्थिर नहीं रहता।

एवं उप्पज्जित्वा निरुज्झनतो, साधवे सङ्खारा अनिच्चा। एवं हुत्वा अभावतो, साधवे सङ्खारा अनिच्चा।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

साधुओ, सभी सङ्खार धर्म उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाने के कारण अनित्य हैं। साधवे! सभी सङ्खार धर्म उत्पन्न होकर अभाव को प्राप्त हो जाते हैं - (उत्पन्न हो-होकर - अभाव में बदल जाते हैं।) इसलिये वह सब अनित्य धर्मा हैं। अनिच्च ही हैं।

शिष्यों, ये सङ्खार धर्म लोक विनाश होने के समय में ही केवल विनाश होते हों ऐसा नहीं। लोक विनाश के पूर्व ही विनाश होते ही रहता है। उस विनाश होने को भी भगवान ने इस तरह देशित किया है। मेरे शिष्यों, उसे कान देकर, मन लगाकर सुनो। इसके अभिप्राय को बींधकर भलीभांति हृदयस्थ करो। मैं उस उत्तम सुत्त को उद्धृत करता हूं :–

सङ्खारों की अनित्यता को वर्णन करने वाला सुत्त वेपुल्ल सुत्त

१. एवं मे सुतं एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तत्र खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि भिक्खवोति भद्दन्तेति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच।

अनमतग्गायं भिक्खवे संसारो पुब्बकोटि न पञ्ञायति अविज्जा नीवरणानं सत्तानं तण्हा संयोजनानं खन्धावतं संसरितं। भूतपुब्बं भिक्खवे इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स पाचिनवंसोतेव समञ्ञा उदपादि। तेन खो पन

पृष्ठ– २४०

भिक्खवे समयेन मनुस्सानं तिवरातेव समञ्ञा उदपादि। तिवरानं भिक्खवे मनुस्सानं चत्तालीस वस्स सहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। तिवरा भिक्खवे मनुस्सा पाचिनवंसं पब्बतं चतुहेन आरोहन्ति चतुहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन भिक्खवे समयेन ककुसन्धो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। ककुसन्धस्स भिक्खवे भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स विधुर सञ्जीवंनाम सावकयुगं अहोसि अग्गभद्दयुगं। पस्सय भिक्खवे साचेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा कालङ्कता सो च भगवा परिनिब्बुतो। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु, निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं। अलं विमुच्चितुं।**

२. भूतपूब्बं भिक्खवे इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स वङ्कतो तेव समञ्ञा उदपादि। तेन

खो पन भिक्खवे समयेन मनुस्सानं रोहितसा तेव समञ्ञा उदपादि। रोहितसानं भिक्खवे मनुस्सानं तिंसवस्स सहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। रोहतसा भिक्खवे मनुस्सा वङ्कतं पब्बतं तीहेन आरोहन्ति, तीहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन भिक्खवे समयेन कोनागमनो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। कोनागमनस्स भिक्खवे भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स भिय्यो सुत्तरं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गभद्दयुगं। पस्सथ भिक्खवे सा चे विमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा कालङ्कता, सो च भगवा परिनिब्बुतो। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।**

३. भूतपूब्बं भिक्खवे इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स सुपस्सोनाम समञ्ञा उदपादि। तेन खो पन भिक्खवे समयेन मनुस्सानं सुप्पियातेव समञ्ञा उदपादि। सुप्पियानं भिक्खवे मनुस्सानं वीसति वस्स सहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि।

पृष्ठ– २४१

सुप्पिया भिक्खवे मनुस्सा सुपस्सं पब्बतं द्वीहेन आरोहन्ति, द्वीहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन भिक्खवे समयेन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। कस्सपस्स भिक्खवे भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तिस्स भारद्वाजंनाम सावकं युगं अहोसि अग्गभद्दयुगं, पस्सय भिक्खवे साचेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा कालङ्कता, सो च भगवा परिनिब्बुतो, /**एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।/**

४. एतरहि खो पन **भिक्खवे** इमस्स वेपुलस्स पब्बतस्स वेपुल्लो तेव समञ्ञा उदपादि। एतरहि खो पन भिक्खवे इमेसं मनुस्सानं मागधका तेव समञ्ञा उदपादि। मागधाकानं भिक्खवे मनुस्सानं अप्पकं आयुप्पमाणं परित्तं लहुकं, यो चिरं जीवति सो वस्ससतं, अप्पं वा भिय्यो। मागधका भिक्खवे मनुस्सा वेपुल्लं पब्बतं मुहुत्तेन आरोहन्ति, मुहुत्तेन ओरोहन्ति। एतरहि खो पनाहं भिक्खवे अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो, मय्हं खो पन भिक्खवे सारिपुत्त मोग्गलानं नाम सावकयुगं अग्गभद्दयुगं, भविस्सति भिक्खवे सो समयो, यायञ्चे विमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरधायिस्सति, इमे च मनुस्सा कालङ्करिस्सन्ति, अहञ्च परिनिब्बायिस्सामि। **एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अधुवा भिक्खवे सङ्खारा, एवं अनस्सासिका भिक्खवे सङ्खारा। यावञ्चिदं भिक्खवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुन्ति।**

इदमवोच भगवा, इदं वत्वान सुगतो। अथापरं एतदवोच सत्था–

पचिनवंसो तिवरानं, रोहितसान वङ्कतो।
सुप्पियानं सुपस्सोसि, भागधानञ्च वेपुल्लो।।

पृष्ठ – २४२

अनिच्चावत सङ्खारा, उप्पाद वय धम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो'ति।। (निदान वग्ग संयुत्त पाळि, वेपुल्ल सुत्त)

१. भन्ते महाकाश्यप मैंने (आनन्द) इस वेपुल्ल सुत्तको इस तरह सुना है। एक समय भगवान राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया - 'भिक्षुओ!' अभिक्षुओं ने 'भन्ते' कहकर प्रतिवचन दिया। तब भगवान ने इस प्रकार कहा–

भिक्षुओ, इस संसार का प्रारम्भ अज्ञात है। अविधा के ढक्कन से ढका है। अविधा के निवरण से ढंका है। तृष्णा के संयोजन से बंधा हुआ है। एक लोक से दूसरे लोकों में संधावन करते हुए, दौड़ते हुए, मनुष्य जन्म से अन्य जन्मों में, भवों में, जन्म लेते हुए - संतरण करते हुए प्राणियों का पूर्व कोटि, पूर्व छोर अप्रकट है - अस्पष्ट है। भिक्षुओ, भूतपूर्व इस उत्तर दिशा के वेपुल्ल पर्वत का प्राचीन वंस मात्र ही नाम उत्पन्न हुआ। भिक्षुओं, उस वेपुल्ल पर्वत

पृष्ठ – २४३

प्राचीन वंश नाम पद रखते समय इस मगध राज्य में उत्पन्न लोगों का - तिवरा नाम उत्पन्न हुआ। भिक्षुओं, उस तिवरा के मनुष्यों की - आयु का परिमाण चालीस हजार वर्ष होता था। भिक्षुओं, तिवरा मनुष्यों को पाचिन वंस पर्वत पर चढ़ते समय तीन रात चार दिन लगाता था। उतरते समय भी तीन रात चार दिन लगता था। भिक्षुओ! उस समय (उन दिनों) सम्यक सम्बुद्ध अरहंत ककुसन्ध भगवान लोक में उत्पन्न हुए थे। भिक्षुओं, उन सम्यक सम्बुद्ध अरिहंत ककुसन्ध भगवान बुद्ध के विधुर सञ्जीव नामक श्रावक युगल थे। वे अग्र भद्र श्रावक युगल थे। भिक्षुओं, देखो। इस वेपुल्ल पर्वत का वह पाचिन वंस नामक नाम भी अन्तर्निहित हो गया। तिरोहित हो गया। वे तिवरा नामक मनुष्य भी कालकावलित हो गये। मर गये। वे भगवान सम्यक सम्बुद्ध ककुसन्ध भी परिनिवृत्त हो गये। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार अनित्य हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार अध्रुव है। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार (अध्रुव एवं विनाशशील होने से)

पृष्ठ – २४४

आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

२. भिक्षुओ, इस वेपुल्ल पर्वत का पहले का नाम वङ्कपा था। उस समय जबकि इस वेपुल्ल पर्वत का नाम वङ्कपा था, तब इस मगध राज्य में रहने वाले मनुष्यों का नाम रोहितस था। उस समय उन रोहितस नामक मनुष्यों की आयु तीन हजार वर्षों की होती

थे। भिक्षुओं, रोहितस नामक लोग उस वङ्कत पर्वत पर चढ़ने में दो रात तीन दिन लगाते थे। उतरने में भी तीन दिन दो रात लगता था। भिक्षुओं, उस समय लोक में सम्यक सम्बुद्ध अरिहंत कोनागमन बुद्ध उत्पन्न हुए थे। भिक्षुओं, उन सम्यक सम्बुद्ध अरिहंत कोनागमन बुद्ध के

पृष्ठ– २४५

भिय्योस उत्तर नामक दो अग्र श्रावक थे। ... भिक्षुओं, देखो - इस वेपुल्ल पर्वत का वह वङ्कपा नाम भी अन्तर्निहित हो गया - तिरोहित हो गया। वे रोहितस नामक मनुष्य भी काल कवलित हो गये। मर गये। वे भगवान कोनागमन बुद्ध भी परिनिवृत्त हो गये। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अध्रुव हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनस्सासिक हैं। इसका आश्वासन नहीं दिया जा सकता। आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

३. भिक्षुओं, इस वेपुल्ल पर्वत का पहले का नाम सुपस्स था। उस समय जबकि इस वेपुल्ल पर्वत का नाम सुपस्स था, तब इस मगध राज्य में रहने वाले मनुष्यों का नाम सुप्पिया था। भिक्षुओं, उस समय सुप्पिया नामक मनुष्यों की आयु बीस हजार वर्षों की होती थी। भिक्षुओं, सुप्पिय नामक लोग उस सुपस्स पर्वत पर चढ़ने में एक रात दो दिन लगाया करते थे। उतरने में भी एक रात दो दिन लगाया करते थे। भिक्षुओं, उस समय लोक में

पृष्ठ– २४६

सम्यक सम्बुद्ध अरहंत कस्सप बुद्ध उत्पन्न हुए थे। भिक्षुओं, उन सम्यक सम्बुद्ध अरहंत कस्सप बुद्ध के तिस्स - भारद्वाज नामक दो अग्रश्रावक थे। भिक्षुओं, देखो। इस वेपुल्ल पर्वत का वह सुप्पस्स नाम भी अन्तर्निहित हो गया - तिरोहित हो गया। वे सुप्पिया नामक मनुष्य भी काल कवलित हो गये। मर गये। वे भगवान कस्सप बुद्ध भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनस्सासिक हैं - इसका आश्वासन नहीं दिया जा सकता - आश्वासन रहित हैं। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

पृष्ठ– २४७

भिक्षुओ, आज वर्तमान समय में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम वेपुल्ल पर्वत ही है। भिक्षुओं, इस राज्य में उत्पन्न लोगों का नाम मागध ही है। भिक्षुओं, मगध के इन मागध मनुष्यों की आयु का परिमाण अल्प ही है। परित्त है। लहुक है। जो कोई बहुत चिरकाल तक जीवित रहता है वह सौ वर्षों तक ही जीता है। अल्प मात्रा में और इस बीस वर्ष इससे अधिक भी जी लेता है। भिक्षुओं, मागध के मनुष्य वेपुल्ल पर्वत पर मुहूर्त भर

में नीचे से ऊपर शिखर पर चढ़ जाते हैं। मुहूर्त भर में ही उतर आते हैं। आरोहण-अवरोहण में मात्र मुहूर्त-मुहूर्त भर ही लगता है। भिक्षुओं, वर्तमान समय में सम्यक सम्बुद्ध अरहंत मैं बुद्ध उत्पन्न हुआ हूं। भिक्षुओं, मुझ बुद्ध के - सारिपुत्त मोग्गलान नामक दो अग्र श्रावक हैं। अग्रभद्र युगल हैं। भिक्षुओं, इस वेपुल्ल पर्वत का नाम भी अन्तर्धान हो जावेगा। यह मागध मनुष्य भी काल कर जायेंगे। मर जावेंगे। मैं बुद्ध भी

पृष्ठ– २४८

परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊंगा। वह समय आयेगा ही जब यह वेपुल्ल पर्वत भी अन्तर्धान हो जावेगा - मागधी मनुष्य और मैं बुद्ध भी परिनिर्वृत्त हो जाऊंगा - वह समय आयेगा ही। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अध्रुव हैं। भिक्षुओं, इस तरह सङ्खार धर्म अनस्सासिक हैं - इसका आश्वासन नहीं दिया जा सकता - आश्वासन रहित है। भिक्षुओं, अन्ततः सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्ति उचित है। वैराग्य (अनासक्ति) प्राप्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

भगवान ने इस तरह कहा। सुगत, शास्ता ने इतना बताकर - इसके उपरांत इस तरह देशित किया–

भिक्षुओं, तिवरा नामक मनुष्यों के समय यह उत्तर में स्थित पर्वत का नाम पाचिन वंस था। रोहितस नामक मनुष्यों के समय वङ्कता था। सुप्पिय नामक मनुष्यों के समय - सुपस्स नाम था। आज मागध लोगों के समय इसका नाम वेपुल्ल है।

पृष्ठ– २४९

भिक्षुओं, सभी सङ्खार अनित्यवत हैं। उत्पाद-व्यय धर्म वाले हैं। उत्पन्न होना, नष्ट हो जाना इसका स्वभाव है। उनका उपशमन (निर्वाण) सुख है। (उन सङ्खारों का उपशमन हो जाना सुख है।)

वेपुल्ल सुत्त समाप्त।

इस कल्प में चार बुद्धों के उत्पत्ति काल का वर्णन

शिष्यो, अभी इस वेपुल्ल सुत्त में चार बुद्धों के उत्पत्ति और उनकी आयु क्रमशः चालीस हजार, तीस हजार, बीस हजार एवं सौ वर्ष कहा गया है। एक ही अन्तर कल्प मत समझना। लगातार एक-एक अन्तर कल्प। कल्पारम्भ से लेकर गिनती करें तो नौवां अन्तर कल्प समाप्ति (उतार) के समय चालीस हजार वर्ष आयु सीमा वाले कल्प में **ककुसन्ध बुद्ध** उत्पन्न हुए। उस समय में वेपुल्ल पर्वत चार योजन ऊंचा था। चार दिन आरोहण करने तथा चार दिन अवरोहण करने का मार्ग था। यहां एक दिन अर्थात् ३० घंटे के एक दिन का रास्ता समझना।

शिष्यो, उसके पश्चात दसवां अन्तर कल्प समाप्ति (उतार) के समय तीस हजार वर्ष आयु सीमा वाले कल्प में– **कोनागमन बुद्ध** उत्पन्न हुए। उस समय को बुद्धों के मध्य काल में धरती एक योजन ऊपर उठ आयी। वेपुल्ल पर्वत भी धरती के भीतर एक योजन धंस गया। केवल तीन योजन ऊंचा रह गया। तीन दिन आरोह और तीन दिन अवरोह में समय लगता था। उसके बाद ग्यारहवें अन्तर कल्प समाप्ति (उतार) के समय बीस हजार वर्ष आयु सीमा में **कस्सप बुद्ध** उत्पन्न हुए। उस समय वेपुल्ल पर्वत पुनः एक योजन धरती के भीतर धंस गया था। मात्र दो योजन ऊंचा रह गया था। जिसे दो दिन में चढ़ा तथा दो दिन में उतरा जा सकता था। उसके बाद बारहवें अन्तर कल्प समाप्ति (उतार) के समय हमारे बुद्ध यदि दस हजार वर्ष आयु सीमा में उत्पन्न हुए होते तो वेपुल्ल पर्वत और एक योजन धंसा होता और एक योजन ऊंचा होता तथा एक दिन चढ़ने तथा एक दिन उतरने का रास्ता होता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हमारे बुद्ध अभी उस समय तक अपनी पारमिताएं पूर्ण नहीं कर पाये थे - अभी उनमें और समय लगना था। इसलिये वे सौ वर्ष की आयु सीमा वाले

पृष्ठ– २५०

काल में उत्पन्न हुए। इसलिये वेपुल्ल पर्वत एक योजन भी ऊंचा न रहकर मात्र मुहूर्त भर में चढ़ने तथा मुहूर्त भर में उतरने भर का रास्ता जितना ऊंचा रह गया था।

समय (काल) घंटा का विभाजन (इकाई)

शिष्यो, यहां मुहूर्त कहा गया है। हम बह्मा बर्मी लोगों में मनुष्यों के पलक का दस बार झपकना एक क्षण कहलाता है। १० पलक = १ खण (क्षण)। १० क्षण (खण) = १ लय। १० लय = १ खरा (मुहूर्त)। १० खरा (मुहूर्त) = १ प्राण (पुब्बन्ह)। ६ प्राण = १ बीजना। १५ बीजना = १ पाद। ४ पाद = १ घंटा। ६० घंटा = १ दिन। ३० दिन = १ माह। १२ माह = १ वर्ष।

इस प्रकार व्यवहरित होता है। पाळि ग्रन्थों में खण, लय, मुहूर्त, पुब्बन्ह, मज्झन्हिक, सायन्ह आया है। इसलिये बर्मी व्यवहार में १० लय - मुहूर्त काल से शुरू कर १ घंटा - काल तक - इसके भीतर के काल को मुहूर्त भाग के अनुसार मुहूर्त काल ही समझना। दस मुहूर्त को १० घंटा अर्थात् एक दिन का १/३। पुब्बाह्न समझना।

न हि सब्बेसु ठानेसु, पुरिसो येव पण्डितो। इत्थीपि पण्डिता होति, मुहुत्त मपि चिन्तये।। (पाठ जातक पालि - अपदान पाळि में आया गाथा)

सभी स्थानों में केवल पुरुष ही विद्वान नहीं होते। स्त्री भी विद्वान होती है। यह (सुलसा अथवा यह इण्डलकेसा) मुहूर्त भर में शत्रु पर विजय का चिन्तन कर सकती हैं।

शिष्यो, इस गाथा में एक मुहूर्त के काल को बर्मी में (टखया) कहते हैं। उपरोक्त सुत्त पर्वतारोहण के समय दो ढ़ाई पाद मात्र काल को एक मुहूर्त कहा है।

पृष्ठ– २५१

एक कल्प के भीतर सङ्खारों का विनष्ट होते रहना

शिष्यो, इस तरह सङ्खार धर्म विश्व के (कल्प में) विनाश नहीं होने पर भी विनाश होते ही रहता है। उसी तरह देखो मेरे शिष्यों, समझो - मागधवासी सहित भिक्षु संघ सहित बुद्ध जैसे नहीं रहे - सेलक्खकारुळ्ह पंचम संगायन करवाने वाले राजा में डों में तक भिक्षु ब्राह्मण, राज्य, प्रजा, सहित अनेकों नगर अनेकों राज वंशावलियां सभी विनष्ट हो गयी, समाप्त हो गये। केवल उनके व्यवहृत नाम मात्र शेष हैं। यह नाम भी बहुत समय व्यतीत हो जावेगा तब समाप्त हो जावेगा। शिष्यों, इस-तरह सभी सङ्खार अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट होता ही है। देखो - इसकी साधना करो। राजा 'में-डों-में' भी अपने समकालीन देशवासियों - प्रजा भिक्षु ब्राह्मणों सहित मर ही गये। मात्र उनका नाम भर रह गया। यह व्यवहृत नाम भी बहुत काल के बाद लुप्त हो जावेगा। शिष्यों, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य है। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है।

शिष्यो, एक उदाहरण से कहूं - सुनो, संपूर्ण धरती के मिट्टी को लेकर आंवले के बराबर-बराबर गोली बनाकर - यह मेरी मां कहकर एक हटा दिया - यह मेरी मां की मां - ऐसा कहते हुए एक-एक गोली हटाते जावें - तो सारी गोलियां समाप्त हो जावेंगी, परन्तु एक व्यक्ति के मां की पीढ़ी श्रंखला समाप्त नहीं होगी। क्यों ? क्योंकि भवसंसरण इतना लम्बे काल से चले चल रहा है। देखो शिष्यों, ध्यान दो - तुम शिष्यों की माता - माता की माता को लेकर शुरू कर पूर्व-पूर्व में हुई माताओं की श्रंखला में कोई नहीं बचा। सभी मर गये। शिष्यों, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। शिष्यों! यदि उदाहरण दें तो - इस महापृथ्वी पर स्थित जितना भी - घास, लकड़ी, वृक्ष, डाली, पत्तियां हैं उन्हें एकत्र कर लें। चार-चार अङ्गुल के बराबर

पृष्ठ– २५२

काट-काटकर एक-एक को निकालें कि - यह मेरे पिता हैं - यह मेरे पिता के पिता हैं - इसी तरह गिनती करते चले जावें - तो वे घास, लकड़ी, टहनी, पत्ते सब चूक जायेंगे। पूरा समाप्त हो जावेंगे - लेकिन वह पिता के पिता की श्रंखला का अंत नहीं आने वाला। क्यों ? क्योंकि भव संसरण इतना लंबे काल से चले चल रहा है। देखो शिष्यो, ध्यान दो - तुम शिष्यों के पिता, पिता के पिता को लेकर शुरू कर पूर्व-पूर्व में हुए पिताओं की श्रंखला में कोई नहीं बचा। सभी मर गये। शिष्यो, इस तरह सङ्खार धर्म अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। देखो शिष्यों, ध्यान दो - अपने आचार्यों को - आचार्य के आचार्य को - यहां से प्रारम्भ कर पूर्व-पूर्व के आचार्य श्रंखला तक चले जाओ। कोई भी तो नहीं बचा। सभी तो मर गये। शिष्यों - सभी सङ्खार धर्म इस प्रकार अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं।

एकस्सेकेन कप्पेन, पुग्गलस्सट्ठि सञ्चयो।
सिया पब्बतसमो रासि, इति वुत्तं महेसिना।। (निदानवग्ग संयुत्त पाळि)

भिक्षुओ! एक कल्प में (एक विवट्टट्ठायी असङ्खेय्य कल्प में) संसरण करते हुए - एक व्यक्ति की संपूर्ण हड्डियों की राशि - यदि वे बिना नष्ट हुए रहें - तो वह पहाड़ के समान बन जायेंगी। (वेपुल्ल पर्वत से भी बड़ा पर्वत खड़ा हो जावेगा)। इस प्रकार भगवान ने कहा है।

शिष्यो! जैसा कि बुद्ध-वाणी में आया है - इस संसार में अतीत के १२ (बारहों) अन्तर कल्प में जो तुम सब जन्म पाये उन सभी जन्मों का शरीर - सभी हड्डियां, कंकाल कितना अधिक हो गया होगा। देखो शिष्यों, ध्यान दो,

पृष्ठ– २५३

इतनी बड़ी राशि, समूह - तुम शिष्यों के अतीत भव के कायखन्ध कंकाल राशियां मर कर सब नष्ट हो गई। शिष्यों, सङ्खार धर्म इस तरह अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती हैं। देखो शिष्यों, ध्यान दो, उन अतीत में हो चुके माता-पिता आचार्यों की श्रृंखला। उनके प्रत्येक जन्मों में रहे वस्त्रों, चीवरों, मकानों, विहारों, धन-धान्य, अनाज-आहारों; घास, लकड़ी, वृक्ष, उद्यान इत्यादि बहिद्ध सङ्खारों को भी - वे सब गुजर चुके - मां की मां, पिता के पिता, आचार्य के आचार्य - उन-उन जन्मों में ही सब नष्ट हो गये - समाप्त हो गये। शिष्यों, सारे सङ्खार धर्म इस तरह अनित्य ही हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो ही जाते हैं। शिष्यों, यह अभी वर्तमान में जो तुम-हम थे सभी मनुष्य हैं - निश्चित रूप से मर कर नष्ट हो ही जाने वाले हैं। इन इकत्तीस लोकों में अभी स्थित सभी सत्व प्राणी भी निश्चित रूप से मर कर नष्ट हो ही जाने वाले हैं। शिष्यों सभी लोक अनित्य हैं। उत्पन्न होकर निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भगवान ने कहा :–

१. **उक्खित्ता पुञ्ञतेजेन, काम रूपगतिं गता।**
भवग्गतम्पि सम्पत्ता, पुनगच्छन्ति दुग्गतिं।।

२. **ताव दीघायुका सत्ता, चवन्ति आयु सङ्खया।**
नत्थि कोचि भवो निच्चो, इति वुत्तं महेसिना।।

३. **तस्मा हि धीरा निपका, निपुणा अत्थचिन्तका।**
जरामरण मोक्खाय, भावेन्ति मग्गमुत्तमं।।

४. भावयित्वा सुचिं मग्गं, निब्बानोगधगामिनं।
सब्बभवे परिञ्ञाय, परिनिब्बन्ति अनासवाति।। (अभिधम्म विभङ्ग पालि)

पृष्ठ– २५४

१. देव संघ के देवताओं! पुण्य के तेज से ऊपर उठकर काम लोक के रूप लोक में पहुंचे हुए सत्व, चाहे भवाग्र कहलाने वाले नेव संज्ञा ना संज्ञा अनन्त आयतन लोक में पहुंचे हुए सत्व क्यों न हों - पुनः दुर्गति वाले अपाय लोक में जाते ही हैं।

२. चौरासी हजार कल्प तक दीर्घायु वाले प्राणी भी आयु के संसरण होने के कारण च्युति को प्राप्त होते ही हैं। कोई भी भव, लोक नित्य नहीं है। इस तरह भगवान बुद्ध ने देशित किया है।

३. इसलिये ही स्मृतिमान, निपुण, अर्थ चिन्तक, धीर लोग - जरामरण से मुक्त होने हेतु, उत्तम मार्ग धर्म की भावना करते हैं।

४. वे विद्वान पण्डित लोग निर्वाण तक पहुंचाने वाले पवित्र-शुचि मार्ग की भावना का - सभी भवों का परिज्ञान प्राप्त कर (अर्थात् दुःख सत्य का विभाजन कर साक्षात कर) आस्रव रहित होकर परिनिर्वृत्त हो जाते हैं। (अर्थात् किसी भी भव में अब जन्म नहीं होता।)

शिष्यो, सभी वर्तमान में स्थित वस्त्र-चीवर, भवन-विहार, धान-मक्का, दलहन-तिलहन आहारादि - घास, झाड़ी, लता-वल्लरी, वन-वृक्ष, उद्यान इत्यादि बहिद्ध सङ्खार भी वस्तुतः उत्पन्न होकर नष्ट ही हो जावेंगे। शिष्यों, अभी विनष्ट हो चुके अतीत कल्प

पृष्ठ– २५५

अतीत भव स्कंध - अतीत संस्कार धर्म के समान - जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं वह भविष्य में होने वाले अनागत कल्प - अनागत भव स्कंध - अनागत सङ्खार भी उत्पन्न होकर निश्चित रूप से नष्ट हो ही जावेंगे। शिष्यों, सङ्खार धर्न इस तरह से अनित्य ही हैं। उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं।

एवं उप्पज्जित्वा निरुज्झनतो साधवे सङ्खारा अनिच्चा, एवं हुत्वा अभावतो साधवे सङ्खारा अनिच्चा। एवं अनिच्चता साधवे सङ्खारा अनस्सासिका। यावञ्चिदं साधवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं। अलं विरज्जितुं विमुच्चितुन्ति। अनिच्चा सब्बसङ्खारा, उप्पज्जित्वा निरुज्झरे। तेसुतं निब्बिन्देय्याथ विरज्जेय्याथ साधवोति। (सेक्ख्य भासित अनिच्च सुत्त)

शिष्यो, सङ्खार इस तरह उत्पन्न होकर - इस तरह निरुद्ध हो जाने के कारण अनित्य हैं। शिष्यो, सङ्खार इस तरह उत्पन्न होकर अभाव को प्राप्त हो जाने के कारण अनित्य हैं। शिष्यो, सङ्खार के इस तरह अनित्यवत होने के कारण वे आश्वासन रहित है। भरोसा

रहित - अनस्सासिक हैं। शिष्यों, अन्ततः सभी सङ्खारों में अर्थात् अतीत अनागत वर्तमान आन्तरिक-बाह्य सभी सङ्खारों में निर्वेद होना ही उचित है। विरज्ज होना - वैराग्य होना ही उचित है। उन सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है।

शिष्यो, सभी सङ्खार अर्थात् अतीत, अनागत, वर्तमान अज्झत्त बहिद्ध सभी सङ्खार अनित्य है। उत्पन्न होकर नष्ट होते रहते हैं।

पृष्ठ– २५६

इसलिये तुम शिष्य गण उन सभी सङ्खारों के प्रति निर्वेद की अवस्था को प्राप्त होओ। वैराग्य की अवस्था अनासक्ति की अवस्था को प्राप्त होओ।

सेक्ख्यभासित अनिच्च सुत्त का अर्थ पूर्ण हुआ।

रूपों की उत्तरोत्तर उत्पत्ति का वर्णन

शिष्यो, वे सङ्खार धर्म मरने पर समाप्त हो जाते हैं ऐसा नहीं। बिना मरे इसी जन्म में हमेशा नष्ट ही होते रहते हैं। मैं इसे समझाता हूं - ध्यान से सुनो - हृदयंगम करो। पीछे जैसा कि अभिधम्म प्रयोगशाला में परमत्थ रूप कलापों का विभाजन किया गया उसे भी मन में जानते रहना। अब सुनो–

शिष्यों, रूप को उत्पन्न करने का विषय कारण - **कम्म, चित्त, उतु तथा आहार** यह चार हैं। इन चारों में से कम्म - कुशल-अकुशल चेतना को कहते हैं। शिष्यों कुशल-अकुशल चेतना को कम्म जानना। चित्त विञ्ञाण धातु को कहते हैं। विज्ञान धातु को चित्त समझना। उतु - सामान्य काया के, रूप कलाप मात्र में स्थित अग्नि धातु को कहते हैं। अतः अग्नि धातु को उतु जानना। आहार काया के प्रत्येक रूप कलाप मात्र में स्थित पृथ्वी, आपो, इन दो धातुओं की ओज को कहते हैं। ओज को आहार कहते हैं। शिष्यों, इस ओज आहार को ही– "अवति रक्खतिच जनेति चाति ओजा" एक में आबद्ध रूपों को तरो-ताजा प्रसन्न रखने में सहायक है। उन रूपों का जनन करते रहता है। इन दो गुणों के कारण 'ओज' कहते हैं। इस वचनार्थ के अनुसार ओज भी कहते हैं।

पृष्ठ– २५७

शिष्यो, चारों महाधातुओं का समूह यह परमत्थ रूप कलाप प्रत्येक रूप कण में उत्पत्ति होने का उपाद क्षण (उत्पादक्षण) - विनाश होने का **भङ्ग खण** तथा इन दोनों के बीच स्थित रहने वाला **ठीखण** (स्थिति क्षण) यह तीन क्षण हैं। इन्हें याद रखना।

१. शिष्यो, जिस समय कम्म रूप कलाप को उत्पन्न करता है, जनन करता है - इस रूप को - कम्म से जनित रूप होने के कारण - कम्मज रूप जाना जाता है। कम्म का पुत्र - कम्मज समझना।

२. इस कम्म के कम्मज कलाप में स्थित तेजो धातु नामक उतु, ओज अर्थात् आहार अपनी ठीखण को प्राप्त होने पर एक-एक रूप कलाप उत्पन्न करते हैं। प्रजनन करते हैं। यह दोनों रूप कम्म की सहायता मूल में स्थित उतु आहार से जनित रूप होने के कारण कम्मपच्चय उतुपरूप कम्मपच्चय आहारजरूप कहलाते हैं। कम्म का पौत्र भी कह सकते हैं।

३. इस कम्म के दो पौत्र कलाप में स्थित उतु, आहार रूप भी अपने ठीखण (स्थिति क्षण) में पहुंचते हैं तो एक-एक रूप कलाप पुनः उत्पन्न करते हैं। प्रजनित करते हैं। यह चारों रूप कलापों को भी कम्मपच्चय उतुजरूप कम्मपच्चय आहारज रूप ही कहते हैं। इन्हें कम्म का प्रपौत्र भी कहते हैं।

४. इस कम्म के चारों प्रपौत्र कलाप में स्थित उतु - आहार भी पूर्व के अनुसार पुत्र कलाप को उत्पन्न करते हैं। प्रजनन करते हैं।

इस तरह शिष्यों - कम्मज, उतु, आहार को प्रारम्भ कर वे उतु आहार एक बार तक, दो बार तक, दसों बार तक, सैकड़ों-हजारों बार तक, असङ्ख्येय्य अनगिनत बार तक - शक्ति होने पर पूर्ववत - शक्ति क्षीण होने पर निम्नवत - पुत्र कलाप बार-बार प्रजनन होते जाते हैं - क्रमशः शक्ति क्षीण होने पर अंतिम कलाप तक आने पर उत्तरोत्तर पुत्र कलापों का प्रजनन नहीं होता है। प्रजनन होना छिन्न हो जाता है।

पृष्ठ– २५८

अज्झत्तचतुजरूपों के समूह की संरचना

शिष्यों, उन उतु आहारों का मूल - कम्म का बल मंद होने पर भी उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। कम्म का बल तीव्र होने पर उनकी शक्ति अच्छी होती है। इस कम्म के अतिरिक्त उन उतु आहारों को मंद या शक्तिशाली बनाने वाले बाहरी-भीतरी सन्तान में अनेकों कारण भी हैं। इसलिये उनके उपकार करने से भी यह मंद या शक्तिशाली होते हैं।

१ - कम्मज -

१. शिष्यो, छोटे प्राणी खटमल, लीख, अठे आदि के रूप में कम्म बल मंद होने से उसका उपकार उन्हें बहुत कम मिल पाता है। परन्तु मनुष्यों - देवताओं में वह कम्म बल शक्तिशाली होने से उसका अत्यधिक उपकार प्राप्त होता है। अन्य उपकारों के मिलने की संभावनाएं मनुष्य एवं देवों में अधिक होती है। अतः वह लगातार प्राप्त होता है। आयु में, आकार में तुरंत विकास होता है। प्रतिसन्धि के समय शक्ति का प्रभाव खूब अधिक होता है। क्रमशः बड़ा होने पर प्रतिसन्धि के समय जितना 'कम्म' की शक्ति नहीं होती। सहयोगी शक्तियां रूप न्यूनता के कारण मंद होकर उत्तरोत्तर मंद पड़ता जाता है। दो संयोग मात्र संयुक्त होता है। उसके पश्चात सहयोगी रूप क्रमशः अधिक होते जाते

हैं। क्रमशः शक्ति (बल) बढ़ जाता है। वह शिशु पिंड उसकी आकृति बड़ा-छोटा स्थिर होने पर - प्रथम आयु पार होने तक क्रमशः संयोग अधिक ही अधिक होता जाता है। मध्य आयु तक उसका घटना-बढ़ना स्थिर हो जाता है। अंतिम (पश्चिम) आयु के समय क्रमशः सहयोग घटता जाता है तथा मंद होते हुए घटता जाता है। च्युति चित्त (ठीखण को ठितिखण जानें)

पृष्ठ– २५९

गिरते समय समाप्त प्रायः कम्म की अत्यंत मंद शक्ति कम्म से उत्पन्न होकर सबसे अंतिम उत्पन्न कम्मज उतु - आहारों की शक्ति एकदम क्षीण होने के कारण संयोजन एकदम ढीला हो जाता है। कुछ तो - संयोजन को छोड़ो - रूप को ही उत्पन्न नहीं कर पाते। पुनः उत्पन्न ही नहीं होता।

शिष्यों, संयोजन अत्यधिक क्षीण हो जाता है। रूप को ही उत्पन्न नहीं कर पाते। **यह कम्मक्खय द्वारा च्युति को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के रूप को लक्ष्य कर मैंने देशित किया।** बिना कम्मक्खय हुए उपच्छेदक द्वारा - जिस समय रूप संयोजन अभी अधिक होने की आयु है - अचानक गर्दन कटकर मरता है - ऐसों में यह अंतिम उत्पन्न होने वाला कम्मज - उतु आहारों से कुछ समय तक उत्तरोत्तर चलता है। उस गर्दन कटे हुए व्यक्ति का च्युति चित्त गिरने के पूर्व - उसके धड़ से अलग हुए सिर में भी कम्मज उतु आहारों से बहुत अधिक संयोजन उत्तरोत्तर चलते रहता है। कम्मज उतु आहार ही नहीं बल्कि कम्मज रूप तक भी कुछ समय तक बनता रहता है। कम्मज रूप उत्पन्न होते रहने से उस कम्मज रूप पर आश्रित विञ्ञाण भी सब कुछ पूर्ण रहने पर कुछ समय तक बना रहता है। च्युति चित्त गिरने योग्य सिर के अतिरिक्त हाथ-पैर कहा - छिपकली का पूंछ कहा - आदि का क्या कहना। पर्याप्त समय तक बना ही रहता (जीवित ही रहता) है। छिपकलियों की कटी हुई पूंछ - तड़पती रहती है। वह भयभीत द्वेष चित्त वाला वायु अधिकता - चित्त पच्चय उतुज आहारज रूपों की शक्ति ही है। इसीलिये इस हाथ-पैर-पूंछ कटे हुओं का कम्मज रूपों के निरुद्ध होने के पूर्व गरम-गरम रहता है। प्राकृतिक रूप से वह सामान्य ही उत्पन्न होते रहता है। फिर शरीर से लगे हुए बिना कट कर बिलग किये गये - अंग आंख, आंत आदि का क्या कहना। वह तो प्राकृतिक रूप से सामान्य ही रहता है। शिष्यों, **इस तरह कम्मज रूप, कम्म पच्चय उतुज कम्मपच्चय आहारज रूपों की उत्पत्ति को भलीभांति जानो, समझो। इस कम्मपच्चय उतुजरूप कम्मपच्चय आहारज रूपों को भी चूंकि इनका मौलिक कारण**

पृष्ठ– २६०

कम्म पर निर्भर होता है; इसलिये यह कर्म दयादकर्म वंशज होने के कारण स्मरण करने की सरलता के लिये (कम्मज रूप) ही कहते हैं। यही खयाल रखना।

२. चित्तज

१. शिष्यों, जिस समय चित्त, रूप कलाप को उत्पन्न करता है; उत्पन्न हो जाता है; तो इस रूप को चित्त के द्वारा उत्पन्न रूप होने के कारण - चित्तज रूप कहते हैं। चित्त से जन्मा चित्त का पुत्र - चित्तज कहते हैं।

२. इस चित्त के पुत्र कलाप में स्थित उतु, आहारों को भी अपनी स्थिति. क्षण (ठीखण) में पहुंचते हैं तब वे एक-एक रूप कलाप को उत्पन्न करते हैं। उन्हें प्रजनन कहते हैं, जन्म देते हैं। ये दोनों रूप; चित्त की मौलिक सहायता से उत्पन्न उतु - आहारों से उत्पन्न रूप होने के कारण चित्तपच्चय उतुजरूप चित्तपच्चय आहारज रूप पुकारते हैं। इन्हें चित्त का पौत्र भी कहते हैं।

३. इस चित्त के दो पौत्र कलाप में स्थित उतु आहार अपने ठीखण (स्थिति क्षण) में जब पहुंचते हैं तब एक-एक रूप कलापों को पुनः उत्पन्न करते हैं। जन्म देते हैं। ये चारों रूप भी चित्तपच्चय उतुजरूप, चित्तपच्चय आहारजरूप कहलाते हैं। चित्त का प्रपौत्र कहलाते हैं।

४. इस चित्त के चार प्रपौत्र कलापों में स्थित उतु आहार भी पहले के नियमानुसार पुत्र कलाप को पुनः उत्पन्न करते हैं। जन्म देते हैं। इसी तरह शिष्यों, चित्तज उतु आहारों को प्रारम्भ कर - उतु आहार भी एक बार (पीढ़ी) तक, दो पीढ़ी तक, दस पीढ़ी तक, हजार - लाख अनगिनत असङ्ख्येय्य बार तक मंद शक्ति हो तो मंद के अनुसार कमती बार - तीव्र शक्ति हो तो अनेकों बार, बार-बार, पुत्र कलाप लगातार उत्पन्न करती जाती हैं। क्रमशः शक्ति क्षीण होती है - अंतिम कलाप के समय पुनः पुत्र कलाप का जन्म नहीं दे सकते हैं। बांझ हो जाते हैं। वंश परम्परा लुप्त हो जाती है।

शिष्यो, इन चित्तज उतु आहारों का मूल कारण चित्त है। तथा चित्त के अतिरिक्त अज्झत्त बहिद्ध दोनों सन्तान में अनेकों विषयों के कारण शक्ति की न्यूनता-अधिकता होती रहती है।

पृष्ठ– २६१

शिष्यों, मंद शक्ति वाले चित्त से उत्पन्न होकर उतु के बार-बार से उत्पन्न होने से - जन्म लेकर जब बाहर आते हैं - तब प्रश्वास नाक से बाहर की ओर बहुत थोड़ी दूर जाता है। यदि नाक से बाहर की ओर तिल के बराबर दूरी तक गया - इतनी देर में तो रूप कलाप करोड़ लाख, दस लाख बार से अधिक बार उत्पन्न हो गया। बाहर की ओर अंगुली के एक पर्व तक - एक मुट्ठी बराबर तक, एक बालिश्त के बराबर तक जब जावेगा तो उन बनने वाले रूप कलापों की बारम्बारता का ठिकाना नहीं रहेगा कि कितनी बार उत्पन्न हुए। चित्त को दृढ़ रखकर प्रश्वास को बाहर निकालते समय मुंह के भीतर से हवा फूंकने पर - बाहर की ओर एक हाथ तक तीन-चार हाथ तक जब दूर जावेगा तो इतनी देर में रूप कलापों के उत्पत्ति की बारम्बारता की गिनती क्या हो

सक़ेगी। एक वृषभ, दो वृषभ तक नाग हवा को फूंकते हैं - कहां गिन पायेंगे। चित्त को दृढ़ रखकर ताकत भर चिल्लाने के समय चित्तपच्चय उतुज की बारम्बार उत्पत्ति से - दो सौ ट्वें, तीन सौ ट्वें (देखो पृ० १९८) तक ध्वनि के जाने के समय तक उन रूप कलापों की बारम्बारता कैसे गिन पायेंगे। कुसराज, सुदस्सन नागराज इत्यादि की दहाड़ संपूर्ण जम्बूद्वीप तक जाती थी - उतने समय के भीतर उत्पन्न रूप कलापों को गिनती भला कहां किया जा सकेगा। सिखी बुद्ध के दायां अग्रश्रावक अभिभू थेर ब्रह्मलोक से चूळ लोक धातु एक हजार तक सुनाई पड़ सके इतनी जोर से अरुणवती सुत्त को जब देशित कर रहे थे - कहां उन रूप कलापों की बारम्बारता को भला गिनी जा सकती है। शिष्यों, उससे भी तीव्र तेज चित्त वाले सम्यक सम्बुद्ध लोग आवश्यकता होने पर अपने अधिकार क्षेत्र के संपूर्ण महालोक धातु को सुनाकर धर्मोपदेश कर सकते हैं। शिष्यों, इस तरह मौलिक कारणभूत चित्त - शक्ति कमजोर होने पर कमजोर - उतु शक्ति कमजोर होकर रूप की बारम्बारता न्यून होती है। चित्त-बल तीव्र व तेज होने पर तीव्र - उतु शक्ति तीव्र होकर रूप की बारम्बारता अधिक होती है।

इस बहिद्ध की ओर निकला हुआ रूपों के समान ही शिष्यों - काया के भीतर में उत्पन्न होकर रहने वाला चित्तज उतु आहारों की शक्ति की मंदता तीव्रता से रूप क्रम की बारम्बारता कम-बेशी, मंद-तीव्र होता है। राग चित्त के कारण

पृष्ठ – २६२

रूप उत्पन्न होकर अधिक होता हैं। राग चित्त की तीव्रता होने पर उतु - आहार भी तीव्र होकर रूप की बारम्बारता अधिक होकर क्षण भर में बहुत बढ़ जाते हैं। लंबे अरसे तक उत्तरोत्तर बने रहते हैं। राग चित्त के तीव्र न होने पर उतु आहारों की भी शक्ति मंद होकर रूप क्रम की बारम्बारता कम होकर धीरे-धीरे बढ़ते हैं। बहुत अरसे तक भी उत्तरोत्तर बिना रहे क्षण मात्र में निरुद्ध हो जाते हैं। सरकाना, उठाना इत्यादि कायिकवीर्य जैसे कार्यों में वीरिय चित्त कमजोर होने पर कमजोर तथा बलशाली होने पर बलशाली - सरलता से शक्ति मंदता, सरलता से शक्ति रूपक तीव्रता - रूप की बारम्बारता क्रम न्यूनता-अधिकता होती है। शिष्यों, प्रभावशाली लोग में अत्यंत तीव्र (कुशाग्र) शक्तिशाली अभिञ्ञाण प्राप्त व्यक्ति - अपने चित्त से चांद-सूर्य को पकड़ना, हाथ को इच्छानुकूल फैलाना, अपनी काया को ब्रह्म लोकों तक पहुंचने योग्य विशाल बना लेना इत्यादि अतिशय रूप से - रूपों की बारम्बारता क्रम बड़ा होता है। क्रमशः बढ़ते हुए गमन करना भी जाहिर है। शिष्यों, इस तरह अज्ञात चित्त सन्तान में भी विषयानुसार रूप क्रम की बारम्बारता की न्यूनता या अधिकता उत्पन्न होता है। शिष्यों, इस तरह चित्तजरूप, चित्तपच्चय उतुजरूप, चित्तपच्चय आहारज रूपों की उत्पत्ति को भलीभांति समझो। जानो। **यह चित्तपच्चय उतुज रूपों, चित्तपच्चय आहारज रूपों का मूल चित्त को निर्भर कर चित्त दयाद - चित्त कुल संततियां उत्पन्न होती हैं। कहने की सरलता की दृष्टि से इन्हें चित्तज रूप ही कहते हैं।**

३. उतुज (ऋतु = उतु। यहां पाळि का उतु शब्द ही उपयोग किया है)

शिष्यो, उतु में रूप को उत्पन्न करने का प्रमुख आधार उतु को इस प्रकार समझा जा सकता है :–

१. कल्पारम्भ वर्षा को उत्पन्न करने वाला आधारभूत उतु ही अन्धकार रूप अग्नि कळाप में उपस्थित तेजो धातु ही है। उस तेजो धातु को कल्पारम्भ-वर्षा को उत्पन्न करने वाला आधारभूत उतु कहते हैं।

२. चक्रवाळ को उत्पन्न करने वाला आधारभूत उतु कल्पारम्भ वर्षा जल कलाप में विद्यमान तेजो धातु ही है।

पृष्ठ– २६३

३. पहले-पहल उत्पन्न घास, वनस्पति को उत्पन्न करने वाला आधारभूत मूल - उतु धरती कलाप में स्थित तेजो धातु ही है। यदि जल पर से उत्पन्न वृक्ष हों - तो जल कलाप में विद्यमान तेजो धातु ही है।

४. उन पहले-पहल पैदा होने वाले घास-वनस्पतियों से बीज अनाज आदि फैलकर उन बीजों को बो कर बाद में उत्पन्न घास-वनस्पतियों के समूह को उत्पन्न करने वाला आधारभूत मूल - उतु - उन बीजों - अन्न कलापों में विद्यमान तेज धातु ही है।

५. उन फल बीज, कन्दमूलों का जल शोषित कर ग्रहण करना मनुष्यों के आहार ग्रहण करने के समान ही है। उस शोषित कर ग्रहण किये जल कलाप में पाया जाने वाला तेज धातु भी - फल-बीज - वनस्पतियों के भीतर पहुंचने पर वृक्ष नामक रूप को उत्पन्न करता है।

६. आकाश में उत्पन्न अविञ्ञाणक सविञ्ञाणक रूपों को उत्पन्न करने वाला आधारभूत मूल - उतु - अपनी उत्पत्ति क्षेत्र में स्थित अग्नि कलापों में विद्यमान तेजो धातु ही है।

७. संसेदज रूपों को उत्पन्न करने वाला मूल आधार - उतु - उन अपने उत्पत्ति स्थान आद्र जल कलाप में विद्यमान तेजो धातु ही है।

८. गब्भसेय्यक रूपों को उत्पन्न करने वाला मूलभूत आधार - उतु - माता-पिता के डिम्ब-शुक्राणु नाम उतु द्रव कलाप में उपस्थित तेजो धातु ही है। वह माता-पिता के प्रजनन द्रव नामक उतु द्रव कलाप में उपस्थित गब्भसेय्यक रूप को उत्पन्न करने वाला मूल आधार - उतु ही कहलाता है। शिष्यों, इस प्रकार रूप को उत्पन्न करने वाला मूलभूत उतु को भलीभांति जानो। समझो।

१. शिष्यों, जिस समय वह मूल आधारभूत - उतु - रूप कलाप को उत्पन्न करता

है - प्रजनित करता है; इस रूप को उतु से उत्पन्न रूप होने के कारण उतुज रूप कहते हैं। उतु का पुत्र भी कहते हैं।

पृष्ठ – २६४

इस उतु के पुत्र कलाप नें उपस्थित तेजो धातु नामक उतु; ओज नामक आहार - जब अपनी ठीखण (स्थिति क्षण) में आते हैं तब एक-एक रूप कलाप को उत्पन्न करते हैं। प्रजनन करते हैं। यह दोनों रूप कलाप - उतु की ही सहायता एवं मूल कारण विद्यमान उतु-आहारों से उत्पन्न रूप होने के कारण उतुपच्चय उतुज रूप, उतुपच्चय आहारज रूप कहलाते हैं। उतु का पौत्र भी कहलाते हैं।

३. इस उतु के दो पौत्र कलापों में विद्यमान उतु-आहार भी अपनी ठीखण (ठितिखण) में पहुंचने पर एक-एक रूप कलाप को पुनः उत्पन्न करते हैं। प्रजनित करते हैं। यह चारों रूप भी उतुपच्चय उतुज रूप, उतुपच्चय आहारज रूप ही कहलाते हैं। उतु के प्रपौत्र भी कहलाते हैं।

४. इस उतु के चार प्रपौत्र कलापों में विद्यमान उतु-आहार भी उपरोक्तानुसार पुनः रूप कलाप को उत्पन्न करते हैं। पुनः प्रजनन करते हैं।

शिष्यों, इसी तरह उतुज - उतु, आहारों को प्रारम्भ कर वे उतु आहार भी एक बार तक, दो बार तक, बार-बार तक, सैकड़ों-हजारों बार तक, अनगिनत असङ्ख्येय बात तक, पूरे क्षण भर, पूरे मुहूर्त भर, पूरी घड़ी भर, पूरे दिन भर, पूरे रात-दिन भर, पूरे माह भर, पूरे वर्ष भर, पूरे दस वर्षों तक, पूरे सौ वर्षों तक, हजार वर्षों तक, अनगिनत असङ्ख्येय वर्षों तक, पूरे कल्पों भर, उससे भी अधिक काल तक - मंद शक्ति के समय मंद रहते हुए - तीव्र शक्ति के समय तीव्र रहते हुए कम या बेशी बारम्बार प्रजनन करते हुए लगातार कलापों को जन्म देते चला जाता है - धीरे-धीरे शक्ति क्षीण हो जाने पर अंतिम कलाप के समय पुनः पुत्र कलाप का प्रजनन नहीं होता है। छिन्न हो जाता है। वंश परम्परा लुप्त हो जाता है।

शिष्यों, यह उतुज उतु-आहार भी उनके मूलभूत कारण - उतु कारण से तथा उतु के अतिरिक्त अन्य अज्झत्त बहिद्ध दो सन्तान ही नहीं बल्कि

पृष्ठ – २६५

अनगिनत कारणों से मंद या तीव्र शक्ति वाले बन जाते हैं। शिष्यों, इन उतुज रूपों में जिस समय नर एवं मादा जूं के उतु से मादा जूं के पेट में लिख जैसा गब्भसेय्यक रूप बन रहा होता है - उस समय उस मादा जूं को निकाल ले, उसे मार दे - तो भी कुल निर्मित शिशु लिख का गब्भसेय्यक उतुज रूप की शक्ति क्षीण होकर मात्र एक या दो बार रूप कलाप को उत्पन्न करेगा। ऐसी अवस्थाओं में उतुज रूपों के क्रम में न्यूनता को जानोगे। रूप कलापों की प्रजनन की अधिकता तो स्पष्ट है। जल,

धरती, वनस्पति, प्राणि इत्यादि का वह उतुज रूप अपने चित्तसन्तान समूह कलाप के छिन्न व लुप्त होने के समय तक अधिक मात्रा में उत्तरोत्तर बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं।

शिष्यो, इन उतुज रूपों में गब्भसेय्यक उतुज रूप में यदि मां की उतु तीव्र भी हो - सर्वप्रथम भी उतुज रूप को उत्पन्न कर आधिपत्य भी कर ले तो मां की आकृति से मिलेगा। यदि पिता का उतु तीव्र और तेज हो - सर्वप्रथम भी उतुज रूप को उत्पन्न कर आधिपत्य भी कर ले - तब पिता की आकृति से मिलेगा। मनुष्य तथा तिरच्छान संयुक्त कर उत्पन्न होने में आकृति का मिलना कम्म के प्रभाव से ही होता है। स्त्री या पुरुष होना भी कम्म के प्रभावानुसार होता है। उतु के प्रभाव से नहीं। शिष्यों, इस तरह उतुज रूप, उतुपच्चय उतुज रूप, उतुपच्चय आहारज रूप की उत्पत्ति को भलीभांति समझना। खयाल रखना। यह उतुपच्चय उतुजरूप, उतुपच्चय आहारज रूपों का भी मूलभूत कारण उतु को निर्भर कर उतु वंश - उतु परम्परा उत्पन्न होकर - पुकारने की सरलता को ध्यान में रखकर - उतुज रूप ही कहते हैं। ३।

४ - आहारज

१. शिष्यों, आहार के क्षेत्र में रूप को उत्पन्न करने वाला मूल रूप में मुख्य आहार - खाये गये आहार के द्रव कलाप में उपस्थित पाचक अग्नि, उसका अंतिम उत्पाद ओज ही है।

पृष्ठ– २६६

ओज का, रूप का, मूल उत्पादक आहार ही है। इसे समझना। शिष्यों, जबकि वह मूल आहार - रूप को उत्पन्न करता है - जन्म देता है; अतएव इस रूप को आहार से जन्मा हुआ रूप होने के कारण उसे आहारज रूप कहते हैं। आहार का पुत्र भी कहते हैं।

२. इस आहार के पुत्र कलाप में विद्यमान तेज धातु नामक - उतु ओज नामक आहार अपने ठितिखण (स्थिति क्षण) में पहुंचकर एक-एक रूप कलाप को उत्पन्न करते हैं। जनन करते हैं। यह दोनों रूप कलाप आहार के द्वारा मूलतः सहायता प्राप्त होने के कारण आहार से जन्मे हुए रूप होने के कारण आहारपच्चय उतुज रूप, आहारपच्चय आहारज रूप कहलाते हैं। आहार के पौत्र भी कहलाते हैं।

३. इस आहार के दो पौत्र कलापों में उपस्थित उतु आहार भी जब अपनी ठिति क्षण में आते हैं तो पुनः एक-एक रूप कलाप उत्पन्न करते हैं। प्रजनन करते हैं। यह चारों रूप भी आहारपच्चय उतुज रूप, आहारपच्चय आहारज रूप ही कहलाते हैं। इन्हें आहार का प्रपौत्र (*) भी कहते हैं।

४. इस आहार के चारों प्रपौत्र कलाप में उपस्थित उतु आहार भी - पूर्वानुसार ही पुनः रूप कलाप को उत्पन्न करते हैं। प्रजनन करते हैं।

शिष्यो, इस तरह आहारज उतु आहारों से प्रारम्भ कर वे उतु आहार एक बार तक, दो बार तक, दसों बार तक, सैकड़ों-हजारों बार तक, अनगिनत असङ्ख्येय्यों बार तक - पूरे क्षण भर, पूरे मुहूर्त भर, पूरे घड़ी भर, पूरे दिन भर, पूरे दिन-रात भर, पूरे माह भर, पूरे वर्ष भर, उससे भी अनेकों वर्षों अधिक काल पर्यंत - अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार मंद हैं

पृष्ठ– २६७

तो मंद - तीव्र है तो तीव्र रूप से पुत्र कलापों का प्रजनन करते ही जाता है - बार-बार, बार-बार जन्म देते ही जाता है। धीरे-धीरे शक्ति सामर्थ्य कम होकर अंतिम कलाप का समय आने पर उत्तरोत्तर पुत्र कलाप को प्रजनन नहीं कर पाता। अवरुद्ध हो जाता है। छिन्न हो जाता है। लुप्त हो जाता है।

शिष्यों, यह आहारज उतु आहार भी उसका मौलिक कारण आहार के कारण - उस आहार के अतिरिक्त अज्झत्त बहिद्ध दोनों सन्तान में अनेकों कारणों से कभी मंद - कभी शक्तिशाली हो जाता है। गाय गोरु, भैंस आदि जानवरों के खाये आहार से मनुष्यों द्वारा खाये आहार तेज एवं शक्तिशाली होकर - उसके द्वारा जनित कलापों की बारम्बारता अधिक होती है। उन लोगों के आहार में भी मक्का, दलहन, आलू, घास-पत्ती की आहारों से शालि, मछली-मांस, घी, दूध, पनीर आदि आहारों में अत्यधिक शक्ति होने के कारण - कलापों का प्रजनन क्षमता, बारम्बारता अधिक होती है। उससे भी अधिक ऊर्जायुक्त आहारों में उससे भी अधिक शक्ति सामर्थ्य होने के कारण कलापों का प्रजनन अधिक तथा बारम्बारता अधिक होती है। उससे भी अधिक देवों नागों द्वारा खाये जाने वाले दिव्य ओज आहार की शक्ति अधिक होती है। कलाप प्रजनन अधिक और बारम्बारता अधिक होती है।

शिष्यों, मुंह से खाया आहार ही नहीं शरीर पर लेपा गया द्रव भी शरीर के भीतर रिसकर जाता है। फैलता है। आहारज रूप उत्पन्न करता है। पाचक अग्नि से बिना जुड़े ऐसा नहीं होता। उत्पन्न नहीं होगा। इसलिये आहार ग्रहण नहीं कर सकने वाले रोगी के पेट को अन्न से ढंककर अन्न लेप कर, आहार कृत्य को पूर्ण करते हैं। जब भगवान आहार त्याग कर साधना तप में लगे थे तब देवता गण उनके नाभि तथा रोम कूपों से, ओज समाविष्ट कर आहार कृत्य को पूर्ण करते थे। मां द्वारा ग्रहण किया आहार भी गर्भस्थ शिशु के शरीर में नाभि रज्जु से प्रविष्ठ होता है। आहारज रूप को उत्पन्न करता है। इसलिये भगवान ने यह देशित किया है :–

पृष्ठ– २६८

मां के गर्भ में आहार की प्राप्ति

यञ्चस्स भुञ्जति माता, अन्तं पानञ्च भोजनं।
तेन सो तत्थ यापेति, मातुकुच्छि गतो नरो।। (सगाथावग्ग संवुत्त पाळि)

गर्भस्थ शिशु, उसी आहार को ग्रहण करता है जिसे उसकी मां ग्रहण करती है। जो कुछ भी खाती-पीती है - मां की कोख में पल रहा शिशु मां द्वारा ग्रहण किया गया उसी आहार से अपना यापन करता है।

शिष्यों, मुंह से खाया गया यह कबळीकार आहार, बहिद्ध आहार– अभी पहले कह आया - वह कम्मज आहार, चित्तज आहार, उतुज आहार यह अज्झत्तिक आहार - यह दोनों अज्झत्त बहिद्ध आहार परस्पर संयुक्त होकर - परस्पर सहयोग प्राप्त होने पर ही - शक्ति होता है (ऊर्जा होती है) और रूप उत्पन्न हो सकता है। यदि परस्पर सहयोग उपकार नहीं प्राप्त होगा तो रूप को भी उत्पन्न नहीं कर सकते। सहयोग उपकार परस्पर प्राप्त होने के बावजूद भी यदि अग्निपूत कलाप - वायुपूत कलाप में उपस्थित आहार की शक्ति कम होने के कारण, वे रूप को उत्पन्न नहीं कर सकते। इसलिये अज्झत्तिक आहार के न होने पर बहिद्ध रूपों में भी आहारज रूप नहीं होता। बहिद्ध आहार को नहीं ग्रहण करने वाले ब्रह्मा आदि प्राणियों में भी आहारज रूप नहीं होता। बहिद्ध आहार को खाने व ग्रहण करने वाले लोगों में भी वह बहिद्ध आहार जिन-जिन कायिक अंगों में फैलकर नहीं पहुंचता वहां भी आहारज रूप नहीं होते यह समझना।

वह कथन सत्य है। शिष्यों, कभी भी आहार को ग्रहण नहीं किये हुए को सर्वप्रथम अपने मुंह का थूक आदि ही थोड़े से आहार को उसके मुंह में प्रविष्ट करा दोगे तो वह थोड़ा-सा आहार उसकी काया के भीतर केवल

पृष्ठ– २६९

थोड़े से स्थान में ही फैल सकेगा। जहां फैलेगा मात्र वहीं पर ही वह आहारज रूप को उत्पन्न करके रह जायेगा। जिन स्थानों में वह नहीं फैल पायेगा वहां आहारज रूप नहीं उत्पन्न हो सकेगा। नन्दोपनन्द नाग को वश में करने के लिये मोग्गलान ने नाग का रूप धारण कर सुमेरू पर्वत को अपनी काया से चौदह भांवर लपेट लिया था। इतनी बड़ी काया में; ब्रह्मलोक तक अपनी काया को बड़ा निर्मित करने वाले इद्धिमान पुग्गलों की काया में; सूर्य चांद को पकड़कर छू सकने वाली इद्धिमान पुग्गलों द्वारा निर्मित उनकी बांहों में; बूंद भर दूध समुद्र से भी अधिक के समान - एक बार का, एक दिन का खाने भर का एक दो अञ्जलि आहार द्रव बिना समाप्त हुए आहारजं रूप फैलकर– क्या नहीं हो गया। शिष्यों, इस तरह विशाल निर्मित कर, बड़ा किया गया बांह इत्यादि में चित्तज रूप को अग्रगामी बनाकर उस चित्तज रूप उतुज रूप ही मात्र खूब विशाल होते

चले जाते हैं। कम्मज रूप भी उतना ही चित्तज रूप, उतुज रूप भी बड़े हो जाते हैं। उतना ही संपूर्ण एक समान उत्पन्न होता है। वैसा होने के कारण ही स्पर्श करने पर जान पाते हैं।

शिष्यो, इस तरह आहारज रूप, आहार पच्चय उतुज रूप, आहार पच्चय आहारज रूपों की उत्पत्ति को भलीभांति समझना। यह आहार पच्चय उतुज रूप, आहर पच्चय आहारज रूपों के भी आधार मूलभूत कारण आहार को निर्भर कर आहार वंशज आहार परम्परा है। पुकारने में सरलता हो इसलिये केवल आहारज रूप ही कहते हैं।

शिष्यो, इस तरह कम्म, चित्त, उतु तथा आहार - इन चारों के कारण उत्पन्न चार तरह के रूपों को - उनकी उत्पत्ति सहित - भलीभांति जानो और खयाल रखो।

शिष्यो, बहिद्ध सन्तान में केवल एक उतुज रूप अकेला ही है। सत्व सन्तान कहलाने वाला अज्झत्त सन्तान में चित्त रहित अरञ्ञसत्त ब्रह्म काया में कम्मज रूप, उतुज रूप केवल दो ही समूह कलाप जुड़े हुए रहते हैं।

पृष्ठ– २७०

चित्त सहित तथा आहार को नहीं लेने वाले ब्रह्मा इत्यादि सत्वों की काया में कम्मज रूप, चित्तज रूप, उतुज रूप केवल तीन ही समूह कलाप की रचना कर उत्पन्न होता है। आहार को खाने वाले सत्वों की काया में कम्मज रूप, चित्तज रूप, उतुज रूप, आहारज रूप चारों ही समूह कलापों की रचना कर उत्पन्न होते हैं। जोन्हरी, जुआर, तिल, राई इन चारों के बीज को एक साथ मिलाकर रखने के समान रहते हैं।

शिष्यो, यह चारों समूह कलाप की संयुक्त रचना - जब कोई प्राणी पूर्व जन्म में च्युत होकर - अपने अतीत के कर्मानुसार - उस कम्म के कारण आगामी जन्म में मां के पेट में बच्चेदानी में एकत्र होकर आता है - और रहता है - उस समय माता-पिता के उतु द्रव के मध्य में कम्मज रूप कलाप, रूप द्रव कण - दो तीन एक ही होकर - एक साथ सर्वप्रथम उत्पन्न होते हैं। वे उत्पन्न रूप कलाप उप्पादखण को पार कर ठितिखण में जब पहुंचते हैं तब उन माता-पिता के उतु द्रव से उतुज कलाप रूप द्रव कण कम्मज रूप से मिलकर पैदा होता है। कम्मज रूप के साथ एक ही बन जाता है, शिष्यों।

उदाहरण के रूप में समझो - अपने भीतर गिरे गीले गुड़ को शुष्क आटा जैसे चिपक जावे - अपने भीतर गिरे शुष्क आटा को तेल-तेल कलाप चिपट जावे - अपने भीतर गिरे दूध के बूंदों को जैसे जल द्रव - जल कलाप घुलमिल जावे। ठीक वैसे ही (माता-पिता के उतु द्रव उन कम्म रूप कलाप को समेट लेते हैं।)

शिष्यो, उतुज रूप कलापों - उप्पादखण को पार कर जब ठितिखण को पहुंचते हैं तब चित्त से चित्तज रूप द्रव कणों - उस सूक्ष्म कम्मज उतुज रूप से मिलकर पैदा हो

जाता है। तीनों रूप एक ही बन जाता है। एक ही कण। शिष्यो, आहारज - जिस समय में पाचक अग्नि की स्थिति आंत नामक कोट्ठास बनती है - तब उस समय से पाचक अग्नि उत्पन्न होकर आती है।

पृष्ठ– २७१

उस पाचक अग्नि के उत्पन्न होने के बाद जिस समय में मां द्वारा खाया हुआ द्रव आहार - उस शिशु में फैलने लगता है - उस समय होता है।

शिष्यो, इस तरह चारों नन्हें रूप परस्पर समूह कलाप की रचना करते हैं। दो-तीन तरह के रूपों का परस्पर समूह कलाप बना लेना भी इसी तरह होता है। शिष्यों, उत्पत्ति स्थान उतु मात्र ही विशेष है। शिष्यों, इसी तरह दो, तीन, चार तरह के रूपों का आपस में समूह कलाप की रचना कर लेना भी भलीभांति समझना।

रूपों का अरसे तक स्थित नहीं रहने को उपमा द्वारा वर्णन

शिष्यो, चार कारणों से उत्पन्न यह चार तरह के रूप कलाप नन्हें-नन्हें रूप कण भी उत्पन्न होते ही क्षण भर में नष्ट हो-हो जाते हैं। अनित्य हैं - परिवर्तन शील। शिष्यों, कम्म, चित्त, उतु, आहार नामक यह चार धर्म प्रत्येक अपने-अपने कारण उत्पन्न रूपों को उत्पन्न करने की जनक सत्ति, तीव्र प्रसन्न होने में सहायता करने की उपत्थम्भक सत्ति - इन दो द्वारा उपकार करते हैं। अपने अतिरिक्त शेष तीन-तीन कारणों से उत्पन्न रूपों को; अपने पौत्र, प्रपौत्र आदि रूपों को - एक उपत्थम्भक सत्ति से उपकार करते हैं। अज्झत्त सकसन्तान रूपों को बहिद्ध परसन्तान तीनों कम्म, चित्त, उतु भी उत्फुल्ल होने के लिए उपत्थम्भक सत्ति से उपकार करते हैं।

शिष्यो, इस तरह एक रूप के उत्पन्न होने में उत्पन्न करने वाले सहायक कारण - **जनक** तथा **उपथम्भक** - दो होते हैं। शिष्यो, यह दोनों कारण– धर्म भी उत्पन्न हो– होकर क्षण भर में ही नष्ट हो जाते हैं। अनित्य हैं - परिवर्तनशील हैं। कड़ुवे वृक्ष के बीज से उत्पन्न नन्हा पौधा मीठा नहीं हो सकता। सदा कड़ुवा ही होता है - उसी तरह मरणधर्मा मां से उत्पन्न सन्तान सदा स्थित नहीं रह सकता। यह नितांत सत्य है। वह मरता ही है - मरणधर्मा ही होता है - शिष्यों, इसी तरह यह अस्थिर अनित्य कारण वाले

पृष्ठ– २७२

रूप कैसे नित्य, अपरिवर्तनशील हो सकते हैं। क्षण भर में हो-होकर नष्ट हो-हो जाते हैं। समाप्त हो ही जाते हैं। शिष्यों इन रूपों की आयु अत्यंत अल्प हैं। विनष्ट होना अतिशीघ्र है।

रूप-आयुओं की अत्यल्पता का वर्णन (रूप-आयुओं का अति अल्पायु होने का वर्णन)

इमली का वृक्ष - अरण्डी का वृक्ष - धतुरे का पौधा - घास का पौधा - जलकुम्भी

- जल की काई - पानी का बुल्ला - इन सब में इमली दीर्घ जीवी तथा क्रमशः घटते क्रम में पानी के एक बुल्ले का जीवन तो अतिअल्प होता है। इसी तरह शिष्यों, इस रूप कलाप - रूप के नन्हें से कणों का जीवन तो पानी के बुल्ले जितना भी नहीं होता। उस पानी के बुल्ले के जीवन से लाख, दस लाख करोड़ों गुना से भी कम आयु होती है - इन नन्हें-नन्हें रूप कलापों की। इसका विनाश इतनी त्वरित गति से होती है।

शिष्यों, यह रूप कलाप यदि जूं के सिर के बराबर बड़े हों तो तीन-चार मुहूर्त भर ही उनका जीवन लम्बा होता है। बहुत लंबा कहेंगे - यह स्थिति। यदि अणु बराबर बड़ा होता तो चुटकी बराबर समय में लंबी आयु होगी। बहुत लम्बी आयु ही कहेंगे इसे। यदि परमाणु बराबर बड़ा होगा तो - तो चुटकी के सौवें या हजारवें भाग का एक भाग के बराबर लंबी आयु होगी। लंबी आयु ही कहेंगे। शिष्यों, ये रूप कलाप नन्हें-नन्हें रूप कण इन परमाणु कणों से भी छोटे हैं। यह तो इन परमाणु कणों से भी लाख, दस लाख करोड़ बार छोटे हैं। बहुतों को एकत्र करने पर वस्तु-सा होने पर भी

पृष्ठ– २७३

अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण क्रिया मात्र ही कहने योग्य हैं। शिष्यों, इसलिये यह रूप कलापें - रूप कणें - परमाणु के बराबर की आयु वाले भी नहीं होते। देर तक स्थित नहीं रहते। चुटकी बजायें, इतनी देर में करोड़ पांच हजार बार से भी अधिक बार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं। (५०००,००००,००००)। शिष्यों, इसे तो तुम अभी मात्र ओकप्पन श्रद्धा से ही मानो। स्वयं साक्षात्कार कर लेना तब अपनी प्रज्ञा द्वारा जान जाना। मैं इतना ही कहूंगा - इसका साक्षात्कार कर लो।

तथा तुम्हे विपस्सेय, यथा सेक्ख्येन दस्सितं, अक्खिम्हि आसत्तं अब्भं, विद्धंसेस्सामि साधुनं।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

शिष्यो, सेक्ख्य-पब्बत-आचार्य अर्थात् मैं इस तरह संदर्शित करता हूं। मेरे बताये अनुसार तुम सब विपश्यना करो। तुम साधुओं के ज्ञान-चक्षु के समक्ष चिपका हुआ यह भव संसार के बादल की परतों को मैं विध्वंसित कर दूंगा।

शिष्यो, इन रूपों के उत्पाद-व्यय को - अणु से परिपक्व, परिपक्व से जीर्ण हो रहे अनुपक्कजिण्ण के अनुसार इस तरह देखो। (विपश्यना करो।)

पृष्ठ– २७४

सत्वों का गर्भ में विकास

पठमं कललं होति, कलला होति अब्बुदं।
अब्बुदा जायते पेसि, पेसि निब्बत्तते घनो।
घनापसाखा जायन्ति, केसा लोमा नखापि च।। (सगाथा वग्ग संयुत्त)

रूप काया, गर्भ में सर्वप्रथम कलल द्रव होता है। कलल से वह बाद में अब्बुद अर्थात् झाग बुदबुदा के समान बनता है। उस अब्बुद के बनने के बाद पेसि में० परिवर्तित होता है। पेसि अर्थात् मांसल बिंदु से वह घना अर्थात् अण्डे के समान ठोस मांस पिण्ड होता है। इस 'घना' के बाद प्रशाखा अर्थात् दो हाथ - दो पैर तथा सिर - इस तरह पांच शाखाएं जनमती हैं। फिर केश, लोम, नख आदि उत्पन्न होते हैं।

कललादि द्रवों की स्थिति का वर्णन

१. शिष्यो, इस तरह सगाथा वग्ग संयुत्त पाळि में इन्दक यक्ष को भगवान ने उपदेश दिया था। उसके अनुसार तुम शिष्यों की रूपकाय मां के गर्भ में इन तीन तरह से रहता है। सर्वप्रथम द्रव कलल - जो कि तिल-तेल या घी के समान होता है। इसलिये संयुत्तभाणक आचार्य लोग कहते हैं–

तिल तेलस्स यथा बिन्दु, सप्पिमण्डो अनाविलो। एवं वण्णपटिभागं, कललं सम्पवुच्चति।

पृष्ठ– २७५

तिल के तेल के बिन्दु का-सा, बिना मथित घी का-सा वर्ण आकृति वाले से मिलता-जुलता कलल द्रव को बताया गया है।

(वैसे कलल, अब्बुदा, पेसि का वर्णन भी जनकाभिवंस द्वारा दिये गये प्रारम्भिक पट्ठान प्रवचन के मूल बर्मी पृष्ठ २८० के बाद इन्दक यक्ष प्रश्न के उत्तर में दिया गया है।– अनुवादक)

कलल छः-सात दिनों तक उत्पन्न होकर उन छः-सात दिनों को पार करने पर वह फेन के समान या झाग व बुल्ला के समान बन जाता है। ऐसा होते ही वह कलल द्रव के रूप नहीं रह जाता। शिष्यों, क्यों ऐसा होता है? शिष्यों, यदि कलल द्रव रूप बिना नष्ट हुए यदि ज्यों के त्यों ही रहता - तो यह छः-सात दिन व्यतीत होने पर भी वैसे ही रहता। लेकिन ऐसा नहीं होता है - वह झाग के समान जैसा कि ऊपर बताया वैसा हो जाता है। इसलिये यह झागनुमा संरचना बनता है तो कलल द्रव कुछ भी नहीं रह जाता। वह निरुद्ध होकर विलीन हो जाता है। शिष्यों, इस तरह सर्वप्रथम कलल द्रव रूप के अब्बुद रूप तथा उसका एक-सा बिना बने रहे - लगातार सन्तति को विखण्डन कर - कलल द्रव रूप का खणिक उत्पाद-व्यय बनना-बिगड़ना उदय-व्यय स्वभाव को इस तरह हम सूक्ष्म विखण्डन द्वारा देखते हैं।

शिष्यो, मुर्गी अपने अण्डे को सेती है। उसकी गर्मी के कारण धीरे-धीरे उस अण्डे में पृथ्वी धातु गाढ़ा होता है। आग पर सेंकने से जैसे मिट्टी कठोर हो जाती है - वैसे ही यह कलल जल द्रव अपनी मां की उष्मा के कारण अपना मौलिक रूप में नहीं रहता। पृथ्वी धातु जो उसमें होता है - वह गाढ़ा हो जाता है। कैसे होता है - वह समझें - प्रारम्भ में पहले उत्पन्न कम्मज, उतुज, चित्तज द्वारा इन तीन तरह के कलल

रूप कलाप के नन्हें कण उत्पन्न होते हैं। वह नष्ट होकर निरुद्ध हो जाते हैं। उस निरुद्ध होकर विलुप्त हुए स्थान में कम्म, चित्त, उतु, इन तीन कारणों से

पृष्ठ– २७६

नये रूप कलाप उत्पन्न हो जाते हैं। यह नया रूप कलाप पुराने के समान द्रव वाला रूप कलाप नहीं होता है। बल्कि - मां की कायिक उष्मा के कारण कुछ पृथ्वी धातु की अधिकता के साथ नये रूप कण उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह इनके उत्पन्न होने पर पुराने नष्ट हो जाते हैं। जहां वे नष्ट हुए वहां इन तीन कारणों से नये रूप की उत्पत्ति हुई। इस बार पहले से अधिक रूप कलाप उत्पन्न हुए। यह पुनः उत्पन्न रूप कलाप फिर नष्ट हो गये। उन्हीं तीन कारणों से पुनः नये परन्तु अधिक मात्रा में नये रूप कलाप उत्पन्न हो आये। विरलता कम और सघनता अर्थात् गाढ़ापन ज्यादा हो जाता है। शिष्यो, इस तरह तरलता समाप्त होते हुए सघनता बढ़कर द्रव कम रहकर अब्बुद रूप बन जाता है।

शिष्यो, यह कलल अचानक सातवें दिन अब्बुद में नहीं बदलता है। बल्कि यह कलल अपने प्राथमिक अवस्था से ही क्रमशः धीरे-धीरे बदलता है। कलल के रूप कलाप बदलते हुए, निरुद्ध होते, नया बनते हुए क्रमशः ६, ७ दिनों में द्रव रहित-सा केवल अब्बुद में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे अण्डे को गरम करने पर तुरंत वह कड़ा नहीं होता। पृथ्वी धातु की अधिकता अर्थात् कड़ापन क्रमशः होता है।

पृष्ठ– २७७

जैसे खुले आकाश में रखा हुआ जल भरा पात्र - थोड़ा-थोड़ा वाष्पित होते हुए बहुत लंबे समय में पूरा जब वाष्पित हो जाता है। अंततः सूख ही जाता है। इसी तरह कलल से - अब्बुद तक की प्रक्रिया क्रमशः होती है। अचानक नहीं होता। उत्पाद-व्यय की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। कलल द्रव के रूप कलापों का बन-बनकर बिगड़ना, उत्पाद-व्यय, असङ्ख्येय बार हुआ। शिष्यों ऐसा होने में - विनष्ट होने पर भी उत्पन्न करने के विषयों की अधिकता के कारण उत्पन्न रूपों की संख्या अधिक होने के कारण - वह बड़ा होने लगता है। पहले पहल तीन रूपों का संयोग जब हुआ तब तो वह अति सूक्ष्म था। आंखों से देखना असंभव था। क्षण भर, एक लय के बाद ही आंख से देखने लायक तज्जारी अणु, रथ रेणु के बराबर बड़ा हो जाता है। छः-सात दिन के बाद जिसे अब्बुद कहते हैं वह आंवले के बराबर बड़ा हो जाता है।

२. शिष्यो, यह अब्बुद भी छः-सात दिन बीतने पर बहुत सघन तथा तनिक कठोर थक्का हुए रुधिर के समान पेसि अर्थात् मांस पिण्ड या रुधिर पिण्ड में बदल जाते हैं। वर्ण भी लाल रुधिर-सा ही बन जाता है। जो सबसे बड़ा होता है वह भी दो-तीन आंवले के बराबर होता है। शिष्यों, यह पेसि के उत्पन्न होते ही वह अब्बुद का रूप लुप्त हो

जाता है। ठीक जैसे कलल परिवर्तित होता हुआ अब्बुद बना - वैसे ही अब्बुद भी परिवर्तित होता हुआ - पेसि के रूप में परिवर्तित हुआ।

३. शिष्यो, यह पेसि कहलाने वाला मांस पिण्ड भी छः-सात दिनों में लचीला कुछ कठोर - मांस के लोथड़े-सा हो जता है।

पृष्ठ– २७८

जिसे 'घन' कहते हैं। मुर्गी के छोटे अण्डे जितना बड़ा। आकृति भी उसी के समान होता है। इसीलिये संयुक्त भाणक आचार्यों ने यह देशित किया है :–

यथा कुक्कुटिया अण्डं, समन्तं परिमण्डलं।
एवं घनस्स सण्ठानं, निब्बतं कम्मपच्चया।।

जैसे मुर्गी का अण्डा होता है - उसके समान वर्तुलाकार। उस घन अर्थात् मांस पिण्ड की आकृति होती है। कम्म की सहायता से इस प्रकार उत्पन्न हुआ।

शिष्यो, यह घन पिण्ड उत्पन्न होता है तब 'पेसि' नहीं रह जाता - वह निरुद्ध हो जाता है।

४. शिष्यो, यह घन नामक मांस पिण्ड भी छः-सात दिन व्यतीत होने पर उसमें से दो हाथ, दो पैर, एक सिर, इस तरह पांच शाखाएं निकल आती हैं। इन शाखाओं के छूटते ही अब वह घन भी निरुद्ध होकर परिवर्तित हो जाता है।

५. शिष्यो, यह शाखाएं - दो सप्ताह तक बढ़ते हुए - कलल सप्ताह से लेकर गिनती करने पर आठवें, नौवें सप्ताहों में हाथ-पैर, सिर की आकृति उत्पन्न हो जाती हैं। उसी के साथ त्वचा, वाहिकाएं, अस्थियां, आंत, कोट्ठास इत्यादि प्रत्येक उत्पन्न हो जाती हैं। नौ द्वार भी उत्पन्न हो जाते हैं। सिर के अङ्ग - सात दिनों तक परिपक्व होकर ग्यारहवें सप्ताह में चक्षु-स्रोत, घ्राण, जिह्वा आदि उत्पन्न हो जाते है। उसके बाद धीरे-धीरे विकसित होते हुए तीस से चालीस सप्ताह के अन्दर अर्थात् लगभग ७ - ८ माह होते-होते केश, लोम, नख,

पृष्ठ– २७९

दांत आदि उग आते हैं। नौ-दस माह के बाद तुम शिष्यगण मां के पेट से बाहर आये। शिष्यों, इस विकास प्रक्रिया के क्रम में मां के गर्भ से बाहर आया शिशु (प्राणी) भी धीरे-धीरे ही विकसित होते हुए बड़ा होता है। धीरे-धीरे ही बढ़ता है। जिन प्राणियों का विकास क्रम धीमा होता है - वह धीरे-धीरे बढ़ते हैं, जिन प्राणियों का विकास तीव्र गति से होता है - व जन्म के बाद जल्दी बढ़ते हैं। यह भी ध्यान में रख लेना।

शिष्यो, मां के गर्भ से जन्म लेकर बाहर आने वाले का वह रूप पिण्ड - वही

नहीं होता जो कि मां के गर्भ में था। यह नया रूप पिण्ड ही होता है। इसके पूर्व मां के गर्भ में जो पिण्ड था वह निरुद्ध हो गया।

६. शिष्यो, जन्म के समय तुम सबकी जो काया थी, जो रूप राशि यह पिण्ड था वह आज अभी नहीं है। वह तो जन्म के बाद ही निरुद्ध हो गया। पूर्व-पूर्व की काया, रूप पिण्ड - अब इस वर्ष - इस समय कुछ भी नहीं बचा। वह सब पूर्व-पूर्व में ही निरुद्ध होता चला गया।

७. शिष्यो, यदि वह प्रारम्भिक 'पेसि' अर्थात् मांस पिण्ड रूप राशि सदा रहने वाला नित्य होता तो वह मांस पेशी युक्त 'घन' रूप उत्पन्न नहीं हो पाता। यदि 'घन' रूप बिना नष्ट हुए सदा बना रहता तो उससे परिपक्व 'पसाख' रूप नहीं बन सकता था। यदि वह गर्भ स्थित रूप बिना विनष्ट हुए सदा स्थित रहकर बना ही रहता और वैसे ही जन्म होकर बाहर आता तो वैसे ही वह श्लेष्म युक्त फेनिल शिशु ही बाहर आता। वह परिपक्व - पुष्ट नहीं होता। यदि प्रसव के पश्चात बना रूप पिण्ड सदा बना रहता - नहीं नष्ट होता - तो आज भी रुई-सा कोमल ही होता - इतना कठोर परिपक्व नहीं होता। इसी तरह यदि पूर्व-पूर्व का रूप पिण्ड बिना नष्ट हुए सदा एक-सा ही बना रहता तो जैसा आज हमारा शरीर है - वैसा नहीं होता।

पृष्ट– २८०

यह रूप काया कोमल ही रहता, अल्हड़ ही रहता। खूब परिपक्व व कठोर नहीं होता। लेकिन वैसा नहीं रहा - वह क्रमशः बदलता हुआ कठोर होता गया।

इसलिये शिष्यों– पेसि रूप - घन रूप होने पर नहीं रहा। घन रूप - पसाख रूप के समय नहीं रहा। मां के गर्भ में का वह आभ्यन्तरिक रूप (अब्भन्तरिक रूप) प्रसव के बाद नहीं रहा। उस प्रसव के समय का रूप आज नहीं रहा। पूर्व-पूर्व के वर्षों वाला रूप आगामी-आगामी के वर्षों में नहीं रहा। उन पूर्व-पूर्व समय में ही वह नष्ट होकर लुप्त हो गया। शिष्यों, अभी वर्तमान में बन रहा रूप भी अभी ही नष्ट होते जा रहा है। आगामी वर्ष, आगामी समय में वह नहीं जाता है। शिष्यों, यदि अभी बन रहे रूप बिना नष्ट हुए सदा बने रहते और आगामी वर्षों, आगामी समयों में वैसे ही रह जाते तो वह आज जैसा दृढ़ हो चुकी है हमारी काया - वैसी ही सदा बनी रहती। फिर बूढ़ा - जीर्ण क्यों होता? वहीं बूढ़ा होता ही नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता शिष्यों - इस क्षण में बना हुआ रूप अभी इसी समय नष्ट हुए जा रहा है।

शिष्यो, यह पेसि, घन आदि पूर्व-पूर्व का रूप, वर्तमान में बन रहा रूप - भविष्य में उत्पन्न होने वाले रूपों का पल-पल परिवर्तन हो रहा है - यह सब क्षणिक है - उदय-व्यय स्वभाव वाले हैं। इस तरह सूक्ष्म चित्त से देखना होता है। अण्डे को आग पर सेंक देने पर वह धीरे-धीरे कठोर हो जाता है - कीचड़ को धूप में सूखाने पर धीरे-धीरे सूखकर कठोर हो जाता है - ठीक वैसे ही शिष्यों - तुम लोगों की वह पेसि इत्यादि

- वह रूप कणों की राशियां जब मां के गर्भ में थी तब बाहरी (बहिद्धक) मां की उष्मा की आंच से - फिर प्रसव के बाद बाह्य जगत की उष्णता की आंच से - अपने भीतरी सन्तान की जीर्ण अग्नि की आंच से - सङ्खार धर्म के सतत स्वभाव परिपक्व होना, नष्ट होना - होने के कारण धीरे-धीरे परिपक्व होते आया। कैसे होते आया–

पृष्ठ– २८१

शिष्यो, 'पेसि' नामक मांस पिण्ड के नन्हें रूप कण उत्पन्न होने के पश्चात तुरन्त पुराना होकर, जीर्ण होकर निरुद्ध हो जाते हैं। उस स्थान पर संबंधित कारणों से नूतन नन्हें रूप कण उत्पन्न हो आते हैं। शिष्यों, इस तरह होते समय पुराने निरुद्ध कणों के समान अत्यंत कोमल रूप कण नहीं उत्पन्न होते। कथित संबंधित कारणों के कारण उससे कुछ परिपक्व (रुक्ष-कठोर) रूप कणें उत्पन्न होते हैं। यह नवीन पहले से कुछ परिपक्व रूप कणें भी उत्पन्न होकर जीर्ण होती हैं तथा निरुद्ध हो जाती हैं। उनके स्थान पर संबंधित कारणों के कारण नये रूप उत्पन्न होते हैं तो यह अपने पहले वाले रूप कणों से कुछ अधिक परिपक्व, अधिक कठोर रूप कण होते हैं। यह अपने पूर्ववर्ती रूप- कणों से कठोर होते हुए - उन्हीं के समान पुनः जीर्ण होकर निरुद्ध हो जाता है। उसके स्थान पर संबंधित कारणों के कारण - पुनः नये रूप कणें उत्पन्न होते हैं। जो कि पूर्ववर्ती कणों से परिपक्व व कठोर होते हैं।

शिष्यो, इस तरह उत्तरोत्तर कठोर ही कठोर रूप कण - जैसे कीचड़ के सूखने का उदाहरण बताया - वैसे ही लगातार - क्रमशः परिपक्व-परिपक्व बनते आने के कारण - कुछ समय बीतते ही उसे 'घन' रूप कहते हैं। और कुछ समय व्यतीत होता है - तो 'घन' से भी परिपक्व पसाख रूप - अब्भन्तरिक रूप कहने लगते हैं। और थोड़ा समय व्यतीत होता है तो उस अब्भन्तरिक रूप से तनिक कठोर प्रसव पश्चात - विजात रूप कहने लगते हैं। उसके बाद थोड़ा समय बीतता है - तो उस विजात रूप से तनिक कठोर एक वर्ष का शिशु रूप कहलाने लगता है। उसके बाद पुनः समय व्यतीत होते जाता है तो - प्रथम आयु रूप, द्वितीय आयु रूप, तृतीय आयु रूप इस तरह क्रमशः होते जाता है। शिष्यों तृतीय आयु में पहुंचने पर सबसे परिपक्वावस्था सबसे कठोर रूप कणें उत्पन्न होकर पुराना-जीर्ण विनष्ट हो जाता है। निरुद्ध हो जाता है। उस निरुद्ध स्थान में संबंधित कारणों के कारण नूतन रूप कलाप उत्पन्न होने पर बहुत कम ही जीर्ण पुराने होकर - वह तनिक-सा जीर्ण रूप कणें

पृष्ठ– २८२

उत्पन्न होकर, पुराना होकर निरुद्ध हो लुप्त हो जाती है। उस स्थान पर संबंधित कारणों के कारण - जब नये रूप कण उत्पन्न होते हैं तब पहले वाले से जीर्ण-शीर्ण रूप कण उत्पन्न होते हैं। ये जीर्ण-शीर्ण रूप कणिकाएं उत्पन्न होते ही जीर्ण-शीर्ण होकर पुनः निरुद्ध हो जाती हैं। उनके स्थान पर पुनः संबंधित कारणों से पुनः नये रूप कण उत्पन्न होते हैं - और वह जीर्ण-शीर्ण रूप कणें ही उत्पन्न होती हैं। शिष्यों - इस तरह उत्तरोत्तर

जीर्ण-शीर्ण से - जीर्ण शीर्णतर - जल के सूखने जैसा - अनवरत क्रमशः जीर्ण-शीर्ण होते जाता है। जब इसी तरह बार-बार होते जाता है तब वह टूट जाता है। उससे अधिक जीर्ण-शीर्ण की आकृति अधिक होने पर मृत हो जाता है। मृत्यु के बाद मांस, वाहिकाएं, त्वचा, केश, लोम, अस्थि आदि चूर्ण-विचूर्ण होकर हाथ लगाने पर भी सड़ा-गला होकर निरुद्ध हो जाता है।

शिष्यो, इस्स तरह कलल द्रव से प्रारम्भ कर तुम्हारे इस काया समूह पिण्ड में परमत्थ कलाप रूप कण का नया-नया स्फुरित होकर उत्पन्न होना उदय स्वभाव है। पुराना होकर जीर्ण-शीर्ण हो निरुद्ध होते रहना वय स्वभावों को जैसा कि मैं कह आया उसके अनुसार सर्वप्रथम - सञ्ञा - से जानवर - विञ्ञाण से जानकर इस जाने हुए समझे हुए को - ञाण-चक्खु - से साफ-साफ देखने हेतु बार-बार पर्येषणा करो। बार-बार पर्येषणा करते हुए वह प्रत्यक्ष हो जावेगा शिष्यों, जो अरिय धम्म अकोविद पुग्गल होते हैं वे उस कलल को ही अथवा प्रसव होकर उत्पन्न शिशु को ही समझते हैं कि

पृष्ठ– २८३

वही बढ़ता हुआ बड़ा हो गया। लेकिन तुम मेरे शिष्य लोग उसके विभाजित हो-होकर बदलते स्वभाव को मेरे बताये अनुसार स्वयं साक्षात्कार करो।

शिष्यो, तुम लोग खाते-पीते, बात करते सुखपूर्वक रहते हो। खड़े होते आराम करते रहते हो। रूप बिना रुके अनवरत बदलता ही रहता है। नष्ट ही होते रहता है। परिपक्व ही होते रहता है। शिष्यों, तुम आराम से सो जाते हो। रूप नहीं सोते हैं। अनवरत फुर्र-फुर्र, फुर्र-फुर्र बदलते ही रहते हैं। नष्ट ही होते रहते हैं। परिपक्व ही होते जाते हैं। शिष्यों, इस हमारी काया में जिस तरह हो रहा है - उत्पाद-व्यय - वैसे ही दूसरों की रूपों में भी उत्पाद-व्यय हो रहा है - इसका निरीक्षण करो। अपनी काया के उत्पाद-व्यय का दर्शन जिस प्रकार कर रहे हो वैसे ही अन्य लोगों की काया में भी उत्पाद-व्यय का दर्शन करोगे ही। इस सत्व सन्तान अज्झत्त रूपों के उत्पाद-व्यय को जब देख लोगे - तो जल, धरती, वन, पहाड़, वृक्ष आदि बाहरी रूपों में हो रहे उत्पाद-व्यय को देख ही लोगे। शिष्यों, इस बाहरी रूपों में वृक्ष भी सूक्ष्म से प्रौढ़, प्रौढ़ से जीर्ण-शीर्ण, उत्पाद-व्यय वाले ही हैं। अन्य सत्व सन्तानों के समान देखो और जानो, पर्येषण करो। संपूर्ण चक्रवाळ भी द्रव से गाढ़ा कीचड़ समान - सूक्ष्म से प्रौढ़, प्रौढ़ से प्रौढ़तर और इस प्रौढ़तर रूप में अनेक-अनेक लंबे काल तक रहकर - कल्पांत के समय जीर्ण-शीर्ण होकर पहले के समान विनष्ट हो ही जाता है। शिष्यों, इसकी पर्येषणा करो।

शिष्यो, इस तरह अनित्य का दर्शन कर निरीक्षण करने में भी अपने रूप को अनित्य जान लेने से ही कृत्य पूरा हो जाता है। अपने रूप को अनित्य जाने बिना अन्य व्यक्ति की काया रूप को बहिद्ध रूपों को अनित्य मानने से काम बनने वाला नहीं है। ऐसा है ही तो दूसरे का बहिद्ध रूप को जानते हुए भी अपने रूप को भी जान सकते हैं। इसीलिये तो शिष्यों - दूसरों का मरना, सड़ना, गलना देखकर मैं भी ऐसे ही मरूंगा

- मेरी रूप काया भी अनित्य है - दूसरे के समान है यह अनित्य बोध जगाकर - आर्य अ... को प्राप्त हो गये अनेकों लोग हो चुके हैं। अनगिनत लोग आर्य हो चुके हैं।

पृष्ठ – २८४

शिष्यो, पीछे सत्तसूरिय सुत्त की देशना कर आया। उस देशना को सुनकर पांच सौ भिक्षु अरिहन्त हो गये। उस बहिद्ध रूप के अनित्य स्वभाव को सुना और अपने रूप को उसी के समान रखकर पर्येषणा किया - अनित्य बोध उत्पन्न हुआ - इस तरह अरिहंत हुए। कृत-कृत्य हुए। इसके अतिरिक्त वृक्ष से सूखी पत्ती का चू जाना उसके विनाश को देखकर - कमल पुष्प के मुरझाना को देखकर उस बहिद्ध रूप तथा इस मेरे भीतर के रूप - एक ही समान तो है - यह अनित्य भावना करते हुए - अरिहंत होने वाले लोग, प्रत्येक बुद्ध होने वाले लोग अनगिनत हो चुके हैं।

१. शिष्यो, भगवान बुद्ध के समय की भी एक घटना कहता हूं - श्रावस्ती की ही एक थेरिका नामक दायिका थी। वह उपोशथ का व्रत रखी हुई भगवान से अनित्य धर्म को सुनी। सुनने के बाद वह घर चली गई। एक दिन वह खूब घी डालकर सब्जी बनाई। सूखी सब्जी की पत्तियां डालकर छौंकी। छौंकते समय कड़ाही में उबाल आ गया - अर्थात् फँफाकर घी बाहर गिरने लगा। इससे आग लग गई। सारी सब्जी जल गई। उसे देखकर उसको धर्म संवेग जागा! अरे एक दिन मेरी काया भी इस कड़ाही की सब्जी के समान जलकर खाक हो जावेगी। मेरी रूप भी इस कड़ाही की सब्जी के समान जरा की अग्नि, मरण की अग्नि से सतत जल-जलकर क्षण-प्रतिक्षण उत्पाद-व्यय होते जा रहा है। अपने रूप को कड़ाही - सब्जी की पत्ती के रूपों के समान समझती हुई अनित्य भावना करती हुई - अनित्य का साक्षात्कार कर क्षण भर में वह रसोई घर में ही अनागामी तक पहुंच गई। उसके पश्चात वह गृहस्थ जीवन से निकलकर भगवान के पास प्रव्रजित होकर ऊपर के मार्ग हेतु अकेली विपश्यना भावना करने लगी। जेतवन के गन्धकुटि से भगवान ने उसे देखा अपनी रश्मि को निःसृत कर अपने को प्रकट करते हुए - उसको यह गाथा कही –

सुखं सुपाहि थेरिके, कत्वा चोलेन पारुता।
उपसन्तो हि ते रागो, सुक्खडाकंव कुम्भियं।। (थेरी गाथा पाळि)

पृष्ठ – २८५

थेरिके! तुम पांशुकुलिक चीवर को बनाकर - उसे पहन सुखपूर्वक सोती रहो। क्योंकि सब्जी की कड़ाही में सूखी पत्तियों के समान तुम्हारे सभी रागों का उपशमन हो चुका है।

ओभास गाथा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुई। विपश्यना करती हुई गाथा के अन्त में वह अरहत्त फल को प्राप्त हो गई।

शिष्यो, इस तरह बहिद्ध रूप को अनित्च्य समझते एवं देखते हुए अपनी काया को भी उसी के समान पर्येषित कर सकते हो। इसलिये तुम शिष्य गण भी अपने सन्तान, दूसरों के सन्तान, बहिद्ध सन्तान में विद्यमान संपूर्ण रूप को अनित्य भावना से देखो। अनेकों बार देखते-देखते - अनित्य का साक्षात्कार होने लगेगा।

रूपों के उत्पाद-व्यय को आहार की ओर से देखना (ध्यान)

२. शिष्यो, रूपों के उत्पाद-व्यय का निरीक्षण आहार की ओर से भी कर सकते हैं। शिष्यों, पेट में आहार की कमी होने पर संपूर्ण काया मुरझा जावेगा। आहारज रूप कम हो जाने पर संपूर्ण काया में रूपों की रिक्तता होकर, उनके न रहने के कारण चक्कर आने लगता है। पेट में आहार के रहने पर संपूर्ण काया भरा पूरा प्रसन्न रहता है। आहारज रूप की अधिकता हो जाने पर संपूर्ण काया में रूप पूर्ण होकर ताकतवर होने के कारण शक्ति संपन्न रहता है।

शिष्यो, इस तरह आहार कम होकर रूपों का मुरझा जाना, उन आहारों के अधिक रहने पर प्रसन्न भरा-पूरा के समय का रूप कम हो जाने के कारण होता है। वे सभी रूप नहीं रहते। निरुद्ध हो जाते हैं। जब आहार भरपूर रहता है तथा प्रसन्न एवं भरा-पूरा रूप होते हैं - तब उनके कम होने - मुरझा जाने वाले संपूर्ण काया के रूप

पृष्ठ– २८६

सभी नहीं होते। वह नष्ट हो गये। शिष्यो, यदि वह भरा-पूरा प्रसन्न रूप बिना नष्ट हुए यदि सदा बना रहता होता तो वह मुरझा नहीं सकता था। दूसरी ओर यदि वह मुरझाया हुआ शुष्क रूप भी बिना नष्ट हुए सदा ही वैसे ही बना रहता होता तो वह पुनः भरा-पूरा प्रसन्न नहीं हो सकता था। लेकिन ऐसा नहीं होता - वह बदलते ही रहता है। इसलिये शिष्यों, यह भरा-पूरा रूप - यह मुरझाया हुआ दुर्बल रूप - सभी अनित्य हैं। यह सब निरुद्ध होते हुए बदलते ही जा रहे हैं।

शिष्यो, इस तरह वह दोनों अवस्था में - भरा-पूरा प्रसन्न रूप काया भी बदलते जा रहा है - यह मुरझाया हुआ दुर्बल रूप भी अनवरत बदलता जाता है - अपने-अपने स्तर पर उनका बदलना, परिवर्तित होना, चलते ही रहता है। जैसा कि पीछे भी मैं बता आया। इस तरह इसकी पर्येषणा करते हुए निरीक्षण करते रहो। शिष्यो, गलत अननुकूल आहार लेने पर इस काया के समूह कलापों में शीतलता, उष्णता, थकान, दर्द, आदि विभिन्न प्रकार के रोग भी - जब उत्पन्न होते हैं तब भी रूप कणें लगातार उत्पन्न होकर नष्ट होने की पूर्व प्रक्रिया को जारी रखता है - इसकी भी पर्येषणा करोगे।

शिष्यो, इसी तरह वृक्ष वनस्पतियों के हरे-भरे होने तथा सूख जाने में - रूप कलापों के परिवर्तन की पर्येषणा करते हुए ध्यान करो।

पृष्ठ– २८७

रूपों के उत्पाद-व्यय को उतु की ओर से देखना (ध्यान करना)

३. शिष्यो, रूपों के उत्पाद-व्यय को 'उतु' द्वारा भी पर्येषित किया जाता है। शिष्यों, तरह-तरह के बाहरी शीत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु के संयोग के कारण - उन बाहरी ऋतुओं के प्रभाव के कारण यह काय समूह कलाप ठंडा, जाड़ा, उमस, ताप को ग्रहण करते रहता है। वैसे ही होते रहता है। शिष्यो, उस तरह होने के समयों में उष्मा युक्त रूप कणें निरुद्ध होकर शीत युक्त रूप कणें उत्तरोत्तर उत्पन्न होती हुई निरुद्ध होती हैं। शीतल रूप कणें निरुद्ध होकर गरम रूप कणें उत्तरोत्तर गरमाता हुआ - बिना रूके लगातार उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध होता जाता है। जैसे पीछे बता आया वैसे ही इसकी भी भावना करो। पर्येषणा करो। शिष्यों, उन बाहरी रूप कलापों के संपर्क के कारण, अननुकूल गदत ऋतुओं के संपर्क के कारण इस कायिक समूह कलापों को - तरह-तरह के ठंड, ताप, थकान, दर्द, घाव, रोग होने के समय भी रूप कणें तरह-तरह से होकर उनके निरुद्ध होने की भी पर्येषणा करो।

शिष्यो, वृक्ष, वन, पहाड़, जल, धरती, शीला इत्यादि बहिद्ध रूप भी बहिद्ध उतु के प्रभाव डालने के कारण उनमें ठंढाना, गरमाना आदि विरोधी प्रक्रियाएं हुआ करती हैं। स्वर्ण, रजत, लौह, तांबा, शीशा, लाख, मोम इत्यादि के रूप भी तरल द्रव से ठोस के रूप में बदलते हैं। शिष्यों, इस तरह इन विभिन्न परिवर्तनों में रूप कणें लगातार बिना रुके उत्पन्न होते, व्यय होते रहते हैं। पहले के अनुसार इनकी भी पर्येषणा करो।

पृष्ठ– २८८

रूपों के उत्पाद-व्यय को चित्त की ओर से निरीक्षण करना

४. शिष्यो, रूपों के उत्पाद-व्यय को चित्त की ओर से भी इस तरह निरीक्षण किया जाता है। शिष्यों, जब सौमनस्सचित्त होता है तब संपूर्ण काया स्थित रूप प्रसन्नता युक्त होते हैं। भरे-पूरे होते हैं। जब दोमनस्सचित्त होता है तब संपूर्ण काया स्थित रूप रूखे-सूखे, मुरझाये से रहते हैं। इनके बीच न सौमनस्स न दोमनस्स - बल्कि उपेक्खा चित्त होता है तब संपूर्ण काया के रूप कलाप सामान्य होते हैं। जब प्रभावशाली रागचित्त होता है - वीरिय चित्त उत्पन्न होता है, वितर्क चित्त उत्पन्न होता है - तो संपूर्ण काया के रूप सक्रिय तथा उत्तापित हो जाते हैं। सोच व चिन्ता पर वश नहीं चलता तो संपूर्ण काया से पसीना चूने लगता है।

जब समाधि चित्त उत्पन्न होता है तो सारे शरीर के रूप शांत हो जाते हैं। प्रभावशाली समाधि से युक्त प्रज्ञा चित्त उत्पन्न होने पर संपूर्ण काया में स्थित रूप अत्यंत निर्मल एवं प्रफुल्लित हो जाते हैं। वर्ण में चमक आ जाती है। काया से प्रकाश भी निकल सकते हैं। उत्तापित दोसचित्त, उच्च कठोर दोषचित्त ताप वाले रूप को उत्पन्न कर सकते हैं। भयाकुल दोसचित्त, दुःखित दोसचित्त, दया युक्त करुण चित्त, प्रीति वाले चित्त शीतल रूप को उत्पन्न करते हैं। शीतलता बढ़ जाने पर हृदय रुधिर सघन होकर चित्त

मंद होकर बेहोश हो सकता है। मृत्यु भी हो सकती है। सह्वार भय से भयभीत त्राण संवेग चित्त भी शीतल रूप को ही उत्पन्न करता है। शिष्यों, त्राण संवेग चित्त उत्पन्न होने पर रोमांच हो सकता है। शिष्यों, इस तरह विभिन्न चित्तों के कारण इस काय समूह कलाप में तरह-तरह के रूप जब उत्पन्न होते हैं तब भी रूप कलापें बिना रूके तरह-तरह के उत्पन्न हो-होकर विनष्ट होते हैं - इसे जैसा कि पीछे समझा आया वैसे ही प्रत्येक्षण करो।

पृष्ठ— २८९

रूपों के उत्पाद-व्यय को इरियापथ की ओर से निरीक्षण करना

५. शिष्यो, रूपों के उत्पाद-व्यय को इरियापथ के द्वारा भी इसी तरह निरीक्षण करते हैं। शिष्यों, तुम शिष्यगण अभी मेरे पास धर्म सुनने के लिए सर्वप्रथम एक न एक आसन में बैठे हो। बैठते समय पैरों में पगथलियों में कोई दर्द आदि नहीं था। देर तक बैठने से गरमाते हुए दर्द करने लगता है। अगियाने दुखने पर पहले पूरे पगथली, पूरे पैरों में नहीं था। शिष्यों, ऐसा क्यों? क्योंकि यदि बैठने के समय शुरू में पगथली, पंजा पैर बिना बदले विनष्ट हुए सदा वैसे ही बना रहता तब तो वह न गरमाता - न तो दुखता ही। लेकिन ऐसा न होकर अगिया - दुखाया। इसलिए चूंकि ऐसा हुआ अतः वह गरमाकर दुःख कर पहले वाला पगथली - पंजा पैर नहीं रहा। वह निरुद्ध होकर बदल गया।

शिष्यो, इस पैर का निरुद्ध होकर - विनष्ट होकर बदलना - इस तरह सूक्ष्म चित्त से निरीक्षण करना होगा। शिष्यों सूखी लकड़ियों को आपस में रगड़ने पर जिस तरह अग्नि प्रज्वलित हो उठता है - चकमक पत्थर को आपस में रगड़ने पर अग्नि प्रज्वलित हो उठता है - उसी तरह संपूर्ण काया के भार से लगातार दबा हुआ यह पैर अगिया गया। ऐसा उस प्रारम्भ में बैठते समय

पृष्ठ— २९०

पैर, पगथली आदि में उत्पन्न हो रहे रूप कलाप - रूप कणें उत्पन्न होकर, पुराना हो-होकर, निरुद्ध हो नष्ट हो गये। उन नष्ट हो चुके रूप कलापों के स्थान पर चार कारणों से नये रूप कलाप, रूप कण उत्पन्न हुए।

शिष्यो, पुराने निरुद्ध रूपों के समान शीतल रूप न उत्पन्न होकर दबे होने के कारण तनिक गरमाकर रूप कणें उत्पन्न हुई। वे रूप कणें भी उत्पन्न होकर पुनः नष्ट हो गई। वहां पर पुनः चार संबंधित कारणों से नये रूप उत्पन्न हुए। यह पहले से भी गरमाकर उत्पन्न हुए। यह भी पुनः निरुद्ध हो गये। पुनः उनके स्थान पर संबंधित चार कारणों से नये रूप और अधिक गरमाकर उत्पन्न हुए - इस तरह ताप बढ़ गया। शिष्यों, इस तरह थोड़ा-थोड़ा गर्म होते होते - अत्यधिक गरमाकर अग्नि के समान होकर - अगियाने तथा दुखाने को प्रकट करने लगता है।

शिष्यो, अग्नि धातु में लपटों का निकलना स्वाभाविक धर्मिता है। अग्नि धातु की अतिशयता वहां वायु धातु का पहुंचना। फलतः थकान, दर्द होने लगता है। शिष्यों, वह रूप का गरमाना, जिससे पगथली पैर - सबका गरम होकर दुखना और उस ताप दर्द को जानने पर अचानक रूप की गरमी बढ़ी ऐसा नहीं। जैसा कि पीछे बता आया - जल का सूखना, वैसे ही शीतल रूप निरुद्ध होकर गरम रूप अनवरत उत्पन्न होते गये। बहुत गरमाकर रूप अग्नि हो गये। वे जब रूप अग्नि हो गये, तब गरम है - दुःखता है, जानने पर इस भीतर में उत्पाद-व्यय अनेकों असङ्ख्येय बार हो चुके रहते हैं।

पृष्ठ– २९१

शिष्यो, इस तरह बैठे-बैठे अगिया कर दुखने लगने पर अब आसन बदलकर बैठते हैं। फिर थोड़ी देर के बाद पहले के समान नहीं रहता। बदलता है। पहले का लाख दर्द - अगियाना नहीं रहता। यदि उत्पाद व्यय होकर कोई बदलाव नहीं होता तो पहले की स्थिति रहनी चाहिए थी। लेकिन वह बदल गयी। निरुद्ध हो गया। अब न तो उसमें दर्द है - न अग्नि धातु का अगियाना। वह निरुद्ध होकर विलुप्त हो गया।

उस दबाव वाले पैर पर दाब न होने से वहां का दर्द, अग्नि की उष्मा वाले रूप कण उत्पन्न होकर व्यय होते गये। वहां पर संबंधित चार कारणों से जो नये रूप धातु उत्पन्न होते गये उन पर दबाव नहीं रहा। अतः वहां की उष्मा क्रमशः प्रत्येक रूप कलापों के उत्पाद-व्यय के साथ निरुद्ध होती गयी। अंत में एकदम समाप्त हो गया। वह सामान्य हो गया। वह बार-बार संबंधित चार कारणों से क्रमशः उत्पाद-व्यय के साथ बदलते हुए सामान्य हो जाने पर भी उसका उत्पाद-व्यय बंद नहीं हुआ। इस सामान्य अवस्था में आने तक वह अनन्त बार उत्पाद

पृष्ठ– २९२

व्यय हुआ। उसकी गिनती नहीं कर सकते।

उस पैर में हो रहे समूह कलाप परमत्थ रूप कलाप के नन्हें-नन्हें रूप कलापों के बार-बार उत्पाद-व्यय को जानो। उसका निरीक्षण करो। आसन बदलने के बाद पुनः जिस पर दाब पड़ा उसमें उपरोक्त उत्पाद-व्यय एवं उष्मा का बढ़ना होने लगेगा। पहले वाला पांव सामान्य हो गया होगा? नये आसन के नये दाब से दूसरे पैर में उसी प्रकार उष्मा बढ़ जावेगा। दर्द बढ़ेगा। इस सबके भीतर वैसे ही संबंधित चार कारणों से यह होते रहता है। इसके स्वभाव को जानते हुए उत्पाद-व्यय का निरीक्षण करो।

शिष्यो, इस तरह पालथी मारे - बैठे हुए - कमर टूटेगा, पेट गरमायेगा, पीठ में दर्द होगी। गर्दन सिर भारी होगा। यह सारा कुछ

पृष्ठ– २९३

बैठने के समय नहीं था। पुनः घुटना मोड़कर बैठे। थोड़ी ही देर के बाद घुटना, जांघ, हाथ, बांह गरमाकर दर्द करने लगा। यह बैठने के समय प्रारम्भ में तो दर्द नहीं किया था। शिष्यों, पहले जो आसन में बैठे - फिर आसन बदले, फिर घुटनों को मोड़कर बैठे - इन सब दशाओं में समूह कलापों में - परमत्थ रूप कलाप रूप कणें अनवरत रूप से निरन्तर उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध होती रही। ठीक पहले आसन के समय जैसे बताया वैसे ही उत्पाद-व्यय की प्रक्रिया चलती रही। उसी तरह इसे भी देखो। निरीक्षण करो।

शिष्यो, बैठे-बैठे थक जाने पर - आलस आने लगने पर पुनः खड़े होकर सुनते हो। खड़े-खड़े पगथली, घुटना, जांघ आदि दुखने लगता है। उस समय जब पहले खड़े हुए थे तब तो यह दर्द नहीं था। पूरी काया को देखना। दर्द नहीं था। बैठने वाली इरियापथ के समान भी यहां उत्पाद-व्यय हुआ। इसका निरीक्षण करो। शिष्यों, तुम सब मेरे पास नीचे से मेरे पास इस पर्वत पर धर्म सुनने आये। पर्वत पर चढ़े। चढ़कर पर्वत के ऊपर आते-आते - पसीने से तर, थकान से चूर हो गये। पर्वत पर चढ़ने के पूर्व तो ऐसा नहीं था। पूरे शरीर में कुछ नहीं था। शिष्यो, अब पर्वत पर चढ़ आने के बाद वैसा नहीं रहा। क्यों नहीं रहा ? यदि पर्वत पर चढ़ने के पूर्व की यह काया बिना नष्ट हुए - बिना बदले पूर्ववत जैसे थी वैसे ही होती तो यह थकान - यह पसीना - आदि नहीं आना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। गर्मी हुई, पसीना हुआ, दर्द हुआ - थकान हुआ। इसलिये पर्वत पर चढ़ने के पूर्व की वह संपूर्ण काया पर्वत शिखर पर पहुंच आने के बाद कुछ नहीं बचा - बदल गया। वह यहां पर्वत पर पहुंचने पर नहीं रह गया। वह निरुद्ध हो गया। शिष्यो, उसके निरुद्ध होने को इस तरह सूक्ष्म चित्त से जानो। निरीक्षण करो।

पृष्ठ– २९४

शिष्यो, पर्वत पर चढ़ने से पूर्व जब खड़े या बैठे थे तब रूपों में कोई हलन-चलन नहीं था। शांतिपूर्वक था। अब जब पर्वत पर चढ़ेंगे और ऐसा करने लगे तो पैर उठाये - कदम उठाये। काया में हलन-चलन हुआ। हरेक कदम पर - पैर, हाथ, शरीर, सिर मस्तिष्क सभी सक्रिय हो गया। कदम बढ़ाकर रखते ही सिर में ध्वनि उठती थी - सारी काया हिल जाती थी। काया में कम्पन हो जाता है। दोनों हाथ आगे-पीछे भांजते हुए चले। शिष्यों, इस तरह सक्रिय होने के समय संपूर्ण काया में स्थित रूप कलाप परस्पर घर्षण करते रहे। ऊपर के रूप कण अपने नीचे के रूप कणों को दबाव डालकर पीसते रहे।

इस प्रकार परस्पर घर्षण तथा घात-प्रतिघात के फल-स्वरूप स्वाभाविक न रहकर अग्नि धातु की प्रधानता से उष्मा की अधिकता प्राप्त हो गये। उदाहरण समझो। कोई बलवान पुरुष किसी एक पात्र में कंकड़ पत्थर तथा रेत के कणों को डालकर, अच्छी तरह बंद कर ले तथा इसे खूब तेजी से झकझोरते रहे - तो कुछ देर के बाद घर्षण के कारण वह उष्मा युक्त हो जावेगा। गरमा जावेगा। उसमें से अग्नि धातु की

चिनगारियां निकलने लगेंगी। इसी तरह पूरी काया में उपस्थित रूप कलाप परस्पर घर्षण करते हैं। फलतः अग्नि धातु की अधिकता हो जाती है। वह प्रक्रिया प्रथम कदम उठाते प्रारम्भ हो जाती है। पहले शांत अवस्था में स्थित संपूर्ण काया के रूप कलापें उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाती हैं। उसी स्थान पर पुनः संबंधित चार कारणों से नये रूप धातु उत्पन्न करते हैं। हलन-चलन,, घर्षण तथा दबाव के कारण पुनः उत्पन्न धातु कणें कुछ गरमाकर उत्पन्न होती हैं। यह नया रूप कलाप भी उत्पन्न होकर तत्काल नष्ट हो जाता है। उस नष्ट हुए स्थान पर संबंधित चार कारणों से नये रूप कलाप उत्पन्न हो जाते हैं। पहले से कुछ अधिक गरमाकर उत्पन्न होते हैं। यह अपेक्षाकृत अधिक गरमाकर उत्पन्न हुए रूप धातु भी तत्क्षण निरुद्ध हो जाते हैं।

पृष्ठ– २९५

उस निरुद्ध स्थान में संबंधित चार कारणों के कारण पुनः नये रूप कलाप जब उत्पन्न होता है - तो अपने पूर्ववर्ती निरुद्ध कलापों के अत्याधिक गरमाकर उत्पन्न होता है। बार-बार गरमाकर अत्यधिक उष्मा युक्त हो जाता है। शिष्यों, इस तरह गरम से अधिक गरम - यों गरमाते गरमाते - अग्नि धातु की अधिकता को ग्रहण कर लेता है। फलतः गरम लगने लगता है - पसीना आने लगता है - थकान व दर्द होने लगता है।

अग्नि धातु के बलवान होने पर वायु धातु का वेग भी प्रखर हो जाता है। मुंह, नाक में न समाने के कारण कान से भी वह बाहर निकलने लगता है। उन वायु धातु के थपेड़े के कारण भी रूप धातुएं और अधिक आपस में टकराने लगती हैं। कल्पांत वायु विनाश के समान - पूरी काय में स्थित रूप परस्पर टकराकर चूर्ण-चूर्ण होकर विनष्ट होती हैं। कल्पांत के अग्नि प्रज्वलन के समान पूरी काया में स्थित रूप अग्नि में जलकर विनष्ट हो जाती है। आसवन करने वाले घड़े, आसवन नलिका से जिस प्रकार आसुत जल चूता है - वैसे ही अग्नि धातु के आंच से संपूर्ण काया में स्थित रूप से पसीना चूने लगता है। शिष्यो, उस समय उत्पाद कम होता है - व्यय (विनाश) ज्यादा होता है। इसलिये संपूर्ण काया में रूप की कमी हो जाने से एक रिक्तता, पोलापन या यों कहें कि खोखलापन हो जाने के कारण हांफ आने लगती है - थकान लगने लगता है।

शिष्यो, इसी तरह चलने वाले इरियापथ में भी संपूर्ण कायिक रूप कलापें जल के सूखने जैसा अनवरत-निरन्तर उत्पाद-व्यय की प्रक्रिया से गुजरते रहता है। इसको अनुभूतिपूर्वक निरीक्षण करो। शिष्यों, तुम लोग रात को शरीर को लिटा दिये और सोये। मान लो यदि पहले दायां करवट सोये तो थोड़ी देर पश्चात तुम्हारा दायां, शरीर का आधा भाग गरमाकर दुखने लगेगा। उस समय जब सोये थे तब दायां भाग में न गरमाहट था न दर्द। वह सामान्य था। करवट बदलकर बायां करवट पुनः सो गये। ऐसे सोने पर कुछ देर बाद बायां अंग समूचे में पुनः वैसे ही गरमाहट तथा दर्द होने लगा। ऐसी अवस्था सोने से पहले नहीं थी। फिर शिष्यों, तुमने उस स्थिति को बदल लिये उतान सो गये।

पृष्ठ– २९६

इस बार भी कुछ समय पश्चात पूरी पीठ अगियाकर दुखने लगी। जबकि उस प्रकार का दर्द या गरमाहट सोने के पहले नहीं था। मान लो पुनः उस स्थिति को बदलकर औंधा मुंह (पेट के बल) सो गये शिष्यों। ऐसा सोने के पश्चात भी कुछ ही देर के बाद सामने पेट छाती की ओर का भाग गरमाकर दुःखने लगा। जब कि वैसे सोने के पहले नहीं था। शिष्यों, इस तरह लेटे हुए इस इरियापथ में भी ऊपर वाले शरीर के आधे भाग का दाब नीचे वाले शरीर के आधे भाग पर पड़ा। वह संपीड़ित होकर पीस गया। उस भाग के रूप कण पहले से अधिक गर्म हुए। अग्नि धातु उत्पन्न हो गया। यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रही फलतः गरमाया और दुःखाया। इस उत्पाद-व्यय की अवस्था का भी निरीक्षण अनुभूति द्वारा करो।

५. शिष्यो, इस तरह - तनुपकूजिण्ण, आहार, उतु, चित्त, इरियापथ - इन सबके द्वारा - इन सब ओर से - रूप कलापों के उत्पाद-व्यय का निरीक्षण किया। (अनुभूति परक निरीक्षण कर लिया।)

शिष्यो, अरियधम्म अकोविद पुग्गल तो यही समझते हैं कि - अपने बदलने वाले किसी कारण वश - शीतल रूप ही उष्ण हो गया या उष्ण रूप ही ठंडेपन में बदल गया। यह नहीं दर्द करने वाला रूप दर्द में बदल गया। यह दर्द करने वाला रूप ही नहीं दुखने वाले रूप में बदल गया। यह प्रफुल्लित रूप ही मुरझा गया। यह मुरझाया रूप ही प्रफुल्लित हो गया। इस तरह बिना उछिन्न हुए उसी एक को परिवर्तन होता हुआ मानते या समझते हैं। तुम शिष्य गण उस तरह मत समझना। अभी जैसा कि मैं उपदेश देते आया हूं उसी के अनुसार विभाजित होकर - उछिन्न होकर बदलता है - इसे सर्वप्रथम संज्ञा द्वारा जानकर विञ्ञाण द्वारा पहचान कर उस जाने-पहचाने के अनुसार ञाण चक्षु से अनुभूतिपूर्वक निरीक्षण करो।

विभाजित है जुड़ा-रूप (यह रूप विखण्डित है)

रूपक्रम छिन्न होने का वर्णन

शिष्यो, जिस समय पुराने रूप कलाप नष्ट हो जाता है तथा उस स्थान पर संबंधित कारण भी निरुद्ध हो जाते हैं और नया-नया रूप कलाप नहीं बनता - तब उस समय रूप क्रम छिन्न

पृष्ठ– २९७

होकर वत्थु समूह रूप पिण्ड नष्ट हो जाता है। शिष्यों, तावतिंस देवलोक में सुब्रह्मा देवता की संगी-साथी पांच सौ देवकन्या सेविकाएं नन्दन उद्यान पुष्प वृक्ष पर पुष्प तोड़ती हुई खड़ी थी, तभी संबंधित कारण निरुद्ध हो गया। नया रूप बनना बंद हो गया। फलतः रूप क्रम उच्छिन्न हो गया। पुष्प तोड़ने हेतु हाथ-पैर, सिर काया नहीं रहा। सब विलुप्त

हो गया। उसके अतिरिक्त कुछ देवकन्या, देवता भी उस नन्दनवन उद्यान में काम गुणों में निमग्न आमोद-प्रमोद कर रहे थे और उसी समय रूप क्रम उच्छिन्न हो गया। आमोद-प्रमोद का साधन हाथ-पैर, सिर ही नहीं रह गया। कुछ देवता क्रुद्ध हो आपस में झगड़ रहे थे। उसी अवस्था में उनका रूप उच्छिन्न हो गया। झगड़ने का साधन हाथ-पैर, सिर, काया ही नहीं रहा।

इसी तरह शिष्यो, तुम लोग भी मां के गर्भ में कलल सप्ताह की अवस्था में यदि संबंधित कारणों के विरुद्ध होने से नया रूप कलाप नहीं बनता - तो अब्बुद रूप को बिना प्राप्त हुए ही रह जाते। यदि मां के गर्भ में होते समय नये रूप नहीं बनते तक उस समय मां के गर्भ का शिशु नहीं रहकर नष्ट हो जाता। यदि प्रसव के समय में नये रूप नहीं बनते, रूप क्रम उच्छिन्न हो जाता तब उस समय मां को प्रसव हेतु शिशु नहीं होता। उनकी प्रसव वेदना भी शांत हो जाती। यदि तुम शिष्य लोग शिशु रूप में मां के वक्ष से चिपके दूध पीते समय तत्क्षण नया रूप बनना रूक जाता और क्रम छिन्न हो जाता - उस समय तुम शिष्यों की मां दूध पिलाने वाले शिशु से वंचित (रहित) हो जाती। यदि कहीं तुम शिष्यों की माता का कायिक पिण्ड में नये रूप बनना बंद होकर क्रम उच्छिन्न हो जाता - उस समय तुम शिष्य लोगों के लिये दुग्ध-पान हेतु माता ही नहीं रहती। बिना मां के बन जाते।

तुम शिष्य लोग - आज वर्तमान समय में आज की रात सोते समय कल प्रातः मुझे देखोगे अर्थात् अपने आचार्य का दर्शन करोगे यह विचार कर सो गये। उस सोते समय - सोये क्षण में यदि संबंधित कारणों के निरुद्ध होने से नये रूप के न बनने के कारण - क्रम छिन्न हो जाये - तो उस समय दूसरे दिन प्रातः उठने वाला न हाथ न पैर; न सिर न काया ही रहेगी।

पृष्ठ– २९८

संबंधित कारणों के अवरुद्ध नहीं होने के कारण नये रूपों के निरन्तर उत्पन्न रहते होने के कारण सवेरे उठने वाला कोई शेष रहता है। धर्म श्रवण करने के लिये आने वाला बचा रहता है। शिष्यों, धर्म श्रवण करने हेतु इस पर्वत पर चढ़ते समय यदि रास्ते की चढ़ाई में ही नये रूपों का उत्पन्न होना बंद हो जाता - क्रम छिन्न हो जाता - तो उस समय पर्वत पर चढ़ने वाला हाथ-पैर, सिर-काया ही नहीं रह जाता। मेरे पास बिना आये ही रह जाते। अभी धर्म श्रवण करते समय यदि मेरी काय पिण्ड में के रूप में नये रूपों का बनना रूक जाय तथा क्रम उच्छिन्न हो जाय तब उस समय तुम्हें धर्म प्रवचन करने वाला ही नहीं रहता और तुम धर्म श्रवण से वंचित रह जाते। यदि तुम शिष्यों की काया पिण्ड में रूप का होना बंद हो जाय उसका क्रम छिन्न हो जाय तो वैसे समय में मुझसे प्रवचन सुनने वाला ही नहीं बचता तो मुझे बिना प्रवचन दिये ही रहना पड़ता।

शिष्यो, इस धर्म प्रवचन श्रवण कर रहे परिषद के मध्य कुछ छोटी कन्यायें - स्वर्ण

चूड़ियां, हीरे की अंगूठी, हीरे की कर्णफूल, मोती की अंगूठी, मोती के कर्णफूल आदि आभूषण धारण की (पहनी) हुई हों। शिष्यों उन कन्याओं की - यदि स्वर्ण चूड़ियों में स्थित उतुएं - नया रूप - संतति कलाप को बिना उत्पन्न किये निरुद्ध हो जायं, तब उनकी हाथ चूड़ियां रहित केवल हाथ मात्र ही रह जायेगा। इसी तरह अंगूठी कर्णफूल के भीतर की उतुएं - नया रूप संतति कलाप को बिना उत्पन्न किये निरुद्ध हो जायं - तो उनकी अंगुलियां उनके कान - बिना अंगूठी एवं कर्णफूल के ही हो जावेंगी। खाली अंगुली - खाली कान का छेद बच जावेगा। यदि कहीं वह कन्यायें - उनके भीतर का रूप कलाप नया रूप कलाप बनाना बंद कर दे तब वे धारण किये गये सारे आभूषण, चूड़ियां, अंगूठियां, कर्णफूल तो शेष रह जावेंगे परन्तु धारण की हुए कन्यायें नहीं होंगी। वह तो धरती पर पड़ी होंगी। उनका सतत बनने वाला रूप ही उच्छिन्न जो हो गया!

पृष्ठ– २९९

शिष्यो, लगभग पांच सौ धर्म श्रोता परिषद की रूप पिण्डों में संबंधित कारणों के निरुद्ध हो जाने पर नया रूप संतति बनना बंद हो जावे - क्रम उच्छिन्न हो जावे - तो उस समय इस मण्डप के भीतर मनुष्य नहीं बचेंगे। एक सपाट खलिहान-सा मैदान ही शेष रह जावेगा। यदि इस धरती के भीतर स्थित उतुएं - नया रूप, नयी संतति कलाप को उत्पन्न करना, प्रजनन करना बंद कर दे तो उस समय रूप क्रम छिन्न-भिन्न होकर धरती ही नहीं बचेगी। यहां पांच सौ धर्म श्रवण करने वाला परिषद भी नहीं बचेगा - गहरे रिक्त आकाश के गर्त्त में गिर जावेंगे।

शिष्यो, उन पर्वतों के किनारे के समुद्र के जल में स्थित उतुएं - यदि नया रूप - संतति कलाप को बिना उत्पन्न किये प्रजनन किये निरुद्ध हो जाय तो उस समय उस पर्वत के किनारे से देखने पर वह विस्तृत तथा गहन खाई मात्र दिखेगा। यदि आकाश, चंद्र, सूर्य, तारे विमान में विद्यमान उतु धातुएं नया रूप संतति कलाप को नहीं उत्पन्न करे और निरुद्ध हो जावे तब उस समय घोर अंधकार (उत्पन्न होकर) रहेगा। शिष्यों, इस समय यदि संपूर्ण लोक में विद्यमान रूप को उत्पन्न करने वाला दो कम्म चित्त - धर्म भी प्रारम्भ में बिना निरुद्ध हुए (व्यय हुए) बना रहे, उतु - आहार नामक यह दोनों धर्म भी नया रूप संतति कलाप को बिना उत्पन्न किये - प्रजनन किये निरुद्ध हो जाये तो पूरा लोक रिक्त आकाश - विशाल रिक्त आकाश बनकर रह जावेगा। ऊपर और नीचे का सारा आकाश एक ही बन जावेगा।

शिष्यो, इस तरह पुराने रूप के निरुद्ध हो चुके स्थान में संबंधित कारणों से नये रूप के लगातार उत्पन्न होते रहने के कारण ही यह ठोस वस्तु विशाल समूह रूप पिण्ड विद्यमान हैं। संबंधित कारण समाप्त होकर नया रूप नहीं उत्पन्न हो तो क्रम उच्छिन्न होकर यह ठोस वस्तु विशाल समूह रूप पिण्ड नहीं रहेगा। यह पहचान कर अपने सन्तान दूसरे के सन्तान - अज्झत्त बहिद्ध के अनुसार महान - समूह रूप पिण्ड में रूप कणें

पृष्ठ– ३००

उच्छिन्न-भिन्न होकर उनकी स्थिति को जैसा मैंने बताया इसी नियमानुसार (विधिनुसार) अनुभूति द्वारा निरीक्षण करो। महज (विशाल) समूह रूप पिण्ड के भीतर आकाश छिद्र से ञाण को जैसे भी हो प्रविष्ट कर पर्येषण करो। तोल-तोलकर निरीक्षण करो। बार-बार दर्शन करते रहने पर तुम शिष्यों के ञाणचक्खु में रूप कणों का नया-नया उत्पाद होना तथा पल-पल में व्यय होना प्रकट होने लगेगा। पहले वाला रूप, बाद वाला रूप एक ही नहीं। दोनों रूप कलाप पृथक-पृथक हैं, यह भी साफ-साफ प्रकट होने लगेगा।

शिष्यो, इस तरह देखकर उत्पाद-व्यय को अनुभव द्वारा देखकर उसकी अवस्था को भी देखने वाले योगी साधक का चित्त जब बहुत दृढ़ नहीं होता है - उसकी प्रज्ञा या ज्ञान भी बहुत पुष्ट नहीं होती है तब जैसे खूब बारिश होने पर पानी पर बुल्ला, कीचड़ उत्पन्न होकर नष्ट होने भर समय, आकाश में बिजली के चमकने तथा नष्ट होने भर समय जितना जान सकोगे। उससे भी चित्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण होगा तब रुखानी के धार पर रखे राई के दाने जैसा रखते ही गिर गया इतना तीव्र उत्पाद-व्यय जान सकोगे। जब चित्त ज्ञान उससे भी ज्यादा तीक्ष्ण हो जावेगा तो रूप कलापों की उत्पाद-व्यय की तीव्रता - उत्पन्न होते समाप्त हुआ - बिना देर व अंतराल के समान होकर तत्क्षण उत्पन्न होने के साथ विनष्ट होने वाले रूपों को भी उसकी उपस्थिति होना तथा निरुद्ध हो जाना दोनों को एक साथ देख लेने से मरीचिका के समान लक्-लक् होता हुआ बिना गति गतिहीन भी - गतिशील-सा भी होकर लक्-लक् मरीचिका का-सा अनुभूति पर दिखने लगता है।

अनिच्च दर्शन कर मग्गकिच्च पूर्ण होने का वर्णन

शिष्यो, ध्यान दर्शन कर रहे योगी साधक का विपश्यना ज्ञान - रूपों का उत्पाद-व्यय जितनी तीव्र गति से घटित हो रहा है उसके अनुरूप सबके साथ-साथ उसी गति में दर्शन नहीं कर पाता। यह कीचड़ विधुत की चमक, राई, मरीचिका आदि की तीव्रता भर ही तीव्र गति का दर्शन कर सकता है। इतनी तीव्र गति से हो रहे उत्पाद-व्यय को भी साधक लोग देख सकोगे तो अनिच्च विपश्यना ज्ञान की चोटी पर पहुंच गये। किच्च (कृत्य) कृत-कृत्य होने तक कर सकते हो - इसीलिये शिष्यों,

पृष्ठ - ३०१

भगवान ने यह देशित किया है -

यथा पुप्फुळकं पस्स, यथा पस्स मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चु राजा न पस्सति।। १७० (धम्मपद पाळि)
लोकवग्ग (यहां पुप्फुळकं बर्मी में दिया है)

भिक्षुओ, पानी के बुल्ले को जैसे देखते हो मरीचिका को जिस तरह देखते हो -

इसी तरह इस लोक (नाम, रूप, खन्धा-सङ्खार लोक) को देखने वाले व्यक्ति को मृत्युराज नहीं देख सकता।

गांव में नहीं प्रविष्ट हुए। परन्तु उसकी सीमा में पहुंच गये। उसके उपचा में पहुंच गये। इसी तरह इस गाथा में मृत्यु राज नहीं देख सकता यह कथन - यह पानी का बुल्ला, मरीचिका का उत्पाद-व्यय तक नाम रूप खन्धों के उत्पाद-व्यय को उतनी तीव्र अवस्था में देख सकना - दर्शन करना - मृत्यु राज द्वारा न देखे जाने वाले निर्वाण तक नहीं पहुंचे हुए होने पर भी अब पहुंचने में हैं। निब्बान के अत्यंत समीप पहुंच गया। समीपूपचार के द्वारा देशित प्रवचन है। इसलिये शिष्यो, तुम सब पानी का बुल्ला, बिजली का चमकना, राई का दाना तलवार के धार पर - मरीचिका के उत्पाद-व्यय के समान रूपों के तीव्र उत्पाद-व्यय को अनुभूति द्वारा देखो। बार-बार अभ्यास करते हुए वह दर्शन होने ही लगेगा।

शिष्यो, जब यह अनुभव होने लगेगा तब मैं नामक धर्म से एक प्राणी में मैं का भाव - मैं अमुक वर्ष में जन्मा। मैं पहले दो वर्षों के काल में क्या किया! गत कल क्या किया था! आगामी कल मैं क्या करूंगा? मुझे कहां जाना होगा! मुझे कब मरना होगा - यह संपूर्ण जीवन भर मैं का भाव - मैं पूर्व जन्म में क्या रहा होऊंगा - मैं पहले-पहल आदि काल में कबसे हूं - पता नहीं। मुझे आगामी जन्म में कहां जाना होगा, नहीं जानता। मैं देवलोक जाना चाहता हूं। मैं बुद्ध, (भगवान) होकर निब्बान जाना चाहता हूं। मैं प्रत्येक बुद्ध होकर श्रावक अरिहंत होकर - निब्बान पहुंचना चाहता हूं - इत्यादि के संग पूरे संसरण में - मैं पना का ही भाव है। सदा स्थिर रहकर - बना रहता है।

पृष्ठ— ३०२

किसी भी समय मैं दो नहीं हुआ। मैं को खण्ड-खण्ड विभाजित कर पुराना मैं - नया मैं भी कभी नहीं हुआ - न होता है। सभी रूप कलाप खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहते हैं - मैं का होना रहना एक रास्ते से रूपों का होना रहना - एक तरह से एक समान एक जैसे नहीं होकर भिन्न-भिन्न, पृथक-पृथक, अलग-अलग रास्ते होने के कारण - उस रूप को मैं समझने की आसक्ति हेतु - नहीं हो सककर - उस रूप में 'मैं' ढूंढ़े नहीं मिल सकता। अरे, मैं तो नहीं हूं - अरे, मैं तो नहीं हूं। इस तरह 'मैं' का लोप हो जावेगा, शिष्यों। इस तरह अनुभूति कर - मैं के लोप हो जाने को लक्ष्य कर उदान पाळि - नवङ्गुत्तर पालि में आये मेघिय सुत्त से इस अंश में आयुष्मान मेघिय को भगवान ने यह कहा है :—

अनिच्च सञ्ञिनो मेघिय, अनत्तसञ्ञा सण्ठाति।
अनत्तसञ्ञी अस्मिमान समुग्घातं, पापुणाति दिट्ठेवधम्मे निब्बानं।।

मेघिय, जो अनित्य संज्ञा का अभ्यास करता है, उसकी अनात्म संज्ञा स्थिर होती

है। (अर्थात् वह सङ्खार धर्म को अनित्य जानता है - तो जो सङ्खार धर्म है उसे मैं मेरा नहीं यह भी जानने लगता है।) जिसकी अनात्म-संज्ञा स्थिर होती है, उसके अहंकार का विनाश होता है, वह इसी शरीर में निर्वाण को प्राप्त करता है।

शिष्यो, इस तरह मैं (अहं) का लोप होता है। मैं का लोप कर चलते समय सभी रूप को मैं नामक स्वयं के रूप में, मेरा नामक मेरी वस्तु के रूप में - आसक्ति रहित हो जाओ। शिष्यों, इस प्रकार के विषयों के आधार पर - इन्हीं विषयों को लेकर उद्देसवार में मैंने (आचार्य ने) यह कहा - "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति"।

पृष्ठ - ३०३

शिष्यो, भगवान ने जेतवन विहार में - विहार करते समय भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया था -

अनिच्चसुत्त

रूपं भिक्खवे अनिच्चं। योपि हेतु योपि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय, सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूतं भिक्खवे रूपं इतो निच्चं भविस्सति। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियासावको रूपस्मिंपि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति। विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, नापरं इत्थत्तायाति पजानातीति। (खन्धवग्गसंयुत्त पालि अनिच्चसुत्त)

भिक्षुओ! रूप अनित्य हैं। भिक्षुओं, रूप के उत्पाद में उसके **जनक विषय कारण** कम्म, चित्त, उतु, आहार हैं। तथा उसको सहायता करने वाले ये कम्म, चित्त, उतु आहार - उपथम्भन विषय कारण हैं। यह दोनों विषय कारण भी अनित्य हैं। भिक्षुओं, अनित्य विषय धर्म के कारण उत्पन्न - अनित्यसम्भूत रूप भला कैसे नित्य हो सकते हैं! भिक्षुओं, इस प्रकार देखने वाला सुतवा अरिय श्रावक रूपों के प्रति निर्वेद हो जाता है। निर्वेद होने पर वह आसक्ति रहित हो जाता है। विरागी हो जाता है। विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर - इसे 'मैं विमुक्त हो गया', यह ञाण होता है।

पृष्ठ - ३०४

मेरा जन्म होना क्षीण हो गया, मेरा ब्रह्मचर्य वास पूरा हो गया। मैं इस आस्रव धर्म से - विमुक्ति गर्भशयन जन्म के क्षीण होने, ब्रह्मचर्य वास पूरा होने को परिपूर्ण रूप से जान लिया - ऐसा होता है।

इस तरह भगवान की देशना को सुनकर भिक्षु - देशनानुसार रूप धर्मों के अनिच्च स्वभाव का दर्शन कर अहंकार रहित हो गये। आश्रव मुक्त हो गये। निर्वाण को प्राप्त हुए। इसलिये शिष्यों, तुम लोग भी उस मेघिय भिक्षु के समान अनित्य भावना कर

अहंकार-रहित तथा आस्रव मुक्त होकर निर्वाण प्राप्ति हेतु मेरे कहे नियमानुसार साधना करो। प्रयत्न करो।

अनिच्चनय विपस्सना सुत्त

१. अहुत्वा ये वुप्पज्जन्ति, न कुतोचिपि आगता।
हुत्वा अन्तरधायन्ति, न तु कत्थचि पुञ्जिता।।

२. सङ्खारा अनिच्चा सिस्सा, अतिइत्तर कालिका।
पुप्फुलमरीचिका समा, आरग्गे सासपूपमा।
आकासे विज्जुलताव, उप्पज्जन्ति वयन्ति च।।

३. एवं अनिच्चतं पस्सेथ, साधवो नयकोविदा।
तनुपकूजिण्णतोचा, हारतो उतु चित्ततो।
इरियापथतो वापि, रूपभेदं विपस्सथ।।

४. पस्सित्वान रूपीसु, विरत्ता होथ साधवो।
एवं विरत्ता मे सिस्सा, मच्चुधेय्यं तरिस्सथाति।। (सेक्खभासित अनिच्चनय विपस्सना सुत्त)

पृष्ठ– ३०५

१. ओ शिष्यो, सङ्खार जो पहले नहीं हुए हैं वहीं उत्पन्न होते हैं। संबंधित कारणों से उत्पन्न होते हैं। कहीं दूसरे स्थान से नहीं आते। उत्पन्न होकर अन्तर्धान होते हैं। किसी भी स्थान पर बाद में उत्पन्न होने के लिए पूञ्जित होकर नहीं रहते।

२. ओ शिष्यो, सङ्खार धर्म (नाम रूप सङ्खार धर्म) अनित्य हैं। अत्यंत अल्पकालिक हैं। पानी के बुल्ले, मरीचिका के समान उत्पाद-व्यय हो जाने वाले हैं। आरे के अग्र भाग पर रखे राई के दाने के समान हैं। आकाश विद्युतलता के समान हैं। उत्पन्न होते हैं, व्यय हो जाते हैं।

३. साधुओ, नयकोविदों; इस तरह अनित्य को विपश्यना विधि द्वारा देखो। तुम लोग इस अनित्यता को अनुभव कर देखो। तनु से पक्व, पक्व से जीर्णता; आहार, उतु, चित्त द्वारा, इरियापथ द्वारा रूप भेद - उत्पाद-व्यय को विशेष रूप से देखो। विपश्यना भावना द्वारा देखो।

पृष्ठ– ३०६

४. साधुओ - तुम रूप के उत्पाद-व्यय को देखकर इन रूपों के प्रति विरक्त हो जाओ। अर्थात् इस रूप में - मैं, मेरा की आसक्ति से रहित हो जाओ। इस तरह विरक्त हो जाने पर मेरे शिष्यो, मृत्यु राज के ३१ राज्यों (इकत्तीस लोकों) को तीर्ण कर जाओगे। (उससे तर जाओगे। मुक्त हो जाओगे।)

इति अनिच्चेन सुञ्ञतनयो

दुक्ख द्वारा सुञ्ञत की साधना

शिष्यो, 'नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति' इस उद्देस के अनुसार मैं, मेरा को शून्य विलुप्त करने के लिये अनित्य द्वारा साधना के सुञ्ञत विधि को समझाने के बाद अब पुनः इस रूप धातु को ही दुःख द्वारा मैं, मेरा अत्त, अत्तनिय को शून्य करने की विधि बता रहा हूं :-

उप्पादो जाति अक्खातो, भङ्गो वुत्तो वयोति च।
अञ्ञथत्तं जरा व्याधि, ठितियं नाम रूपिनं।। (सेक्ख्य भासित गाथा)

शिष्यों, नाम रूपों में जाति को उत्पन्न होना, उत्पाद कहते हैं। भङ्ग को मरण, व्यय कहते हैं।

पृष्ठ- ३०७

ठिति में जरा व्याधि का अञ्ञथत्त अर्थात् उत्पाद के समय जैसा था वैसा न रहते हुए - विपरिणाम धर्म द्वारा अन्य रूप में बदल जाता है। उसमें जरा व्याधि होता है। ऐसा कहते हैं।

रूप धर्मों के जाति दुक्ख का वर्णन

शिष्यों, इस तरह रूप कलाप का एक न एक में उत्पन्न होना जाति भय, पुराना परिपक्व होकर जर्जरित होना जरा भय, जर्जरित होने से पीड़ा होना व्याधि भय, उसका निरुद्ध हो जाना - मरण भय इस तरह चार-चार भय लगे रहते हैं। इसलिये भगवान ने यह देशना किया है कि-

यो भिक्खवे रूपस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो दुक्खस्स सो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरा मरणस्स पातुभावो। (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि)

भिक्षुओ, रूप का वह पहले उत्पन्न होना होता है। वह उत्पन्न होना ही अति दुक्ख का उत्पन्न होना है। रूप की वह ठिति (स्थिति), उस उत्पाद, ठिति, द्वारा दो क्षण पूर्ण रूप से होना होता है। वह **ठिति उत्पाद** रोगों की ठिति ही है। रूप का वह तीन पूर्ण क्षणों का प्रत्यक्ष प्रकट होना होता है। वह उत्पाद जरामरण को प्रादुर्भूत करता है। प्रकट करता है।

पृष्ठ– ३०८

शिष्यो, नवोदित कोमल पल्लव को अग्नि में डाल दोगे तो वह नष्ट हो जावेगा। ताजा तिल को तप्त कड़ाही में डालने पर वह पुट-पुट की आवाज करते हुए नष्ट हो जावेगा। इसी तरह रूप कलाप उत्पन्न होने के पश्चात जरा की अग्नि में जलकर नष्ट हो जाता है। दुक्ख दर्द झेलते हुए नष्ट हो जाता है। जैसे तिल पटपटाते तड़पते समाप्त हो गया वैसे रोग व्याधि में झुलसते हुए जराग्नि में जलकर नष्ट हो जाता है। शिष्यों, इस तरह जाति भय, जरा भय, व्याधि भय, मरण भय से हमेशा दबाये हुए, सताये हुए, रहने वाला जरा-अग्नि, मरण अग्नि में सतत प्रज्वलित ब्रह्म रूप कलाप में - भला अच्छाई, सुख कहां हो सकता है। इसमें सुख रहित पीड़ा तथा दुःख ही दुःख मात्र हैं।

शिष्यो, इस प्रकार के संबंधित विषय कारणों से यह रूप पीड़ित दुःखदायी, दुःख धर्म ही है। शिष्यों, रूप को उत्पन्न होने में - जनक तथा उपत्थम्भक (सहायक उपकारी) यह दो कारण हैं। वे दोनों कारण धर्म भी जाति, जरा, व्याधि मरण भय से हमेशा दबाये, सताये होकर जरा-मरण अग्नि से सदा जलाये हुए रहने से - पीड़ित दुःखदायी - दुःख धर्म ही है। खारे वृक्ष के बीज से खारे वृक्ष ही उगेंगे। उसी तरह व्याधि दुःख के कारण उत्पन्न रूप में सुख कहां से उत्पन्न होगा। नहीं हो सकता। सुख रहित पीड़ा तथा दुःख ही होगा।

पृष्ठ– ३०९

दुक्ख देखकर मग्गकिच्च पूर्ण करने का वर्णन

इसीलिये ही मेरे शिष्यो, वजिरा नामक एक अरिहन्त थेरी ने मार को यह कही–

दुक्खमेव हि सम्भोति, दुक्खं तिट्ठति वेति च।
नाञ्ञत्र दुक्खा सम्भोति, नाञ्ञं दुक्खा निरुज्झति।। (सगाथावग्ग संयुत्त पाळि)

मार! लोक में वस्तुतः दुक्ख ही उत्पन्न होता है - दुक्ख ही स्थित होता है और दुःख ही भंग हो जाता है। दुःख धर्म को छोड़कर अन्यत्र किञ्चित धर्म भी - न उत्पन्न होता है - और ना ही दुक्ख के अतिरिक्त कुछ निरुद्ध होता है।

शिष्यो, इस तरह दुःख के दुक्ख लक्खण को विपश्यना द्वारा देखो। शिष्यों - इस तरह रूपों के दुक्ख लक्खण को देख लोगे - तो दुक्ख विपस्सनाञ्ञाण चोटी तक पहुंच ही जावेगी। वह कृत-कृत्य होना हो ही जावेगा। इसीलिये भगवान ने दुक्ख सुत्त में यह देशित किया है :–

एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरिय सावको रूपस्मिंपि निब्बिन्दति।
निब्बिन्दं विरज्जति, विरागो विमुच्चति।।

भिक्षुओ, इस तरह रूपों के दुक्ख लक्खण को देखने वाला मेरा सुतवा अरियसावक - रूप में निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद होने पर अनासक्त हो जाता है (वैराग्य को प्राप्त हो जाता है।)

पृष्ठ– ३१०

वैराग्य के प्राप्त होने से विमुक्त हो जाता है।

इसलिए शिष्यो, तुम शिष्य गण इस तरह रूप कलापों के दुक्खकारी लक्षण को देखो। विपश्यना द्वारा यह प्रकट हो जावेगा। शिष्यों, इस तरह देखकर जब अनुभव करने लगोगे तब मैं-मेरा नामक धर्म से शासित कामनाओं का धर्म ही है - यह रूप भय स्पर्श न करे, भय संपर्क न हो - यदि भयों से ही स्पर्श संपर्क हो तो परिवर्तित न हो, दुःखित न हो - सुख ही हो यह आदेश अधिकार नहीं दिया जा सकता। किसी के द्वारा शासन नहीं किया जा सकता - किसी की कामनाओं का अनुगमन नहीं करता। इस तरह अंकुश शासन नहीं किया जा सकने वाला - कामनाओं की अवस्था में प्रकट होकर मैं-मेरा के प्रति आसक्ति उपयुक्त नहीं है। मैं-मेरे की आसक्ति उत्पन्न न कर - अरे, यह रूप 'मैं' नहीं हूं रे। अरे इस रूप में 'मेरा' जैसा कुछ नहीं है - इस तरह मेरे शिष्यों, 'मैं' अन्तर्धान होता जाता है। होता ही जावेगा। इस तरह उत्पन्न होना, अनुभव होना इस स्वभाव के अनुसार रूपों के मेरा नहीं वाला अनात्म अवस्था को समझाते हुए भगवान ने पञ्चवग्गी भिक्षुओं को यह देशित किया–

"रूपं भिक्खवे अनत्ता, रूपञ्चहिदं भिक्खवे अत्ता अभविस्स, न यिदं रूपं आबाधाय संवत्तेय्य, लभेथ च रूपे 'एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसीति'। यस्मा च खो भिक्खवे रूपं अनत्ता, तस्मा रूपं, आबाधाय संवत्तति, न च लभति रूपे। एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसीति।। (विनय महावग्ग पाळि - खन्धवग्ग संयुत्त पाळि अनत्त लक्खण सुत्त का अंश)

पृष्ठ– ३११

"भिक्षुओ! रूप अनात्म है (अर्थात् मैं कहने वाला काया नहीं है)। यदि रूप (पुरुष) का आत्मा होता तो यह रूप पीड़ादायक न बनता; और रूप में - 'मेरा रूप ऐसा होता' मेरा रूप ऐसा न होता, यह पाया जाता। चूंकि भिक्षुओ! रूप अनात्मा है इसलिये रूप पीड़ादायक होता है; और रूप में मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता - यह नहीं पाया जाता।"

शिष्यो, इस तरह 'अत्त' अन्तर्धान हो जाने पर 'मैं तथा मेरा' की आसक्ति भी नहीं होगा। शिष्यों, इसी कारण से मैंने उद्देसवार में– "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति" कहा। शिष्यों, इस तरह दुक्ख लक्षण का साक्षात्कार कर लेने पर ही - जैसा कि अभी समझाया वैसे अनत्त लक्षण भी स्वतः साक्षात हो जावेगा और कृत-कृत्य हो जावेंगे। यह कांटे, भाले के चुभने के दर्द, घाव, अग्नि से जलने, फोड़े, चोट वाले

कायिक वेदनाओं के दर्दों का साक्षात्कार कर दुक्ख मुक्त होना या कृत-कृत्य होना नहीं है। वैसे कायिक दुक्ख को

पृष्ठ– ३१२

देखना विपश्यना ज्ञान द्वारा साक्षात करना नहीं है। ऐसा तो इस धर्म शासन के बाहर या भीतर हमेशा करते ही रहे हो। अपाय के लोकों में निरन्तर देखते ही रहते हो।

शिष्यो, इस देशित विपश्यनाञाण का आलम्बन दुक्ख लक्षण को भी रूप कलापों के क्षणिक उत्पाद-व्यय वाले अनित्य लक्षण को जानने पर साक्षात्कार कर लेने पर - साक्षात्कार करना कहलाता है। अनिच्व लक्षण को अनुभव नहीं कर सकने पर इन रूप कलापों के पीड़ा देने वाले दुःख लक्षण का साक्षात्कार नहीं कर सकते। इसलिये तुम शिष्य गण रूप के दुक्ख लक्षण का साक्षात्कार करो। अनित्य लक्षण का साक्षात्कार होने पर दुःख लक्षण स्वतः प्रकट होकर साक्षात हो जावेगा। अनित्य को जानने वाला इस उत्पाद-व्यय के - जाति भय, मरण भय, जरा भय, व्याधि भय को बिना जाने नहीं रह सकेगा। अतः दुक्ख लक्षण को जान ही लेगा। निश्चित रूप से वह जान लेगा। शिष्यों, यह दुक्ख लक्षण प्रकट हो जाने पर - जैसा कि अभी बताया उसको अनत्त लक्षण स्वतः प्रकट हो जावेगा। वह कृत-कृत्य हो जावेगा। शिष्यों, भगवान जब जेतवन विहार में विहार कर रहे थे - तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित कर यह देशित किया–

रूपं भिक्खवे दुक्खं, योपि हेतु योपि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय, सोपि दुक्खो। दुक्खसम्भूतं भिक्खवे रूपं कुतो सुखं भविस्सति, एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको रूपस्मिंपि निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागो विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, ना परं इत्थत्ता याति पजानातीति। (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि - दुक्ख सुत्त)

पृष्ठ– ३१३

भिक्षुओ, रूप अनित्य हैं। भिक्षुओ, रूप के उत्पाद में - उसके जनक विषय कम्म, चित्त, उतु, आहार हैं तथा उसको सहायता करने वाले ये कम्म, चित्त, उतु, आहार - उपथम्भन विषय हैं। यह दोनों जनक एवं उपथम्भक भी अनित्य हैं। भिक्षुओं, अनित्य विषय धर्म के कारण उत्पन्न - अनित्य सम्भूत रूप भला कैसे नित्य हो सकते हैं? भिक्षुओं, इस प्रकार देखने वाला सुतवा अरिय श्रावक रूपों के प्रति निर्वेद हो जाता है। निर्वेद होने पर वह आसक्ति रहित हो जाता है। विरागी हो जाता है। विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर उसे - 'मैं विमुक्त हो गया', यह ज्ञान होता है। मेरा जन्म होना क्षीण हो गया, मेरा ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। मैं इस आस्रव धर्म से विमुक्ति; गर्भशयन जन्म लेने के क्षीण होने, ब्रह्मचर्यवास पूरा होने को परिपूर्ण रूप से जान लिया - ऐसा होता है।

इस तरह देशित करने पर वे भिक्षु गण भगवान की देशना के अनुसार रूपों के दुक्ख स्वभाव को

पृष्ठ– ३१४

निरीक्षण किया। 'अत्त' भाव का अन्तर्धान हुआ (विनाश हुआ)। आस्रव का क्षय हुआ। निर्वाण को प्राप्त हुए। इसलिये शिष्यों, तुम शिष्य गण भी उन भिक्षुओं के समान दुक्ख लक्षण को साक्षात कर अत्त भाव का अन्तर्धान करते हुए आस्रव क्षीण निर्वाण को प्राप्त करो। मैंने अभी जैसे बताया वैसे ही ध्यान करो। प्रयत्न करो।

दुक्खनय विपस्सनासुत्त

(१) उप्पादाभि नवाकार, मतिक्कम्म ततोपरं।
जरा जज्जरित्ता हुत्वा, भञ्जमाना कथं सुखा।।

(२) जायन्तापि च जिय्यन्ता, मिय्यन्ता च निरन्तरं।
निरोधायाभिधावन्ता, भङ्गता कथं सुखा।।

(३) सङ्खारा दुक्खिता सिस्सा, जातिमरण पीठिता।
सन्तत्ते तिलपण्णाव, आतुरन्ति न सुखिनो।।

(४) एवं दुक्खतं पस्सेथ, साधवो नय कोविदा।
पस्सित्वान रूपीसु, विरत्ता होथ साधवो।

एवं विरत्ता मे सिस्सा, मच्चुधेय्यं तरिस्सयाति।। (सेक्ख्यभासित दुक्खनय विपस्सना सुत्त)

(१) शिष्यो, ये सङ्खार, उत्पाद और अभिनव करण का अतिक्रमण कर उसके बाद जरा, जर्जरित होने वाले भञ्जमान में सुख कहां?

(२) शिष्यो, ये सङ्खार - जन्मने के बाद भी जीरणता को प्राप्त हो जाते हैं। निरन्तर मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

पृष्ठ– ३१५

निरुद्ध होने की ओर दौड़ लगाते हैं। ऐसे भङ्गमान में सुख कहां?

(३) शिष्यो, ये सङ्खार - जाति मरण पीड़िता - दुक्ख से भरे हुए हैं। तप्त कुम्भ

में पड़े सुकुमार पल्लव व तिल के समान बहुत आतुर (रोगी) है। तनिक भी सुख नहीं है।

नय कोविद साधुओ, तुम लोग, इस दुक्ख स्वभाव को विपश्यना द्वारा देखो। तुम लोग, देखकर रूपों के प्रति विरक्त हो जाओ। इस तरह विरक्त हो जाने पर तुम लोग मेरे शिष्य - इकत्तीस लोक वाले इस मृत्यु के देश को तीर्ण कर जाओगे।

इति दुक्खेन सुञ्जतनयो

पृष्ठ – ३१६

अनत्त द्वारा सुञ्जत की साधना

शिष्यो! 'नेसोहमस्मिनेतंमे, एवं तत्थ विरज्जति' इस उद्देस के अनुसार मैं मेरा को शून्य करने के लिये दुक्ख द्वारा साधना के सञ्जत विधि को समझाने के बाद अब पुनः इस रूप धातु को ही अनत्त द्वारा - अत्त-अत्तनिय (मैं-मेरा) को शून्य करने की विधि बताता हूं।

कायादि और अत्त दोनों के अन्तर का वर्णन

काया के लिये पालि में प्रयुक्त शब्द - **कायो**। सरीरं। देहो। तनु। बिम्बं। बोद्धो। वा। समुरसवो। अर्थात् - काय, शरीर, देह, तनु, बिम्ब, बोद्ध, समुस्सय शब्दों द्वारा व्यक्त काया - केश-लोम-नखादि वाले द्वित्तिंसा काय के समूह - परमत्थ के रूप में प्रकट इस साढ़े तीन हाथ की रूपकाया को कहते हैं। इसलिये –

"पूतिकायो निरत्थको," "तब सरीरं नवसोतं," "सो हित्वा मानुसं देहं," "हित्वा गच्छति सन्तनुं," "नयिदं अत्तकतं बिम्बं," "अञ्ञं बोद्धं पवीसति," "अन्तिमायं समुस्सयो" – इस तरह विभिन्न स्थानों पर बुद्ध-वाणी (पाळि) में आया है। बर्मी में इसे 'को=कोयू' (काया) लिखते हैं।

कायादि बोधक शब्द कहलाने वाले इस रूप काय को न कायो - काया नहीं - इस तरह उपेक्षणीय नहीं है। उपेक्षा के योग्य नहीं है। लोक में वस्तुतः यह काया तो प्रकट रूप में विद्यमान है ही।

'अत्ता' शब्द भी एक है - जिसे बर्मी में 'को-कोव्' कह सकते हैं। लिखते हैं। यह शब्द कायादि के समान रूप काय नहीं है। फिर वह कौन-सा है - "अत्तानञ्च परञ्च अनुपहच्च दानं देति।"

पृष्ठ – ३१७

स्वयं बिना दूसरे को लगाये दान देता है। "नेवत्तानक्कं सेति, नो परं वम्भेति। स्वयं को न उचकाये (बड़ा माने) न अन्य को छोटा माने। "उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स

च'' अपना तथा पराये का, उभय के लाभ को चरित करे। ''अत्ताहि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परोसिया।'' स्वयं ही स्वयं के नाथ हैं। दूसरा कौन नाथ हो सकता है। इस तरह बुद्ध वचन में भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'पर' (अन्य) के विरुद्ध विलोमार्थी शब्द अत्त = स्वयं 'को-व्' का प्रयोग आया है।

अत्त - पर - स्वयं (को-व्) - वह (एक साथ) स्वय नहीं अन्य (वह)। अन्य नहीं (वह) - स्वयं -(उल्टा)

''अत्त'' तथा 'अम्ह'='मैं' के समान अर्थ का वर्णन

शिष्यो, इस तरह 'रूपकाय' तथा स्वयं बोधक 'अत्त' दो हैं यह समझ लेना। ''अत्तो अक्खर सञ्ञातो'' यह कच्चायन सुत्त के अनुसार अर्थ को अक्खर द्वारा भलीभांति होने के कारण बर्मी में - रूपकाया के लिये - 'को''को-य्' तथा अत्त शब्द के लिये 'को' - 'को-व्' लिखना होगा। इस तरह लिखो। इसे मैं = 'ङा' भी कहते हैं। बर्मी में 'को-व्' तथा 'ङा' - उच्चारण में भिन्न होते हुए भी समानार्थी हैं। जिसे 'अत्त' शब्द से अभिहित किया गया है। उसके अर्थ को **'अम्ह'** शब्द जानना। जिसके अर्थ को ''अम्ह'' शब्द कहा है। उसके ही अर्थ को - 'अत्त' शब्द भी कहा है। यह 'अम्ह' तथा 'अत्त' दो शब्दों का एक ही अर्थ है। इसीलिये तो धम्म सेनापति–

पृष्ठ– ३१८

सारिपुत्त थेर ने– ''रूपं अत्ततो समनुपस्सति'' नामक पद की व्याख्या करते समय पटिसम्भिदामग्ग पाळि में रूपं अत्ततो समनुस्सतीति यं रूपं सो अहं, यो अहं तं रूपं रूपञ्च अत्तनाञ्च अद्वयं समनुपस्सति।

इस तरह 'अत्त' शब्द के स्थान में 'अम्ह' शब्द का कारिय 'अहं' शब्द से बदलकर व्याख्या किया है।

ऊपर के पाळि का अर्थ– 'रूप' को 'अत्त' के समान देखने में यह रूप वह– 'अहं = मैं ही है। यह 'अहं' वह 'रूप' ही है। इस तरह 'रूप' को 'अत्त' ही कहा है। भिन्न नहीं। ऐसा एक समान देखते हैं।

धम्मपद में भी भगवान की वाणी में इस तरह है–

पुत्ता मत्थि धना मत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्तापि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्तो कुतोधनं।।

इस तरह 'अम्ह' शब्द के स्थान पर 'अत्त' शब्द का प्रयोग बदलकर किया गया है।

भिक्षुओ, इस लोक में मूढ़ लोग - 'मेरा पुत्र है,– 'मेरा धन है', ऐसा (सोचकर)

परेशान होते हैं। भिक्षुओं, उन मूढ़ों का स्वयं अपना "आप" (अत्त) ही अपना नहीं है - तो पुत्र कहां, धन कहां (अपना है) ?

पृष्ठ १३७ में पीछे के 'सुत्त सुञ्जत विधि' में उद्धृत नतुम्हाक सुत्त में भी 'नतुम्हाकं' की अवस्था को स्पष्ट करने के लिये उपमा बताते हुए - भगवान ने पूछा

"अम्हे जनो हरतिवा, दहतिवा, यथापच्चयंवा करोतीति" तब भिक्षुओं ने कहा–

पृष्ठ– ३१९

"नो हेतं भन्ते, तं किस्स हेतु, न हि एतं भन्ते अत्ता वा अत्तनियंवाति।"

उपरोक्त में 'अम्ह' शब्द के स्थान पर "अत्त" शब्द द्वारा उत्तर दिया गया है। शिष्यों, उस सुत्त में उपमा दर्शाने वाला 'अम्हे' नामक सामिक पद को देखने से– 'न तुम्हाकं' नामक पद को 'नं' विभक्ति का कारिय आकं नहीं– "न तुम्हेच तुमानञ्चाति नतुम्हाकं" इस तरह विग्रह किया हुआ आकं प्रत्यय जानना होगा। सामि, सन्तक दोनों को ही हटा दिया है। इसलिये "अम्हेजनो" इस सामि मात्र को ही पूछा गया होता तो भी उत्तर देने वाले भिक्षु गण– "नहि एतं भन्ते अत्तावा अत्तनियं वा" इस दो सामि सन्तक को ही उत्तर दिये होते। इसलिये– "नतुम्हाकं" नामक पद को तुम्हाकं - तुम लोगों का। नसन्तकं - वस्तु नहीं - इस सन्तक में चुना हुआ अर्थ बोध नहीं होता। नतुम्हाकं = तुम लोग भी नहीं हो - तुम्हारा भी नहीं है यह दोनों सामि सन्तक रखने के लिये विग्रह के अनुसार अर्थ करना (दिना) होगा। अत्त, अत्तनिय दोनों को ही छोड़ने वाला सुत्त है।

शिष्यो, इस तरह 'अत्त' शब्द तथा 'अम्ह' शब्द दोनों समानार्थी ठहरते हैं। इसलिये बर्मी का ङा=को-वृ= अत्त - एक ही हुए। केवल ध्वनि व शब्द में भेद है। जो 'पर' शब्द से बोध होता है - वही अर्थ 'तुम्ह' शब्द से भी है। इसलिये - 'अम्ह-तुम्ह' एक साथ तथा उत्तर देने में विरुद्ध हैं–

अहं, त्वं - मैं, तु='ङा', 'नें'– एक संग - मैं नहीं तू– तू नहीं मैं– उल्टा।

अत्त (मैं) तथा मान (मैं) का अन्तर

शिष्यो, अम्ह शब्द का अर्थ यह - मैं - भी दिट्ठि से सम्बद्ध - "दिट्ठि मैं", - मान से सम्बद्ध - "मान मैं" - दो तरह का है। इन दोनों में अन्य के साथ तुलना करते समय दूसरे से कम नहीं होने की इच्छा, दूसरे पर हावी होने, घमंड करने का चित्त होने पर अन्यों से बिना तुलना किये अपने आपको अहं के भाव

पृष्ठ– ३२०

से बड़कपन जाहिर करते हुए मैं के प्रति आसक्त कथन में - "मैं" - "मान वाला

मैं'' होगा। स्वयं तो धातुपिण्ड के रूप मैं बिना समझे, अपने आपको खर-पतवार, घास-फूस, काष्ठ, डंडा बिना समझे - वाला कथन समझना। गति करने वाला, चिंतन-मनन सोच विचार करने वाला कृत्यों को करने वाला एक सत्व प्राणी के समान समझते हुए - इससे प्रेरित होकर कहा गया मैं को - दिट्ठि - मैं समझना होगा। पृथग्जन सत्वों में यह दिट्ठि वाला मैं - मान वाला मैं दोनों विद्यमान रहता है। सक्कायदिट्ठि रहित आर्य सेक्ख्य पुग्गलों में दिट्ठि - मैं - नहीं रहता। मान वाला मैं ही शेष रहता है। इसलिये भगवान के समय का अनागामी हो चुका आयुष्मान खेमक थेर ने आयुष्मान दासक थेर को यह देशित किया– ''अपि च मे आवुसो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु, अस्मीति अधिगतं। अय महमस्मीति च न समनुपस्सामि।'' (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि - खेमक सुत्त का एक अंश)

भावार्थ - आवुस, दासक! वस्तुतः मेरा (मुझे) पञ्च उपादान खन्ध में अस्मी (मैं) होता (गया हुआ) ही है। (मैं– मैं-पन से आसक्त ही हूं।) यह पंच स्कंध अहं है। इस तरह दिट्ठि द्वारा नहीं देखा गया है।

आर्यो, पृथग्जनों द्वारा प्रयुक्त 'मैं'

विगतमान अरिहन्तों में मान वाला 'मान-मैं' भी नहीं होता। 'दिट्ठि वाला मैं' तथा 'मान वाला मैं' दोनों नहीं होता है। यदि ऐसा है - तो आर्य पुग्गल मैं-मैं - कहते हैं कि नहीं? विशाखा आदि मेरा पति, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरा पौत्र, मेरी सम्पत्ति आदि कहती हैं कि नहीं? जो आर्य अरिहन्त पुग्गल होते हैं वे भी– ''अहं आवुसो, अहं आवुसो'' इत्यादि द्वारा - मैं-मैं - कहते हैं कि नहीं। भगवान भी कहते हैं– ''अहंहि अरहा लोके, अहं सत्था अनुत्तरो''– अर्थात्

पृष्ठ– ३२१

उपक वस्तुतः (असली) में मैं लोक में अरिहंत हूं। अनुत्तर हूं। देव मनुष्य ब्रह्माओं का शास्ता हूं।

इस प्रकार से सभी मैं-मैं कहते हुए सुने जाते हैं कि नहीं। इन्हें इस तरह कहते-सुनते-देखते ही हैं। इस तरह व्यवहारिक रूप से कहते हुए भी - जो पृथग्जन हैं वे इस काया को ही सचमुच में मैं मानकर बातचीत करते हैं। आर्य पुग्गल केवल वाणी से व्यवहार के लिये - 'मैं-मैं' को कहते हैं। लेकिन उनके चित्त में यह काया ही मैं है ऐसा नहीं रहता।

शिष्यो, उपमा देकर समझायें तो - मनुष्य के काम-गुण को आसक्त होकर मान लो कोई प्रेत प्राणी तत्काल मृत - मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो जावे - उस मृतक शरीर के माध्यम से जो भी कृत्य वह करे - वह कहे कि मेरा हाथ, मेरा पैर, मेरी काया, मेरा सिर,– मुझे मत छुओ, मुझे मत मारो– यह किसको मैं मेरा कह रहा हूं - उस मृत काया को ही मैं मेरा कह रहा है। ऐसा कहते हुए भी वह जानता है कि

यह काया मृत मनुष्य की काया है। मेरी नहीं। मैं तो भूत-प्रेत ही हूं। वह मृतक मनुष्य तथा अपने आपको अलग-अलग समझ रहा है। उस मृतक मनुष्य की काया के साथ उसकी कभी-भी आसक्ति नहीं रहती। यह मृतक मनुष्य काया मैं हूं यह भ्रम भ्रांति तक भी उसमें नहीं होती। इसी तरह शिष्यों, सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी पुग्गल लोग इस पंचस्कंध को ही मैं-मैं, मेरा-मेरा कहते हैं। ऐसा कहते हुए भी यह पंचस्कंध मैं या मेरा नहीं। मैं नामक कोई सत्व नहीं है। यह पंचस्कंध शुद्ध कार्य कारण से उत्पन्न सङ्खार पुञ्ज मात्र है। मैं - मैं यह कहना केवल व्यवहार के लिये मैं की प्रज्ञप्ति मात्र है। वह पञ्चस्कंध को पृथक-पृथक जानता है। इस पञ्चस्कंध को कभी भी मैं समझ कर आसक्त नहीं रहता। मैं यह पंचस्कंध हूं

पृष्ठ– ३२२

इसका किञ्चित मात्र भी उनमें भ्रम-भ्रांति नहीं रहती। इसीलिये मेरे शिष्यों, भगवान ने यह देशित किया है–

अट्ठानमेतं भिक्खवे अनवकासो, यंदिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो किञ्चिधम्मं अत्ततो उपगच्छेय्य, नेत्तं ठानं विज्जति। (एकङ्गुत्तर पाळि)

भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी भी धर्म को "आत्मा" (अत्ततो) (मैं के भाव में) करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं।

एक उदाहरण से समझो - एक-छत्र सम्राट अपने किसी महान प्रभावशाली ऐन्द्रजालिक आचार्य को आदेश देकर तुषित देवलोक के किसी देवता को मनुष्य लोक के किसी ताजे मृत मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होने पर बाध्य कर दिया। वह बेचारा तुषित देवलोक का देवता उस प्रभावशाली ऐन्द्रजालिक आचार्य के प्रभाववश उस मृत काया में प्रविष्ट होकर रहता है। उस मृत काया को ही मैं-मैं, मेरा-मेरा करते हुए मनुष्यों के मध्य मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए रहता है। वह उस मृतकाया जिसमें प्रविष्ट होकर रह रहा है - उसे तनिक भी नहीं चाहता है। न उसके प्रति मोह या आसक्ति होती है - मजबूरी में रहता है - अन्यथा उसे घृणा-सी होती है। वह तो सौ योजन दूर से मनुष्य के बुरी गंध से दूर रहता है - इतना निर्मल तुषितलोक का देवता उस ऐन्द्रिजालिक के अधिकार में होने के कारण इस मृत मनुष्य काया को बिना चाहें रहता है। उसे उस काया में तनिक भी आनन्द नहीं, सुख नहीं। उसे उसका आचार्य 'चले जाओ' कह दे, तो खूब प्रसन्नतापूर्वक उसमें से निकलकर वह चला जावेगा।

पृष्ठ– ३२३

इसी तरह शिष्यो, तण्हा नामक सम्राट के आदेश पर ऐन्द्रजालिक आचार्य द्वारा प्रविष्ट कराया गया कम्म मनुष्य के पंचस्कंध के भीतर रहने वाले अरिहंत पुग्गल लोग पंचस्कंध को धारण किये हुए - सभी प्राणियों के संग - इस पंचस्कंध को मैं-मेरा कहते

हुए भी इन दोनों को बिना मिलाये हुए जानते रहते हैं। इस पंचस्कंध को 'मैं ही हूं' ऐसा कभी नहीं समझते। पंचस्कंध में तनिक भी आमोद-प्रमोद नहीं मानते। इसके प्रति जुगुप्सा ही बना रहता है। ऐसी घृणा होने पर भी पुराने कम्म के कारण प्राप्त पंचस्कंध को धारण किये हुए सत्वलोक के भले के लिये, सत्पुरुषों के धर्म की सुरक्षा के लिये, उलाहने से मुक्त करने के लिये - सारा जीवन खाते-पीते सुरक्षा रखते हुए रहते हैं। आयु पूर्ण होने पर, कर्म की समाप्ति होने पर - मरने के समय मृत मनुष्य की देह को छोड़कर जाने वाले तुषित देवता के समान हत्या किये जाने पर भी मुक्ति का अवसर प्राप्त हुआ इस प्रकार सुखभूर्वक बंधन से छुटकारा पाये हुए के समान - इस कायिक बंधन से मुझे छुटकारा प्राप्त होगा - इस पंचस्कंध के दुःख से, भय से मुझे मुक्ति मिलेगी इस तरह बहुत प्रसन्न होता है। इसीलिये शिष्यों, अधिमुत्त नामक अरिहंत थेर ने थेरगाथा पाळि में अपने पांच सौ चोरों को देशित करते पाये जाते हैं–

पारगू अनुपादानो, कतकिच्चो अनासवो।
तुट्ठो आयुक्खया होति, मुत्तो आघातना यथा।।

आवुसो! दायको! अनुपादान (= बिना इंधन का) अर्थात् सभी सङ्खत के प्रति आसक्ति रहित होकर - सउपादिसेस निर्वाण नामक उस पार को पहुंचा हुआ पारगू - कृत-कृत्य, अनासव अरिहंत - आयु क्षय होने पर संतुष्ट होता है। किसके समान प्रसन्न होता है ? तो

पृष्ठ– ३२४

मृत्यु दण्ड दिये जाने वाले आघातन स्थान से मुक्त कर दिये कैदी के समान वह प्रसन्न होता है।

शिष्यो, इस तरह अरिया अरहंत पुग्गल लोग इस पंचस्कंध को मैं नहीं मानते इसके प्रति तदात्म्य नहीं स्थापित करते। लोक में रहते समय लोक से बिना विरुद्ध हुए लोक कल्याण करते हैं। लोक व्यवहार नाम को जानते हुए उसको बिना छोड़े - लोक व्यवहार, खातिर मुंह से वैसा ही बोलते हैं। लोक व्यवहार के लिए मैं भी कहते हैं। मेरा भी कहते हैं। यह कथन सत्य है। लोक व्यवहार के विरुद्ध - मैं खाता हूं को वे लोग यह काय स्कंध खाता है - काया चलता है - काया सोता है - काया कहता है - यह काया का है - ऐसा कहने पर निहितार्थ समझाने में भारी झंझट हो जावेगा। अतः वे व्यवहार में मैं-मेरा, तू-तेरा का ही प्रयोग करते हैं। इसीलिये भगवान ने यह देशना एक देवता को दिया है :–

यो होति भिक्खु अरहं कतावी खीणासवा अन्तिम देहधारी। अहं वदायीतिपि सो वदेय्य, ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्य, लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा वोहार मत्तेन सो वोहरेय्य। (सगाथा वग्गसंयुत्त पाळि)

यक्ष ने आर्य लोग 'मेरा पात्र, मेरा चीवर' इत्यादि 'मैं-मैं' के कथन को कहते हैं यह तो सक्काय दिट्ठि बना हुआ है - इस भ्रम में भगवान को जब पूछा तब भगवान ने यह कहा– "देवता! जो भिक्षु कृत-कृत्य हैं, क्षीणास्रव हैं, अन्तिम देहधारी हैं, अरहंत हैं - वह 'मैं बोलता हूं', इस तरह मैं भी कहते हैं। वह - "मुझसे

पृष्ठ– ३२५

वे कहते हैं", इस तरह "मुझे" भी कहते हैं - कहना पड़ता है। यक्ष देवता - वे कुशल भिक्षु लोक में नाम के प्रज्ञप्ति को, व्यावहारिक प्रज्ञप्ति को जानकर व्यवहार मात्र के लिये वैसा व्यवहार करते हैं।

शिष्यो, इस तरह आर्य जनों का 'मैं' कहना तथा पृथग्जनों का 'मैं' कहना - इन्हें पृथक-पृथक समझना। इस मैं को भी 'दिट्ठि वाला मैं', 'मान वाला मैं' दो हैं इसे भी विभक्त कर अलग-अलग जानना। शिष्यों, इन दो तरह के मैं में दिट्ठि, मैं को लक्ष्य कर (को-व् तथा ङा) - दोनो मैं एक ही अर्थ वाला होता है। केवल शब्द व ध्वनि का अन्तर है। इसीलिये शिष्यों– **"नेतं मम नेसो हमस्मि। नेसोमे अत्ता"** इस तरह का उपयोग **बुद्ध-वाणी (पालि में) जगह-जगह तीन-तीन पढ़ें - निषेध का आया है–**

'नेतं मम' एतं; यह पंचस्कंध मेरा नहीं। इस प्रथम निषेध को - पंचस्कंध को 'मेरा - **अत्तनिय 'तण्हा निषेध** समझना।

'न सो हमस्मि" एसो; यह पंचस्कंध 'मैं नहीं हूं'। द्वितीय निषेध को - पंचस्कंध की आसक्ति - 'मैं' के **'मान का निषेध** समझना।

'ने सो मे अत्ता' एसो; यह पंचस्कंध मेरी आत्मा नहीं है। इस तृतीय निषेध को - पंचस्कंध के प्रति मेरी आत्मा की **दिट्ठि का निषेध** समझना।

शिष्यो, इस दिट्ठि निषेध में अहं तथा अत्त (ङा तथा को-व्) अर्थ के रूप में एक ही होने पर भी मान निषेध में परस्पर एक ही पद न रखने के लिये; एक ही अर्थ को समझाने के लिये– "अत्ता हि अत्तनो नाथो।

पृष्ठ– ३२६

अत्तापि अत्तनो नत्थि, सिलापुत्तकस्स सरीरं" जैसे कथनों के समान दो अर्थ भिन्न न होने पर भी - भिन्न होने के तरह बनाकर अभेदभेदूपचा द्वारा कथित पर्याय कथन समझना होगा। इसीलिये शिष्यों, मान के निषेध पद में आया कुछ पालि बुद्ध-वाणी में

रूपं वेदयितं सञ्ञं, विञ्ञाणं यञ्च सङ्खतं।
नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।।

इस दिट्ठि निषेध पद को "नेसो हमस्मि" यह भगवान ने कहा है। इसी बुद्ध-वाणी

के नियमानुसार ही - छः धातु विभङ्ग सुत्त उद्देसगाथा में दिट्ठि निषेध को ही– ''नेसो हमस्मि'' ही मैंने भी प्रयुक्त कर कहा है। शिष्यो, इतना जो कहा वह– 'अनत्त' पद में 'अत्त' शब्द का मैं (को-व्) नामक अर्थ को भलीभांति समझाना और निर्णय देना ही है।

सक्कायदिट्ठि (आसक्ति) का वर्णन

शिष्यो, इस समय अनत्त लक्खण को सरलतापूर्वक भलीभांति जानने के लिये - इन सक्कायदिट्ठि - उच्छेददिट्ठियों के साथ अत्तदिट्ठि के मानने को समझाऊंगा। शिष्यों, यह पुथुजन सत्व लोग उपादिण्णक होने पर इस नाम रूप दोनों को ही मैं-मेरा-मेरी आत्मा समझते हैं। कुछ लोग इस नाम रूप को मैं मेरा मेरी आत्मा नहीं मानते। इस दोनों नाम-रूप के भीतर में मैं नामक मेरी आत्मा अलग-अलग है - यह मानते हैं।

दो सक्कायदिट्ठि (दो आसक्तियां =(भ्रांतियां)

यह दोनों मत **भ्रांतिपूर्ण होने के कारण इसे मिच्छादिट्ठि** कहते हैं। इस दिट्ठि को परमत्थ द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नाम-रूप-काय पिण्ड के पुञ्ज में उत्पन्न दिट्ठि होकर– ''संविज्जमाने कायेपवत्तादिट्ठि सक्कायदिट्ठि'' परमार्थ रूप से, सम्यक रूप से विद्यमान काया (नाम+रूप) में प्रवर्तित (होने वाला) दिट्ठि (मिच्छादिट्ठि) ही है। इसलिये सक्कायदिट्ठि कहा जाता है।

पृष्ठ– ३२७

१. शिष्यों - इन दो सक्कायदिट्ठि में नाम रूप खन्ध से भिन्न एक आत्मा है - ऐसा यह वाद है - सुगन्ध विद्यमान पुष्प के समान या तेल विद्यमान तिल के समान इस आत्मा विद्यमान (का) नाम रूप है। नाम रूप उस आत्मा का है। सुगन्ध और पुष्प, तेल और तिल के समान यह आत्मा भी नाम रूप से घुला-मिला रहता है। यह एक वाद हुआ।

२. आत्मा में नाम रूप स्थित है। धुआं उड़ने वाले गुब्बारे को जैसे ले जाता हुए रखता है उसके समान - यह आत्मा नाम रूप को अपने प्रभाव से धारण किये हुए हैं। इस तरह आत्मा को आधार तथा नाम रूप को आधारी - इस प्रकार का एक वाद हैं।

३. नाम रूप में आत्मा स्थित है। गर्भवती मां जैसे गर्भस्थ शिशु को धारण की होती है - उसी तरह नाम रूप भी आत्मा को धारण किये हुए रहता हैं। नाम रूप आत्मा के रहने का घर है। नाम रूप आधार तथा आत्मा आधारी - इस प्रकार की धारणा वाला एक वाद। इस तरह कुल तीन वाद हैं।

नाम रूप को ही आत्मा मानने वाले वाद को जोड़ दें तो यह चार तरह का सक्कायदिट्ठि हुआ। इन चारों को रूप तथा नाम से गुणा करने पर आठ सक्कायदिट्ठि

होता है। पांच काय स्कंधों से गुणा करने पर बीस सक्कायदिट्ठि हुए। यह धातुओं से गुणा करने पर चौबीस सक्कायदिट्ठि हुए। बारह आयतनों से गुणा करने पर, बारह धातुओं से गुणा करने पर, अट्ठाईस रूपों, तिरपन नामों से गुणा करने पर, रूप कलाप नन्हें कणों से गुणा करने पर, सक्कायदिट्ठि की संख्या असङ्खेय्य हो जाते हैं। शिष्यों, इस तरह सक्कायदिट्ठि की विविधता सहित दो आसवियों (दिट्ठियों) को भलीभांति समझ लेना। शिष्यों, इस सक्कायदिट्ठि वाले पुथुजनों

पृष्ठ– ३२८

में प्रज्ञा की कमी तथा सोच (चिंतन) की अधिकता होती है। अतः आत्मा के संबंध में विभिन्न चिन्तन कर अनेकों वाद=मत=दिट्ठि विकसित कर लिये हैं। इस तरह विकसित किये –

अदेज्जो भेज्जोसि जीवो, अट्ठंसो गुळमण्डलो।
योजनानं सतापञ्च, को जीवं छेतु मरहति।।

जीव (जीवात्मा) अच्छेद्य है। अभेद्य है। जीव अष्ठकोणीय अट्ठंस है। आंवले के बराबर गोल है। पांच सौ योजन तक प्रभाव विस्तारित कर सकता है। ऐसे प्रभावशाली जीवात्मा को भला कौन कान (उच्छिन्न कर) सकता है। (इसका उच्छेद नहीं हो सकता है।)

यह पेतवत्थु पाळि में आये मिच्छादिट्ठियों की जीव (जीवात्मा) की कल्पना का वर्णन है।

शिष्यो, इस गाथा में 'जीव' कहने पर भी सत्तव (आत्मा) को ही समझना होगा। यह सत्तव मिट्टी-पत्थर के समान निष्प्राण नहीं। सोच-विचार तथा कार्य कर सकने वाले सजीव हैं। इसलिये जीव प्राणवान को कहते हैं। 'सत्त' तथा 'जीव' एक ही हैं। इसीलिये ही शिष्यों, 'प्राण' नामक पद का सजीव - सत्तव अर्थ दिया गया है। पूर्व जीवन में हमारे भगवान जब सुजात माणवक थे - तो उनके पिता ब्राह्मण ने - जीव रहित मृत गौ को - "गतजीवं - जरग्गवं" न कहकर "गतसत्तं जरग्गवं" कहा है।

पृष्ठ– ३२९

यह जातक, पेतवत्थु में आया है। 'गत सत्तं-विमत सत्तं जरग्गवं त्वं 'लपसि' = तुम मरे गौ को (प्राण रहित गौ को) 'घास खाओ' कहते हो ?

शिष्यो, इस पेतवत्थु पाळि में आया सत्तव का विचार - नामरूप स्कंध से भिन्न जीव (आत्मा) को मानने का आग्रह सक्कायदिट्ठि ही है। हमारे यहां बर्मी (ब्रह्मा) जाति के वे लोग भी इसी प्रकार से मत रखते हैं। यहां बर्मा में उसी आत्मा, जीव को– अ-ते

खे-गले, अते, लइ-प्या आदि कहा करते हैं। अष्ट कोणीय, गोल-गोल आदि विशेष भिन्न-भिन्न प्रकार से चिंतन यहां नहीं है। सुन्दर * - कुरूप आत्मा भी कहा करते हैं।

उच्छेददिट्ठि का वर्णन

यतो किर भो अयं अत्ता कायस्स भेदा।
उच्छिज्जति, विनस्सति, न होति परंभरणा।।

भो! यह आत्मा इस काया के भेद होने पर उच्छिन्न हो जाती है। विनष्ट हो जाती है। मरणोपरांत कुछ नहीं बचता। यह इतिवुत्त पाळि में आया हुआ मिथ्या दृष्टि वादियों का उच्छेददिट्ठि (मत) है।

शिष्यो, इस तरह मरने के पूर्व सारा जीवन जब तक जीते हैं तब तक यह बिना नष्ट हुए प्राण (आत्मा) रहता है। जब काया का विनाश होता है तब इसका भी पूरा-पूरा विनाश हो जाता है। किसी भव में नहीं जाता, कोई जन्म नहीं लेता। यह सारा कुछ समाप्त हो जाता है। इसे उच्छेद दृष्टि कहते हैं।

पृष्ठ– ३३०

यतो खो भोन्तो अयं अत्ता रूपी चातुमहाभूति को माता पेत्तिक सम्भवो। कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परंभरणा। (सुत्तजीवक्खन्ध पाळि - मिच्छादिट्ठि, उच्छेददिट्ठि)

भो! रूपी चारों महाभूत से पूर्ण, माता-पिता के संयोग के कारण उत्पन्न वह अत्ता (आत्मा), इस काया के विनाश होने पर यह नष्ट हो जाता है। इसका विनाश हो जाता है। मृत्यु के परे (किसी भव में) नहीं होता है। कुछ नहीं होता।

शिष्यो, इस उच्छेददिट्ठि के अनुसार नाम रूप स्कंध से अलग-थलग गोई आत्मा नहीं होता। इस नाम-रूप काया को ही आत्मा मानते हैं। ऐसे उन सक्कायदिट्ठि पुग्गल लोगों का मत है। शिष्यों, इस कथित उच्छेददिट्ठि को एक भव के समाप्त होने पर नष्ट होना एक भव उच्छेददिट्ठि समझना। उच्छेददिट्ठि का एक अन्य प्रकार भी है - जो इस प्रकार है।

चुल्लासीतिमहाकप्पे, सब्बे सुज्झन्ति संसरं।
अनागते तम्हिकाले, सञ्ञतोपि न सुज्झति।।

चरित्वापि बहुं भद्रं, नेव सुज्झन्ति नागते।
पापञ्चेपि बहुकत्वा, तं खणं नातिवत्तरे।। (नारद जातक पाळि, मिच्छादिट्ठि - उच्छेददिट्ठि)

चौरासी हजार कल्प तक पहुंचने पर सभी (प्राणी) संसरण से मुक्त हो जाते हैं।

उस काल के नहीं आने तक कोई चाहे कितना ही संयम नियम का पालन कर मुक्त होने की कोशिश करे - वह शुद्ध नहीं हो सकता।

वहुत सारे भद्र आचरणों को क्यों न करे उस अनागत चौरासी हजार कल्पों को बिना पूरा किये शुद्ध नहीं हो सकता - मुक्त नहीं हो सकता। यदि वह खूब पाप कर्म भी करे तो भी वह

पृष्ठ– ३३१

चौरासी हजार कल्पों से आगे संसरण नहीं कर सकेगा।

शिष्यो, "चुल्लासीति महाकप्पुनो सहस्सानि" इस मतानुसार - पेतवत्थु में जो आया है उसके आधार पर इस चुल्लासीति महाकप्पे - में सष्ठपदी गाथा होकर सहस्स पद खतम होता है - यह समझना। शिष्यों, उच्छेद मत के अनुसार वह आत्मा चौरासी हजार कल्प पूरा होने के पहले एक भी व्यक्ति विनष्ट नहीं हो सकता - वह हमेशा संसरण करते रहेगा। जब चौरासी हजार कल्प पूरा हो जावेगा तब सब नष्ट होकर पूर्ण रूप से शांत हो जाता है। उस काल के बिना पूर्ण हुए कोई इस भव चक्र से बाहर निकलने के लिये चाहे कैसा भी आचरण करे, प्रयत्न करे नहीं हो सकता। वह काल पूर्ण होने पर बिना धर्माचरण किये हुए ही - अकुशल करने वाला होने पर भी नियमानुसार स्वतः भव संसरण चक्र से बाहर हो जावेगा। कुछ भी चाहो उसके पहले मुक्ति नहीं हो सकती। जब सचमुच में वह अंतिम समय आयेगा तब ही संसरण के गिरफ्त से छुटकारा होगा - ऐसा मानते हैं।

दो उच्छेददिट्ठियां

शिष्यो, यह उच्छेददिट्ठि एक जन्म में पूर्ण नहीं होता - चौरासी हजार कल्प पूर्ण होने से अनेकों भव होने पर समाप्त होने वाला उच्छेददिट्ठि होकर

पृष्ठ– ३३२

अनेक भव उच्छेददिट्ठि जानना। इस तरह अनेक भव उच्छेददिट्ठि तथा एक भव उच्छेददिट्ठि समझना। उच्छेददिट्ठि पूरा हुआ।

सस्सतदिट्ठि –

यथा गामतो निक्खम्म, अञ्ञं गामं पवीसति।
एवमेव च सो जीवो, अञ्ञं कायं पवीसति।।

यथा गेहतो निक्खम्म, अञ्ञं गेहं पवीसति।
एवमेव च सो जीवो, अञ्ञं बोद्धं पवीसति।। (पेतवत्थु पाळि सस्सतदिट्ठि)

जिस तरह एक व्यक्ति एक गांव से निकलकर अन्य ग्राम में प्रविष्ट हो, उसी तरह वह जीव मरणोपरांत अन्य काया में प्रविष्ट हो जाता है।

जिस तरह एक व्यक्ति एक गृह से निकलकर अन्य गृह में प्रविष्ट हो जाता है - उसी तरह यह जीव इस काया रूपी पुराने घर से निकलकर अन्य गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है।

शिष्यो, यह दिट्ठि, यह मत आत्मा को नित्य मानता है। ध्रुव मानता है। कोई इसे विनष्ट नहीं कर सकता। मरने पर यह घर बदलने के समान दूसरे नये गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है।

पृष्ठ– ३३३

इसका कभी भी अन्त नहीं होता। हमेशा घर बदलते रहता है। यह आत्मा ध्रुव, शाश्वत, नित्य है - यह विभिन्न अवस्थाओं से संसरण करते रहता है। यह सस्सतदिट्ठि हुआ।

एक अन्य प्रकार से सस्सतदिट्ठि का वर्णन

यं खो इदं वुच्चति चक्खुं इतिपि सोतं इतिपि घातं इतिपि जिह्वा इतिपि कायो इतिपि, अयं अत्ता अनिच्चो अधुवो असस्सतो विपरिणामधम्मो। यञ्च खो इदं वुच्चति चित्तन्ति वा मनोति वा विञ्ञाणंति वा, अयं अत्ता निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो सस्सतिसमं तथेव ठस्सती ति। (मुत्त सीलखन्ध पाळि - मिच्छादिट्ठि - सस्सतदिट्ठि)

जिस धर्म स्वभाव को चक्षु भी कहते हैं - श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काया भी कहते हैं वह जो मेरा चक्षु-श्रोत-घ्राण-जिह्वा-काया आदि हैं वे अनित्य हैं, अध्रुव हैं, अशाश्वत हैं, विपरिणामधर्मा हैं। लेकिन जो धर्म स्वभाव चिन्तन करने वाला है। मनन करता है, विज्ञानन करता है - वही मेरी आत्मा है। जो कि नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अविपरिणामधर्मा है। वह शाश्वत है - सदा स्थिर रहता है।

पृष्ठ– ३३४

शिष्यो, इस शाश्वत दृष्टि के अनुसार नाम रूप वाले प्राणी के नाम को शाश्वत तथा रूप को अशाश्वत मानते हैं। हमारे यहां बर्मी लोगों में कुछ जो जीवात्मा को पृथक हैं यह नहीं मानकर नाम रूप स्कंध को ही मैं-मेरा मानने वाले सक्कायदिट्ठि पुग्गलों का मत है। यह मत नाम रूप खन्धा को ही मैं-मेरा प्राण मानकर रूप को अनित्य तथा नाम को नित्य मानते हैं। शिष्यों! जीवात्मा (प्रेतात्मा) का मत हम बर्मी लोगों में कुछ लोग निर्जीव नाम रूप मात्र ही है यह कहने वाले भगवान के धर्म को सुनकर अलग-थलग प्रेतात्मा (जीवात्मा) के मत को छोड़कर नाम रूप को ही जीवात्मा के समान मानकर रूप अनित्य है - नाम नित्य है - ऐसा बुद्ध-वाणी के अनुसार ही मानते हैं। इसीलिये शिष्यों,

हमारे बर्मी लोगों में कुछ पूर्व जन्म - आगामी जन्म आदि में यह आत्मा (विज्ञान) ही आवागमन करता है - ऐसा मानते हैं। जैसे कोई क्रीड़ा रास्ते पर चलता है - (कृमि मार्ग के समान विज्ञान (आत्मा) चिपकता है) वैसे विज्ञान ही आवागमन करता है। ऐसा कहते हैं। शिष्यों, इस तरह मानने में हमारे बर्मी लोग भगवान के धर्मों के उपदेशानुसार अनुपादिसेस निर्वाण को अन्तिम निर्वाण मानते हैं। जैसा कि पालि में आया है बुद्ध शासन - पसस्सतदिट्ठि के आचार्यों के मतानुसार विज्ञान नामक आत्मा कभी भी मरता नहीं है। यह शाश्वत मत कहलाता है।

शिष्यो, इस उच्छेददिट्ठि सस्सतदिट्ठि दोनों में लोक में उच्छेददिट्ठि वाले कम हैं। क्योंकि लोक में पूर्व निवासानुस्सति ज्ञान वाले या दिव्यचक्षुज्ञान वाले लोग भी हैं। अतः प्राणि एक भव से दूसरे भव में आवागमन करते रहते हैं यह शाश्वत मत ही अधिक है। और उच्छेददिट्ठि (मत) कम है। प्राणि एक भव से दूसरे भव में संसरण करते

पृष्ठ– ३३५

हैं - यह शाश्वत मत ही ज्यादा है। यह दोनों मत मिथ्या मत ही हैं। इस **कायस्कंध में आत्मा जैसा कुछ नहीं है नाम रूप केवल दो ही हैं। यह नाम रूप भी मैं-मेरा जैसा कुछ नहीं है। अविज्जा, तण्हा, कम्म इत्यादि के कारण उत्पन्न होकर रहने वाला केवल सङ्खार धर्म समूह मात्र है। अविज्जा, तण्हा, कम्म कारण हैं। इनको समाप्त करने के फलस्वरूप यह नाम रूप दोनों उत्पन्न नहीं होते। संसरण चक्र निरुद्ध हो जाता** है। अविज्जा, तण्हा, कम्म, इन कारणों के रहते, इनके फल नाम रूप का निरोध नहीं होता। यह सतत उत्पन्न होकर स्थित रहता है। इस तरह जानने व समझने को लोकुत्तर सम्मादिट्ठि समझना। यही भगवान का मन्तव्य है।

शिष्यो, लोक में सत्व जैसा कुछ नहीं है। नाम, रूप सङ्खार मात्र हैं। यह भगवान द्वारा आख्यात इस सम्मादिट्ठि को ही सासन के अंतर्गत सुनने समझने वाला ही कोई जान सकता है तथा विश्वास कर सकता है। इस सासन के बाहर आत्मा को मानने वाले ही लोग होते हैं। सासन के बाहर के हर प्राणी की यह धर्मिता है। इसमें भी उच्छेदवाद को मानने वाले तो पूर्णतः मिथ्या है। उच्छेदवादी होने वाले तो कर्म एवं कर्म-फल को भी इन्कार कर देते हैं। यह मत तो अत्यंत भयानक एवं त्याज्य है। इसलिये भगवान ने उच्छेदवाद मिथ्या मतों में निकृष्टतम कहा है। अङ्गुत्तर पाळि में इसे - मिथ्यामतों में अग्र कहा है। 'अग्र' शब्द का प्रयोग उत्कृष्टता तथा निकृष्टता दोनों के लिये भगवान किये हैं।

शाश्वतवादी के अनुसार प्राणी मात्र में कुत्ता - केवल कुत्ता का ही जन्म पायेगा - सुअर केवल सुअर, मुर्गी केवल मुर्गी,

पृष्ठ– ३३६

पक्षी केवल पक्षी, मनुष्य केवल मनुष्य ही होगा। देवता केवल देवता होंगे।

अपनी-अपनी जाति के नियमानुसार वही होंगे। इसमें अपने कर्मानुसार होने को मानते हैं। यह उच्छेदवाद के 'कर्म, कर्म-फल के नहीं होने वाले सिद्धांत' से बेहतर है। उच्छेदवाद तो निकृष्ट है। अच्छे कर्म करने पर अच्छे माता-पिता प्राप्त होंगे। उत्तम गर्भ शयन होगा। बुरा कर्म करने वाले बुरे लोक में बुरी मां के गर्भ में शयन कहेंगे। यह शाश्वत वादियों का मत लोकोत्तर सम्मादिट्ठि के अनुसार मिथ्या है। लोकीय दृष्टि से तो सत्य ही है। इसे कम्मवादी लोकी सम्मादिट्ठि ही जानना होगा। बोधिसत्व लोग भी नाम-रूप को भलीभांति नहीं जानने की अवस्था में इसी मत को मानते हुए अपनी पारमिताओं को पूर्ण करते रहे। आर्य, बुद्धत्व प्राप्ति के बाद ही लोकुत्तर सम्मादिट्ठि को प्राप्त किये। शिष्यों, मूल में सक्कायदिट्ठि आधारित वे लोग इस तरह विभिन्न मत-मतान्तरों (दृष्टियों) का अभ्यास करते रहे। इन दो सस्सत एवं उच्छेददिट्ठि के अतिरिक्त शेष साठ मत मूलतः सक्कायदिट्ठि आधारित होने के कारण उसी के विकास मात्र हैं। यह मतों (दृष्टियों) का विकास तथा अत्तदिट्ठि का वर्णन हुआ।

नाम-रूप को आत्मा (सत्त-अत्त) मानना

शिष्यो, इस उपादिण्णक नाम-रूपों को किस कारण 'सत्व' के समान मानते हैं? किस कारण 'अन्य' नहीं बल्कि 'मैं' मानते हैं। शिष्यों, यह नाम-रूप धर्म एक-एक पृथक न होकर एक ही सघन समूह होकर 'घन' बनकर, अनेकों कारणों से मिलकर, गति इत्यादि हाव-भाव, व्यापार प्रकट करता है। इस कारण जीवित सत्व मानते हैं। अन्य को 'बैठो', 'खड़े हो', कहने पर संभवतः न भी बैठे; न भी 'खड़ा' हो। 'चलो!', 'रोओ!', 'हंसो!'

पृष्ठ– ३३७

'पलक झपकाओ' आदि कहने पर संभवतः वह वैसा करे या न भी करेगा। 'जीभ निकालो!', 'बोलो!', 'चिंतन करो!'; 'सोच-विचार करो', 'जानो' इत्यादि कहने पर तो शायद वह करे या न भी करे।

इस तरह अन्य किसी व्यक्ति पर शासन नहीं चल सकता। शिष्यों! लेकिन अपने इस नाम रूप के समूह को उपरोक्त आदेश दिया एवं वैसा करवाया जा सकता है। अर्थात् यह हमारा नाम रूप का समूह - हमारे हुक्म का ताबेदार है। परन्तु दूसरे के नाम-रूप का समूह हमारे हुक्म का ताबेदार नहीं। इसीलिये इन नाम-रूप को कोई 'अन्य' नहीं 'मैं' ही मानते हैं।

शिष्यो, इस प्रकार अत्त पद के अर्थ को, दृष्टि की अनेकता को तथा सत्तदिट्ठि की आसक्ति को, सत्व ही है - अत्त ही है - इस विषय को बता चुकने के बाद अब अनत्त लक्खण को समझें। शिष्यों, भलीभांति सुनो। शिष्यों, इस तरह आसक्त होकर रहने की अवस्था को - इस नाम-रूपों को खण्ड-खण्ड विभाजित कर यदि देख लें - इसका घनत्व टूटकर, पिघलकर, हाव-भाव रहित मृत हुआ - शुद्ध धातु, शुद्ध सङ्खारधम्मं की

अवस्था प्रकट हो जाता है। कोई प्राण - कोई आत्मा, कोई जीव ढूंढ़े नहीं मिलता। इस तरह सत्व के लुप्त हो जाने पर 'मैं' (ही) की आसक्ति करने को कुछ नहीं बचता। अरे, इन धातुओं में मैं-मेरा कुछ कहने को बचता ही नहीं है। इस प्रकार का चित्त होकर सक्कायदिट्ठि का मूल ही निर्मूल होकर निरुद्ध हो जाता है - मेरे शिष्यों। इस तरह देखकर (विपश्यना कर) सक्कायदिट्ठि रहित पुग्गल अनगिनत हैं। पक्कुसामि राजा ने

पृष्ठ– ३३८

पांच रूप धातु को धातु के रूप में देखकर (विपश्यना कर) विञ्ञाणधातु को अनिच्च के रूप में देखकर अनागामी की अवस्था को प्राप्त हुए। पहुंचते ही उनकी च्युति हो गई। और वे अविहा ब्रह्मलोक को प्राप्त हो वहां भी इसी तरह ध्यान करते हुए क्षण भर में ही अरहत्त-फल को प्राप्त हो गये।

अविहं उपपन्नासे, विमुत्ता सत्त भिक्खवो।

अविहा ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने के साथ ही साथ क्लेशों से मुक्त हुए कुल सात भिक्षु हैं।

इस तरह थेर अट्ठकथा में आचार्यों द्वारा देशित सात भिक्षुओं में यह एक शामिल हैं। बुद्ध के साथ ही एक साथ जन्मे छन्द थेर भी इस रूप धर्मों को सुद्धसङ्खारधम्म के साक्षात्कार होने हेतु पटिच्च समुप्पाद के नियमानुसार ध्यान करते हुए सोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुए। शिष्यों! इस तरह धातु द्वारा विभाजित कर ध्यान विधि को अर्पणा ध्यान को अप्राप्त केवल उपचार समाधि मात्र ही उत्पन्न कर सकने वाले समथ भावना मत समझें। ऐसा समझना गलत होगा। अभी जैसा कि मैंने बताया उसके अनुसार मार्ग-फल प्राप्ति होने हेतु अनत्त लक्खणा विपस्सना भावना के रूप में निश्चित रूप से समझना। धम्म द्वारा ध्यान, धातु द्वारा ध्यान इन सबको अनत्तलक्खणा विपस्सना कम्मट्ठान ही समझना।

शिष्यो! इस तरह धातु द्वारा ध्यान विधि को पीछे सुत्तन्त सुञ्ञत विधि अभिधम्म सुञ्ञत विधियों में भगवान द्वारा दिये गये उपदेश के अनुसार स्वभाव को ठीक-ठीक मैंने देशित किया। अब जिस पर हमारा वश या शासन नहीं चलता उसको 'बिना मैं पन' के - अन्य के समान भावना करने को बताता हूं।

अनत्तपद का विग्रह

"रूपं न अत्ता अनत्ता" के रूप में विग्रह किया जा सकेगा। शिष्यों, रूप अत्ता नहीं। अनत्ता है। इस अर्थ में विग्रह हुआ।

पृष्ठ– ३३९

'अत्त' नहीं है - यह 'परो' है। अन्य है। शिष्यों, 'पर' कहने पर भी मुख्य रूप से यह हमारे हुक्म का तावेदार नहीं - इस पर हमारा अधिकार नहीं होने के कारण

अन्य 'पर' के समान देखने लायक शुद्ध सङ्खार धर्म समझना होगा। शिष्यों, इस नाम रूप धर्मों को हम अपनी इच्छानुसार, कामनानुसार नहीं करवा सकते। अतः वे अत्त नहीं, मैं नहीं। 'पर' ही हैं। ऐसा देखकर, पर के समान - अन्य जैसा समझने पर हमारा काम (कृत्य) हो गया - यह कथन ठीक है। शिष्यो, नाम रूपों को अनिच्च दुक्ख अनत्त के रूप में देखना नाम रूपों में तृष्णा का प्रहाण - लाभकारी देखना ही है। वह तृष्णा उसके प्रति प्रेम - अपने नाम रूपों को मैं (अत्त) मानकर, आसक्त होकर, अत्यधिक प्रेम करता है - इसलिये लोक में "अत्तसमा पेमानत्थि" अपने से प्रिय कोई अन्य नहीं। स्वयं ही स्वयं का सबसे अधिक प्रिय है। 'अत्ता हि परमो पियो' अपना आप ही परम प्रिय है। 'इस तरह भगवान ने सत्तङ्गुत्तर पाळि में देशित किया है। भगवान की देशना के अनुसार ठीक है। अपने नाम रूप के अतिरिक्त अन्य नाम रूप - हमारे मैं वाले इस नाम रूप को उपकार करने वाले साथी-संगी परिक्खार वायु को अत्तनिय रूप से प्रेम करता है। प्रेम करते हुए भी 'अपने' जैसा प्रेम नहीं करता। जैसे स्वयं अपने आपको प्रेम करता है। वह प्रेम करने वाली तृष्णा आत्ममूलक है। नाम रूपों को पर के समान, अन्य के समान देखते हुए, समझते हुए - 'मैं' नहीं इस स्थिति को जानते हुए - स्वयं के विनाश हो जाने पर अपनी कही जाने वाली कोई वस्तु भी नहीं रह सकती - शिष्यों, इस तरह अत्त - अत्तनिय के प्रहाण हो जाने पर अत्त एवं अत्तनिय की स्थिति उसके प्रति प्रेम तृष्णा कहां टिक सकेगा! नहीं टिक सकता है। उसकी जड़ें, उसका मूल ही उच्छिन्न हो जावेगा। उसका कृत कार्य पूर्ण हो जावेगा। इसलिये ही मेरे शिष्यों, भगवान के अग्र श्रावक आयुष्मान मोग्गलान महाथेर ने थेर गाथा पाळि में - अपने शिष्यों को इस प्रकार देशित करते हैं–

पृष्ठ– ३४०

१. सुखुमं ते पटिविज्झन्ति, वालग्गं उसुना यथा।
ये पञ्चक्खन्धे पस्सन्ति, परतो नो च अत्ततो।

२. ये च पस्सन्ति सङ्खारे, परतो नोच अत्ततो।
पच्चब्याधिं सु निपुणं, वालग्गं उसुना यथा।

१. आवुसो! जो पुग्गल लोग सङ्खार धर्म को 'पर' अर्थात् पराये के समान देख लेते हैं - अत्त के समान (स्वयं जैसा) नहीं देखते वे पुग्गल लोग बाल के अग्र भाग को तीर द्वारा बींध देने के समान निपुण गहन-गंभीर निर्वाण धर्म को बींधकर देख लेते हैं।

अनत्तलक्खण का वर्णन

भगवान ने भी पटिसम्भिदामग्ग पाळि में मग्ग-फल को पहुंच सकने हेतु 'चालिस तो' कहलाने वाला चालीस विपश्यना को देशित करने में - "अनत्त तो, परतो" की देशना

की है। अनत्त - मैं नहीं, परतो - अन्य के समान पर के समान ही - तुम सब अपनी इस नाम रूप को देखो। इसे अत्त मत जानो। अनत्त के समान जानो।

पृष्ठ– ३४१

शिष्यो, भगवान ने उन पञ्चवग्गियों को जो कि सदैव से अपने इस नाम-रूप को 'मैं' मानते आये थे - यह 'अन्य' नहीं 'मैं ही हूं' यह मानते आये थे - उनको संबोधित कर कहा– **"रूपं भिक्खवे अनत्ता।"** विनय महावग्ग पाळि में, खन्धवग्ग संयुत्त पाळि में, आया अनत्त लक्खण सुत्त के सर्वप्रथम वाक्य में ही - शिष्यों, भगवान ने समझाया है। फिर भिक्षुओं - रूपञ्च हिदं भिक्खवे अत्ता अभविस्स, नयिदं रूपं आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च रूपे एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोस्मिति, यस्मा च खो भिक्खवे रूपं अनत्ता, तस्मा रूपं आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति रूपे एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं ना अहोसीति। यह द्वितीय वाक्य कहा।

भिक्षुओ! वस्तुतः यह रूप यदि मैं (मेरी आत्मा) होता - यदि ऐसा होता - तो वह रूप पीड़ादायक नहीं होता। रूप में 'रूप मेरी कामना के अनुसार हो जा! मेरी कामना न होने पर मत हो!' ऐसा आदेश देने पर वह रुक जाता -(करता)। भिक्षुओं, इसीलिए वस्तुतः में यह रूप अनात्म होने के कारण 'मैं-मेरा' नहीं होने के कारण - रूप पीड़ादायक होता है। और रूप में 'रूप मेरी कामना के अनुसार होगा - मेरी कामना न होने पर वैसा मत हो' - कहने पर भी वैसा नहीं होता। हमारे आदेश को मानकर वह रुकता नहीं है।

पृष्ठ– ३४२

पुनः - तनिक भी हमारी कामना का या हुक्म का पालन नहीं करता इसको अत्यधिक स्पष्टता से बताने के लिये अनिच्च दुक्ख द्वारा समझाने के अभिप्राय से भगवान ने कहा -

तं किं मञ्ञथ भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा ति। अनिच्चं भन्ते। यम्पना निच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा ति। दुक्खं भन्ते। यम्पना निच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लन्नुतं समनुपस्सितुं एतं मम, एसो हमस्मि, एसो मे अत्ता ति। नो हेतं भन्ते।

पञ्चवग्गी भिक्षुओं! "तो तुम लोग क्या मानते हो! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भन्ते!"

"जो अनित्य है - वह दुःख है या सुख?"

"दुःख, भन्ते!"

"जो अनित्य दुःख और विकार को प्राप्त होने वाला है, क्या उसके लिये यह समझना उचित है - यह (=अनित्य पदार्थ) मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है?"

"नहीं भन्ते।"

पृष्ठ– ३४३

उनके ऐसा कहने पर भगवान ने उन्हें कहा कि– "सभी रूप न मेरा है, न मैं हूं, न वह मेरी आत्मा है - ऐसा समझना चाहिए।" भगवान ने वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान सहित पंचस्कंधों को इसी तरह समझाकर अनत्तलक्खण सुत्त देसना को पूरा किया। देशना के अन्त में वे पञ्चवग्गीय भिक्षु अरहत्त-फल को प्राप्त हो गये। मेरे शिष्यों - इस अनत्तलक्खण सुत्त को भलीभांति कंठस्थ कर लो।

यह अनत्त है - मैं या मेरा नहीं। यह 'पर' के समान है - यह बताया। इस सुत्त के अनुसार भगवान ने यह स्पष्ट दर्शाया कि - रूप अनत्त है। यदि रूप अत्त होता तो यह पीड़ादायक न बनता; और रूप में - 'मेरा रूप ऐसा होता', 'मेरा रूप ऐसा न होता' यह पाया जाता। चूंकि यह अनत्त है - इसलिये पीड़ादायक होता है; और रूप में - मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता - यह नहीं पाया जाता।

अब मैं इसको सविस्तार बता दिया कि इस पंचस्कंध पर हमारा कोई वश नहीं चलता है। इसे ध्यानपूर्वक सुनकर हृदयंगम करो। देखो (विपश्यना द्वारा) और जानो।

शिष्यो, कोई भी प्राणी अपने को पीड़ित नहीं होने देना चाहता। इस रूपों को पीड़ा का कारण आने पर पीड़ित होता है। शिष्यों - अभी ही सिर में दर्द की पीड़ा होने लगती है, तो अभी ही काया में कष्ट होने लगता है। अभी ही हाथों में, पैरों में दर्द होने लगता है। थकान लगने लगता है। अभी आंखों में जलन होने लगा - तो अभी कानों में दर्द। अभी-अभी मुंह के दांतों में दर्द होने लगा। इस तरह सारे बदन में अनजाने में ही पूरी काया में अथवा कुछ-कुछ खण्डों में न जाने कैसा-कैसा होने लगता है। शीतल होता है, ठंड लगता है। उमस लगता है। गर्मी लगती है। खुजली होती है। चुनचुनाहट होती है। थकान लगती है। दर्द होता है। पीड़ा होती है। इस तरह

पृष्ठ– ३४४

अज्झत्त अर्थात् भीतरी पीड़ाओं के कारण छियानबे प्रकार के रोग उत्पन्न हो आते हैं। इसी तरह बाहरी पीड़ाएं - शीत, उष्ण, सरी सृप आदि के दंश, कांटे, भाले, बर्छी, तीर, तलवार आदि के आघात से पीड़ाएं उत्पन्न होती ही रहती हैं।

शिष्यो! कोई भी प्राणि नहीं चाहता है कि यह पीड़ाएं उतनी काया में बनी रहे। यदि यह रूप अपना होता। अपनी आत्मा होता, मैं या मेरा होता - तो हम क्यों उसको पीड़ित होते रहने देते। कौन भला इन पीड़ाओं को चाहता। यदि सिर में दर्द होता तो

कहता कि 'मैं नहीं दुःखुंगा' और वह नहीं दुःखता। इसी तरह काया स्थित - हाथ, पैर, आंख, कान, मुंह में अनजाने ही किसी एक स्थान पर शीतल होकर, जाड़ा लगकर, उमस होकर, गर्मी लगकर, खुजलाकर, चुनचुनाकर, छनछनाकर, दर्द कर, थककर; जब पीड़ित होने पर वह कहना मैं इन सबसे पीड़ित नहीं होना चाहता है रे - अथवा ऐसा न होने पर कहे कि ऐसा होना चाहता हूं रे - तो उसके ऐसा कहने से कहां होता है। जब वैसी स्थिति होती है तो जाड़ा लगता ही है - ठंड, गरम, खुजली आदि-आदि होता ही है। इसलिये शिष्यों, यह रूप मैं नहीं है - मेरी आत्मा नहीं है।

शिष्यो, कोई भी प्राणी क्यों न हो, बुरा को नहीं चाहता है। अच्छा ही चाहता है। लेकिन जब समय आता है तब ये रूप कुरूप होते ही हैं। कमर झुक ही जाती है। दांत टूट ही जाते हैं। बाल सफेद हो ही जाते हैं। आंख की ज्योति चली ही जाती है। कान बहरा हो ही जाता है। चमड़ी पर झुर्रियां पड़ ही जाती है। बुढ़ापा आता ही है। बुरा दिखने ही लगते हैं। मेरे शिष्यों, यदि प्राणि का यह रूप ही मैं या मेरी आत्मा होती तो वह कह देता कि 'मत होना कुरूप या बुरा' - भला कौन कुरूप या बुरा दिखना चाहता है - सुन्दर ही बना रहना चाहता है - इसी तरह नहीं झुकने देता अपनी कमर, नहीं टूटने देता ये दांत, नहीं होने देता बालों को सफेद, नहीं होने देता आंखों को कमजोर, नहीं होने देता कानों को बहरा (भारी), नहीं होने देता झुर्रीदार चमड़ियां - भला

पृष्ठ– ३४५

कौन प्राणि चाहेगा कि वह असुन्दर... झुर्रीदार चमड़ी वाला बने। लेकिन उसके वश में नहीं है। इसलिये यह रूप मैं या मेरा नहीं है।

शिष्यो! दूसरों पर हमारा वश नहीं चलता। लेकिन अपने आप पर अपना वश न चले तब तो उसे उन्मत्त (उम्मत्तक) पागल ही तो कहेंगे। अपने ऊपर अपना वश तो होना ही चाहिए था। यह रूप यदि अत्त होता, मैं होता तो इस पर हमारा वश चलता, अधिकार होता, मल्कियत होती। यह रूप अपनी हुक्म के अनुसार चलाया जा सकता। हमारे हुक्म का ताबेदार होता। यदि पीड़ादायक कारणों से संपर्क होता - तो हम उसे शीतल होने, गरमाने, खुजलाने, चुनचुनाने, दुःखने आदि पीड़ा के होने पर - 'मैं शीतल होना चाहता हूं मत गरमाओ, मत खुजलाओ, मत चुनचुनाओ, मत दुःखो' कहने पर वैसा ही हो जाता। "मेरी ठंड दूर होना, ताप दूर होना, मेरी खुजली चली जा, चुनचुनाहट और दुःख-दर्द मत हो" ऐसा कहने पर हो जाता। धीरे से कहने पर नहीं कहना मानता तो डांट-डपटकर कहते तो वह कहना मान ही जाता। मत हो हमारी कमर टेढ़ी, मत टूट मेरे

पृष्ठ– ३४६

दांत, मैं विकृत न होऊं, आदि कहने पर यदि यह रूप मैं या मेरा होता तो

हमारे आदेश का पालन करता। लेकिन वह पालन नहीं करता है। मेरे शिष्यों, वह हमारा हुक्म का ताबेदार नहीं है।

यह रूप पीड़ाजनक कारणों के संपर्क में आने पर दुःखता ही है। वह विकृत होने के कारणों से मिलकर विकृत हो ही जाता है। परिस्थिति एवं कारणों के अनुसार परिवर्तित हो ही जाता है। वह उन कारणों का कहना मानता है। हमारे "ठंडा हो, गरम हो" के आदेश का पालन कभी नहीं करता। वह ठंडा होने या गरम होने के कारणों के संपर्क में आने पर वैसा होता ही है। हमारा हुक्म कभी नहीं मानता। इस रूप पर हमारी तनिक भी मल्कियत नहीं है। यह हमसे चिपका हुआ एक अनजान व्यक्ति के समान है। यह एकदम अन्य व्यक्ति है। यह कहां 'मैं' हो सकता है भला। यह 'हम' नहीं हैं, शिष्यों। इसे अनुभूति पर उतारकर दर्शन करो।

शिष्यो, अनत्तलक्खण सुत्त में - एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसीति" के द्वारा - **मैं और रूपं को– सम्बन्ध, सम्बन्धी** रखकर सामि, सन्तक रखकर कथित कथन को, रूप को 'मैं' से आसक्त होकर मैं और रूप धर्मकाय बिना विभाजित हुए एक ही होकर अभेदभेदूपचार द्वार– कथित पर्याय कथन समझना। इसलिये अभी अर्थ को कहते समय

पृष्ठ– ३४७

'मैं ऐसा होऊं, वैसा होऊं' इत्यादि स्पष्ट भाव के अनुसार हमारे आचार्य कहते हैं।

शिष्यो, अन्य को मेरे द्वारा यह आदेश देने पर कि - 'तुम बैठो ?, तुम उठो ?' तो शायद ही वह उठे या बैठे। क्योंकि उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। हम अपने स्वयं को ही 'उठ ? बैठ ?' कहकर अधिकारपूर्वक करवा सकते हैं। यह प्रतीत होता है कि इसने हमारे हुक्म का पालन किया। वस्तुतः अनिच्च भाव को नहीं देखने वाले पुथुजन को चित्त तो यही देखता है कि यह उसका रूप बैठा - यह उसका रूप उठा। उसके कहने के अनुसार किया। वस्तुतः जिस रूप को आदेश दिया वह नहीं बैठा। जिसको खड़ा होने को कहा वह रूप खड़ा नहीं हुआ। बैठने वाला रूप बैठने के पहले ही नष्ट हो चुका। खड़ा होने वाला रूप खड़ा होने के पहले ही नष्ट हो चुका। वह अपने उत्पत्ति से परिवर्तित नहीं हुआ। वह किसी का भी कहना नहीं मानता। जाति भय, जरा भय, व्याधि भय, मरण भय से टकराकर जराग्नि मरणाग्नि में जलता ही जा रहा है। बिना रूके क्षण-प्रतिक्षण नष्ट होते रहने वाले ये नन्हें-नन्हें रूप कण अपनी स्थिति से भला कहां परिवर्तित होते या टलते हैं। ये किसी का कहना नहीं सुनते। इस तरह सङ्खार धर्मों का किसी का भी तनिक भी नहीं सुनना - 'अनिच्च' भाव को देखने वाले पर ही प्रकट होता है। शिष्यों, इसको अनुभूति द्वारा जानो!

शिष्यो, इन रूप धर्मों के 'मैं-मेरा' नहीं होने की अवस्था को कारणों द्वारा भी समझें। शिष्यों, रूप के उत्पन्न होने के कारण कम्म, चित्त, उतु और आहार यह चार

हैं। यह चारों कारण दो जनकसत्ति तथा उपत्थम्भकसत्ति के उपकार से होते हैं। इन चार कारणों से रूप उत्पन्न होते हैं। शिष्यों, इस रूप उत्पत्ति के चार कारणों में से कम्म को क्या तुम लोग "मैं या मेरा" मानोगे? तुम लोग कम्म नहीं हो।

पृष्ठ– ३४८

कारणों से उत्पन्न केवल सङ्खार धर्म है। क्या तुम लोग चित्त को 'मैं या मेरा' मानोगे? वह कारणों से उत्पन्न केवल सङ्खार धर्म ही है। माता-पिता के डिम्ब-शुक्राणु रुधिर द्रव नामक उतु को क्या तुम लोग 'मैं या मेरा मानोगे? यह उतु द्रव भी तुम नहीं हो। तुम्हारा नहीं है। आहार के कारण उत्पन्न सङ्खार धर्म मात्र ही है। क्या आहार को तुम "मैं मेरा" मानोगे? नहीं मान सकते। यह आहार भी तुम नहीं हो। तेरा नहीं है। कारणों से उत्पन्न केवल सङ्खार धर्म मात्र ही हैं।

शिष्यो, रूप - "मैं या मेरा" नहीं है। रूपों को उत्पन्न करने वाले कारण भी - 'मैं या मेरा' नहीं है। शिष्यों, नीम के बीज से पौधा मीठा नहीं होकर - जैसे खारा ही खारा होता है - उसी तरह इस "मैं या मेरा" नहीं कहलाने वाले कारणों से उत्पन्न रूप - कहां से 'मैं या मेरा' हो सकता है भला? हमारा कहना नहीं सुनता, इस पर हमारा अधिकार नहीं, एकदम 'अन्य' पराया है। यह 'पर' के समान ही है। इसलिये शिष्यों - भगवान ने, मोग्गलान ने, आनन्द ने यह देशित किया - "रूपं अनत्ता अनत्ततो परतो तोच अत्ततो, सङ्खारे परतो पस्स"। इसे अनुभूति द्वारा जानो, शिष्यों। आनन्द द्वारा देशित - "सङ्खारे परतो पस्स" सङ्खारों को 'पर' के समान जानो (देखो) का भी यही अर्थ है।

शिष्यो, इस रूप को "मैं नहीं मेरा नहीं' को समझाने के लिये अत्यंत स्पष्ट उपमा द्वारा समझाता हूं - सुनो शिष्यों, स्त्री, पुरुष का प्रजनन द्रव (डिम्ब-शुक्र) - उतु-द्रव (अपशिष्ट द्रव) मान लो मां की ओर से पांच टीन, पिता की ओर से पांचः टीन कुल १० टीन को कड़ाही में पकाकर एक खोखला मनुष्य की आकृति बनाया। मान लो उसमें कोई एक व्यक्ति प्रविष्ट

पृष्ठ– ३४९

कर हाथ, पैर, नाक, कान, मुंह तथा सभी खोखले भागों में घुसकर कहे कि यह मेरा हाथ, मेरा पैर - मेरा नाक यही है तो उसे कोई भी प्रज्ञावान पुरुष मूर्ख ही कहेगा। वस्तुतः वह आकृति तो तुम्हारा नहीं। स्त्री-पुरुष के उतु द्रव पिण्ड मात्र है। क्या उसे मैं या मेरा कहना ठीक होगा? ना - नहीं ठीक होगा। कभी उसे मैं या मेरा मत समझ बैठना मेरे शिष्यों। एक बार भगवान सावत्थि नगर के जेतवन विहार में भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहा–

"गण्डोति खो भिक्खवे इमस्सेतं चातुमहाभूतिकस्स कायस्स अधिवचनं, मातापेत्तिक सम्भवस्स ओदनकुमासु पचयस्स।" (नवङ्गुत्तर पाळि - गण्डोपम सुत्त)

भिक्षुओ, यह जो फोड़ा है, यह इसी शरीर का पर्याय है, जो पृथ्वी आदि चार महाभूतों से निर्मित है, जो माता-पिता से संभव हुआ है। जो भात (ओदन) कुल्माष पर निर्भर करता है।

पृष्ठ– ३५०

इस तरह भगवान के कथनानुसार तुम्हारा वहरूप किसी अन्य का नहीं। यह तुम्हारा ही अपना रूप है। मां के गर्भ में उत्पन्न गब्भसेय्यक प्राणियों की काया में कम्मजरूप चित्त रूप की मात्रा कम है। तथा उतुज रूप, आहारज रूप ही अधिक हैं। इसलिये वास्तव में तुम लोगों की काया माता-पिता के उतु पिण्ड - अपशिष्ट ही है। दूध और दही में मूल और शिखर का ही अन्तर है एक ही हैं। गन्ने का रस तथा गुड़ में भी मूल और शिखर का ही अन्तर है। इसी तरह शिष्यों तुम्हारी यह काया माता-पिता के डिम्ब-शुक्र पिण्ड ही है। जड़-पलई (सिरा) का ही अन्तर है। पुराना भोजन, पुराने आहार से ही मल बनता है। जड़-पलई (सिरा) का ही भेद है! इस तरह तुम लोग इस काया उतु पिण्ड के मल में प्रविष्ट कर यह खोखला (चोला) मैं ही हूं। ये हाथ मैं ही है। ये पैर भी मैं ही है। ये आंख, नाक, मुंह, जीभ, मैं ही है। ऐसी आसक्ति भला कहां उचित है ? अनुचित ही है। शिष्यों, ऐसा मत मानना। यह काया, यह रूप तुम नहीं हो। यह उतु पिण्ड मात्र ही है। पराया रूप के समान ही अनुभव करके जानो। शिष्यों, अत्त पद के सही अर्थ को; विभिन्न दिट्ठिओं सहित

पृष्ठ– ३५१

अत्तदिट्ठि की आसक्ति को, सत्व ही मैं हूं - इसकी आसक्ति के कारण को, भलीभांति जानकर - इस तरह अनत्तलक्खण को अनुभूति द्वारा जानो। बार-बार निरीक्षण करते हुए यह प्रकट होने लगेगा।

शिष्यो, इस प्रकार निरीक्षण कर जब साक्षात्कार कर लोगे तब इस रूप को मैं मेरा मानकर आसक्त नहीं हो सकोगे - इसमें इस रूप के भीतर मैं मेरा जैसा कुछ ढूंढ़े नहीं पाओगे - अरे यह रूप तो मैं नहीं हूं रे। इस रूप में मैं नहीं है रे। इस प्रकार का चित्त बन जावेगा - फिर मैं लुप्त हो जावेगा। इस तरह जब मैं विलीन हो जावेगा - त्यों इस रूप को मैं मानना - मेरा मानना - मेरी वस्तु मानना और इसको प्रेम करना तिरोहित हो जावेगा। मैं - मेरा, मेरी वस्तु से रहित हो जावेगा। इस तरह के कारणों के आधार पर मैंने उद्देसवार में यह कहा– "नेसोहमस्मिनेतंमे, एवं तत्थ विरज्जति।" शिष्यों! भगवान जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित किया–

अनत्तलक्खण का दर्शन कर मग्ग किच्च का पूर्ण होना

रूपं भिक्खवे अनत्ता, योपि हेतु योपि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय, सोपि अनत्ता, अनत्त सम्भूतं भिक्खवे रूपं कुतो अत्ता भविस्सति, एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको रूपस्मिंपि निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागो विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं

होति, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्थायाति पजानातीति। (खन्धावग्ग संयुत्त पाळि - अनत्तसुत्त)

भिक्षुओ! रूप अनात्म है। मैं नहीं मेरा नहीं है। रूप के उत्पन्न होने में हेतु और प्रत्यय हैं। उत्पन्न करने वाला जनक - कारण तथा उसका सहायक उपत्थम्भक कारण हैं। यह दोनों

पृष्ठ– ३५२

कारण भी अनात्म हैं। भिक्षुओं! अनात्म सम्भूत रूप (भला) आत्म (अत्त) कैसे हो सकता है। भिक्षुओं! ऐसा दर्शन करने वाला अनत्त विपस्सना को जानने वाला सुतवा पुग्गल आर्य श्रावक, रूप में भी निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद प्राप्त होने पर वैराग्य को प्राप्त होता है। वैराग्य को प्राप्त होने पर विमुक्ति को प्राप्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर (आस्रव क्षण को प्राप्त हो जाने पर)– "मैं विमुक्त हो गया (आस्रव क्षण को प्राप्त हो गया।)" यह ज्ञान होता है। मेरा जाति (जन्म) क्षीण हो गया। मेरा ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। करणीय कार्य कर लिया गया। इस प्रकार अब करने को कुछ नहीं बचा - ऐसे वह परिपूर्ण रूप से जान लिया।

इस देशना को सुनकर भिक्षुगण उनकी देशना के अनुसार इस रूप के मैं नहीं मेरा नहीं - अनात्म अवस्था को भलीभांति साक्षात कर रूप के प्रति आसक्ति रहित होकर क्षीण - आस्रव निर्वाण को प्राप्त कर लिये। इसलिये तुम शिष्यगण भी उन भिक्षुओं के समान इस रूप को मैं नहीं मेरा नहीं वाली अनात्म अवस्था का भलीभांति साक्षात्कार कर जानो।

पृष्ठ– ३५३

रूप के प्रति आसक्ति रहित होकर क्षीणास्रव - निर्वाण की प्राप्ति के लिये मेरे द्वारा बतायी विधि के अनुसार प्रयत्न करो। देखो। प्रयत्नपूर्वक परिश्रम करो।

अनत्तनय विपस्सनासुत्त

१. रित्ता तुच्छा च सुञ्ञाच, विवित्ता सारवज्जिता।
सलक्खण परिच्छिन्ता, धम्मा नत्थेत्थ पुग्गलो।।

२. अरूपनिस्सितं रूप, मरूपं रूपनिस्सितं।
जच्चन्धपीठसप्पीव, अञ्ञमञ्ञं पतिट्ठितं।।

३. चित्तं यन्तं निजीवम्पि, सजीवं विय दिस्सति।
तथेव नामरूपंपि, निजीवञ्च निरीहकं।।

४. यन्त सुत्तेन यन्तंव, काययन्तं पवत्तति।
नामावकड्ढितं तत्थ, नत्थि अत्ता सयंवसी।।

५. सुद्धसङ्खार पुञ्जोयं, नेत्थ सत्तोपलब्भति।
तं तं पच्चयमागम्म, दुक्खक्खन्धोव जायति।।

६. एवं अनत्ततं पस्सेथ, साधवो नय कोविदा।
पस्सित्वान धातूसु, विरत्ता होथ साधवो।
एवं विरत्ता मे सिस्सा, मच्चुधेय्यं तरिस्सथाति।।

१. नाम रूप सङ्खार धर्म रिक्त है - तुच्छ है, शून्य है, विवित्त है (जीव रहित है)। सारवर्जिता है।

पृष्ठ– ३५४

अपने स्वभाव लक्षणों से ही परिच्छिन्न है। परमार्थतः इस लोक में पुग्गल सत्व है ही नहीं।

२. रूप धर्म, नाम धर्म (अरूप) पर आश्रित है। नाम धर्म, रूप धर्म पर आश्रित है। अंधे-लंगड़े दो मित्रों के समान ये दोनों नाम-रूप परस्पर प्रतिष्ठित हैं।

३. खूब अच्छी घड़ी निर्जीव होने पर भी चलती रहने के कारण सजीव के समान दिखती है। उसी तरह नाम-रूप भी निर्जीव-निरीह (व्यापार रहित) होने पर भी सजीव सदृश्य जीवित दिखता है।

४. यन्त्र-सूत्र (धागा) के कारण जिस तरह भूत यन्त्र प्रवर्तित होता है - उसी तरह 'नाम' के प्रभाव से - (उसके खिचाव से) यह कायारूपी यंत्र प्रवर्तित हो सकता है। इसमें स्वयंवशी आत्मा (अत्ता) नहीं है।

५. शिष्यो, इन मनुष्य, देव, ब्रह्मा सत्व के रूप में स्थित लोगों का काय स्कंध शुद्ध सङ्खार पूञ्ज ही है। इस लोक में

पृष्ठ– ३५५

सत्व कहलाने वाले पुग्गल वस्तुतः परमार्थ रूप में उपलब्ध नहीं हैं। उन उन तण्हा - आहार इत्यादि प्रत्ययों (कारणों) के समूह को कारण बनाकर दुक्ख खन्धों में ही जन्मते हैं। मनुष्य देह ब्रह्मा सत्व उत्पन्न होकर रहते हैं।

६. नयकोविद जो अनत्त विपश्यना विधि को भलीभांति जानते हैं, साधु जन, तुम

लोग इस तरह नाम रूप वाले अनात्म स्वभाव को देखो - अनुभूति द्वारा जानो। साधुओ! तुम लोग देखकर धातुओं (रूप धातुओं) में विरक्त हो जाओ। इस तरह विरक्त हो जाओगे तो - मेरे शिष्यों! मृत्युराज के इस इकत्तीस लोकों को पार कर जाओगे। तिर जाओगे।

इति अनत्तेन सुञ्ञतनयो

असारकट्ठेन साधवे सङ्खारा अनिच्चा, अभिण्ह सम्पटिपीळनट्ठेन साधवे सङ्खारा दुक्खा, अवसवत्त नट्ठेन साधवे सङ्खारा अनत्ता, यावञ्चिदं साधवे अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं अलं विरज्जितुं अलं विमुच्चितुन्ति। (सेक्ख्यभासित तिलक्खण सुत्त)

पृष्ठ– ३५६

भिक्षुओ, सङ्खार सारहीन होने के कारण अनित्य हैं। भिक्षुओं, सङ्खार उत्पाद-व्यय, जरा-व्याधि से सतत पीड़ित होने के कारण दुःख हैं। भिक्षुओं, सङ्खार पर हमारा वश या मिल्कियत नहीं होने के कारण अनात्म है। साधुओं, अन्तिम रूप से - सभी सङ्खारों में निर्वेद प्राप्त करना ही उचित है। सभी सङ्खारों में विरक्ति उचित है। सभी सङ्खारों से विमुक्त होना ही उचित है। यहां सेक्ख्यभासित तिलक्खण सुत्त समाप्त हुआ।

इति रूपकण्डो निट्ठितो

नामकण्ड विञ्ञाण धातु

शिष्यो, इस तरह रूप धातुओं को– "ने सो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति" वाले उद्देस के अनुसार मैं (अत्त), मेरा (अत्तनिय) रहित होने के लिये पांच विधियों द्वारा देखने की शून्यत

पृष्ठ– ३५७

विधि को देशित कर उन पांच रूप धातुओं से छूटा हुआ **नाम धातु कहलाने वाला विञ्ञाण धातु को अब बताता हूं। भलीभांति सुनो। हृदयंगम करो! देशित करता हूं : शिष्यो - विञ्ञाण धातु क्या है?–**

विञ्ञाण का विग्रह

विजानातीति खो भिक्खवे तस्मा विञ्ञाणन्ति वुच्चति।

भिक्षुओ, वह धर्म जान सकते हैं। इसलिये वस्तुतः उस जानने के स्वभाव को विञ्ञाण कहते हैं।

यह खन्धवग्ग संयुक्त पाळि में आया - भगवान के द्वारा विग्रह के अनुसार - जानने के स्वभाव को विञ्ञाण कहते हैं। इस विञ्ञाण को ही सोचने-विचारने (चिंतन-मनन) में अत्यंत विचित्र स्वभाव का होने से - चित्त भी कहते हैं। वस्तु नहीं, जानने की क्रिया शक्ति मात्र है - अतः "मननं मनो" मनन करने वाला मन भी कहा जाता है। **मन, विञ्ञाण, चित्त** कहलाने वाला धर्म काया स्वभाव एक ही है। शिष्यों, मात्र नाम का भेद है।

शिष्यो - मन, चित्त कहलाने वाला यह विञ्ञाण अत्यंत गहन गंभीर सूक्ष्म धर्म है। सामान्य व्यक्ति इसे देख या जान नहीं सकता। अत्यंत बींधने वाली सूक्ष्म ज्ञान वाला पुग्गल ही इसे देख या जान सकता है। इसलिये तुम्हें - तीक्ष्ण सूक्ष्म विशिष्ठ ज्ञान को प्राप्त कराने के बाद जान व देख सकने योग्य ढंग से मैं बता रहा हूं। जैसे बता रहा हूं - वैसे देख-जान-सुनकर हृदयंगम करो।

पृष्ठ– ३५८

२४. विञ्ञाणं चित्र चित्त, विञ्ञाणे हेव जानियं। सुदेसितं विञ्ञाणेन, ञातब्बं विञ्ञाणेहि तं।। सुदुद्दसं सुतिपुणं, निपुणेहेव पस्सियं। सुदस्सितं निपुणेन, दट्ठब्बं निपुणेहि तं।। (सेक्ख्यभासित गाथा)

शिष्यो, यह अत्यंत विचित्र चित्त नामक विञ्ञाण को विशिष्ठ ज्ञानी के लिये ही जानने योग्य है। मैं विशेष ज्ञानधारी तुम्हारा आचार्य इसे सुदेशित करता हूं। उस ज्ञान

को तुम्हें देने पर तुम विशिष्ठ ज्ञान वाले शिष्य गण जानो। शिष्यो, अत्यंत गहन गंभीर सूक्ष्म होने तथा इसीलिये सु-दुदर्शनीय इस विञ्ञाण को निपुण व्यक्ति ही जान सकेगा। मैं - तुम्हारा निपुण आचार्य इसे सुन्दर रूप से बताता हूं। उस विञ्ञाण को तुम मेरे निपुण शिष्य गण मेरे बताये अनुसार दर्शन करो। अनुभूति द्वारा दर्शन करो।

विञ्ञाणधातु का लक्षण

शिष्यो, इस विञ्ञाण धातु नामक चित्त का स्वभाव, लक्षण स्थिति कैसा है? यह चित्त आलम्बन को जानने वाली क्रिया शक्ति स्वभाव है। शिष्यों, (शरीर) वस्तु नहीं है। इसलिये "असरीरं गुहासयं" (धम्मपद) कहा है - भगवान ने। हृदय गुहा में सोया हुआ यह चित्त

पृष्ठ– ३५९

अशरीरी है - यह अर्थ होता है। यह चित्त दाग (गंदगी) नहीं है। श्वेत स्वच्छ है। इसलिये इसे 'पण्डरं'; "पभस्सरमिदं भिक्खवे चित्तं" आदि अभिधम्म, अङ्गुत्तर में भगवान ने देशित किया है। भिक्षुओं यह चित्त पण्डर है - श्वेत है। प्रभासमान है। प्रभासित है।

चेतसिकों का वर्णन

(१) श्वेत प्रभासित चित्त धातु में आलम्बन (के स्वभाव) का स्पर्श (स्वभाव)। **फस्स**।

(२) आलम्बन के स्वभाव को अनुभव करना - **वेदना स्वभाव**।

(३) आलम्बन को पहचानना - **सञ्ञा स्वभाव**।

(४) अपने साथ के धर्मों को जागृत करने वाला - **चेतना स्वभाव**।

आदि बावन प्रकार के स्वभावों को सतत आश्रित होकर रहते हैं। शिष्यो, इस चित्त में जो बावन (५२) प्रकार के स्वभाव नियुक्त होकर आश्रित रहते हैं उनको - चूंकि चित्त में आश्रित हो युक्त रहते हैं इसलिये– **"चेतसिनियुत्ता चेतसिका"**– चित्त में नियुक्त धर्म को इसीलिये चेतसिक कहते हैं।

चित्त, चेतसिक को नीलमणि द्वारा उपमा

शिष्यो, उपमा से बतायें, तो - ऋद्धि पूर्ण पुग्गल - भूरा, काला, श्वेत, लाल, पीला, हरा इत्यादि से मिला हुआ - कुल रंग

पृष्ठ– ३६०

बावन (५२) प्रकार वाला एक नीलमणि को निर्मित करे। उन तरह-तरह के रंगों को प्रकट कर सकने वाले दूरबीन (टेलिस्कोप) - निर्मित कर श्वेत रंग को प्रकट कर

सकने वाले दूरबीन से दिखाने पर श्वेत रंग प्रकट होता है। श्वेत प्रकाशित होता है। उस श्वेत रंग के अनुरूप हो सकने वाले एक ही स्वभाव वाले रंगों को भी प्रकट करता है। प्रकाशित करता है। उस समय उस श्वेत रंग से सीधा विपरीत काला रंग को प्रकट नहीं कर सकेगा। नीलमणि धातु पिण्ड में सुप्त रहेगा। उसे काले रंग के अनुरूप एक ही स्वभाव वाले सभी रंग भी उसमें सुप्त होकर छुपे रहेंगे। जिस समय काले रंग को प्रकट करने वाले दूरबीन के साथ दिखायेंगे तब काला रंग प्रकट होगा। प्रकाशित होगा। उस काले रंग के अनुरूप एक ही स्वभाव वाले सभी रंग भी प्रकट होंगे। प्रकाशित होवेंगे। उस समय काले रंग से सीधा विपरीत जो श्वेत रंग है - वह छुप जावेगा - लुप्त हो जावेगा। उस श्वेत रंग के अनुरूप एक ही स्वभाव वाले रंग भी छुप जावेंगे। लुप्त हो जावेंगे। उसी तरह उन किसी भी एक रंग को प्रकट कर प्रकाशित करेंगे तो वह उत्पन्न प्रकाशित रंग के विपरीत विरोधी स्वभाव के सभी रंग छुप जायेंगे। लुप्त हो जावेंगे।

इसी उपमा के समान ही - शिष्यो, विञ्ञाण नामक एक चित्त धातु में चेतसिक बावन तरह के रंग जैसे ही युक्त होकर रहते हैं। वह नीलमणि - चित्त धातु के समान है। रश्मि सूत्रों को चेतसिक के समान समझो। नीलमणि में कोई एक रंग के प्रकट होने पर - उस प्रकट रंग के विपरीत विरोधी रंग जिस तरह छुपे रहते हैं - उसी तरह शिष्यों, इस नन्हें से चित्त धातु में बावन चेतसिक युक्त होकर रहने पर भी वे कुल बावनों चित्त एक ही साथ चित्त सन्तान में प्रकट रूप से नहीं उभरते हैं। चित्त सन्तान में

पृष्ठ – ३६१

जब जिसके कारण से मिलाप होता है। तब वह धर्म प्रकट होता है तथा उसका विपरीत विरोधी धर्म छुपा रहता है। लुप्त हो जाता है। चित्त सन्तान में छुपे रहता है।

लोभ धर्म, लोभ लुब्ध होने का स्वभाव है। दोस धर्म नहीं चाहने, घृणा करने का शुष्क स्वभाव है। लोभ और द्वेष सीधे दो विरोधी स्वभाव हैं। इसीलिये अयोनिसोमनसिकार लोभनीय आलम्बन वाले दूरबीन से दिखाने पर चित्त सन्मान में लोभ का रंग ही प्रकाशित होगा। उस लोभ के सभी सहयोगी एक समान के स्वभाव दिट्ठि मान इत्यादि चेतसिक रंग उठ खड़े होंगे। प्रकाशित हो चमकने लगेंगे। उस समय अपने संग-साथियों सहित दोस चेतसिक वाला रंग चित्त सन्तान में छुप जावेगा। जिस समय अयोनिसो मनसिकार दोसनिय आरम्मण आलम्बन वाले दूरबीन से दिखायेंगे तब दोस नामक रंग उठ खड़े होंगे। वे चमकने लगेंगे। वह दोस अपने अनुकूल संगी-साथी जिनके परस्पर स्वभाव एक हैं - वे ईर्ष्या, मात्सर्य आदि चेतसिक रंग भी उठ खड़े होंगे। प्रकाशित हो चमकने लगेंगे। उस समय अपने संगी-साथियों सहित लोभ चेतसिक वाला रंग चित्त सन्तान में छुप जावेगा। मोह धर्म लोभ के भी अनुकूल हो सकता है। इसलिये लोभ का रंग भी समानान्तर रूप से प्रकट होकर चमकने लगता है। दोस का रंग भी समानान्तर रूप से प्रकट होकर चमकने लगता है। लोभ-द्वेष से असंबंधित केवल अपने से ही संबंधित मोह विमूढ़ित करने वाले मोहनीय आलम्बन (आरम्मण) दूरबीन को दिखायेंगे तो बिना लोभ दोस के स्वयं

मात्र ही प्रकट होकर प्रकाशित होता है। उस मोह के अनुकूल एक ही स्वभाव वाला विचिकिच्छा - उद्धच्च आदि चेतसिक के रंग भी प्रकट हो जाते हैं - उठ खड़े होते हैं - और प्रकाशित हो चमकने लगते हैं।

शिष्यो, अनुधायी संगी-साथी सहित लोभ, दोस, मोह के रंग गंदे शुष्क कृष्ण वाले

पृष्ठ – ३६२

रंग ही हैं। अकुशल बुरे स्वभाव ही हैं। इसीलिये ये लोभादि धर्म - "नकुसला अकुसला" - कुशल नहीं अकुशल हैं। इसीलिये इन्हें अकुशल धर्म कहते हैं।

शिष्यो, अलोभ, अदोस, अमोह, सुन्दर, सति इत्यादि स्वभाव धर्म श्वेत रंग वाले शुक्ल रंग हैं। इसलिये ये उन अकुशल रंगों के एकदम विपरीत हैं। विशेषतः यह ध्यान में ले लें कि लोभ और अलोभ, दोस और अदोस, मोह और अमोह नामक ज्ञान प्रज्ञाएं सीधे-सीधे एक दूसरे के विपरीत हैं। ये अलोभ आदि धर्म लोभ आदि विकार वाले निकृष्ट धर्मों को नष्ट करते हैं। इसलिए **"कुच्छिते पापधम्मे सलयन्ति विद्धंसेन्तीति कुसला।"** 'कुत्सित पाप धर्मों को हटाकर नष्ट कर सकता है। इसलिए वे अलोभ आदि धर्म कुशल कहलाते हैं।' इस कथनानुसार अलोभ आदि धर्म कुशल धर्म कहलाते हैं।

शिष्यो, चित्त सन्तान में लोभ इत्यादि अकुशल गंदे (मैले) रंग उभरने पर अलोभ इत्यादि कुशल श्वेत रंग छुप जाते हैं। जब योनिसो मनसिकार पसादनिय आदि आलम्बन दूरबीन से दिखला देने पर अलोभ अदोस आदि श्वेत रंग वाले चेतसिक के कुशल रंग प्रकट हो जाते हैं और प्रकाशित होने लगते हैं। उस अलोभ अदोस के सहयोगी धर्म भी प्रकट होकर दमकने लगते हैं।

पृष्ठ – ३६३

तब लोभ दोस आदि अकुशल मैले रंग तिरोहित हो जाते हैं। शिष्यो, फस्स, वेदना, सञ्ञा, चेतना, वितर्क, विचार, वीरिय, छन्द, पीति आदि चेतसिक - वस्तुतः अपने आपमें कुशल भी नहीं हैं - अकुशल भी नहीं हैं। ऐसा न होते हुए भी कुशल अकुशल धर्मों का अनुगमन कर सहगामी हैं। वे कुशल धर्मों के संग भी उठ खड़े होते एवं प्रकाशित होने लगते हैं तथा अकुशल धर्मों के संग भी उठ खड़े होते हैं एवं प्रकाशित होने लगते हैं। जब कुशल धर्मों के समानान्तर उठ खड़े होते हैं तब कुशल स्वभाव से मेल खाते हुए कुशल धर्म ही कहलाते हैं। जब अकुशल धर्मों के समानान्तर उठ खड़े होते हैं तब अकुशल स्वभाव से मेल खाते हुए अकुशल धर्म ही कहलाते हैं। इसलिये इन फस्स वेदना आदि धर्मों को दुर्जन सज्जन दोनों के संयोग होने पर उनके समान ही - अञ्ञसमानचेतसिक नामकरण (अट्ठकथाकार) करते हैं।

इस तरह चित्त सन्तान में कोई एक धर्म के प्रत्यक्षतः उभरकर आने पर उस उभरे हुए धर्म के सहयोगी अनुगमन कर सकने वाले, मेल खाने वाले स्वभाव के धर्म भी उठ

खड़े होते हैं तथा प्रकाशित होने लगते हैं। जो असहयोगी - अनुगामी मेल नहीं खाने वाले विरोधी स्वभाव के धर्म होते हैं - वे नहीं उभरते बल्कि तिरोहित हो जाते हैं। शिष्यों, कभी किसी एक समय में - यह चित्त किसी कारणवश क्षुद्र है, संक्षिप्त है। उस समय चित्त सन्तान में लोभ, दोस, मोह, अलोभ, अदोस, अमोह, वितर्क, विचार, वीरिय इत्यादि शक्तिशाली बृहद, विस्तृत चेतसिक नहीं उभर सकते - प्रकाशित नहीं हो सकते। वे तिरोहित ही हो जायेंगे। चित्त के समान ही शक्तिशाली, निर्बल, क्षुद्र, महग्गत आदि उत्पन्न होते हैं। चित्त के अनुसार अनुगमन कर सकने वाले शक्तिशाली - फस्स वेदना सञ्ञा चेतना आदि धर्म ही हमेशा उभरकर प्रकाशित रहते हैं।

पृष्ठ– ३६४

शिष्यो, इस तरह चित्त सन्तान में एक-एक प्रकार के चेतसिकों के उत्पन्न होने को भली प्रकार जानो। इस तरह उभरने में उसी एक चित्त को जब लोभ प्रत्यक्षतः उभरेगा तब उसे लोभमूलक चित्त कहते हैं। जब दोस प्रत्यक्षतः उभरेगा तब उसे **दोसमूलक** तथा जब मोह प्रत्यक्षतः उभरेगा तब उसे **मोहमूलक चित्त कहते हैं।** अकुशल धर्मों के प्रत्यक्षतः उभरने पर **अकुशल चित्त** कहते हैं। अलोभ अदोस इत्यादि कुशल धर्मों के प्रत्यक्षतः उभरने पर **कुशल चित्त** कहते हैं। क्षीणास्रव पुग्गल (के) सन्तान में इस कुशल चित्त को ही क्योंकि उनमें अकुशल पाप धर्मों को हटाने तिरोहित करने का काम नहीं रह जाता है इस कारण दृढ़ भाव वाला क्रिया व्यापाद भी होने के कारण उस भाव वाले क्रिया व्यापार की स्थिति के आधार पर **क्रिया चित्त** कहते हैं। किसी कारणवश चित्त संक्षिप्त और शक्तिहीन है - लोभ, दोस, मोह, अलोभ, अदोस, अमोह ये छः मूल हेतु धर्म नहीं उभर सके तथा तिरोहित रहने की स्थिति को - हेतु धर्म प्रकटतः न होने के कारण **अहेतु चित्त** कहते हैं। उस अहेतु के प्रकट नहीं होने पर भी क्रिया व्यापार सहित चित्त को **क्रिया चित्त** कहते हैं। क्रिया व्यापार रहित चित्त को कम्म के प्रभावानुसार शांत रहने के कारण **विपाक चित्त** कहते हैं।

इस विपाक चित्त में अलोभ आदि हेतु धर्म समूह के रहने पर **सहेतुविपाक चित्त** कहते हैं। इस अलोभ आदि तीनों हेतुओं के प्रत्यक्षतः प्रकट रहते चित्त को ही, चूंकि वे काम भव (लोक) काम तण्हा को अतिक्रमण नहीं करते - अतः **कामावचर चित्त** कहलाते हैं। काम भव (लोक) काम तण्हा को पार कर (अतिक्रमण कर) रूप लोक, रूप तण्हा क्षेत्र में स्थित होने के समय को **रूपावचर चित्त** कहते हैं। इस रूप लोक को पार कर (अतिक्रमण कर) अरूप लोक अरूप तण्हा क्षेत्र में स्थित होने के समय को - **अरूपावचर चित्त** कहते हैं। इस काम, रूप, अरूप नामक तीन लोकों को पार कर लेने पर **लोकोत्तर चित्त** कहते हैं। ज्ञान कृत्य पूरा कर सकने के हालत में - ज्ञान धर्मों की प्रत्यक्षता की स्थिति को **ज्ञान चित्त** कहते हैं।

मग्गकिच्च पूरा कर सकने की दशा में - मग्ग धर्मों की प्रत्यक्षता की स्थिति को **मग्ग चित्त** कहते हैं। मग्ग धर्मों के प्रत्यक्ष रहने पर भी करने के लिए कृत्य के नहीं

रहने पर मार्ग (मग्ग) के प्रभाव के अनुसार उत्पन्न अवस्था को **फल चित्त** कहते हैं। वही एक व्यक्ति श्वेत वस्त्र पहनने पर सफेद परिधान वाला वैसे ही - लाल, पीला, नीला, भूरा, काला वस्त्र धारण करने पर अलग-अलग रंग वाला के नाम से पुकारा जाने लगता है - ठीक उसी तरह - मेरे शिष्यो, इस एक ही चित्त को ही इस तरह किसी एक कारण - कृत्य को आधार बनाकर तरह-तरह के नामों से पुकारा जाता है। इस तरह उस एक ही चित्त को विभिन्न प्रकार के नामों से पुकारे जाने को भलीभांति जानना।

शिष्यो - धम्म सङ्गणी पाळि में यह देशित है–

कतमे धम्मा अकुसला। यस्मिं समये अकुसलं चित्तं उप्पन्न होति। सोमनस्स सहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं रूपारम्मणं वा। ...पेय्याल...। धम्मारम्मणं वा, यं यं वा पनारब्भ तस्मिं समये फस्सो होति, वेदना होति, सञ्ञा होति, चेतना होति। ...पेय्याल...। लोभो होति, मोहो होति, मिच्छादिट्ठि होति।

किन धर्मों को अकुशल कहते हैं ? जिस समय सोमनस्स वेदना के साथ उत्पन्न मिथ्या दृष्टि से सम्पयुक्त लोभमूलक अकुशल प्रथम चित्त - रूपा रम्मण को...पे०... धम्मारम्मण को - उन-उन आरम्मण को आरम्मण कर उत्पन्न होता है - उस समय में आरम्मण को स्पर्श करने वाले भाव नामक फस्स भी प्रत्यक्षतः उत्पन्न होता है। वेदना प्रकट होता है। (आरम्मण को अनुभव कराने के भाव वाली वेदना प्रकट होती है।) सञ्ञा प्रकट होती है।)

पृष्ठ– ३६६

(आरम्मण को जानने वाली सञ्ञा भी प्रकट होती है।) चेतना अपने साथ प्रकट सम्पयुक्त धर्मों को चैतन्य कहने के भाव वाली चेतना भी प्रकट होती है। ...पे०...। आरम्मण को चाहने के भाव वाला लोभ भी प्रकट होता है। आरम्मण के भाव को नहीं जानने देने वाला विमूढ़ता के भाव वाला - मोह भी प्रकट होता है। मिथ्या दृष्टि भी उत्पन्न होता है।

इस तरह से किस चित्त में कितने चेतसिक - किस चित्त में कितने चेतसिक सम्पयुक्त हैं यह स्वरूप निकाल कर देशित करना अभी मेरे द्वारा देशित किये गये के अनुसार चित्त सन्तान में - उनके कारण से मिलने पर प्रकट होने वाले धर्मों को उद्धृत कर-करके मात्र देशित करना हुआ– उसे ध्यान रखना। इस अभिधम्म पाळि में चित्त और चेतसिक सम्पयुक्त विप्पयुक्त होते हैं यह देशित करने में भी प्रकट रूप में उत्पन्न होने के समय को लक्ष्य कर सम्पयुक्त, तिरोहित होकर छुपे रहने के समय को लक्ष्य कर विप्पयुक्त देशित किया गया है - यह याद करना।

उन चेतसिकों के उपकार करने का वर्णन

शिष्यो, बावन (५२) चेतसिक तथा एक (१) चित्त, कुल योग तिरपन (५३) नाम

धर्म पूर्व-पूर्व के नाम पश्चात-पश्चात के नाम को अनन्तर समनन्तर उपकार करना भी चित्त - चित्त को ही अनन्तर समनन्तर उपकार करता है। फस्स... वेदना आदि को उपकार नहीं करता। फस्स भी फस्स को ही उपकार करता है। चित्त वेदना सञ्ञा आदि को उपकार नहीं करता है। वेदना भी वेदना को ही उपकार करता है। चित्त, फस्स, सञ्ञा इत्यादि को उपकार नहीं करता है। शेष चेतसिक भी इसी तरह करते हैं। शिष्यो, प्रत्येक अपने स्वभाव जाति को ही परस्पर उपकार करते हैं। अन्य जाति स्वभाव वाले को उपकार नहीं करते। यह कहना ठीक ही है।

पृष्ठ– ३६७

शिष्यों, यदि चित्त नामक विजानन स्वभाव - फस्स की सहायता करने लगे - तब आगामी नाम धातु में फुसन स्वभाव वाला फस्स विजानन स्वभाव वाला विञ्ञाण हो जावेगा। बाद के आगामी नाम धातु में बिना फस्स के फस्स का बीज ही छिन्न हो जावेगा। विजानन के भाव वाला विञ्ञाण भी फुसन भाव वाला फस्स हो जावेगा। यदि फस्स वेदना को उपकार करेगा तो - आगामी नाम धातु में वेदियन भाव वाला वेदना फुसन भाव वाला फस्स हो जावेगा। आगामी नाम धातु के भीतर में वेदना के - वेदना का बीज ही उच्छिन्न हो जावेगा। फुसन भाव वाला फस्स भी वेदियन भाव वाला वेदना हो जावेगा।

इन्हीं सब कारणों से शिष्यों– ये तिरपन नाम अपने अतिरिक्त अन्य स्वभाव जाति का अनन्तर समनन्तर उपकार नहीं करते हैं। प्रत्येक अपने-अपने जाति स्वभाव वाले ही आपस में परस्पर को उपकार करते हैं। इसलिये यह विजानन फुसन वेदियन इत्यादि स्वभाव वाले नाम धर्म संसार के प्रारम्भ से लेकर संसार के अंत तक अपने-अपने जाति स्वभाव क्रम को बिना उच्छिन्न किये लगातार उत्तरोत्तर चले जाते हैं। पूर्व-पूर्व का संघनित ग्रन्थित वसीवासनाएं भी चलते हुए आ सकते हैं। विजानन स्वभाव नामक चित्त को सोपान-दर-सोपान तीक्ष्णतर कर, विकसित कर - बढ़ाते, विकसित करते चलते हैं। श्रद्धा को, वीरिय को, सति को, समाधि को, प्रज्ञा को भी सोपान तीक्ष्ण-से-तीक्षणतर करते हुए बढ़ाते विकसित करते - ऊपर पहुंचा सकते हैं। पारमिताओं को भी क्रमशः उर्ध्वगमन कर विकसित करते हुए परिपक्व अवस्था तक पहुंचा सकते हैं।

कुछ चेतसिकों के उच्छिन्न हो जाने का वर्णन

शिष्यो, इस तरह प्रत्येक अपनी-अपनी जाति परम्परागत स्वभाव को बिना मिटने देते हुए उपकार कर बीज उत्पन्न करते हुए आने वाले - तिरपन (५३) नामों के अन्तर्गत सोतापत्तिमग्गजवन तक के भीतर - चित्त सन्तान में (१) **दिट्ठि** (२) **विचिकिच्छा यह दोनों घट** जाते हैं।

पृष्ठ– ३६८

दोनों से रहित हो - बीज उच्छिन्न हो जाता है। दिट्ठि-विचिकिच्छा इन दोनों का

संसरण उच्छिन्न हो जाता है। अंत हो जाता है। अब केवल इक्यावन (५१) नाम ही रह जाते हैं। सकदागामी मग्गजवन में कुछ नहीं घटता। अनागामीमग्गजवन तक (१) **दोस,** (२) **इस्सा,** (३) **मच्छरिय,** (४) **कुक्कुच्च** यह चारों पुनः **छूट** जाते हैं। रहित होकर उनका बीज उच्छिन्न हो जाता है। इन चारों का संसरण उच्छिन्न होकर समाप्त हो जाता है। अब केवल सैंतालिस (४७) नाम बच रहते हैं। अरहत्तमग्गजवन तक में (१) **लोभ** (२) **मोह** (३) **मान** (४) **अहिरीक** (५) **अनोत्तप्प** (६) **थिन** (७) **मिद्ध** (८) **उद्धच्च** यह आठों पुनः छूटकर घट जाते हैं। रहित होकर उनका बीज उच्छिन्न हो जाता है। उन आठों का संसरण उच्छिन्न हो जाता है, अंत हो जाता है। प्रहाण हो जाता है। अब केवल उनचालीस (३९) नाम बच रहते हैं। यह शेष बचे हुए उनचालीस नाम अरहन्त पुग्गलों के च्युति चित्त के अन्त में पहुंचने पर संपूर्ण का प्रहाण हो जाता है। सभी विनष्ट हो जाते हैं। उस नाम धातु का संसरण निरुद्ध हो जाता है।

शिष्यो, चित्त धातु में चिपककर आश्रित रहने वाले बावन (५२) चेतसिकों में - इस दिट्ठि-विचिकिच्छा इत्यादि चौदह चेतसिकों को चित्त सन्तान में से बीज को उच्छिन्न कर उन चौदहों से रहित करना अच्छा है। रहित करना उपयुक्त और उचित है। उनका प्रहाण होने व करने के लिए विधि को, मार्ग को भगवान ने देशित किया है। इस तरह चित्त सन्तान से निकाल बाहर करने योग्य हैं ये धर्म। इस दिट्ठि विचिकिच्छा इत्यादि चेतसिकों को **आगन्तुक** धर्म के रूप में भी जाना जाता है। चित्त में हमेशा नहीं टिककर रह सकने वाले हैं अतः **अनियतयोगी चेतसिक भी** कहलाये हैं। शेष अड़तीस चेतसिकों का बीज चित्त सन्तान में से उच्छिन्न नहीं किया जा सकता। उनको उच्छिन्न करना भी उचित नहीं है। उचित नहीं होने के कारण इन्हें प्रहाण करने या निकालने के मार्ग या विधि को भी भगवान ने देशित नहीं किया। वितर्क, विचार आदि झान अङ्गों को हटाना केवल चित्त सन्तान में छुप जाना मात्र - करना है। इस तरह चित्त सन्तान से बाहर निकाल देना अच्छा नहीं होने तथा निकाल नहीं सकने वाला धर्म काय होकर - ये शेष अड़तीस चेतसिकों को **आवासिक धर्म** भी कहते हैं।

पृष्ठ – ३६९

कभी भी बिना विलग हुए चित्त में हमें संयुक्त रहने वाले धर्म होने के कारण– **नियतयोगी चेतसिक** भी कहलाते हैं।

चित्त धातु का कुशल अकुशल नहीं होने का वर्णन

शिष्यो, पण्डर पभस्सर वाला यह चित्त धातु - अनियतयोगी आगन्तुक वाला अकुशल धर्मों के कारण मलिन तथा गंदा होकर रहता है। धूल-गर्द में ढंका हुआ नीलमणि जिस तरह नहीं चमक सकता वैसे ही है। इसलिये भगवान ने देशित किया है :–

पभस्सरमिदं भिक्खवे चित्तं, तञ्च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं। (एकङ्गुत्तर पाळि)

भिक्षुओ, यह विञ्ञाण नामक चित्त धातु, स्वभाव से ही प्रभासमान है। ऐसा होते हुए भी आगन्तुक कहलाने वाले उपक्किलेसों के कारण (अकुशल धर्मों के कारण) मैला रहता है। चित्त मलों (उपक्किलेसेहि) के कारण मैला रहता है।

शिष्यो, श्रद्धा प्रज्ञा आदि कुशल धर्म श्वेत, निर्मल, प्रकाशमान स्वभाव वाले हैं। विशेष रूप से प्रज्ञा धर्म तो अनुपम रूप से श्वेत प्रकाशमान है। चित्त धातु में श्वेत प्रकाशमान कुशल धर्म, प्रज्ञा धर्म का आधिपत्य होकर रहे तो वह अपने मूल स्वभाव के अनुसार श्वेत प्रकाशमान चित्त धातु अतिपण्डर ही है। अतिपभस्सर ही है। प्रज्ञा यदि बलवान हो जाय तो इस चित्त प्रज्ञा के प्रभाव के कारण पूरी काया के रूप निर्मल होते हैं। काया से प्रकाश तक निकलने लगता है। शिष्यों, कुशल-अकुशल धर्मों का आश्रय - पण्डर पभस्सर रहने वाला यह चित्त धातु क्या कुशल धर्म है?

पृष्ठ – ३७०

क्या अकुशल धर्म है? ऐसा पूछने पर यह कुशल भी नहीं है, शिष्यों। यह अकुशल भी नहीं है, शिष्यों। कुशल अकुशल के साथ युक्त होने के कारण उन युक्त कुशल अकुशलों से याद कर कुशल चित्त अकुशल चित्त कहना पड़ता है। वास्तव में तात्पर्य यह है कि यह चित्त केवल आलम्बन का विजानन करने के भाव वाला है। पण्डर पभस्सर स्वभाव वाला है। कुशल अकुशल नहीं है। अलोभ लोभ इत्यादि से ही कुशल अकुशल धर्म है।

शिष्यो, उदाहरण से बताने पर - पानी में घोल बनाया। चित्रकारी किया। फलक पर रंग पकड़ना जल का कृत्य है। फलक पर श्वेत-लाल, आड़ा-तिरछा प्रकट होना रंग का कृत्य है। जल श्वेत-लाल, आड़ा-तिरछा प्रकट नहीं कर सकता। वह लाल-श्वेत, आड़ा-तिरछा नहीं है। यह तो रंगों का ही काम है कि लाल-श्वेत, आड़ा-तिरछा उभार दे। इसी तरह शिष्यों, कुशल आलम्बन अकुशल आलम्बनों को जानना चिपकाना चित्त का कार्य है। उस कुशल अकुशल आरम्मणों में सुचरित, दुचरित कृत्यों को उभारने का काम अलोभ-लोभ आदि का कृत्य है। चित्त सुचरित दुचरित कृत्यों को उभारने प्रकट करने की सामर्थ्य नहीं रखता, नहीं कर सकता। सुचरित, दुचरित कुशल, अकुशल धर्म नहीं - अलोभ-लोभ इत्यादि ही केवल सुचरित - दुचरित कृत्य को उभारकर प्रकट कर सकता तथा पूर्ण कर सकता है। सुचरित, दुचरित कुशल अकुशल धर्म ही हैं।

शिष्यो, यदि उपमा द्वारा समझायें तो - एक अन्य प्रकार से समझो - विष को जल में मिलाकर पी लिया। संपूर्ण शरीर में फैलाने का काम जल का है। संपूर्ण शरीर में दुक्ख उत्पन्न करने का काम किसका है। जल संपूर्ण शरीर में दुक्ख नहीं उत्पन्न कर सकता। जल दुक्ख को उत्पन्न करने वाला नहीं। विष ही पूरी काया में दुक्ख उत्पन्न करने में समर्थ है। विष ही दुक्ख को उत्पन्न करने वाला है। उसी तरह शिष्यो, अकुशल दुचरित आलम्बन को जानना ही चित्त का कृत्य है। अकुशल दुचरित कृत्य को प्रकट करना अपाय दुःख आदि प्रकट कर सकने का कृत्य उसके अनुगामी

पृष्ठ– ३७१

संगी-साथी सहित लोभ, दोस, मोह का ही कृत्य है। चित्त अकुशल दुचरित कृत्य को प्रकट कर सकने, पूर्ण कर सकने, अपाय दुक्ख आदि उत्पन्न कर सकने में समर्थ नहीं है। दुचरित को प्रकट कर सकना, पूर्ण कर सकता, अपाय दुक्ख आदि हो सके यह कर सकने वाला अकुशल नहीं। साथियों अनुगामी सहयोगियों सहित, उस कृत्य को उत्पन्न कर सकने वाले - लोभ, दोस, मोह के अकुशल धर्म ही हैं।

शिष्यो, विष फैल जाने पर उस विष को निष्क्रिय करने के लिए औषधि को जल में मिलाकर पुनः पिलाते हैं। तो इस (विष को) संपूर्ण शरीर में फैलाना जल का ही कार्य होता है। उस विष को निष्क्रिय करने का कार्य औषधि का है। जल विष को दूर नहीं कर सकता। वह विष दूर करने की दवा नहीं है। औषधि ही विष को दूर करती है। विष को निष्क्रिय करने की क्षमता औषधि में है। उसी तरह शिष्यों, कुशल सुचरित आलम्बन को जानने का कृत्य तो चित्त का ही है। कुशल सुचरित कृत्य को प्रकट कर पूर्ण करना विष के जैसा दुचरित कृत्य अपाय दुक्खों का प्रहाण नहीं कर सकता। प्रहाण करने की सामर्थ्य रखने वाला कुशल धर्म नहीं है। संगी-साथी, सहयोगी सहित केवल अलोभ, अदोस, अमोह धर्मों (के द्वारा) में ही सुचरित कृत्य प्रकट कर पूर्ण करना, विष के जैसे (तुल्य) दुचरित कृत्य अपाय दुक्खों के कृत्यों को प्रहाण कर सकने की सामर्थ्य है। उन कृत्यों को कर सकने की क्षमता वाले कुशल धर्म ही हैं। शिष्यों, इस तरह चित्त का स्वभाव कृत्य कुशल अकुशलों के स्वभाव कृत्यों को अलग-अलग विभक्त कर समझना।

शिष्यो, इस चित्रकारी के रंग की उपमा, विष द्रव की उपमा, विष निष्क्रिय करने वाली औषधि की उपमाओं में - जल से संयोग होने पर ही - जल के नेतृत्व करने पर ही, चित्रकारी का रंग, विष या विष दूर करने की दवाएं अपने कृत्य को पूर्ण कर सकती हैं। यदि जल से संयोग न करें - अर्थात् जल का नेतृत्व न प्राप्त हो तो अपने कृत्य को

पृष्ठ– ३७२

पूर्ण नहीं कर सकते। उस तरह होकर - जल वस्तुतः अपने मूल स्वभाव के अनुसार रंग द्रव, विष द्रव, औषधि द्रव - नहीं होते हुए भी - उनसे संयोग कर लेने पर उन-उन का कृत्य करने का नेतृत्व करता है। उनके समान स्वभाव वाला हो जाता है। उसकी गिनती हम रंग द्रव, विष द्रव या औषधि द्रव के समान करने लगते हैं। उसी तरह शिष्यों यह कुशल, अकुशल धर्म भी चित्त से संयुक्त कर लेने पर चित्त के नेतृत्व प्राप्त होने पर अपने कृत्य को पूर्ण कर सकते हैं। चित्त से बिना जुड़े - बिना नेतृत्व पाये अपने कृत्य को वे पूर्ण नहीं कर सकते।

उस तरह होकर - हालांकि चित्त का अपना मूल स्वभाव कुशल अकुशल न होने पर भी जब कुशल अकुशल से युक्त हो जाता है - तब उनका कृत्य करने का नेतृत्व

करता है। उनके समान स्वभाव वाला बन जाता है। फस्स, वेदना, वितर्क, विचार इत्यादि के समान - दुर्जन-सज्जन दोनों से संगत करने वाले जैसा अञ्ज समान धर्म ही हो जाता है। कुशल या अकुशल कहलाने की (गिनती करने की) स्थिति में पहुंच जाता है। इसीलिये ही शिष्यों, लोभ, द्वेष, मोह के साथ प्रकट होने वाले सभी चित्त चेतसिक को - **इमे धम्मा अकुशला** - तथा अलोभ, अदोस, अमोह के साथ प्रकट होने वाले सभी अकुशल-विद्धंसन-कृत्य वाले चित्त चेतसिकों को - **इमे धम्मा कुसला** - इस तरह धम्मसङ्गणी में भगवान ने देशित किया है। यहां - **इमे धम्मा** - इस लोभ, दोस, मोह के साथ उत्पन्न होने वाले सभी चित्त चेतसिक धर्म; अकुशला-अकुशल धर्म ही हैं। **इमे धम्मा** - अकुशल विद्धंसन किच्च वाले अलोभ, अदोस, अमोह के साथ उत्पन्न होने वाले चित्त चेतसिक धर्म कुशल धर्म ही हैं।

पृष्ठ – ३७३

चित्त धातु अग्रगामी है

शिष्यो, जल - विष, औषधि से - जब मिलता है तब उस समय वह विष औषधियों का अगुआ - अग्रगामी सिर जैसे आचार्य ही होता है, वैसे ही चित्त भी कुशल अकुशलों से मिलने पर उनका अगुआ अग्रगामी आचार्य ही होता है। इसलिये भगवान ने एकङ्गुत्तर पालि के पुब्बङ्गम सुत्त में यह देशित किया है :–

येकेचि भिक्खवे धम्मा अकुशला अकुशल भागिया अकुशल पक्खिका, सब्बे ते मनोपुब्बङ्गमा, मनो तेसं धम्मानं पठमं उप्पज्जति, अन्वदेव अकुसला धम्मा, येकेचि भिक्खवे धम्मा कुसला कुसलभागिया कुसलपक्खिका। सब्बे ते मनो पुब्बङ्गमा, मनो तेसं धम्मानं पठमं उप्पज्जति, अन्वदेव कुसला धम्माति।

[भिक्षुओ, जितने भी अकुशल धर्म हैं, वे सभी मन के पीछे-पीछे चलने वाले हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और अकुशल धर्म बाद में।

भिक्षुओ, जितने भी कुशल धर्म हैं, वे सभी मन के पीछे-पीछे चलने वाले हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और कुशल धर्म बाद में।

पृष्ठ – ३७४

चित्त का सुसभ्य होना महान लाभकारी (अर्थकारी)

शिष्यो, चित्त - कुशल-अकुशल का अगुआ है। चित्त के पीछे-पीछे कुशल-अकुशल चलते हैं। ऐसा होने के कारण चित्त के अकुशल धर्म से मिलने (संयुक्त होने) पर अकुशल धर्मों के अनुसार अत्यंत रूक्ष, बुरा, अर्थहीन, लाभहीन दुःख को उत्पन्न करता है। लोक में अर्थहीन दुक्ख को उत्पन्न करने वाला कुछ नहीं जितना कि यह चित्त। यही जब कुशल धर्मों से मिल (संयुक्त) जाता है तब चित्त कुशल धर्म के अनुसार उसके स्वभाव

से मिलता हुआ अत्यंत कोमल - सुसभ्य सुख को उत्पन्न करता है। लोक में लाभकारी सुख को उत्पन्न करने वाला और कुछ नहीं जितना कि यह चित्त। इसलिये भगवान ने अङ्गुत्तर पाळि के अत्थानत्थ सेवत्तन सुत्त में यह देशित किया है :–

"ना हं भिक्खवे अञ्ञं एक धम्मम्पि समनुपस्सामि। यं एवं अदन्तं महतो अनत्थाय संवत्तति। यथयिदं भिक्खवे चित्तं, चित्तं भिक्खवे अदन्तं महतो अनत्थाय संवत्तति, नाहं भिक्खवे अञ्ञं एक धम्मम्पि समनुपस्सामि, यं एवं दन्तं महतो अत्थाय संवत्तति। यथयिदं भिक्खवे चित्तं, चित्तं भिक्खवे दन्तं महतो अत्थाय संवत्ततीति।"

पृष्ठ – ३७५

"भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी वस्तु नहीं देखता जिसका यदि दमन (संयम) न किया जाय तो ऐसी अनर्थकारी हो, जैसे यह चित्त। भिक्षुओं, दमन (संयम) न किया गया चित्त महान अनर्थकारी होता है। भिक्षुओं, मैं और कोई दूसरी वस्तु नहीं देखता जो दमन किये जाने पर इतनी कल्याणकारी हो, जैसे यह चित्त। भिक्षुओं, दमन किया गया चित्त महान कल्याणकारी होता है।"

इसलिये शिष्यों, कल्याण को चाहने वाले ज्ञानी लोग अकुशल धर्मों से अनर्थकारी (गंदा एवं कठोर (रूक्ष)) हुए अपने चित्त को कुशल धर्मों से दमन (संयमन) कर कल्याणकारी बनाते हैं।

दुन्निग्गरं सुहुद्दमं, यथा काम निपातिनं।

चित्तं दमेन्ति पण्डिता, चित्तं दन्तं सुखावहं।।

(सेक्ख्यभासित गाथा)

शिष्यो, सभी आलम्बनों के पीछे भागते हुए गिरने वाला, निग्रह करने में कठोर

पृष्ठ – ३७६

दमन करने में कठिन, अपने चित्त को ज्ञानी जन दमन (संयमन) करते हैं। शिष्यों, दमन किया हुआ (संयमित) चित्त अनुपम सुख को लाता है। (ला सकता है।)

शिष्यो, इस तरह विञ्ञाण नामक चित्त धातु के लक्षण को अच्छी तरह जानो। यह चित्त धातु के स्वभाव का वर्णन है।

चित्त धातु के घर का निर्माण

शिष्यो, यह चित्त धातु किसमें स्थित होकर किस तरह उत्पन्न होकर रहता है? - इसे समझाऊंगा। भलीभांति सुनो। चित्त बड़ा विचित्र है. प्रभावशाली, शक्तिशाली तथा तीक्ष्ण होता है। लोक में चित्त से अधिक विचित्त, प्रभावशाली, शक्तिशाली तथा अत्यंत

तीक्ष्ण कुछ भी नहीं है! शिष्यों, इस तरह अनुपम विचित्र, अनुपम शक्तिशाली, अनुपम सुख-दुःख को धारण कर सकने वाला चित्त छहों आलम्बनों के प्रति अत्यंत आसक्त होने वाला है। पसंद करता है। चाहता है। आलम्बन रहित होकर उससे पृथक होकर नहीं रह सकता। इसलिये शिष्यों, यह चित्त धातु - बहिद्ध (बाहर) में अपने भोग के लिए विचित्रताओं से परिपूर्ण छोटा-मध्यम-बड़ा (निम्न-मध्यम-श्रेष्ठ) तीनों से पूर्ण चक्रवाळ लोक नामक छः आलम्बन पिण्डों को निर्मित करता है। अज्झत्त (भीतर) में भी अपने रहने के लिये अनुभव करने व उपभोग करने हेतु छहों आलम्बन पिण्डों वाले सुन्दर रूपखन्ध घर को भी निर्मित करता है।

शिष्यो, यह चित्त, बहिद्ध रूपों को कम्म आचार्य को हुक्म देकर उनके माध्यम से पुनः शिष्य 'उतु' को आदेश देकर उससे निर्मित करवाता है।

पृष्ठ – ३७७

इस अज्झत्त रूप को स्कंध घर को पर्याप्त रूक्षतापूर्ण ही यह शिष्य उतु - आहारों को बनवाता है। सुन्दर सुरुचिपूर्ण कलापूर्ण को कम्म - आचार्य स्वयं निर्मित करता है। स्वयं भी उसकी सहायता करके निर्मित करता है। शिष्यों, चित्त रूपी मालिक के रहने के लिये स्कंध घर (गृह) को निर्माण करते समय - यह कम्म नामक भवन निर्माता वास्तुकला आचार्य अत्यंत दक्ष, चतुर है। बड़ा कलाविद् है। विश्वकर्मा देव से भी बढ़कर दक्ष, चतुर कलाविद् है। इस कम्म नामक आचार्य के द्वारा निर्मित भवन में भी - चित्त के इच्छानुसार उसके आदेश देने पर निर्मित करना पड़ता है। शिष्यों, चित्त रूपी मालिक के रहने के लिए सुन्दर वस्तु स्कंध गृह के मध्य में हृदय गुफा बनाता है। इसके भीतर में हृदय रूधिर रूपी हृदयवत्थु - रूप पलंग भी बनाता है। चित्त मालिक - रूपालम्बन को निकलकर भोगने हेतु रूपालम्बन के प्रविष्ठ कर आने हेतु नेत्र द्वार बनाता है। सद्दालम्बन को निकलकर भोगने हेतु सद्दालम्बन के प्रविष्ठ कर आने हेतु कर्ण द्वार बनाता है। इसी तरह नासिका द्वार - जिह्वा द्वार - त्वक् (काया) द्वार बनाया है।

इस चित्त-मालिक (चित्त-गृहपति) के रहने के लिए स्कंध गृह में पांच दरवाजे लगे हैं। शिष्यों, यह चित्त - स्कंध गृह निर्मित करने हेतु कम्म - कारीगर (वास्तुविद् - आचार्य) को काम पर रखते समय यदि नासमझ कम्म - कारीगर को कहीं रख लेगा तो भी स्कंध गृह को ही भलीभांति नहीं बना सकेगा। दरवाजे भी पूर्ण रूप से नहीं लगा पायेगा। उसको कलापूर्ण सुन्दर नहीं बना सकेगा। किस प्रकार का स्कंध गृह - जैसा - तो - सुगति अहेतु पुग्गलों के स्कंध गृह शिष्यों।

शिष्यो, यह चित्त-मालिक कभी-कभी गन्धालम्बन, रसालम्बन, फोट्ठब्बालम्बनों को नहीं चाहता है। न भोगना चाहता है - घृणा करता है। उस समय चित्त-मालिक के नहीं चाहने के कारण - कामना न होने के कारण वे गंध रस, फोट्ठब्बालम्बन प्रविष्ठ करने वाले नाक, जीभ, काया दर्शन द्वारों को - कम्म - कारीगर (आचार्य) नहीं बनाता है। इन द्वारों को नहीं लगाता है। द्वार के स्थान पर आकृति स्थान मात्रा बनाता है।

पृष्ठ– ३७८

किस प्रकार का स्कंध गृह ? **रूपावचर ब्रह्मा स्कंध गृह**। कभी-कभी यह चित्त-मालिक रूप को नहीं चाहता। रूप के संग नहीं रहना चाहता। उसे घृणा करता है। उस समय चित्त-मालिक के नहीं चाहने के कारण - उसकी कामना नहीं होने के कारण कम्म - कारीगर (कम्मरूपी आचार्य) रूप स्कंध गृह को ही नहीं बनाता। शिष्यों, वह चित्त रूप **स्कंध गृह पर बिना आश्रित** हुए अकेले ही स्वयं आकाश में स्थित होकर रहता है। उस चित्त को **अरूप ब्रह्मा** कहते हैं, शिष्यों। कभी-कभी यही नन्हा चित्त प्रत्यक्ष प्रकट रूप में रहने से ऊब जाता है, शिष्यों। थककर, ऊबकर घृणा करता है। इसलिये पांच सौ कल्पों तक के बहुत लम्बे काल तक बिना प्रकट रहे तिरोहित होकर छुपा रहता है। उस समय कम्म - कारीगर आचार्य केवल **रूप स्कंध गृह** को ही बनाकर रखता है। चित्त भी नहीं रहता। वह किस प्रकार का स्कंध गृह है भला ? वह **असञ्ञसत्त ब्रह्म स्कंध गृह है**, शिष्यों।

कुछ चित्त तो रूप के संग भी नहीं रहना चाहता। आलम्बनों (आरम्मणों) का भी उपभोग नहीं करना चाहता। एकदम पूर्ण तथा घृणा करता है। स्वयं भी प्रत्यक्षतः प्रकट रूप में रहने से ऊब जाता है, थक जाता है, घृणा करता है, साफ-साफ वह नहीं रहना चाहता। उस समय चित्त उत्पन्न नहीं होता। शिष्यों, एकदम पूर्णतः तिरोहित होकर लुप्त हो जाता है। छुप जाता है। कभी भी नहीं उभरकर आता। उसके शिष्य - चाकर सहित **कम्म - कारीगर आचार्य गण भी** चित्त-मालिक की कामना ही नहीं रहने के कारण, **रूप स्कंध को भी नहीं बनाते हैं**। पालन करने वाले - नौकरी-चाकरी पर रखने वाले मालिक चित्त के नहीं रहने के कारण स्वयं भी नहीं रहकर विलीन हो जाते हैं। चले जाते हैं। किस पुग्गल का ऐसा चित्त होता है ? **बुद्ध, अरिहन्त पुग्गलों का चित्त** शिष्यों !

चित्त धातु का आश्रय स्थान

शिष्यो, यह चित्त इस तरह आश्रित होकर रहने के लिये स्कंध रूपी घर - स्कंध घर बनाकर हृदय की गुफा के भीतर में कारीगर - कम्म - आचार्य द्वारा निर्मित हृदयवत्थु रूप नामक - हृदय रूधिर रूप द्रव कणों - पर आश्रित होकर रहता है। इस हृदय

पृष्ठ– ३७९

रूधिर रूप द्रव कण पर किस समय में चित्त आता है ? रूप के उत्पन्न होने के साथ ही सर्वप्रथम प्रारम्भ होने के समय ही आ जाता है। सर्वप्रथम प्रारम्भ प्रथम **कलल द्रव** स्थित होते ही कम्म के कारण तीन रूप द्रव कणें मां के गर्भ में - जब उत्पन्न होकर आते हैं उन तीनों रूप द्रव कणों में, एक पर यह चित्त आश्रित होकर रूप के समानान्तर ही साथ-साथ आता है। इस चित्त का आश्रय रूप द्रव कण ही हृदय रूधिर बनता है, शिष्यों। यह रूप द्रव कण भी अधिक होते आता है।

शिष्यो, यह चित्त इस तरह हृदय गुफा के भीतर में छुपकर रहते हुए चक्षु द्वार पर रूपालम्बन प्रविष्ट होकर जब टकराता है - तब हृदय गुहा के भीतर से निकलकर

चक्षु द्वार पर पहुंचकर उस टकराने वाले रूपालम्बन को अनुभव कर चुकने के बाद हृदय गुफा के भीतर पुनः पहुंच जाता है। पुनः जब सोत द्वार पर शब्द आलम्बन आकर टकराता है - तो पुनः वह हृदय गुफा के भीतर से निकलता है। सोत द्वार पर पहुंचता है। टकराये हुए शब्द आलम्बन का अनुभव कर पुनः हृदय गुफा के भीतर पहुंच जाता है। इसी तरह घ्राण द्वार पर गंध आलम्बन; जिह्वा द्वार पर रस आलम्बन; काय द्वार पर फोट्ठब्बालम्बन जब-जब टकराते हैं - तब-तब वह हृदय गुफा से बाहर आकर उन-उन आलम्बनों का अनुभव (आस्वादन) करता है - पुनः हृदय गुफा में चला जाता है।

चित्त धातु का इस काया के भीतर उत्पन्न होना

शिष्यो, इस चित्त का उत्पन्न होकर - स्थित होकर रहना किसके समान है? ठीक मकड़ी और उसके जाले के समान है। मकड़ी का वह जाला जो कि पांच मकड़ी के धागे से तना हो। बीचोंबीच में स्वयं मकड़ी बैठी हो। किसी भी एक छोर पर कोई मक्खी, तितली या कोई भी कीड़ा अचानक उस पर बैठे और चिपक जाये - तो वह मकड़ी अपने उस धागे के सहारे वहां तक जाती है। उसको पकड़कर खाती और पुनः अपने मध्य भाग के निवास स्थान पर लौट आती है। इस तरह मकड़ी के समान है - ऐसा अट्ठकथाकारों

पृष्ठ– ३८०

ने उपमा द्वारा बताया है। वल्लिय थेर ने इसको उस बन्दर के समान बताया है जो कि पांच द्वारों वाले घर के गर्भ भाग में रहता है तथा पांचों द्वारों पर चक्कर लगाते हुए दौड़ता रहता है। उस बन्दर के समान अपने इस चित्त को दमन करने हेतु थेर गाथा पाळि में यह कहा है–

(१) मक्कटो पञ्चद्वारायं, कुटिकायं पसग्गिय।
द्वारेन अनुपरियेति, घट्टयन्तो मुहुं मुहुं।।

(२) तिट्ठ मक्कट माधावि, न हिते वं यथा पुरे।
निग्गहितोसि पञ्ञाय, नेव धूरं गमिस्सति।।

१. चित्त-रूपी मरकट मन, चक्षु श्रोत आदि पञ्चद्वार वाले; कारीगर कम्म द्वारा बनाये हुए इस रूप कुटी में, उर मध्य में प्रविष्ट कर तेजी से (शीघ्रतापूर्वक) - गतिमान यंत्र के समान द्वारों के माध्यम से - बिना रूके भागते रहता है।

२. ऐ - मरकट-मन खड़े हो जा! मत दौड़ो! अब तुम पहले के समान नहीं रहे। अब तुम प्रज्ञा रूपी छड़ी द्वारा दमित निग्गहित हो। तुम दूर (पांच कामगुणों में) नहीं जा सकते। (तुम दूर नहीं भाग सकते।)

शिष्यो, यह चित्त मकड़ी के समान, बन्दर के समान है। यह चित्त बन्दर से भी अत्यधिक चपल-चंचल है। शिष्यों यह मकड़ियां - ये बन्दर - कीड़े-मकोड़ों को खाने के लिये

पृष्ठ– ३८१

द्वारों तक भागने में - अकेले ही दौड़कर जाते हैं। यह चित्त तो उत्पन्न हो-होकर नष्ट होते रहता है। इसकी आयु अत्यंत छोटी है। एक ही **चित्तक्खण** में पांच द्वारों पर नहीं जा सकता। क्रमवार चित्त क्षणों में पहुंच सकता है। क्रमवार - चित्तक्खण द्वारा ही पांच द्वारों तक दौड़ते रहता है। इस **चित्त क्षण** द्वारा दौड़ने को समझो - हृदयंगम करो, शिष्यों। जब चित्त उत्पन्न होते रहता है तो उसे **उत्पाद क्षण,** नष्ट हो रहे क्षण को **भङ्ग क्षण** - और इन दोनों के बीच वाले क्षण को **ठिति (स्थिति)** क्षण कहते हैं। ठिति क्षण कहने पर भी कोई देर तक स्थित रहता हो सो बात नहीं। इस उप्पाद - ठिति - भङ्ग - तीन क्षणों के काल को बराबर-बराबर ही समझो। इस उप्पाद, ठिति-भङ्ग - तीन लघु क्षण से पूर्ण एक चित्त को एक **चित्तक्खण** समझना।

कुशल चेतना अकुशल चेतना को **कम्म** समझना। उस कम्म को बनाते समय - भोजन, चीवर, पुष्प, सुगन्धि, चैत्य, दान लेने वाला पुग्गल, चाकू-भाला, हथियार, मारा जाने वाला पुग्गल इत्यादि वाले उस कम्म को सम्पन्न होने के लिए भवन समूह को **कम्मनिमित्त** समझना। उस **कम्म** के न्याय से पहुंचाने पर पहुंचने वाले लोक में स्थित देव विमान, मातृगर्भ द्रव, निरय अग्नि की ज्वला इत्यादि स्वयं अनुभव करने वाले आरम्मण समूह को **गति निमित्त** समझना।

पूर्वजन्म चुतिचित्त

शिष्यो, सत्वों के पूर्व जन्म में मरने के समय में यह कम्म, कम्म निमित्त, गति निमित्त तीनों में एक-न-एक निमित्त आलम्बन चित्त में प्रकट होता है। चित्त स्वप्न देखने सदृश्य उस प्रकट हुए निमित्त आलम्बन को ध्यान देकर देखते रहता है। उस निमित्त को ध्यान देकर देखते समय मरणासन्नजवन चित्त के दूसरी ओर में उस पूर्वजन्म रूप खन्ध हृदय गुफा के भीतर में एक अंतिम चित्त उत्पन्न होकर समाप्त हो जाता है - (रुक जाता है।)। उस रूप खन्ध गृह में अब चित्त नहीं होता। इस अंतिम चित्त को उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाने वाले चित्त को, पूर्वजन्म से आगामी जन्म को, परिवर्तित होने की अवस्था

पृष्ठ– ३८२

उत्पन्न होकर निरुद्ध होने के कारण - 'चवनंचुति' के वचनार्थ के अनुसार **चुतिचित्त** कहते हैं।

चुति पश्चात चित्त उत्पत्ति

शिष्यो, पांच मरणासन्न जवन - प्रथम जवन के बाद में दुतिय जवन, दुतिय जवन के बाद (परे) ततिय जवन। ततिय जवन के बाद में चतुत्थ जवन। चतुत्थ जवन के बाद में पञ्चम जवन। उस पञ्चम जवन के बाद में चुतिचित्त होकर अनन्तर समनन्तर क्रमशः लगातार उपकार करते हुए बिना अन्तर के मिले हुए चित्त क्रम उत्पन्न होने के समान उसी तरह उस चुतिचित्त के परे (बाद) में - उस चुतिचित्त से लगा हुआ ही निरन्तर इस वर्तमान जन्म में चित्त उत्पन्न होते आता है। इस वर्तमान जन्म में सर्वप्रथम उत्पन्न होकर आये हुए चित्त को, पूर्वजन्म से लगातार निरन्तर उत्पन्न हुआ चित्त होने के कारण, **प्रतिसन्धि चित्त** कहते हैं। यह प्रतिसन्धि चित्त यदि अरूप लोक में उत्पन्न होगा तो रूप को आश्रित नहीं होगा। स्वयं अकेले आकाश में स्थित होकर रहेगा। रूप वाले लोक में यदि उत्पन्न होगा तो कम्म के कारण अपने स्वयं के सहित उत्पन्न हदयवत्थु रूप को आश्रित होकर उत्पन्न होता है। आलम्बन (ध्यान) पूर्वजन्म से चुति के समय मरणासन्न जवन में कम्म द्वारा प्रकट किया हुआ तीन निमित्तों में से कोई-न-कोई एक निमित्त पर ध्यान देगा। आलम्बन करेगा। यह प्रतिसन्धि चित्त - उत्पाद स्थिति - भङ्ग के अनन्तर - इस प्रतिसन्धि चित्त के बाद में प्रतिसन्धि चित्त से बनाया हुआ निमित्त आलम्बन को ही आलम्बन बनाकर एक चित्त पुनः उत्पन्न होता है। यह उत्पन्न हुआ चित्त जब पुनः निरुद्ध होता है तो उस आलम्बन को ही आलम्बन कर पुनः एक चित्त उत्पन्न होता है। इसी विधि से - शिष्यों, आगे भी प्रतिसन्धि चित्त - बनाये हुए आलम्बन को ही आलम्बन कर लगातार चित्त उत्पन्न करते चल पड़ता है। प्रतिसन्धि चित्त स्वयं से पहले उत्पन्न हदयवत्थु रूप नहीं रहने के कारण स्वयं के साथ-ही-साथ उत्पन्न हदयवत्थु रूप का ही आश्रय करता है। इस प्रतिसन्धि चित्त के पश्चात - लगातार उत्पन्न होने वाला चित्त - स्वयं के पूर्व-पूर्व अनन्तर चित्त के समानान्तर उत्पन्न होने वाले वत्थु रूप पर आश्रित होते हैं।

पृष्ठ – ३८३

चक्खुद्वार वीथि (पात)

शिष्यो, प्रतिसन्धि चित्त - बनाये गये निमित्त आलम्बन को आलम्बन कर यह प्रतिसन्धि चित्त आगे लगातार उत्पन्न होते जाने वाले चित्त समूह को इस वर्तमान जन्म में भव की निरन्तरता बिना तोड़े नदी के जल के समान उत्तरोत्तर जाने वाला चित्त होने के कारण **"भवस्स अङ्गं भवङ्गं"** भव का बहाव बिना तोड़े जोड़ने वाला चित्त अङ्ग होने के कारण **भवङ्ग** कहलाता है। इस वचनार्थ के अनुसार **भवङ्गचित्त** कहलाता है। इस प्रतिसन्धिचित्त - भवङ्गचित्त समूह को कम्म देने वाले निमित्त आरम्मण को लेकर कम्म में आ गिरने वाले भव (जन्म) में कम्म बल शक्तिशाली होने पर अच्छा - कम्म बल कमजोर होने पर बुरा - कम्म के बनाने के अनुसार - कम्म के नियमन करने के अनुसार - कम्म बल के मुताबिक - उत्पन्न चित्त समूह होने के कारण - कम्म का फल - **विपाक चित्त** कहते हैं। यह विपाक चित्त क्रम कम्म देने वाले अतीत आलम्बन को आलम्बन

बनाकर नदी के बहाव में बहते हुए आने वाले पत्तों के बंडल के समान - अत्यंत व्यापार रहित - अत्यंत शांत-निश्चल होकर रहने के कारण वह भवङ्ग चित्त बनकर रहने के समय पुग्गल कुछ भी नहीं जानता। वैसी अवस्था में रहने को सोया हुआ है, बह रहा है - बेहोश है - ऐसा लोक-व्यवहार में कहते हैं। इस तरह हृदय रूधिर हदयवत्थु रूप पर भवङ्ग नामक मौलिक (मूल) चित्त क्रम उत्पन्न होकर रहने को भलीभांति जानो।

शिष्यो, मालिक चित्त के रहने हेतु कम्म - कारीगर आचार्य का बनाया रूप खन्ध गृह - दरवाजे सहित परिपूर्ण परिपक्व होकर मां के गर्भ से प्रजनित होने पर उस समय में - चक्खु द्वार में बाहरी रूप आलम्बन प्रकट होकर टकराता है। उस चक्खु द्वार में जैसे ही रूप आलम्बन प्रकट होकर टकराता है - वैसे ही अविलम्ब वह रूप आलम्बन - हृदय गुहा के भीतर भवङ्ग चित्त में भी प्रकट होता है। अनुभूत होता है। टकराता है। दो चक्खुभवङ्ग में रूपालम्बन का अनुभव होना टकराना साथ ही साथ होता है - वैसे ही जैसे एक पक्षी जब वृक्ष में जा बैठती है तब - टहनी पर पक्षी से बैठते ही वृक्ष छाया में पक्षी छाया का बैठना एक ही समय होता है। इस उपमा के समान समझना। उस तरह भवङ्ग चित्त में प्रकट

- पृष्ठ – ३८४

होता टकराता है तब - ठीक वैसे ही वह सिकुड़कर गतिमान होता है जैसे लकड़ी से छू दिया गया कोई शतपदी या केचुआ होता है। कम्म का दिया गया अतीत आलम्बन को आलम्बन बनाकर संयोग कर (आसक्त होकर) - चुपचाप शांत स्थित भवङ्ग चित्त गतिशील हो जाता है। गतिमान कहने का तात्पर्य अपने आपसे संयुक्त होने पर पुराने अतीत के आलम्बन को छोड़कर अभी प्रकट हुए - टकराये नये आलम्बन को ध्यान देने - संयोग करने की अवस्था उत्पन्न होना है।

१. वह रूप आलम्बन अनुभव करने वाला चित्त अपने आलम्बन बताते जब-जब संयोग करता है - अतीत के पुराने आलम्बन को बिना छोड़ रूके हुए - छोड़ना चाहने वाले नवीन आलम्बन को संयोग करने की अवस्था से गतिशील रहते हुए ही एक दो बार होकर निरुद्ध हो जाता है। प्रथम बार को - **भवङ्ग चलन** कहते हैं। दूसरी बात कम्म का दिया पुराना आलम्बन को लेकर संयोगकर (आसक्त होकर) शांतिपूर्वक (चुपचाप) उत्पन्न होना नामक विपाक भवङ्ग स्वभाव - उस चित्त में पृथक होने के कारण उच्छेद कर होने के कारण **भवङ्गुपच्छेद** कहते हैं। उसके आगे वह चित्त हदयवत्थु रूप में आश्रित रहते हुए ही कम्म प्रदत्त अतीत आलम्बन को छोड़कर अभी अनुभव हुए नवीन आरम्मण को आलम्बन बनाकर संयोग कर उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाता है। इस चित्त को - नवीन आरम्मण (आलम्बन) को 'तुम क्या हो ?' - ऐसा सोचना-विचारना आवज्जन किच्च होने के कारण - **आवज्जन चित्त** कहते हैं। कम्म प्रदत्त अतीत आलम्बन को ग्रहण कर संयुक्त होकर शांतिपूर्वक (चुपचाप) उत्पन्न होने वाले भवङ्ग विपाक भाव को अतिक्रमण

कर नवीन आलम्बन को "तुम क्या हो" यह सर्वप्रथम विचारने वाले हाव-भाव - क्रिया-व्यापार होने के कारण **क्रिया चित्त** भी कहते हैं।

२. उसके आगे वह चित्त नये आलम्बन को दूर हदयवत्थु रूप से रहकर विचारते संयोग करने मात्र, मन न भरने के कारण जिधर नया रूपालम्बन है उधर चक्खुवत्थु पर पहुंचकर आश्रित होकर - रूपालम्बन का साफ-साफ स्पष्ट देखने के कृत्य से - संयोग कर उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। इस चित्त को रूपालम्बन को साफ-साफ स्पष्ट देखने वाला चित्त होने के कारण **दस्सनचित्त** कहते हैं। चक्खुवत्थु पर आश्रित होकर उत्पन्न होने के कारण **चक्खुविञ्ञाण चित्त** भी कहते हैं। अपने सदा रहने वाले निवास हदयवत्थु रूप पर से इस पर जहां सदा नहीं स्थित रहता उस चक्खुवत्थु

पृष्ठ – ३८५

पर इतना दूर स्थानांतरित कर आने के कारण, इस चक्खु नामक आश्रयवत्थु के भी कमजोर होने के कारण; इस चक्खु विञ्ञाण चित्त की शक्ति अत्यंत दुर्बल छोटी रहती है। हाव-भाव क्रिया व्यापार रहित होता है। उस तरह अत्यंत दुर्बल छोटी होने पर हाव-भाव क्रिया व्यापार रहित होने के कारण - उस चित्त में सुख-दुःख को उत्पन्न करने वाले कम्म प्रभाव अत्यंत प्रकट (प्रत्यक्ष) होने के कारण इस चक्खु विञ्ञाण चित्त को कम्म का फल - **विपाक चित्त** कहते हैं।

३. उसके आगे (उत्तरोत्तर) वह चित्त अपने स्वाभाविक निवास जो नहीं उस नये स्थान चक्खुवत्थु पर से इस अपने स्वाभाविक स्थान हदयवत्थु रूप पर पूर्ववत आकर आश्रय लेकर उस रूपारम्मण को ही संलग्न होकर - उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाता है। इस चित्त को अपने चक्खुवत्थु पर - चक्खु विञ्ञाण चित्त क्रमशः होने वाले भव का देखा हुआ उस रूपालम्बन का अपने पुराने स्थान पर पूर्ववत पहुंच जाने पर भी बिना मुक्त हो सके पकड़े हुए (स्वीकृत - ग्रहण किए हुए) सम्पटिच्छन्न किच्च होकर उत्पन्न होने के कारण **सम्पटिच्छन्न चित्त** कहते हैं।

४. उसके बाद (उत्तरोत्तर) वह चित्त अपने स्वयं सम्पटिच्छन्न (स्वीकृत) होने के समय भव - लुप्त या न छूटे इस हेतु पकड़े हुए ग्रहण (स्वीकृत) कर अभी वर्तमान में जो घटित है - उस रूपालम्बन को ही संलग्न (आकर्षित) होकर - यह रूपालम्बन इष्ट है? अनिष्ट है? यह जांचने वाला सन्तीरण किच्च होते हुए उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। इस चित्त को इस तरह जांचने वाला सन्तीरय किच्च होने के कारण - **सन्तीरण चित्त** कहते हैं। ये सम्पटिच्छन्न, सन्तीरण चित्तें भी कम्म प्रभाव के नियमन प्रकट - सुप्त होने नामक विपाक चित्त ही होते हैं। इसलिये इन चित्तों को भी कम्म का फल **विपाक चित्त** ही कहते हैं। नये स्थान - दूर यात्रा से बदलकर अभी-अभी आया होने के कारण - अत्यंत कमजोर (क्षीण) चक्खुविञ्ञाण भव से लांघकर आने के कारण – **सम्पटिच्छन्न चित्त** - **सन्तीरण चित्त** से अपेक्षाकृत कमजोर है।

५. उसके बाद - वह चित्त अपने सन्तीरण के समय का उस रूपालम्बन को ही आसक्त (संलग्न) होते हुए उस **रूपालम्बन** को इष्ट होने पर - तुम इट्ठ ही हो, अनिट्ठ होने पर - तुम अनिट्ठ ही हो यह निर्णय करने का कृत्य होकर, उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है।

पृष्ठ – ३८६

इस चित्त को इस तरह निर्णय करना वोट्ठब्बन कृत्य होने के कारण **वुट्ठो चित्त** कहते हैं। धुंधला - चुपचाप शांतिपूर्वक उत्पन्न होने वाला विपाक स्वभाव को अतिक्रमण कर आलम्बन के रस को भोगने की इच्छा वाला - बलशाली हाव-भाव क्रिया व्यापार होने के कारण **क्रियाचित्त** भी कहते हैं।

६-१२. उसके बाद वह चित्त अपने वुट्ठो के समय तुम इष्ट ही है या अनिट्ठ ही हो यह निर्णय कर चुकने के बाद उस **रूप** आलम्बन को ही आसक्त (संलग्न) होकर उस **रूपारम्मण** का इष्ट स्वाद - अनिट्ठ **स्वभाव** को अनुभव (भोग) करते हुए सात बार तक उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। उस सभी चित्तों को, शक्ति सम्पन्न आवेग होने के कारण **जवन चित्त** कहते हैं। यहां इस **स्थान** पर "जवो, जवनं" वेग कहने में तीव्र वेग को नहीं जान पाते, शिष्यों। सामान्य पुग्गलों के सामान्य हर चित्त ही उत्पाद-स्थिति-व्यय (भंग) का काल बराबर-बराबर ही होता है। इसलिये बलशाली आवेग समझना होगा। उस प्रकार बलशाली होने के कारण केवल इस जवन चित्तों में ही बलशाली संग-साथी सहित लोभ, दोस, मोह, अलोभ, अदोस, अमोह नामक हेतु धर्म प्रकट हो पाते हैं। कुशल कृत्य अकुशल कृत्यों को भी पूरा कर सकेंगे। आवज्जन से शुरू कर वुट्ठो चित्त तक चित्त निर्बल (कमजोर = शक्तिहीन) होने के कारण उनमें हेतु धर्म प्रकट नहीं होता। इसलिये - उन चित्तों को **अहेतु चित्त** कहते हैं।

शिष्यो, उस **सात जवनों** में भी पठम जवन से दुतिय जवन बलवान (बलशाली - ताकतवर) होता है। इसी तरह दुतिय से - तृतीय, तृतीय से चतुत्थ बलवान होता है। वह चित्त अपने मूल लिये हुए स्वीकृत कम्म के दिये हुए अतीत आलम्बन को छोड़ (मुक्त) कर नये रूपालम्बन को स्वीकृत (संग्रह) कर घुसकर चढ़कर उत्पन्न होने के कुछ समय व्यतीत होने पर, वह रूप आलम्बन भी पुराना जर्जरित (नष्ट) होकर, इस चतुत्थ जवन से आगे की ओर क्रमशः कमजोर (अशक्त) होता जाता है। चतुत्थ जवन के निम्न पञ्चम जवन अशक्त (कमजोर) हो जाता है। पञ्चम जवन निम्न - षष्ठम जवन कमजोर-छोटा हो जाता है। षष्ठम जवन से निम्न सत्तम जवन कमजोर-छोटा हो जाता है।

पृष्ठ – ३८७

१३-१४. उसके बाद वह चित्त निर्बल सत्तम जवन भव से पार कर तीव्र वेग जवन स्वभाव रहित होकर उन जवनों के स्वीकृत अनुभूत आलम्बन को ही स्वीकृत कर एक-दो

बार उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। इस जवन के आगे एक-दो बार उत्पन्न होकर निरुद्ध हुए चित्त को उस जवन का स्वीकृत आलम्बन होने के कारण **तदालम्बन चित्त** कहते हैं। हाव-भाव क्रिया-व्यापार रहित, सबल संवेग जवन स्वभाव भी रहित होकर कम्म प्रभाव के नियमनानुसार धुंधला शांत चुपचाप उत्पन्न होने के कारण कम्म का फल **विपाक चित्त** भी कहते हैं। तदालम्बन चित्त एक बार भी होता है। दो-बार भी होता है। यदि दो बार होता है तब प्रथम तीव्र तथा उससे निम्न दुतिय बार निर्बल होता है। इस तदालम्बन के बाद उत्पन्न होने वाला चित्त तदालम्बन से निम्न तथा निर्बल होता है।

भवङ्गचलन के पूर्व अनन्तर चित्त के उत्पाद सहित (कि साथ) समानान्तर कर उत्पाद कर - उस अपने से समानान्तर उत्पन्न एक भवङ्ग चित्त को पार कर भवङ्गचलन के आने पर चित्त में प्रकट हुआ वह रूप आलम्बन इस दुतिय तदालम्बन के साथ (समानान्तर) होकर निरुद्ध होता है। इसीलिए रूप की आयु - १७ चित्तक्खण लम्बा है यह जाना जाता है।

उस तदालम्बन के बाद वह चित्त अपने में रूपालम्बन प्रकट होकर उस प्रकट हुए नये रूप आलम्बन को उपभोग करने के लिए स्वीकृत (संलग्न) चौदह बार उत्पन्न होकर चले जाने पर उस रूपालम्बन के भी निरुद्ध हो जाने के कारण, थक जाने के भी कारण अपने हमेशा से स्वीकृत (संलग्न) कम्म प्रदत्त अतीत आलम्बन को ही स्वीकृत (संलग्न) कर पहले के मूल विपाक भवङ्ग के अनुसार होकर चला जाता है। इस तरह उत्पन्न होकर पुनः चले जाने को– "भवङ्गपातो" तदालम्बन के बाद भवङ्ग गिरकर चले जाना कहते हैं। (भवङ्ग पतित होकर चले जाना कहते हैं।) इस तरह नदी के बहाव के समान भवङ्ग चित्त लगातार उत्पन्न होकर पुनः चलने के ऐसे समय में पुनः नये रूपालम्बन के प्रकट होकर टकराता है। पुनः वैसे प्रकट होने पर पहले के समान ही पुनः होता है।

(१) भवङ्गचलन। (२) भङ्गुपच्छेद। [(३) आवज्जन। (४) चक्खुविञ्ञाण। (५) सम्पटिच्छन। (६) सन्तीरण। (७) वुट्ठो। (८) जवन (९) जवन (१०) जवन।

पृष्ठ – ३८८

(११) जवन। (१२) जवन। (१३) जवन। (१४) जवन। (१५) तदालम्बन (१६) तदालम्बन]।– भवङ्ग। भवङ्ग मूल चित्त के समान उत्पन्न होकर पुनः चलता है। यह चक्खुद्वार पर चित्त का उत्पन्न होना हुआ।

शेष पांचों द्वार और वीथिपात का होना

(वीथि में गिरने का वर्णन)

शिष्यो, सोत द्वार (श्रोत द्वार) दोनों भवङ्ग स्थानों में सद्दालम्बन (शब्द आलम्बन) - टकराता है तब; घ्राण द्वार भवङ्ग के दोनों स्थान में गन्धालम्बन टकराता है तब; जिह्वा द्वार भवङ्ग के दोनों स्थान में रसालम्बन टकराता है तब; काय द्वार भवङ्ग के दोनों स्थान

में फोट्ठब्बालम्बन टकराता है तब; उनके आकर टकराने पर आलम्बनों को आलम्बन कर (ध्यान कर) चित्त उत्पत्ति भी इस चक्खु द्वार पर जिस विधि से उत्पन्न हुआ उसी तरह होता है। शिष्यों इस तरह चित्त की उत्पत्ति में **आवज्जन** से लेकर **तदालम्बन के पतन** (गिरने) तक चित्त क्रम को **वीथि चित्त** कहते हैं। शेष चित्त क्रम को **भवङ्ग चित्त क्रम** कहते हैं। शिष्यों, इस भवङ्ग चित्त, वीथि चित्त क्रमों के उत्पन्न होने की उपमा इस प्रकार समझो :– एक आदमी आम के वृक्ष तले चादर ताने घुड़मुड़िया कर सोया है। ऐसी दशा में एक पके आम के अपने बगल में टपकने की ध्वनि से वह जाग गया। 'क्या है ?' यह विचार किया। फिर चादर को हटाकर देखा। देखकर उसे उठा लिया। हाथ में लेकर होठों से लगाया। अच्छा होगा इसे जानकर खाया। खा कर मुंह में बचे हुए गुदे को लार सहित मिलाकर निगल लिया। पुनः चादर ओढ़कर पहले की ही तरह सो गया।

शिष्यो, इस उपमा में वह व्यक्ति सिर-पैर ढंके चादर ताने सोया हुआ है तथा **भवङ्ग चित्त क्रम** उत्पन्न होकर रहने के समान है। आम के टपकने की ध्वनि से जागता है तथा आलम्बन के टकराने के कारण **भवङ्ग का [दो बार] गतिशील** (सक्रिय) होने से मिलता है। जागकर - इस बगल में गिरा हुआ क्या हो सकता है यह विचारना तथा **आवज्जन** होना समान है। विचारने के बाद सिर-पैर पर ओढ़े चादर को हटाकर देखना व आम को देखना - और **चक्खु विञ्ञाण** उत्पन्न होना एक समान है। देखकर उस आम को हाथ फैलाकर लेता है और - **सम्पटिच्छन्न** होना समान है। हाथ में लेकर उसको पकड़ना - छूना और **सन्तीरण** एक समान है। पकड़कर अच्छा होगा, स्वाद अच्छा होगा यह जानना और

पृष्ठ– ३८९

वुट्ठो का होना एक समान ही है। खाना और जवन का होना एक समान है। खा कर मुंह में बचे हुए गुदे को लार सहित मिलाकर निगल लिया यह - और तदालम्बन होना एक समान है। निगलने के बाद पुनः चादर ओढ़कर पहले की ही तरह सो गया और तदालम्बन आगामी भवङ्ग में गिरकर (भवङ्गपात होकर) पुनः जाने के समान है।

शिष्यो, इस तरह पञ्च द्वारों को चित्त संतति द्वारा होते जाने को भलीभांति जानना। शिष्यों, यह रूप, सद्द, गन्ध, रस, फोट्ठब्ब नामक पञ्चालम्बन, इन पञ्चालम्बन से बचे हुए सभी सङ्खत, असङ्खत, पञ्ञत धर्म धम्मालम्बन कहलाते हैं। इन धम्मालम्बनों को, पञ्च द्वार में बिना प्रकट हुए बिना टकराये जिस समय केवल शुद्ध भवङ्ग चित्त में ही प्रकट हो जब टकराता है - तब भवङ्ग दो बार सक्रिय होकर, उच्छिन्न होकर उस प्रकट हुए आलम्बन को स्वीकार (संलग्न) कर आवज्जन जवन सात बार - तदालम्बन एक बार, दो बार भवङ्ग - भवङ्ग उत्पन्न हो जाता है। यह मनोद्वार पर चित्तवीथि का उत्पादन ही है।

भवङ्ग चित्त को मनोद्वार कहते हैं। शिष्यों, इस तरह केवल मनोद्वार में ही आलम्बन प्रकट होकर, उस आलम्बन को स्वीकृत (संलग्न) कर पञ्च द्वार तक बिना पहुंचे केवल हदयवत्थु रूप पर ही उत्पन्न होकर रहने वाला वीथि होने के कारण - इस वीथि को

मनोद्वार वीथि कहते हैं। इस मनोद्वार वीथि में उपमा के अनुसार - एक व्यक्ति मुंह खुला (का) कर एक आम के वृक्ष तले उत्तान होकर जब सोया हुआ है - उस समय उसके मुख में पका हुआ आम टपक गया। जागकर - अरे, आम है - यह विचारकर, जानकर - खा लिया फिर मुंह में बचे-खुचे गुदे को लार के साथ निगल गया। पुनः सो गया। यह उदाहरण है। शिष्यों, इस उपमा में वह पुरुष मुंह खोलकर (बा कर) उत्तान सोया है यह - भवङ्ग में गिरकर रहने के समान है। मुंह में आम टपकने से जागना - यह आलम्बन प्रकट होकर भवङ्ग चलन (भवङ्ग सक्रिय) होने के समान है। जागकर, ओ - यह तो आम है - यह विचार कर जानना - आवज्जन उत्पन्न होने के समान है। खाना और जवन होना समान है। खा चुकने पर मुंह में चिपके हुए गुदे को लार के साथ निगलना - तदालम्बन होने के समान है। निगल चुकने के बाद पुनः सो जाना

पृष्ठ– ३९०

पुनः भवङ्ग में गिरकर चले जाने के समान है। शिष्यों, इस तरह मनोद्वार चित्त लगातार उत्पन्न होने को भी भली प्रकार जानो।

चित्त धातु के सन्तति का वर्णन

शिष्यो, एक व्यक्ति में दो चित्त नहीं है। एक ही चित्त है। हमारे बोधिसत्व सुमेध ही आगे चलकर राजा तेमि हुए। यह राजा तेमि ही आगे चलकर राजा नेमि हुए। यह राजा नेमि ही आगे चलकर राजा वेस्सन्तर हुए। यह राजा वेस्सन्तर ही आगामी जन्म में सन्तुसित देवता हुए। यह सन्तुसित देवता ही आगामी जन्म में सिद्धार्थ राजकुमार हुए। एक प्रकार से कहें तो - यह सुमेध ही आगे - तेमि हुए। नेमि हुए। वेस्सन्तर हुए। सन्तुसित देव हुए। राजकुमार सिद्धार्थ बुद्ध हुए। यह सिद्धार्थ राजकुमार ही पूर्व में सन्तुसित देवता हुए थे। वेस्सन्तर, नेमि, तेमि, सुमेध हुए थे। इसीलिये शिष्यों, भगवान महाबुद्ध वंश में कहते हैं :–

"अहं तेन समयेन जटिलो उग्गतापनो"

"भिक्षुओ! मैं (सिद्धार्थ राजकुमार बुद्ध), उस समय (जब वे भगवान दीपङ्कर बुद्ध थे।) उग्र तपस्वी जटिल (सुमेध ऋषि) हुआ था।"

शिष्यो, वह एक ही व्यक्ति विभिन्न जन्मों में संसरण का उत्पन्न होते हुए जाने के समान - वैसे ही एक पुग्गल में यह एक ही चित्त पूर्व भव में च्युति चित्त होकर व्यय (विनष्ट) होकर इस वर्तमान भव में प्रतिसन्धि चित्त उत्पन्न होता है। यह प्रतिसन्धि चित्त ही स्वयं निरुद्ध (व्यय - विनाश प्राप्त) होकर भवङ्ग सन्तति उत्पन्न होकर चलता जाता है। यह भवङ्ग

पृष्ठ– ३९१

चित्त ही फिर **आवज्जन** होता है। यह आवज्जन चित्त ही फिर चक्खु विञ्ञाण, सोत, घान, जिह्वा, काय **विञ्ञाण** उत्पन्न होता है। यह **पञ्च विञ्ञाण** ही फिर **सम्पटिच्छन्न** होता है। यह सम्पटिच्छन्न ही फिर **सन्तीरण** होता है। यह सन्तीरण ही फिर **वुट्ठो** होता है। यह वुट्ठो ही फिर पठम **जवन** होता है...पे०...। यह सत्तम जवन ही फिर **तदालम्बन** होता है। तदालम्बन ही फिर भवङ्ग सन्तति (क्रमश...) होता है।

एक प्रकार से - यह प्रतिसन्धि चित्त ही बाद में भवङ्ग सन्तति क्रमशः उत्पन्न हो आता है। आवज्जन इत्यादि वीथि चित्त सन्तति क्रमशः होता है। वीथि चित्त आगामी भवङ्ग सन्तति क्रमशः पुनः उत्पन्न होते जाता है। इस तरह क्रमशः जाते - छः द्वारों में पुनः आलम्बन के प्रकट होने पर पुनः वीथि चित्त क्रमशः उत्पन्न हो आता है। वीथि चित्त के बाद भवङ्ग सन्तति क्रमशः उत्पन्न होकर पुनः चल पड़ता है। यह प्रतिसन्धि चित्त ही इस तरह सारा जीवन एक बार भवङ्ग चित्त एक बार वीथि चित्त बारी-बारी से उत्पन्न होते हुए - इस वर्तमान जीवन (भव) के अन्त में चुति चित्त उत्पन्न होकर, निरुद्ध होकर आगामी भव में प्रतिसन्धि चित्त बनकर पुनः चला जाता है। शिष्यों, इस तरह यह एक ही चित्त ही संसरण के प्रारम्भ से लेकर संसार (संसरण) के अन्त तक - अनन्तर पच्चयसत्ति समनन्तर पच्चयसत्ति नामक बीज लगातार गिरते हुए - लगातार उत्पन्न होते हुए चलते जाता है। एक ही पुग्गल लगातार भव-दर-भव में संसरण करते हुए जाने में सुमेध, तेमि, नेमि, वेस्सन्तर इत्यादि से विभिन्न नामों को प्राप्त कर जैसे चलते जाता है, उसी तरह शिष्यों, यह एक ही चित्त धातु ही लगातार चित्तक्खण (चित्त क्षण) उत्पन्न होकर जाने में बताये हुए के अनुसार किसी एक कारण कृत्य स्थिति - स्थान को आकर्षित होकर प्रतिसन्धि चित्त, भवङ्ग चित्त, आवज्जन चित्त, चक्खु विञ्ञाण चित्त इत्यादि विभिन्न नामों को प्राप्त करते हुए चलते जाता है।

इस पुग्गल उपमा के समान ही अनुभव कर सकने जैसा देखो, शिष्यों। बहुत मिलता है - (एक समान है) शिष्यों। राजकुमार सिद्धार्थ ही जैसे पूर्व का नेमि, तेमि, सुमेध इत्यादि हुए थे उसी तरह

पृष्ठ – ३९२

यह बाद का चुति चित्त ही पूर्व का जवन चित्त, वुट्ठो चित्त, आवज्जन चित्त, पञ्च विञ्ञाण चित्त इत्यादि हो चुका। यह बाद-बाद का चित्त ही पूर्व-पूर्व का चित्त हो चुका। इसलिये ही शिष्यों, भगवान ने सानु सामणेर को यह देशित किया– **"इदं पुरे अचरि चारिकं"** - यह अभी जो चित्त है वही पूर्व समय में छः आलम्बनों पर जिस पर मन आया, इष्ट लगा - उन-उन पर दौड़ लगाते हुए चलते चला आया हुआ है। इस तरह एक पुग्गल में केवल एक ही चित्त है। वह एक ही चित्त धातु ही - विभिन्न नामों को प्राप्त कर अनन्तर, समनन्तर, पच्चय सत्ति नामक बीज गिरकर निरन्तर लगातार चित्त क्षण से उत्पन्न होकर रहता है - इसे भी भलीभांति जानो। एक-एक चित्त क्षण - चित्त का एक-एक भव (जन्म) - एकेक भव ही है - इसे भी जानो, मेरे शिष्यों।

चित्त धातु को कम्मसङ्खारों का उपकार करना

अभिधम्म पाळि में :–

सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, भव पच्चया जाति, **कुसला कुसलं कम्मं विपाकानं सन्धानं कटत्ता च रूपानं कम्म पच्चयेन पच्चयो।**

कम्म सङ्खार के कारण विञ्ञाण उत्पन्न होता है। कम्म भव के कारण जाति अर्थात् प्रतिसन्धि चित्त उत्पन्न होता है। कुशल-अकुशल कम्म समूह - विपाक नाम खन्धों को; कम्मज रूपों (कटत्ता रूपानं) को; कम्म प्रत्यय शक्ति द्वारा उपकार करता है।

इस तरह देशित करने के कारण - चित्त धातु को कम्म निर्मित करता है। कम्म बनाता है। पुराना चित्त धातु के नष्ट होने पर कम्म - पुराने जो कभी नहीं था ऐसे नये-नये चित्त धातु को निर्मित कर (सामने) ढकेल देता है, ऐसा मत समझना। ऐसा नहीं है, मेरे शिष्यों। कम्म उस चित्त धातु को निर्मित ही नहीं कर सकता।

पृष्ठ– ३९३

वह मूलतः विद्यमान चित्त धातु अनन्तर समनन्तर पच्चय (सत्ति) शक्ति नामक बीज अंकुर से चित्तक्खण लगातार भव में दौड़ते संधावन कर उसी स्थान पर ही संरक्षण सहायता कर बनाते हुए चलता है। कम्म - कटत्ता रूपों को निर्मित करना - उत्पन्न करना जैसे जनक शक्ति से उपकार करते हैं वैसे चित्त धातुओं को निर्मित करने, जनक शक्ति से उत्पन्न करने के द्वारा उपकार नहीं कर सकता। कृषि-भूमि फसलों को उगने तथा सबल हो सकने में सहायता - उपथम्भक शक्ति से ही केवल जैसे उपकार करता है - उसी तरह संरक्षण सहायता करना - उपथम्भक शक्ति से ही उपकार कर सकता है। इसीलिये तो शिष्यों, भगवान ने यह देशित किया :–

"**कम्मं खेत्तं। विञ्ञाणं विजं। तण्हा स्नेहो।**" (संयुत्त पाळि)

कम्म कृषि-भूमि है। तण्हा स्नेहक सदृश्य वर्षा जल है। पूर्व-पूर्व का विञ्ञाण - पश्चात-पश्चात का विञ्ञाण होने हेतु बीज के समान है।

शिष्यो, कम्म का विञ्ञाण को इस तरह सहायता करना - उपथम्भक शक्ति द्वारा उपकार कर - वह चित्त इस तरह कम्म के उपकार को प्राप्त करने पर ही लगातार उत्पन्न होकर चलने के कारण सङ्खार पच्चया विञ्ञाणं इत्यादि इस वचन को देशित किया है। उपत्थम्भक शक्ति को लक्ष्य कर देशित किया यह समझना। शिष्यों, इस कम्म का उपकार प्राप्त करने वाले चित्त के भीतर भी कम्म का संरक्षण सहायता नियमन करने की शक्ति जितनी अधिक होती है - चित्त समूह को सुत्त विधि में उल्लेखित है - उसे अनुगमन कर कम्म सङ्खार फल विपाक चित्त के नाम से - कम्म का संरक्षण सहायता नियमन करने की शक्ति कितनी अधिक होती है - चित्त समूह को कम्म सङ्खार का फल

नहीं कहलाने वाला - कुशल चित्त, अकुशल चित्त, क्रिया चित्त के नाम से देशित किया है। सूक्ष्म गहन अभिधम्म विधि में उल्लेखित है - इस कुशल-अकुशल विपाक संपूर्ण क्रिया वाले

पृष्ठ– ३९४

चित्त को ही कम्म का उपकार मात्र होने के कारण - कम्म सङ्खार के फल विपाक मात्र ही हैं - यह देशित किया है।

शिष्यो, कम्म के उपकार को ग्रहण कर लगातार (निरन्तर) दौड़ने वाला यह चित्त धातु - कम्म जब-जब बनाता (सुधारता) है - नियमन करता है - उसे ग्रहण करना (सहन करना) पड़ता है। जब-जब एक भव से दूसरे भव में जाता है, पार करता है, तब उसे कम्म जहां फेंकता है - कम्म जहां स्थान निश्चित करता है वहां उत्पन्न होना पड़ता है। कम्म द्वारा दिये गये उत्तराधिकार को ग्रहण करना पड़ता है। इस चित्त धातु का केवल कम्म ही शरण व आश्रय स्थल है। इसीलिये ही तो भगवान ने यह कहा है :–

"सत्तो संसारमापादि, कम्मं तस्स परायनं" (संयुत्त पाळि)

देवपुत्र! गंभीर प्रश्न पूछने वाले, ओ देवता! सत्त्वा कहलाने वाला चित्त धातु, उपपत्ति भव नामक - कठिन भव, विस्तृत भव द्वारा; चित्तक्खण नामक कोमल भव, छोटा भव द्वारा; बदल-बदलकर संसरण करने की ओर पहुंचता है। उस संधावित सत्त्वा के चित्त धातु के प्रति - स्वयं द्वारा किये गये - अपने को आश्रित होकर चलते चला आता कम्म परायण ही है।

चित्त धातु की चंचलता

शिष्यो, यह नन्हा-सा चित्त धातु - इस तरह चित्त क्षण, भव निरन्तर, बिना थके-मांदे किस कारण संधावन करते रह सकता है? इस नन्हें से चित्त धातु में लोभ नामक तण्हा का विचार रहता है, शिष्यों। वह तण्हा आभोग (तृष्णा विचार) - चित्त धातु को बिना थके मनोरंजन करते चलते रहता है। इसीलिए यह नन्हा-सा चित्त संसार में बिना थके व घृणा किये मौज के साथ सशक्त रहते हुए निरन्तरता से भव संसरण करते रहता है। संधावन करते रहता है। जब तक वह तृष्णा-विचार बना रहेगा तब तक भव संसरण का अतिक्रमण कर पार नहीं जा सकता। बड़ा खुश होकर रहता है। मौज करते हुए रहता है।

पृष्ठ– ३९५

जब तृष्णा विचार नहीं रह जावेगा - उस समय विचार भी मर जावेगा। इसीलिये भगवान ने यह कहा है :–

१. तण्हा दुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं।
इत्थभावञ्ञथा भावं, संसारं नातिवत्तति।।

२. उच्छिन्न भव तण्हस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवोति।।

(सुत्तनिपात - द्वयतानुपस्सना सुत्त)

भिक्षुओ! तण्हा के विचार वाला पुरुष (चित्त धातु) - दीर्घकाल पर्यंत भव संसरण करते हुए (संधावन करते हुए), इस मनुष्य लोक, इस मनुष्य लोक से अन्य लोक में, संसरण का करना अतिक्रमण कर पार नहीं कर सकता।

भिक्षुओ! जिसका भव तण्हा उच्छिन्न हो गया - वह शांत चित्त हुआ - क्लेशों को नष्ट किया हुआ - उच्छिन्न भव तण्हा वाला, शांत चित्त वाला चित्त धातु का जाति संसरण समाप्त हो गया। उस भिक्षु का, उस चित्त धातु का पुनर्भव नहीं रहा।

पृष्ठ– ३९६

चित्तं खो साधवे सामिको, तण्हा दुतियिका, कम्मं वड्ढकी संविधायको, इमेसं खो साधवे तिण्णं धम्मानं गति एवं दट्ठब्बाति। (सेक्ख्यभासित तयो धम्मसुत्त)

साधुओ - चित्त, स्वामी है। तृष्णा, स्वामी चित्त का छोटा साथी है। कम्म - संविधायक है। अर्थात् सुरक्षा करने वाला, बनाने वाला है। यह स्वामी चित्त का कलाकार कारीगर है। साधुओं! इन तीनों धर्मों की गति - इस देशनानुसार तुम शिष्य लोग देखो। समझो।

यहां पर अभिप्राय सहित चित्त धातु का रूप को आश्रित होकर - आश्रित होकर भी उत्पन्न होकर रहना हुआ। इसमें गति सहित उत्पन्न होना - स्थिति अभिप्राय सहित चित्त कहलाने वाला विञ्ञाण धातु विभङ्ग अध्याय पूरा हुआ।

विञ्ञाण धातु विभङ्ग अध्याय समाप्त

अनिच्च द्वारा सुञ्ञत की साधना

शिष्यो, इस तरह विञ्ञाण धातु का विभाजन कर समझाने के पश्चात अब इस विञ्ञाण धातु को "ने सो इमस्मि ने तं मे, एवं तत्थ विरज्जति" के उद्देश्य के अनुसार "मैं" नामक अत्त, "मेरा" नामक अत्तनिय के निरोध होने के लिये अनिच्च द्वारा देखने वाले सुञ्ञत विधि को बताऊंगा। भलीभांति देखो व जानो। कहता हूं।

पृष्ठ– ३९७

नामों के उपकार करने का वर्णन

शिष्यो, चित्त धातु का उत्पाद होकर निरोध हो जाता है। उस तरह निरुद्ध होने पर सभी कुछ निःशेष निरुद्ध नहीं होता है। आगामी चित्त धातु के उत्पन्न होने हेतु विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण को छोड़ देता है। चित्त भी चित्त उत्पन्न होने के लिये, फस्स भी फस्स के उत्पन्न होने के लिये - वेदना भी वेदना के उत्पन्न होने के लिये, सञ्ञा भी सञ्ञा के उत्पन्न होने के लिए पीछे बताये अनुसार सभी प्रकार के नाम धर्म - प्रत्येक अपने-अपने स्वभाव जाति क्रम उत्पन्न करने के लिये विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण को छोड़ देते हैं। इस अवशिष्ठ विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण नाम धातु, चित्त धातु उत्पाद होकर आता है। यह चित्त धातु पुनः निरुद्ध हो जाने पर पुनः पहले के अनुसार विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण शेष बचता है। इस अवशिष्ठ नाम धातु विशिष्ठ क्रिया शक्ति नाम धातु प्राण - पुनः नाम धातु, चित्त धातु उत्पाद करता है। इस तरह संसरण चक्र प्रारम्भ से संसरण चक्र अंत तक निरन्तर उत्पन्न होते हुए चलता है। पूर्व-पूर्व चित्त धातु का बीज ही है। इस विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण का अंकुर (कोपल) ही है। पश्चात-पश्चात का चित्त अंकुर से उत्पन्न होने वाले वृक्ष ही हैं। इस भाव को बताने के लिए ही - "विञ्ञाणं बीजं" यह देशित किया है।

चित्त के उत्पाद-व्यय को अभिधम्म विधि से ध्यान करना

शिष्यो, इस विशिष्ठ क्रिया शक्ति प्राण को अनन्तर समनन्तर पच्चय शक्ति कहते हैं। अनन्तर समनन्तर पच्चय शक्ति जानो। पूर्व-पूर्व का चित्त धातु इस पच्चय शक्ति से उपकार कर सकने के कारण प्रत्यय धर्म ही है। पश्चात-पश्चात का चित्त धातु उपकार ग्राहक फल पच्चयुप्पन्न धर्म ही है। इस भाव को बताने के लिये ही

पृष्ठ – ३९८

"येसं येसं धम्मानं अनन्तरा ये ये धम्मा उप्पज्जन्ति चित्त चेतसिका, ते ते धम्मा तेसं तेसं धम्मानं अनन्तर समनन्तर पच्चयेन पच्चयो।" (पट्ठान पाळि)

भगवान ने देशित किया है।

उन-उन चेतसिक धर्मों के अनन्तर (तुरंत बाद) में चित्त चेतसिक कहलाने वाले धम्म उत्पन्न होते हैं। वे पूर्व-पूर्व के चित्त चेतसिक धर्म - उसके बाद-बाद के चित्त चेतसिक धर्मों को अनन्तर समनन्तर पच्चय शक्ति द्वारा प्रत्येक अपने ही स्वभाव के, परस्पर जाति के, उपकार करते हैं।

इस तरह शिष्यों, पूर्व-चित्त-बीज से बाद का चित्त उत्पन्न होता है। इस बाद के चित्त बीज से पुनः आगामी चित्त उत्पन्न होकर निरन्तर - उत्तरोत्तर चलने के कारण पूर्व-पूर्व के संग्रहित वासनाएं, पूर्व-पूर्व के कृत कम्म चित्त सन्तान में लगातार आ सकते हैं। पूर्व-पूर्व का पूर्ण किया गया पारमी भी क्रमशः परिपक्व होते हुए चले चलता है।

चित्त को बड़ा कर, विकसित कर भी महग्गत की ओर पहुंचाता है। श्रद्धा, वीर्य, सति, समाधि, प्रज्ञा, इन्द्रियों को विकसित कर भी महग्गत अवस्था तक पहुंचा सकते हैं। शिष्यों, यह चित्त धातु निरन्तर उत्पन्न होकर जाने में विकसित होते चलने संबंधी उपमा से समझो :– अंधेरी रात के समय जुगनू (खज्जोपनक) का तीव्रता से पंख चलाते हुए उड़कर जाने के जैसा ही है। जुगनू के चमक की उत्पत्ति और आलम्बन को पकड़कर उप्पाद - स्थिति - भङ्ग - यह खणत्तय समङ्गी चित्त धातु के उत्पन्न होने के समान है। जब वह नहीं चमकता - अंधेरा में जाना और अनन्तर समनन्तर पच्चय शक्ति से जोड़ने से मिलता है। पुनः जब जुगनू चमकता है और आलम्बन को पकड़कर बाद में पुनः चित्त धातु उत्पन्न होने के समान है।

पृष्ठ– ३९९

खज्जोपनकं इदं चित्तं, छसु द्वारेसु सञ्चरं।
यथाभूतं विपस्सन्ति, पण्डिता जुति ञाणिनो।। (२६)

शिष्यो, जुगनू के समान (अंधेरी रात के समय उड़ने वाले जुगनू के सदृश्य) छः द्वारों में संचरण करने वाला इस विञ्ञाण चित्त धातु को ज्योति भानज्ञानी पण्डित लोग यथाभूत दर्शन करते हैं। विपश्यना करते हैं।

शिष्यो, इस जुगनू वाले उपमा में लगातार एक ही होने के कारण लगातार चमकते जाता हुआ वह एक ही जुगनू है - यही कहा जायेगा। इस प्रकार कहने पर भी - पूर्व-पूर्व की चमक - पश्चात-पश्चात का चमक नहीं है। यह पश्चात-पश्चात का चमक भी पूर्व-पूर्व की चमक नहीं है। पृथक-पृथक खण्ड होकर रहता है। उसी तरह शिष्यों, इस चित्त धातु में भी अनन्तर, समनन्तर शक्ति से कारण फल सम्बद्ध होकर लगातार एक ही स्वभाव होने के कारण ही पूर्व का पुराना चित्त ही पश्चात-पश्चात का चित्त है। इस पश्चात-पश्चात का चित्त ही पूर्व-पूर्व का चित्त है - यह कहते हैं। ऐसा कहने के बावजूद भी पूर्व-पूर्व का चित्त क्षण पश्चात-पश्चात का चित्त क्षण नहीं है। पश्चात-पश्चात का चित्त क्षण - पूर्व-पूर्व का चित्त क्षण नहीं है। क्षणत्तय समङ्गी होने वाला चित्त धातु, चित्त क्षण एकदम भिन्न खण्ड होकर रहता है। पीछे जैसा कि बता आये - ऋषि सुमेध का उदाहरण - उसी तरह एक भी होना तथा एक नहीं होकर भिन्न खण्ड भी होना - इसे जानो।

शिष्यो, इस जुगनू के उदाहरण समान - पीछे उल्लेख किया हुआ - भवङ्ग चित्त, वीथि चित्त क्रमों को समझकर (जानकर) छहों द्वारों में चित्त धातु विञ्ञाण उत्पन्न होकर स्थित रहने को जानो। अनुभव कर जानने के लिये भी विचार कर देखो। जुगनू का अचानक चमककर बुझ जाना, बार-बार चमक-चमककर बुझ-बुझ जाने के समान ही यह चित्त धातु

पृष्ठ– ४००

विञ्ञाण विद्युत चमक के समान उत्पन्न होकर नष्ट होता है - नष्ट होकर इस नष्ट होने की अवस्था को अनुभव द्वारा देखो, जानो। पंच द्वारों तक बिना गये हुए समय - हृदय गुहा कहलाने वाला हृदय वत्थु रूप द्रव कणें - अनेकों में एक-एक रूप कणों पर छहों आलम्बनों में एकेक आलम्बन को स्वीकृत (संलग्न = आकर्षित) कर - बुद्-बुद्, बुद्-बुद् - उत्पन्न होकर नष्ट होने को अनुभव कर विचार करो। यह अभिधम्म विधि द्वारा चित्त क्षण का निरन्तर उत्पाद-व्यय को देखना हुआ।

चित्त धातु के उत्पाद-व्यय की तीव्रता

शिष्यो, इस चित्त का उत्पाद-व्यय अत्यंत तीव्र है। रूप चुटकी बजाने भर की देर में पांच हजार करोड़ बार से अधिक ५००००००००००० बार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। चित्त इस रूप से ११ गुना अधिक बार तीव्रता से उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। अर्थात् (८५०००००००००० बार से अधिक) लोक में उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले में चित्त से अधिक तीव्र धर्म एक भी नहीं है, शिष्यों। इसीलिए ही भगवान ने एकङ्गुत्तर पाळि में चित्तलहुपरिवत्त सुत्त में यह देशित करते हैं :–

नाहं भिक्खवे अञ्ञं एकधम्मम्पि समनुपस्सामि। यं एवं लहुपरिवत्तं यथयिदं चित्तं, चित्तं भिक्खवे लहुपरिवत्तं, यावञ्चिदं भिक्खवे उपमापि नसुकरा याव लहुपरिवत्तं चित्तन्ति।

भिक्षुओ, मैं दूसरी कोई भी एक ऐसी वस्तु नहीं देखता जो इतनी शीघ्र परिवर्तनशील हो जैसे कि यह चित्त। भिक्षुओं, चित्त इतना शीघ्र परिवर्तनशील है कि इसकी उपमा देना भी आसान नहीं है।

पृष्ठ – ४०१.

शिष्यों, यह चित्त धातु के उत्पाद-व्यय में इतनी अधिक तीव्रता होने के कारण पूर्व चित्त का भङ्ग होने वाला छोर और बाद वाले चित्त का उत्पाद छोर इतना अत्यधिक निकट लगा हुआ है - कि एक ही का-सा उत्पन्न होकर रहने के कारण उत्पाद-व्यय को देख सकना अत्यंत कठिन है। इसका विनष्ट होना नहीं है - ऐसा प्रतीत होता है। इस अभिधम्म साधना विधि के अनुसार चित्त उत्पत्ति क्रमानुसार - चित्त क्षण के अनुसार - को भी विपश्यना करने वाले साधकों का ञाण उसको पकड़ते हुए नहीं देख सकता - ध्यान नहीं कर सकता। साधना करूंगा - देखूंगा - इस तरह चित्त में विचार कर लेने पर - इस विचार के करते ही चुटकी बजाने भर की अवधि के भीतर ही कुल चित्त क्षण शत-सहस्त्र कोटि से अधिक बार उत्पाद-व्यय हो चुका रहेगा। इसलिये इस विपश्यना को करने के समय में अभिधम्म विधि द्वारा साधना करने पर संभव नहीं होगा। उसको प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकने लायक नहीं देख सकते हैं। ऐसा नहीं देखना होगा। अर्थात् उस तरह ध्यान नहीं करना होगा। सुत्तं विपश्यना विधि द्वारा ही केवल ध्यान करने पर होगा। ध्यान करना होता है। इसी कारण से शिष्यों, अभी वर्णित अभिधम्म विधि को पटिसम्भिदाञाण परिपक्व होने हेतु - ज्ञान प्रज्ञा संवर्धन के लिये - समझने और जानने

के लिये रख करके छोड़ दो। विपश्यना भावना करने के लिये सुत्तं विपश्यना विधि को ही समझो।

एक ही चित्त छः भाग में विभाजित

शिष्यो, केन्द्र में रहकर पांच दिशाओं की ओर जा-जाकर रहने वाला जुगनू को मरकट (बंदर) को छः दिशा - छः स्थानों द्वारा विभाजित कर पकड़ में आये ऐसा पकड़ने के जैसा - उसी के समान - हृदय गुहा केन्द्र में रहकर उत्पाद-व्यय है यह बिना स्पष्ट जानने लायक अत्यधिक तीव्र उत्पाद-व्यय होकर आगे-पीछे एकदम संश्लिष्ट होकर पांचों दिशा स्थानों की ओर संधावन कर रहने वाले चित्त विज्ञान को छः दिशा - छः स्थानों से विभाजित कर निर्धारित कर पकड़ने में आये ऐसा पकड़कर शिष्यों को मार्ग दिशा

पृष्ठ– ४०२

देने की इच्छा से भगवान ने यह देशित किया।

कतमञ्च भिक्खवे विञ्ञाणं, छयिमे भिक्खवे विञ्ञाण काया चक्खुविञ्ञाणं सोतविञ्ञाणं घानविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाणं कायविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं, इदं वुच्चति विञ्ञाणं। (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि - सत्तट्ठान कुसल सुत्त का अंश)

"भिक्षुओं, विञ्ञाण क्या है? भिक्षुओं, विज्ञान समूह चक्षु विज्ञान, सोत विज्ञान, घान विज्ञान, जिह्वा विज्ञान, काय विज्ञान, मनोविज्ञान - यह छः ही हैं। इन छहों को जानने का स्वभाव होने के कारण - विज्ञान कहते हैं।"

शिष्यों, यह छहों विञ्ञाण किसको जानते हैं :–

१. चक्षु विज्ञान रूप आलम्बन को जानता है।

२. सोत विज्ञान शब्द आलम्बन को जानता है।

३. घान विज्ञान गन्ध आलम्बन को जानता है।

४. जिह्वा विज्ञान रस आलम्बन को जानता है।

५. काय विज्ञान स्पर्श आलम्बन को जानता है।

६. मनोविज्ञान इन पाचों आलम्बनों सहित धम्मालम्बन को जानता है।

शिष्यों, इस तरह छहों विज्ञानों को भलीभांति जानो।

चक्षु प्रसाद का वर्णन

१. अब छः विज्ञानों का उदय-व्यय अनित्य स्वभाव को क्रमशः बताऊंगा। भलीभांति अनुभूति पर उतारने लायक देखो। बताता हूं :–

पृष्ठ– ४०३

शिष्यो, चक्षु विज्ञान किस प्रकार के कारण से - किस पर आश्रित होकर, किस प्रकार उत्पन्न होकर, व्यय होकर रहता है। शिष्यों, मनुष्यों के आंख के मध्य में मूंगदाल के दाने के बराबर एक छोटा-सा प्रासाद खण्ड है। शिष्यों, उपमा से समझो। सागौन की वो चिकना होने के लि‍ए - रेतमाल इत्यादि से घर्षण कर चिकना करते हैं। उस पर पालिश के नानाप्रकार से घिसते हैं। उसमें चेहरा झलकने लगता है। हाथ दिखाने पर हाथ झलकने लगता है। शिष्यों, वह प्रासाद प्रकाश सागौन की लकड़ी नहीं है। सागौन लकड़ी में चिपका वस्तु है। वह प्रकाश उसकी चिकनाहट उत्पन्न करने के कारण उत्पन्न प्रासाद प्रकाश का एक स्वभाव है। वह प्रकाश - वह वस्तु भी नहीं है। सागौन को छोड़कर सागौन से पृथक उत्पन्न होने वाला स्वभाव भी नहीं है। इस सागौन और प्रासाद को पृथक कर, अलग हटाकर जानो शिष्यों। उसी तरह शिष्यों, आंख की त्वचा में देख रहा प्रासाद - वह छोटी संरचना चक्षु प्रसाद कहलाता है।

[अच्छो - मण्डो - पसादो - इन सबके लिये बर्मी में 'अ-ची' ही प्रयुक्त है। बर्मी में 'मण्ड' शब्द 'म्ह-णू=म्हें' प्रयुक्त होता है]

यह चक्षुमण्ड छोटे प्राणी में छोटा होता है। बड़े में बड़ा होता है। अभी मनुष्यों में मूंग के छोटे दाने (बीज) के बराबर होता है। शिष्यों, सागौन में चक्खुमण्ड के समान यह आंख का दृश्य चक्षु चर्म नहीं है। चक्षु चर्म को छोड़कर उससे भिन्न भी होने का भाव नहीं है। चक्षु चर्म वत्थु मात्र है। यह चक्षु प्रासाद चक्षु चर्म को आश्रित होकर देखने वाला एक प्रकार का प्रासाद-प्रकाश है। वत्थु नहीं है। चक्षु चर्म के देखने की शक्ति मात्र है। चक्षु चर्म होकर रहने वाला

पृष्ठ– ४०४

केवल चारों धातु रूप कण के देखने की शक्ति मात्र ही है। सागौन लकड़ी चक्खुमण्ड के समान समझो। शिष्यों, प्रासाद रूप - पासाद रूप कहने से असल में वो ठोस वस्तु है ऐसा मत समझ लेना। शिष्यों, आंख का चर्म चक्षु प्याज के छिलके के समान परत-दर-परत के तरह हैं। इस मूंग बीज के बराबर चक्खु प्रासाद भीतर की ओर सात चक्षु परतों तक देखते हुए जाता है।

शिष्यो, यह चक्षु प्रासाद रूप को रूपालम्बन चक्षु विज्ञान नामक आलम्बन - आरम्मणिक दो धर्मों का पहुंचने - प्रवेश-निकास होने के कारण चक्खु द्वार भी कहते हैं। चक्खु विज्ञान का आश्रय स्थल होने के कारण चक्षु वत्थु भी कहते हैं। इस तरह नाम पुकारने को भी समझ लेना। शिष्यों, सागौन के प्रासाद में जिस तरह हाथ दिखाने पर हाथ का बिम्ब दिखता है - इसी तरह चक्षु मण्ड के आगे उपचार में स्थित वत्थु भी मण्ड के भीतर में छाया (बिम्ब) प्रतीत होने के समान उसी तरह चक्षु मण्ड के आगे स्थित सजीव-निर्जीव सभी वस्तुएं आलोक के रहने पर - उस चक्खुमण्ड के भीतर में प्रतिबिम्ब

प्रकट होता है। शिष्यों, जैसा कि पीछे वर्णित मनुष्य की छाया, वृक्ष की छाया इत्यादि काला रूप - प्रतिच्छाया ही है। इस चक्षुमण्ड में अभी प्रासाद के भीतर जो प्रकट होता है - वह रंग वर्ण रूपालम्बन बिम्ब है।

चक्खुपसाद में आलम्बन का प्रकट होना

शिष्यो, किसी एक वस्तु का जैसे कैमरे से फोटो लेते हैं - वैसे ही वह वर्ण रूप आलम्बन आंख के बाहरी सतह मण्ड-पटल (चकरी) को पार कर आंख के भीतरी सतह मण्ड चकरी समूह से टकराता है। उस पर आश्रय ग्रहण करता है। भीतरी आंख की परत मण्ड-पटल (चकरी) समूह - रूपालम्बन बिम्ब के ठहरने के लिये मण्ड पटल चकरी ही है। बाह्य जुड़ा हुआ नेत्र पटल - मण्ड-पटल समूह रूपालम्बन बिम्ब को आकर्षित करने के लिये मण्ड पटल ही है। शिष्यों, जब रंग वर्ण इसमें प्रविष्ट होता है तब - यह देखने वाला धातु मण्ड के समान पटल - वर्ण रूपालम्बन को क्षण भर अपनी ओर पहुंचने हेतु आकर्षित करने की शक्ति है। शिष्यों, इस तरह

पृष्ठ – ४०५

चक्षु मण्ड में रूपालम्बन बिम्ब जब टकराता है तब - सागौन मण्ड आग लगाने पर जो ज्वाला निकलकर ताप निकलता रहता है - उसके समान चकमक पत्थर को लोहे से आपस में रगड़ने पर चिंगारी के निकलने के समान - उस आये हुए तथा आकर टकराये हुए वर्ण रूपालम्बन को जानने-जानने की इच्छा नामक जानने के स्वभाव - टकराने वाला चक्षु मण्ड पर कोई एक मण्ड रूप कणों को आश्रित कर उत्पन्न होता है। यह जानने वाले स्वभाव को जानने का स्वभाव होने के कारण विञ्ञाण कहते हैं। चक्खु पर उत्पन्न विञ्ञाण होने के कारण - चक्खु विञ्ञाण कहते हैं।

सम्पत्त असम्पत्त पकड़ (सम्पत्तगह - असम्पत्तगह)

शिष्यो, शेर पर यदि कोई पत्थर मार देता है और उसे लगता है तो जिस पत्थर के कारण उसे चोट लगी उसे नहीं दिखता। वह तो उस ओर देखता है जिसने पत्थर मारा। उसके देखने के समान यह चक्षु विञ्ञाण भी चक्खु मण्ड पर आकर टकराये रूपालम्बन को कारण बनाकर उससे आकर टकराये रूपालम्बन काया को बिना आलम्बन बनाये उस रूपालम्बन रूप छाया का उद्गम मूल वस्तु रूपालम्बन को उचककर देखता व ध्यान देता है। इसी कारण - चक्षु विञ्ञाण अपने पास नहीं आये हुए रूपालम्बन को ध्यान देता है। ग्रहण कर पकड़ता है। इसे **असम्पत्तगाह** कहते हैं।

शिष्यो, इस तरह प्रकट होना, आकर टकराना एक बात है - तथा ध्यान देना अलग बात होते हुए भी इस आकर टकराये हुए वर्ण छाया रूपालम्बन को भी आने वाले मूल वस्तु से ही केवल निकलकर आने वाला होने के कारण लगातार होकर वह मूल वस्तु रूपालम्बन से भिन्न नहीं है। एक ही है - ऐसा कह सकते हैं। अलाव से निकलने वाले ताप को स्पर्श कर - गरम है - को इसे लगातार उत्पन्न होकर - इस अग्नि कलापों को

भी अग्नि के समान एक ही रखकर - आग की ताप है - यह जिस प्रकार कहते हैं - वैसे ही समझना। इसलिए चक्षु विञ्ञाण अपने पास टकराने

पृष्ठ – ४०६

के लिये आने वाले रूपालम्बन को ही पकड़ता है - **सम्पत्तगाह** ही कहते हैं। इसीलिये तो शिष्यों, वह आकर टकराने वाला रूप वर्ण - रूप आलम्बन को जानना, जानना नामक जानने का भाव उत्पन्न होता है - यह मैंने कहा है।

शिष्यो, इस तरह चक्षु विञ्ञाण सोत विञ्ञाण इत्यादि पञ्च विञ्ञाणों को ही अपने पास आये हुए आलम्बन को ध्यान देना, नहीं देना - ग्रहण करना - नहीं करना - (पकड़ना - नहीं पकड़ना) सम्पत्तगाह असम्पत्तगाह है। चक्खुपसाद इत्यादि पसाद रूप पांचों सम्पत्तगाह असम्पत्तगाह नहीं है। सभी सम्पत्तगाह रूप ही हैं। सप्पटिघ रूप ही हैं। सप्पटिघ रूप ही हैं। जिससे सम्पर्क स्थापित किया जा सके - रूप ही है। प्रत्येक पञ्चालम्बन प्रत्येक अपने-अपने प्रसाद मण्ड-पटल पर आकर टकराते रहते ही हैं। तीव्र धूप वाला रूपालम्बन के आकर बार-बार टकराने पर चक्खु धातु मण्ड (पटल) भी गरमाकर जलने व गड़ने लगता है। आंसू आने लगता है। बहुत तीव्र ध्वनि शब्दालम्बन के आकर टकराने पर सोत धातु मण्ड (पटल) फट तक भी जाता है।

शिष्यो, सागौन की लकड़ी पर, चकमक पत्थर पर उत्पन्न ताप, चिंगारी की चमक (अथवा सामान्य चमक) पहले से ही मौलिक रूप में स्थित है ऐसा नहीं। अग्नि मण्ड (पटल = सतह) के सामने से दिखने के समय, चकमक से रगड़ने के समय - सागौन को, अग्नि मण्ड को, चकमक पत्थर को, उससे रगड़ने वाले लोहे को, दोनों को लेकर जैसे उत्पन्न होता है - उसी तरह ढोलक की ध्वनियां पहले से तो नहीं होती - जब बजाया जाता है - तब ढोलक के सतह को, बजाने वाले हाथ या वस्तु को - इन दोनों को लेकर जैसे उत्पन्न होता है - ठीक उसी तरह यह चक्षु विज्ञान - रूपालम्बन बिना टकराये पहले से ही मौजूद नहीं होता है। रूपालम्बन से टकराने पर चक्षु पटल को रूपालम्बनों को दोनों को लेकर उत्पन्न होता है। यह कथन सत्य है। शिष्यो, यदि मूल प्राकृतिक चक्षु पटल पर हमेशा बना रहे तो रूपालम्बन बिना टकराये भी श्वेत लाल आदि वर्षा रूपालम्बन को देखकर रहना पड़ता है। या नहीं रहता है। इसी कारण से वह पहले से मूल रूप में स्थित होकर रहता नहीं है। रूपालम्बन जब टकराता है तब चक्खु रूपालम्बन दोनों के मिलने के कारण को लेकर उत्पन्न होता है। इसीलिए भगवान ने यह कहा है –

पृष्ठ – ४०७

"चक्खुञ्च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खु विञ्ञाणं।" (संयुत्त पाळि)

"चक्षु पटल (प्रासाद) के, रूप आलम्बन के हेतु से चक्षु विज्ञान उत्पन्न होता है।

चक्षु विज्ञान का उदय-व्यय

शिष्यो, (ढोलक) वाद्यों की ध्वनि, ताप और चिंगारियां, उत्पन्न होकर क्षण भर में जैसे निरुद्ध हो जाता है - यह चक्खु विञ्ञाण उत्पन्न होकर क्षण भर में निरुद्ध हो जाता है। हमेशा स्थित होकर नहीं रहता। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि यह चक्षु विज्ञान उत्पन्न होकर बिना नष्ट हुए हमेशा स्थित होकर रहता - तो उस तरह उत्पन्न होकर श्वेत वर्ण टकराकर श्वेत वर्ण जानकर - जब वह नहीं भी टकराता होता - पृथक भी हो गया होता तब भी उस श्वेत वर्ण को ही वह देखते जानते रहता। लाल रंग टकराकर उसे देखने के बाद वह रंग हट भी जाता तो भी उस लाल रंग को ही देखते जानते रहता। ऐसा नहीं होता। इसलिए उत्पन्न होकर सदैव स्थिर नहीं रहता। क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है। वाद्य ध्वनि, ताप, चिंगारी के साथ भी इसी तरह जानना।

शिष्यो, उसका विषय टकराने से उत्पन्न होकर, उसका विषय समाप्त हो जावे तो वह नष्ट हो जाता है। श्वेत टकराकर - श्वेत को जानने वाला विज्ञान बिना नष्ट हुए हमेशा बने रहता तो श्वेत को छोड़कर फिर लाल को जानते-देखते समय भी श्वेत ही जानते रहता। लाल को टकराकर लाल को जानने वाला विज्ञान बिना नष्ट हुए हमेशा बना रहता तो लाल को छोड़कर पीला को देखते समय भी वह लाल ही जानता देखते रहता। लेकिन ऐसा नहीं होता। इसीलिए उसका आलम्बन और उसका विज्ञान, उसका आलम्बन और उसका विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड विभाजित रहता है।

शिष्यो, इसे अनुभव कर सकने योग्य देखो। इसका ध्यान करो। श्वेत को जानने-देखने वाला विज्ञान श्वेत में ही निरुद्ध हो जाता है। लाल को जानने-देखने वाला विज्ञान लाल में ही निरुद्ध हो जाता है। पीला को जानने-देखने वाला विज्ञान

पृष्ठ – ४०८

पीले में ही निरुद्ध हो जाता है। नीला को जानने-देखने वाला...। भूरा को जानने-देखने वाला...। कुत्ता को जानने-देखने वाला विज्ञान...। सुअर को जानने-देखने वाला विज्ञान...। मुर्गा को...। पक्षी को...। चंद्रमा को...। पुरुष को...। नारी को...। भिक्षु को...। विहार को...। बुद्ध को...। घर को...। जंगल को...। पर्वत...। वृक्ष...। लकड़ी के लट्ठे को...। खम्भे को...। सूर्य को...। नक्षत्र तारा...। अग्नि को...। जल को...। ...पे०...। स्वर्ण को...। रास्ते पर जाते हुए सारे रास्ते भर कंकड़-पत्थर, हरे-भरे घास, सूखी घास, पत्तियां आदि अनगिनत को जानते-देखते आते हैं।

उस तरह जानते-देखते हुए आते समयों में वह वस्तु और वह विज्ञान - वह वस्तु और वह विज्ञान खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहता है। प्रथम कदम में जानने-देखने वाला विज्ञान दूसरे कदम के समय तक नहीं रहा। प्रथम कदम के भीतर ही नष्ट हो गया। दुतिय कदम में जानने-देखने वाला विज्ञान तृतीय कदम तक नहीं रहा। वह दूसरे कदम

के भीतर ही समाप्त हो गया। पूर्व-पूर्व के कदमों के भीतर में जाना देखा हुआ विज्ञान पश्चात-पश्चात वाले कदम तक नहीं रहा।

पृष्ठ– ४०९

पूर्व-पूर्व के कदम के भीतर ही निरुद्ध हो जाता है। शिष्यों, इस तरह उसके आलम्बन उसका विज्ञान, उसका आलम्बन और उसका विञ्ञाण पृथक-पृथक कटकर रहने को प्रत्यक्ष होने योग्य देखो।

शिष्यो, अरिया लोगों के धर्म में अदक्ष अनजान - (अरिया धम्म अकोविद) पुग्गल इस सफेद (श्वेत) को जानते देखते विज्ञान ही लाल को जाना देखा। इस लाल को जानते देखते विज्ञान ही श्वेत को जानता देखता है। पीला को जानता देखता है। इस प्रथम कदम के भीतर जाना देखा विज्ञान ही दुतिय कदम के भीतर में जाना देखा। इस आज जानते देखते विज्ञान ही कल देखा था। पूर्व-पूर्व का देखा जाना विञ्ञाण ही बाद-बाद में जाना देखा - इस तरह एक ही मानते रहते हैं। हमेशा नित्य बना रहता है - यह मानते रहते हैं। तुम शिष्य गण उस तरह मत समझना। अभी जैसा कि मैंने बताया, उसके अनुसार खण्ड-खण्ड विभाजित कर रहने को जानते समझते देखो

शिष्यो, इस एकेक वस्तु रूपालम्बन को जानते देखते समय जैसे - क्षण में ही पत्थर और चकमक पत्थर का लोहा - लगातार रगड़ खाती रहे तो नयी-नयी चिंगारियां लगातार झिलमिलाती रहती हैं वैसे ही उस रूपालम्बन को जब तक श्वेत नहीं हट जाता उस रूपालम्बन, उस रूपालम्बन को जानना... जानना यह चक्खु विञ्ञाण नया-नया लगातार झिलमिल-झिलमिल उत्पन्न होते रहता है। चुटकी बजाने भर के समय में - चक्षु विज्ञान करोड़ों बार से अधिक उत्पन्न होकर नष्ट हो गया। इस तरह उत्पन्न होकर नष्ट होने के स्थान में चकमक पत्थर पर चिंगारियों को देखने के समान चक्षु पटल रूप कणें एक-एक पर - चक्षु विज्ञान झिलमिल-झिलमिल उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो-हो जाने को प्रकट होने लायक देखो। बार-बार चिंतन कर देखो। निरीक्षण करो। बहुत बार निरीक्षण करने पर यह अनुभूति पर उतरने लगेगी।

शिष्यो, इस तरह चक्षु विञ्ञाण उत्पन्न होकर क्षण-क्षण में नष्ट होते जाता है। अनिच्च है। शिष्यों, इस चक्षु विज्ञान के उत्पन्न होकर आने में अनन्तर - समनन्तर शक्ति द्वारा उपकार करने वाला पूर्व चित्त नामक जनक विषय, अविज्जा, तण्हा, कम्म, चक्षु पटल - रूपालम्ब इत्यादि सहायता उपत्थम्भक विषय - यह दो विषय हैं। वे

पृष्ठ– ४१०

दोनों विषय धर्म भी उत्पन्न होकर नष्ट हो-हो जाता है। अनित्य है। शिष्यों, कडुवे बीज से उत्पन्न वृक्ष मीठा नहीं होकर हमेशा और निश्चित रूप से जैसे कि खारा ही होता है - वैसे ही मरण धर्मा मां से उत्पन्न सन्तान अमर न होकर निश्चित रूप से जैसे मरता है - इसी तरह अनित्य आश्रयों के समूह के कारण उत्पन्न चक्षु विज्ञान भला कहां

नित्य हो सकता है। क्षण-क्षण नष्ट हो-हो ही जाता है। शिष्यों, चक्षु विञ्ञाण के उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले अनिच्च स्वभाव को अनुभूति पर उतारकर दर्शन करो।

चक्षु विज्ञान वर्णन समाप्त

सोत पटल, सोत विज्ञान का वर्णन

२. शिष्यों, सोत विञ्ञाण किस कारण से - किस पर आश्रित होकर किस तरह उत्पन्न होकर, नष्ट होकर रहता है? शिष्यों, कान के भीतर में अंगुली के एक पोर के बराबर भीतर में तांबे के वर्ण के समान लाल - मुलायम रोमिल स्थान है। रोम कर्ण छिद्र को घुमकर खुलने से अंगुठी की आकृति वाला है। इन रोम स्थान के मांस में भीतर सोत पटल है। यह सोत प्रसाद, सोत पटल भी कोई ठोस वस्तु नहीं है। कर्ण की श्रवण शक्ति वाला मात्र है। कर्ण मांसल उत्पन्न होकर ठोस चतुर धातु - रूप कणों की पटल शक्ति मात्र है। यह कर्ण पटल चक्खु पटल जैसा वर्ण पटल नहीं है। शब्द आलम्बन ग्रहण कर सकने हेतु एक पटल मात्र है।

उसी तरह शिष्यों, बाद-बाद के पटल (मण्ड) भी, प्रत्येक अपने आलम्बन ग्रहण कर सकने योग्य निर्मल - एक-एक पटल मात्र ही हैं। द्वार वत्थु नाम चक्षु के समान ही पड़ा है।

पृष्ठ – ४११

शिष्यो, बादलों की गड़गड़ाहट की ध्वनि, वायु, ढोलक, डमरू, मनुष्य, कुत्ते, मुर्गे, पक्षियों इत्यादि की ध्वनियां - शब्द आलम्बन इस सोत पटल पर आकर टकराती हैं। उस तरह टकराने पर सागौन लकड़ी में जैसे धुआं निकलता है - चकमक पत्थर पर जैसे चिंगारियां निकलती हैं - उस टकराने वाले ध्वनि शब्द आलम्बनों को जानना - जानना नामक जानने के भाव ध्वनि टकराने वाला सोत पटल पर अनेक सोत पटल रूप कणों को आश्रित कर उत्पन्न होता है। इस जानने के भाव को - जानने का भाव होने के कारण विञ्ञाण कहते हैं। चूंकि यह श्रोत पर उत्पन्न होता है - इसलिए सोत विञ्ञाण कहते हैं।

शिष्यो, यह सोत विञ्ञाण भी चक्षु विज्ञान के समान अपने पास आयी ध्वनि को आलम्बन नहीं बनाता। उस ध्वनि के उद्गम को आलम्बन बनाकर जानता - सुनता है। पर्वत, चैत्य इत्यादि को बीच में पार कर बिना सीधा आ सके उस बीच की वस्तु को चक्कर लगाकर आने से वह मूल उद्गम ध्वनि स्पष्ट न होने पर मार्ग में प्रकट ध्वनियों को भी पार कर पकड़कर आलम्बन करता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, चैत्य के पूर्व का व्यक्ति पश्चिम से पुकारी हुई ध्वनि को या तो उत्तर या तो दक्षिण से आने वाली ध्वनि को ही प्रत्यक्ष मार्ग में पार कर आलम्बन करने के कारण दक्षिण या उत्तर से पुकारा जा रहा है - ऐसा प्रतीत होता है। इसलिये यह सोत विञ्ञाण भी चक्षु विञ्ञाण

के समान **असम्पत्तगाह** ही है। **सम्पत्तगाह** भी है। इसके होने की युक्ति तो जैसे चक्षु विञ्ञाण में समझाया उसी तरह समझना।

शिष्यो, इस सोत विञ्ञाण का उत्पत्ति विनाश भी चक्षु विज्ञान के उत्पत्ति विनाश के समान ही है। चक्षु विञ्ञाण में जो विधि बताया वैसे ही इसे भी देखो।

"सोतञ्च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोत विञ्ञाणं" इस संयुत्त पाळि को भी कंठस्थ करो। इसका अर्थ है - सोत पटल को शब्द आलम्बनों के हेतु से सोत विज्ञान उत्पन्न होता है।

पृष्ठ– ४१२

मनुष्य की ध्वनि कुत्ता, मुर्गा, पक्षी, मेघ, वायु इत्यादि की ध्वनियों से उसके आलम्बन और उसके विज्ञान, उसके आलम्बन, उसके विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड कटने योग्य विभाजन करो। टहलते समय अचानक विभिन्न ध्वनियां भी सुनाई पड़ेंगी। स्वयं अपने पैरों की आहट भी सुन पड़ेगी। उस समय प्रथम कदम के भीतर में जब ध्वनि सुनाई पड़ेगी तब विज्ञान दूसरे कदम के गिरने तक नहीं रहता। दूसरे कदम के भीतर में ध्वनि को जानने वाला विज्ञान तीसरे कदम के गिरने तक नहीं रहता। वही कदम और वही विज्ञान, वही कदम और वही विज्ञान खण्ड-खण्ड कर विभाजित करो। किसी एक ध्वनि को सुनते जानते समय चुटकी बजाने भर के क्षण में सुनने पर ही सोत पटल रूप कणें एकेक पर अग्नि की चिंगारियों के समान उत्पन्न उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय होकर चलने वाला सोत विज्ञान अनेकों करोड़ बार अनुभव कर सकने लायक देखो। शिष्यों, बार-बार विचार करके देखो। जब बहुत बार देखते जाओगे, ध्यान करते ही जाओगे तो वह अनुभूति पर उतर जावेगी।

सोत विज्ञान समाप्त

घान पटल, घान विज्ञान का वर्णन

३. शिष्यो, घान विज्ञान किस कारण से, किस पर आश्रित होकर, कैसे उत्पन्न होकर, नष्ट होकर रहता है? शिष्यों, नासा छिद्र के भीतर अंगुली का एक पर्व जब भीतर घुसायेंगे तब दोनों नासा छिद्रों के अंत में बकरी के खूर-सी आकृति है। उसी स्थान पर घाण पटल स्थित है। शिष्यों, यह घान पटल भी कोई ठोस पिंड वस्तु नहीं है। नाक के मांसल की निर्मलता मात्र एक शक्ति ही है। नासिका छिद्र मांस का उत्पन्न होकर रहने वाला चार महाधातु पिण्ड - रूप कणों का पटल मण्ड =(निर्मल) शक्ति मात्र ही है। शिष्यों, पुष्प गंध, मल गंध इत्यादि अच्छे गंध, बुरे गंध आदि विभिन्न गंध आलम्बन - इस घ्राण पटल पर आकर टकराते हैं। उस समय सागौन लकड़ी से जैसे धुआं निकलता है - चकमक पत्थर पर चिंगारियां निकलती हैं - उसी के समान उन आकर टकराने वाले

पृष्ठ– ४१३

गन्ध आलम्बन को जानना - जानना नामक जानने के भाव गन्ध आलम्बन के टकराने वाले घ्राण पटल पर एकेक घ्राण पटल के रूप कणों को आश्रित होकर उत्पन्न होता है। इस जानने के स्वभाव को - चूंकि जानने का स्वभाव होता है इसलिये विज्ञान कहते हैं। क्योंकि यह घ्राण पर उत्पन्न विज्ञान होता है इसलिये घ्राण विज्ञान कहते हैं। शिष्यों, यह घ्राण विज्ञान अपने पास आकर टकराने वाले गन्ध आलम्बनों से आलम्बन बनाने वाला गन्ध जानने को **ग्रहण करता है - इसलिये केवल सम्पत्तगार ही है। शिष्यों, इस घ्राण विज्ञान को उत्पाद-व्यय भी चक्षु सोत विज्ञानों के समान ही होता है। अतः चक्षु सोत विज्ञानों में बताये नियमों के अनुसार ही जानना और देखना।**

"घानञ्च पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घान विञ्ञाणं" इस संयुत्त पाळि को भी कंठस्थ करो। इसका अर्थ है :– **घ्राण पटल को गन्ध आलम्बनों के हेतु से घ्राण विज्ञान उत्पन्न होता है।**

चमेली, गुलाब, सुरभि, दोन, चंपा, मल्लिका, गुलाब जल, चन्दन आदि की गन्ध - भोजन, तरकारी, मल, कीचड़, धुआं, मनुष्य, कुत्ता इत्यादि के गंध से वह आलम्दन और वह विज्ञान, वह आलम्बन और वह विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड विखण्डित कर विभक्त करो। एक गन्ध आलम्बन को सुंघते हुए क्षण में भी - चुटकी बजाने भर के काल में घ्राण पटल रूप कलापें एकेक पर चकमक पर चिंगारियों जैसे उदय-व्यय चलने वाला घ्राण विज्ञान अनेकों करोड़ बार होता है। अनुभूति पर उतारकर देखो। शिष्यों, बार-बार विचार कर देखो - अनुभव करो। बार-बार की साधना से यह अनुभूति होने लगेगी।

घ्राण विज्ञान समाप्त

जिह्वा पटल, जिह्वा विज्ञान का वर्णन

४. शिष्यो, जिह्वा विज्ञान किस कारण - किस पर आश्रित होकर कैसे उदय-व्यय होते रहता है। शिष्यों, जीभ को चार भागों में बांटो। जड़ और अंतिम छोर को छोड़कर शेष मध्य दो भाग

पृष्ठ – ४१४

जीभ मध्य के ऊपरी सतह पर जिह्वा पटल स्थित है। शिष्यों, यह जिह्वा पटल भी कोई ठोस पिण्ड वस्तु नहीं है। जिह्वा की निर्मलता शक्ति मात्र ही है। जिह्वा मांसल होकर रहने वाला चार महाधातु रूप कणों का निर्मल शक्ति मात्र है। शिष्यों, खट्टा-मीठा विभिन्न रस आलम्बन - इस जिह्वा पटल पर आकर टकराती हैं। उस समय जैसे सागौन लकड़ी में से निकलता धुआं - चकमक पत्थर पर निकलती चिंगारी होती है - उसी के जैसा आकर टकराने वाले रस आलम्बन को जानना, जानना नामक जानने के स्वभाव रसालम्बन टकराने वाले जिह्वा पटल पर एकेक जिह्वा पटल रूप कणों को आश्रित होकर उत्पन्न होता है। इस जानने वाले स्वभाव को जानने वाला स्वभाव होने के कारण विज्ञान कहते हैं। चूंकि जिह्वा पर उत्पन्न होने वाला विज्ञान है इसलिए इसे जिह्वा विज्ञान कहते

हैं। शिष्यों, यह जिह्वा विज्ञान भी **सम्पत्तगार** ही है। शिष्यों, इस जिह्वा विज्ञान की उत्पत्ति भी चक्षु विज्ञान इत्यादि के उदय-व्यय के समान ही है। चक्षु विज्ञान इत्यादि में कथित विधि के अनुसार ही इसे जानें तथा निरीक्षण करें।

"जिह्वञ्च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिह्वा विञ्ञाणं।" नामक संयुक्त पाळि को भी कंठस्थ करो। इसका अर्थ है - जिह्वा पटल को रस आलम्बनों के हेतु से जिह्वा विज्ञान उत्पन्न होता है।

खट्टा-मीठा, कड़वा-कसैला, नमकीन, तीते, मीठे में भी विभिन्न मिठास - स्वादिष्ट में भी विभिन्न प्रकार का स्वादिष्ट इत्यादि से उसका आलम्बन और उसका विज्ञान, उसका आलम्बन और उसका विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड विखण्डित विभाजित करो। एकेक रसालम्बन को जानने के क्षण में भी चुटकी बजाने मात्र की अवधि में जिह्वा पटल रूप कणें एकेक के ऊपर में - चकमक पत्थर पर के चिंगारियों के समान उदय-व्यय होकर, उदय-व्यय होकर गतिशील जिह्वा विज्ञान अनेकों करोड़ों बार होता है। इसे अनुभूति पर उतारो। शिष्यों, बार-बार मनसिकार कर ध्यान करो। बारम्बारता होने पर अनुभव होने लगेगा।

जिह्वा विञ्ञाण समाप्त

पृष्ठ – ४१५

काय पटल, काय विज्ञान का वर्णन

५. शिष्यो, काय विज्ञान किस प्रकार के किन कारणों पर आश्रित होकर किस प्रकार उदय-व्यय होकर रहता है? शिष्यों, क्लेश, रोम, हाथों-पैरों के नाखून, परिपक्व अस्थि, सूखी हुई त्वचा, पाचक अग्नि के स्थिति स्थानों को छोड़कर शेष संपूर्ण काया में काय पटल सभी जगह परिपूर्ण फैली है। नुकीली सुई चुभोने पर जहां-जहां दर्द करता है - दर्द की अनुभूति होती है उन संपूर्ण क्षेत्रों में काय पटलें परिपूर्ण फैली हुई हैं। इत्थि निमित्त पुरिम निमित्तों में विशेष कायिक सुख को उत्पन्न कर सकने वाले खूब तेज अत्यंत निर्मल विशेष काय पटल भी हैं। शिष्यों, यह काय पटल भी ठोस पिण्ड वस्तु नहीं है। इस काया के रूप की निर्मलता शक्ति मात्र ही है। शरीर काया होकर स्थित चार महाभूत रूप कणों की निर्मलता की शक्ति मात्र है। शिष्यों, यह चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय - प्रांचों पटलें कम्मज रूप ही हैं। कर्म आचार्य कारीगर द्वारा निर्मित द्वार पटल ही हैं।

शिष्यो, फोट्ठब्बालम्बन - (स्पर्श आलम्बन) कोमल-रूक्ष (खुरदरा) नामक पथवी फोट्ठब्ब, उष्ण शीतल नामक तेजो फोट्ठब्ब, उष्ण शीतल नामक तेजो फोट्ठब्ब, हलन-चलन वाला वायोफोट्ठब्ब – यह तीन तरह के फोट्ठब्ब हैं। शिष्यों, यह तीनों तरह के फोट्ठब्बालम्बन काय पटल पर आकर टकराते हैं। उस समय सागौन पर जैसे धुआं निकलता है - चकमक पत्थर पर जैसे चिंगारियां फूटती हैं - उसी तरह आ-आकर टकराने वाली फोट्ठब्बालम्बन को जानना-जानना नामक जानने के स्वभाव वाले फोट्ठब्बालम्बन, टकराने वाले काय पटल पर एकेक काय पटल रूप कण को आश्रित होकर, उत्पन्न होता है। चूंकि

यह जानने के स्वभाव को जानने वाला होने से विज्ञान कहलाता है। काया पर उत्पन्न होने वाला विञ्ञाण होने के कारण काय विज्ञान कहते हैं। शिष्यों, यह काय विज्ञान भी **सम्पत्तगाह** ही है।

पृष्ठ– ४१६

शिष्यो, सीत तेजो फोट्ठब्ब वाला ठंढे हाथ से पीठ को स्पर्श कर देने पर - उस स्पर्श किये पूरे पीठ के भीतर काय पटल रूप कणों पर काय विज्ञान उत्पन्न होकर शीतल है, शीतल है यह जानता है। शिष्यों, विज्ञान एक साथ एक ही क्षण में समानान्तर रूप से दो उत्पन्न नहीं होता। ऐसा न होने पर भी उदय-व्यय अत्यंत तीव्र होकर पञ्च द्वार, छः द्वार में मानो समानान्तर रूप से एक साथ उत्पन्न होने जैसा प्रतीत होता है। शीतल हाथ स्पर्श हुए पूरी पीठ में भी विज्ञान एकसाथ संपूर्ण होने का-सा प्रतीत होती है। विज्ञान जब यहां उत्पन्न होता है तब वहां उस दूसरे स्थान पर नहीं होता। जब उस दूसरे स्थान पर होता है तब यहां उत्पन्न नहीं होता। इस द्वार पर होते समय दूसरे द्वार पर नहीं रहता। उस दूसरे द्वार पर होते समय इस द्वार पर नहीं रहता है। शिष्यों, भलीभांति समझो।

शिष्यो, इस ठंढे हाथ को जानने वाला विज्ञान ठंढे हाथ के छूने के पूर्व नहीं था। चकमक पत्थर - उस पर घर्षण करने वाला लोहा - यह दोनों के घर्षण करने (टकराने) के पूर्व चिंगारियां नहीं थीं। इन दोनों के टकराने के समय पर - इन दोनों के कारण जिस तरह चिंगारियां उत्पन्न होती हैं उसी तरह इस शीतल हाथ के टकराने पर (स्पर्श करने पर) शीतल हाथ फोट्ठब्बालम्बन, पीठ काया पटल इन दोनों के कारण बनाकर उत्पन्न होकर आता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि ठंढे हाथ छूने के पूर्व से ही शीतलता को जानने वाला विज्ञान यदि पीठ पर हमेशा से विद्यमान होता तो बिना ठंढे हाथ के स्पर्श हुए - उसके पूर्व ही भी - शीतल है, शीतल है - यह जानते हुए रहता। ऐसा नहीं रहता है। इसलिये वह पहले से ही प्राकृतिक रूप से नहीं होता है। जब टकराता है - तब फोट्ठब्ब काय पटल दोनों को लेकर उत्पन्न होता है। इसीलिये भगवान बुद्ध ने यह देशित किया –

"कायञ्च पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति काय विञ्ञाणं।" (संयुत्त पाळि) - काय पटल को फोट्ठब्ब आलम्बनों के हेतु से काय विज्ञान उत्पन्न होता है।

शिष्यो, वह चिंगारियां जैसे क्षण भर में उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है - वैसे ही यह काय विज्ञान भी क्षण भर में उत्पन्न होकर नष्ट हो

पृष्ठ– ४१७

जाता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि इस ठंढे हाथ हो जानने वाला काय विज्ञान उत्पन्न होंकर बिना नष्ट हुए हमेशा स्थित होकर रहता होता तब ठंढे हाथ को बिन सटे रहे दिये, हटा लेने पर भी शीतल है - शीतल है - जैसे जानते थे वैसे ही

जानते रहते। लेकिन ऐसा नहीं रहता है। इसलिये उत्पन्न होकर सदा स्थिर नहीं रहता। क्षण भर में नष्ट हो जाता है। ढोलक वाद्य ध्वनि, धुआं, चिंगारी में एक ही समान निरीक्षण करो। शिष्यों, जब उसके कारण आकर टकराते हैं तबसे उत्पन्न होकर - उसके कारण के नष्ट हो जाने पर नहीं रहने पर वह नष्ट हो जाता है। इसी तरह गरम हाथ टकराकर गरम हाथ को जानने वाला विज्ञान बिना नष्ट हुए यदि हमेशा बना रहेगा तो गरम हाथ से बिना छूये अलग हटा लेने पर भी गरम है - गरम है - यह जानते हुए ही रहता है। कोमल पृथ्वी फोट्ठब्ब वत्थु आ टकराये - कोमल है - जानने वाला विज्ञान बिना नष्ट हुए यदि रहे तो वह कोमल वत्थु से बिना टकराये दिये अलग हटा लेने पर भी कोमल है, कोमल है - यही जानते रहता। ऐसा नहीं होता। इसीलिये उसके आलम्बन और उसके विज्ञान उसके आलम्बन और उसके विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहता है। शिष्यों, अनुभूति पर उतरने लायक साधना करो।

शीतल वत्थु को जानने वाला विज्ञान उस शीतलता में निरुद्ध हो जाता है। तप्त (गरम) वत्थु को जानने वाला विज्ञान उस ताप में समाप्त ही हो जाता है। कोमल वत्थु को जानने वाला विज्ञान उस कोमलता में समाप्त हो ही जाता है। रूक्ष (खुरदरा) वत्थु को जानने वाला विज्ञान उस रूक्षता (खुरदरेपन) में निरुद्ध हो ही जाता है। हलन-चलन करने वाले वायु को जानने वाला विज्ञान उस हवा में नष्ट हो ही जाता है। हवा से फुलाये गये तकिया को जानने वाला विज्ञान...। परस्पर काया में काया के स्पर्श को जानने वाला विज्ञान...। हाथ के स्पर्श को जानने वाला विज्ञान...। पैर के...। वस्त्र को...। कुर्ते के स्पर्श...। रूमाल के स्पर्श...। कपड़े के स्पर्श...। चीवर के स्पर्श...। शिष्यों, बहिद्ध

पृष्ठ – ४१८

वे तरह-तरह के पृथ्वी फोट्ठब्ब वत्थु, तेजो फोट्ठब्ब वत्थु वायो फोट्ठब्ब वत्थु आदि से स्पर्श कर - जानने वाला विज्ञान उन-उन वस्तुओं में निरुद्ध हो जाता है। जैसे कि प्रथम कदम के भीतर में स्पर्श को जानने वाला विज्ञान उस प्रथम कदम के भीतर में ही निरुद्ध हो गया। दूसरे कदम के भीतर में स्पर्श को जानने वाला विज्ञान उस दूसरे कदम के भीतर ही निरुद्ध हो गया। उस पूर्व-पूर्व के कदमों के भीतर में स्पर्श को जानने वाले विज्ञान पूर्व-पूर्व के कदमों के भीतर ही निरुद्ध हो गये। पश्चात-पश्चात के कदमों में वह नहीं है। शिष्यो, इस तरह उसके आलम्बन और उसके विज्ञान, उसके आलम्बन और उसके विज्ञान खण्ड-खण्ड विभाजित होकर। कहने को अनुभूति के स्तर पर देखो। साधना करो।

शिष्यो, काय पटलें भी संपूर्ण काया में परिपूर्ण रूप से फैली हुई हैं। पथवी, वायो, तेजो नामक फोट्ठब्बालम्बने भी संपूर्ण काया में परिपूर्ण रूप से फैली हुई हैं। प्राकृतिक रूप से विद्यमान फोट्ठब्बालम्बनें काय पटल से संयुक्त होकर रहने के बावजूद भी प्रारम्भिक प्रथम कलल द्रव की स्थिति के समय से ही केवल एक साथ विद्यमान रहने वाले होकर

एक संग संयुक्त रहने के कारण काय पटल में विज्ञान उत्पन्न होने जितना स्पर्श होना (टकराना) नहीं रहता है। जिस समय सारी काया के भीतर में कुछ स्थानों में; या सारी काया में; उतु, आहार, उपक्कम इरियापथ इत्यादि के कारण प्राकृतिक ढंग से अविद्यमान आगन्तुक फोट्ठब्ब विशिष्ठ रूप जब उत्पन्न हो आते हैं - उस समय आगन्तुक विशिष्ठ रूप फोट्ठब्ब काय पटल में स्पर्श कर (टकराकर) उस स्पर्श किये हुए काय पटल पर काय विज्ञानों को उत्पन्न करता है।

इसलिये सारी काया के भीतर कंपन गति है, ताप है, शीतलता है - यह जानते हैं। पगथली के भीतर का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द; - पैर की पिण्डलियों के भीतर का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द; जांघ के भीतर का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द; - कमर के भीतर का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द; शरीर के भीतर का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द; इसी तरह हाथ के भीतर का...

पृष्ठ – ४१९

सिर के भीतर का... आंख... कान... नाक... मुंह... जीभ... दांत... तालू... कंठ... आदि का ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव, थकान, दर्द, **यह सभी भीतरी काय पटल पर भीतरी आगन्तुक फोट्ठब्बालम्बनें स्पर्श कर (टकराकर) - काय विज्ञानों का उत्पन्न होना ही है, शिष्यों, इस तरह संपूर्ण काया के भीतर में असहनीय बेचैनियां, काय विज्ञान के** अन्तर्गत निहित दुक्खवेदना चेतसिक ही हैं। थकान, दुखाव, खुजलावों में दबाने खुजलाने से जो राहत, जो सुख आदि अच्छा लगना काय विज्ञान के अंतर्गत निहित सुखवेदना चेतसिक ही हैं।

शिष्यो, इस तरह तीव्र **फोट्ठब्बालम्बन** स्पर्श कर (टकराकर) उत्पन्न काय **विज्ञान** में विज्ञान के फोट्ठब्बालम्बन कोई पृथक कृत्य प्रकट नहीं करता है। असहनीय दुःखद, सहनीय सुखद, दुक्ख वेदना, सुख वेदना मात्र ही प्रकट होता है। यह वेदना भी काय विज्ञान चित्त से एक ही होकर, इस वेदना को ही काय विज्ञान समझकर ध्यान करो, शिष्यों। बहिद्धक फोट्ठब्बालम्बनों के स्पर्श करने के कारण; इस संपूर्ण काया में बाहर भी, भीतर भी, ताप, शीतलता, खुजली, दुखाव आदि सुखद-दुःखद यह सभी काय विज्ञानों का उत्पन्न होना ही है। उत्पन्न होकर भी क्षण भर में नष्ट होते जाता है। चकमक पत्थर पर उत्पन्न होने वाली चिंगारियां जिस प्रकार उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाती हैं - उसी तरह उस फोट्ठब्बालम्बन का स्पर्श स्थान काय पटल पर काय विज्ञान लक्-लक्, लक्-लक् चिंगारी का-सा उत्पन्न हो-होकर नष्ट होते जाता है। उसे अनुभव करते हुए जानो। काय विज्ञान उत्पन्न होकर गरमाता है - यह जानने पर चुटकी बजाने भर की अवधि में वह उत्पाद-व्यय अनेकों शत-सहस्त्र कोटि बार से भी अधिक हो चुका रहता है।

पृष्ठ – ४२०

शिष्यो, इस काय विज्ञान का निरीक्षण करते समय निम्न रूपों का - आहार, उतु, **चित्त, इरिया पथ** द्वारा उत्पाद-व्यय को निरीक्षण करना और एक ही एक साथ मिलाकर **निरीक्षण** करना। उसका रूप कण और उसका विज्ञान, उसका रूप कण और उसका **विज्ञान** - एकदम एकसाथ रखकर ध्यान करो। निरीक्षण करो। शिष्यो, यह काय विज्ञान उत्पन्न होकर क्षण भर में ही नष्ट होते जाता है। स्थिर नहीं रहता। शिष्यों, इस काय विज्ञान के उत्पन्न होने में - अनन्तर समनन्तर प्रत्यय शक्ति द्वारा उपकार करने वाला पूर्व चित्त नामक जनक कारण - अविज्जा, तण्हा, कम्म, काय पटल, फोट्ठब्बालम्बन इत्यादि सहयोग - उपत्थम्भक कारण (विषय) नामक दो कारण होते हैं। वे दोनों कारण भी अनित्य हैं। उत्पन्न होकर तुरंत नष्ट हो जाते हैं। क्षण भर में नष्ट होते जाते हैं। अनित्य हैं, शिष्यों! कड़ुवे बीज से मीठा वृक्ष कहां उगने वाला - वह कड़ुवा वृक्ष ही उगेगा। मरणधर्मा माता से उत्पन्न संतान अमर कैसे होगा - वह तो मरणधर्मा ही होगा। वह मरने वाला ही होगा। इस अनित्य के विषय कारणों से उत्पन्न काय विज्ञान भी भला कहां नित्य होगा। वह अनित्य ही होता है। वह क्षण-क्षण भर में नष्ट होकर बनने वाले स्वभाव का है। शिष्यों, इस तरह काय विज्ञान के उत्पाद-व्यय - अनित्य स्वभाव को अनुभव करते हुए ध्यान करो। निरीक्षण करो।

काय विञ्ञाण समाप्त

पञ्च विज्ञानों का वर्णन

शिष्यो, विपश्यना करो। अर्थात् दिट्ठ पच्चक्ख देखना। अर्थात् साफ-साफ दृष्ट प्रत्यक्ष देखना होता है। अनुभूति द्वारा जानना होता है। जो मुख्य मूल प्रधान है उस धर्म को निरीक्षण कर अनुभूति करें तो भी हमारा लक्ष्य पूरा हो जाता है, शिष्यों। चुटकी बजाने भर के भीतर में ही पञ्चद्वार विथि कुल अनेकों शतसहस्त्र कोटि बार उत्पन्न हो जाते हैं। जो इतनी शीघ्रता से उत्पन्न हुए जाता है - उसमें तुम क्या आवज्जन हो? क्या तुम चक्खु विज्ञान ही हो? सोत, घान, जिह्वा, काय विज्ञान ही हो? तुम क्या सम्पटिच्छन ही हो, तुम सन्तीरण ही हो, इत्यादि से प्रत्येक चित्तक्खण को भी साधन का ज्ञान पकड़ सकेगा ऐसा नहीं हो सकता। उस आवज्जन

पृष्ठ– ४२१

सम्पटिच्छन इत्यादि चित्तों के कृत्य भी प्रकट नहीं होता है। दिखना, सुनाई पड़ना इत्यादि पञ्च विज्ञान मात्र ही केवल साफ-साफ प्रकट हो सकते हैं। इसलिये इस विपश्यना साधना विधि में अस्पष्ट अप्रकट चित्त समूह अर्थात् अमूर्त चित्त समूह को छोड़कर, मूर्त पञ्च विज्ञानों को ही निरीक्षण किया जाता है। इस तरह निरीक्षण करने के लिये भगवान ने पृथक कर देशित किया है, शिष्यों।

एक प्रकार से आवज्जन सम्पटिच्छन इत्यादि पञ्चद्वार में (पर) उत्पन्न होने वाले चित्त प्रत्येक अपने-अपने कृत्य को प्रकट मूर्त नहीं करते। वीथि के अंत में दस्सन किच्च,

सवन किच्च इत्यादि पञ्च विञ्ञाणों का एक ही कृत्य प्रकट होता है। पञ्च द्वारिक समस्त चित्त इस पञ्च विञ्ञाणों के एक ही कृत्य पूर्ण करने के लिए मूर्त रूप में प्रकटतः होने पर ही होता है। अतिशीघ्रता से घटित होने के कारण चित्तक्खण क्रम को भी हम विभाजित नहीं कर सकते। इसलिये इस विपश्यना साधना विधि में रूपालम्बन को देखकर चक्षुद्वार पर उत्पन्न होने वाले समस्त चक्खुद्वारिक चित्तों को दस्सन किच्च वाले चक्खु विञ्ञाण में प्रविष्ट कर चक्खु विञ्ञाण के संग एक ही रखकर चक्खु विज्ञान ही पुकारना समझें। ध्वनि को सुनकर सोत द्वार पर उत्पन्न संपूर्ण सोत द्वारिक चित्तों को सवन किच्च वाले - सोत विञ्ञाण में प्रविष्ट कर सोत विज्ञान के संग एक ही रखकर (मानकर) सोत विज्ञान ही कहते समझते हैं। गंध को सूंघकर घान द्वार में उत्पन्न सभी घ्राण द्वारिक चित्तों को घ्रायण कृत्य वाले घ्राण विज्ञान में प्रविष्ट कर घ्राण विज्ञान के संग एक ही मानकर, रखकर घ्राण विज्ञान ही पुकारते समझते हैं। रसालम्बन को जानकर जिह्वा द्वार में उत्पन्न संपूर्ण जिह्वा द्वारिक चित्तों को सायन किच्च (स्वादायन किच्च) वाले जिह्वा विज्ञान में प्रविष्ट कर जिह्वा विज्ञान के संग एक ही रखकर (मानकर) जिह्वा विज्ञान ही पुकारते समझते हैं। फोट्ठब्बालम्बन को जानकर काय द्वार में उत्पन्न होने वाले संपूर्ण काय द्वारिक चित्तों को फुसन किच्च वाले काय विज्ञान में प्रविष्ट कर - काय विज्ञान के संग एक ही रखकर (जानकर) काय विज्ञान ही जानते पुकारते हैं। इस तरह कहते पुकारते (समझते) हुए पञ्च विज्ञान में सुख-दुःख उपेक्खो वेदना - यह तीनों विषयासुनार संयुक्त होने को भगवान ने देशित किया है।

पञ्च विञ्ञाण समाप्त हुआ।

पृष्ठ – ४२२

मनोविज्ञान मनोपटल का वर्णन

शिष्यो, मनोविज्ञान कैसे विषय कारणों से किस पर आश्रित होकर नष्ट होते (व्यय होते) रहता है। शिष्यों, हृदय गुहा के भीतर हृदय रुधिर कहलाने वाला हदयवत्थु रूप द्रव कणें एकेक के ऊपर में पण्डर पभस्सर (निर्मल प्रकाशमान) मनोपटल है। इस मनोपटल को अभिधम्म विधि में भवङ्गचित्त कहते हैं। अतीत का कम्म, कम्म निमित्त, गति निमित्त इन तीनों निमित्त आलम्बनों में किसी एक को आलम्बन बनाकर उत्पन्न होते रहता है। इस भवङ्ग के अनेकों मनोपटलों को निरन्तर उत्पन्न होते रहते हुए जब पुग्गल कुछ नहीं जानता - उस समय सोया रहता है - बेहोश रहता है - ऐसा कहते हैं। शिष्यों, रूप आलम्बन, शब्द आलम्बन, गंध आलम्बन, रस आलम्बन, फोट्ठब्ब आलम्बन इन पांचों आलम्बन धर्मों के अतिरिक्त शेष सङ्खत असङ्खत पञ्ञत्त आदि के सभी संपूर्ण धर्मों को धम्मालम्बन कहते हैं। शिष्यों, जिस समय वे धम्मालम्बनें इस मनोपटल में स्पर्श करते टकराते हैं। उस समय वाद्य ध्वनि, धुआं, चिंगारियों के कारण जैसे उत्पन्न होता है - वैसे ही वह आकर स्पर्श किये धम्मालम्बन को जानना जानना नामक जानने के स्वभाव हदयवत्थु - रूप कणें एकेक के ऊपर में उत्पन्न होता है। इस जानने के स्वभाव को

जानने का स्वभाव होने के कारण विज्ञान कहते हैं। मनोद्वार पर उत्पन्न होने के कारण विज्ञान कहते हैं। मनोद्वार पर उत्पन्न होने के कारण मनोपटल के आधार पर उत्पन्न होने के कारण मनोविज्ञान कहते हैं। इस मनोविज्ञान को अभिधम्म नय में मनोद्वारवज्जन जवन तदालम्बन चित्त कहते हैं। मनोद्वार वीथि चित्त भी कहते हैं।

शिष्यो, यह मनोविज्ञान धम्मालम्बन के स्पर्श के पूर्व नहीं था। वाद्य ध्वनि, धुआं, चिंगारी के समान मनोपटल में धम्मालम्बन जब स्पर्श कर प्रकट होता है तबसे उस मनोपटल धम्मालम्बन दोनों शिष्यों को लेकर उत्पन्न होता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि यह मनोविज्ञान - धम्मालम्बन प्रकट नहीं हुआ होता (अर्थात् स्पर्श नहीं किया हुआ होता) और पहले से ही विद्यमान रहता तो हर समय हृदय के भीतर वह जानकारी बनी ही रहती। बेहोश होना, अचेत होना, नींद में होना, यह सब नहीं होता। हमेशा जानते रहता। लेकिन बेहोशी, अचेतनता, नींद की दशा होती है।

पृष्ठ– ४२३

इसलिये यह पहले से ही विद्यमान नहीं रहता। जब धम्मालम्बन स्पर्श करता है मनोपटल, धम्मालम्बन इन दोनों विषयों को लेकर उत्पन्न होता है। इसलिये भगवान ने कहा –

"मनञ्च पटिच्च धम्मेच उप्पज्जति मनो विञ्ञाणं" (संयुत्त पाळि)

मनोपटल को, धम्मालम्बनों को संयुक्त कर (आधार बनाकर) मनोविज्ञान उत्पन्न होता है।

शिष्यो, कारण विषयों को संयुक्त कर (आधार पर) उत्पन्न होने वाले वाद्य ध्वनि, धुआं, चिंगारी उत्पन्न होते ही क्षण मात्र में जिस तरह नष्ट होते चले जाते हैं - उसी तरह कारणों से उत्पन्न होने वाला यह मनोविज्ञान उत्पन्न होकर क्षण भर में ही नष्ट हो जाता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि एकेक धम्मालम्बन को जानकर उत्पन्न होने वाला यह मनोविज्ञान उत्पन्न होने के बाद नष्ट नहीं होता - यदि सदा बना रहता तो हर समय उस धर्म को ही वह जानते रहता। अन्य दूसरा धम्मालम्बन को जानना भी नहीं हो सकता। बेहोशी, अचेतनता, निद्रा भी नहीं आती। हमेशा जानते नहीं रहता। दूसरे अन्यान्य धम्मालम्बनों को भी परिवर्तन कर जानना होता है। बेहोशी, अचेतनता, निद्रा भी होती है। इसलिये एकेक धम्मालम्बन को जानकर उत्पन्न होने वाला यह मनोविज्ञान उत्पन्न होकर क्षण मात्र में ही नष्ट हो-हो जाता है। हमेशा स्थिर होकर नहीं रहता।

शिष्यो, रात को सोते समय, नींद में होते समय, मनोविज्ञान नहीं होकर कुछ भी नहीं जानता। हृदय गुहा के भीतर हदय वत्थु रूप कणों पर जैसे जुगनू किसी एक वस्तु पर विश्राम कर लगातार शीघ्रता से उड़ते हुए चमकता जाता है - वैसे ही मनोपटल ही चमकते-चमकते लक्-लक्-सा होकर रहता है। उस तरह रहते समय रूपालम्बन, शब्दालम्बन,

गंधालम्बन, रसालम्बन, फोट्ठब्बालम्बन, धम्मालम्बन - छहों आलम्बनों में अचानक कोई एक आलम्बन - इस मनोपटल पर प्रकट हो आये - (स्पर्श कर जाये); यदि नक्षत्र, तारा

पृष्ठ – ४२४

वर्ण प्रकट हो आवे; उस समय चकमक पत्थर, उस पर रगड़ने वाला लोहा रगड़ खाकर जैसे चिंगारी उत्पन्न होता है वैसे प्रकट हुए तारे के वर्ण को जानना - जानना नामक जानने वाला स्वभाव मनोविज्ञान - मन्द शक्तियां अनेकों शत सहस्त्र कोटि बार से अधिक उत्पन्न होते हैं। वैसे होने पर भी ये मनोविज्ञान अत्यंत क्षीण, मन्द शक्ति के कारण जानने वाली संज्ञा नहीं जान सकती है। सति नहीं रहती। उसके पश्चात शक्ति शाली - तीव्र मनोविज्ञान लगातार उत्पन्न हो आने से याद आकर सति प्राप्त होकर - अरे, मैं तारों को देख रहा हूं। तारों को देखना प्राप्त हुआ। इस तरह स्वप्न देखता जो हूं - इस तरह खुशी-खुशी जानकर जागता है। शिष्यों, इस तरह अनेकों भवंगों के उत्पन्न होते समय में कोई एक न एक जब आलम्बन से टकराकर जानने वाली संज्ञा सति यदि मंद-क्षीण होता है - शक्ति कम होती है - तो मनोविज्ञान का उत्पन्न होने को लोक में स्वप्न देखना कहते हैं। जब जानने की संज्ञा - सति तीव्र तथा शक्तिशाली होती है तब दृढ़ मनोविज्ञान उत्पन्न होता है - जिसे जाग गया कहते है।

शिष्यो, ये मनोविज्ञान उत्पन्न होकर जब स्वप्न देखते होते हैं उस समय जब जागते हैं तब मनोपटल नहीं होता। निरुद्ध होकर समाप्त हो जाता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि मनोपटल ही हमेशा उत्पन्न होकर स्थित रहना होता तो इस तरह स्वप्न देखना - जागना नहीं होता। कुछ भी बिना जाने, बिना याद (स्मरण - सति) आये ही रहते। लेकिन ऐसा नहीं रहते। इसलिये ये मनोविज्ञान उत्पन्न होकर स्वप्न देखते समय, जागते (नींद से) समय - मनोपटल नहीं होता। निरुद्ध होकर समाप्त हो जाते हैं। शिष्यों, इस तरह स्वप्न देखकर, जाग पड़ने पर, मैंने इस तरह का स्वप्न देखा तो ऐसा अच्छा फल आवेगा। इत्यादि शुभ लाभ नामक धम्मालम्बन, शुभ फलदायक बुद्ध गुणों का चिंतन करना इत्यादि द्वारा बुद्ध गुण नामक धम्मालम्बन के लुप्त (मृत) तारे नामक रूपालम्बन; उसके अतिरिक्त अन्य आलम्बनें मनोपटल पर बार-बार प्रकट होकर वह उत्पन्न हुए आलम्बनों को जानना - जानना नामक जानने के स्वभाव वाले वृहद्

पृष्ठ – ४२५

मनोविज्ञानें थोड़ी देर बाद उत्पन्न होकर जागने पर रहते हैं। उसके पश्चात, कुछ समय पश्चात वे आलम्बनें नहीं प्रकट होने के कारण मनोविज्ञान नहीं उत्पन्न होकर कुछ भी नहीं जानकर पुनः सो जाते हैं। मनोपटल ही मात्र उत्पन्न होकर पुनः रहता है। उस तरह पुनः सो जाने पर स्वप्न देखने वाला, जागने वाला वृहद् मनोविज्ञान कुछ भी नहीं रहता। निरुद्ध हो जाता है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि इस स्वप्न को स्वप्न के विषय (कारण) को जान-जानकर विचार कर-कर रहने पर ये मनोविज्ञान उत्पन्न होकर बिना नष्ट हुए सदा स्थित रहे तो कभी भी सोना नहीं हो सकेगा। कैसे हो सकेगा

भला ? स्वप्न को, अनजाने निरुद्देश्य किसी को जानते-सोचते, जानते-सोचते ही रह जाते। लेकिन ऐसा नहीं होता। इसलिये वह पुनः सो जाने पर मनोविज्ञान नहीं रहते। निरुद्ध हो गये होते हैं।

शिष्यो, उसके पश्चात ब्रह्ममुहूर्त में प्रत्यूष के समय - जब कि मुर्गों की बांग, लोगों की आवाज इत्यादि ध्वनियां सोतपटल पर टकराकर सोत द्वार वीथि में गिरने पर, शुद्ध मनोपटल पर कोई धम्मालम्बन प्रकट होकर, उस प्रकट हुए धम्मालम्बन को जानना - जानना नामक जानने का विचार करने वाला स्वभाव मनोविज्ञान उत्पन्न होकर जागता है - यह होता है। उसके पश्चात छः द्वारों पर छहों आलम्बनें लगातार एक के बाद एक टकरा-टकराकर छहों विज्ञान लगातार एक के बाद एक उत्पन्न होते रहने के कारण सारा दिन जगे हुए रहते हैं। शिष्यों, यह मनोविज्ञान छहों आलम्बनों को ही आलम्बन कर सकता है। रूपालम्बन आदि पांचों आलम्बन पञ्च द्वार पर बिना टकराये केवल मनोपटल पर जब प्रकट होंगे - उस समय पञ्चालम्बनों को जानने वाला, विचारने वाला मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। जिस समय धम्मालम्बने मनोपटल पर उभरते (प्रकट) होते रहते हैं - उस समय धम्मालम्बन को जानने वाला, सोचने वाला मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। आंख भी बिना देखे, कान भी बिना सुने, नाक भी बिना सूंघे, जीभ भी बिना स्वादों को जाने, काया भी किसी भी स्पर्श को बिना अनुभव किये, मन में (हृदय में) चल रहे चिंतन - सारा जाना हुआ छहों आलम्बनों में कोई एक न एक आलम्बन मनोपटल पर प्रकट होकर

पृष्ठ– ४२६

उस प्रकट आलम्बन को मनन-चिंतन करने जानने वाले मनोविज्ञानों का उत्पन्न होना ही है। उसके पश्चात दिन पूरा होता है। पुनः रात के आने पर छहों आलम्बन बिना प्रकट हुए छः विज्ञानों का उत्पन्न होना - नहीं होन के कारण कुछ भी नहीं जानते हुए पुनः सो जाता है। पुनः उस समय मात्र मनोपटल मात्र ही उत्पन्न होकर रह जाता है।

उस समय दिन के (समय के) विचार जानने वाले मनोविज्ञान नहीं रहते। उत्पन्न होकर विनष्ट होते हुए समाप्त हो जाते हैं। शिष्यों, इस तरह मनोविज्ञान के उत्पत्ति को जानकर गत कल का मनोविज्ञान आज तक नहीं है। आज का मनोज्ञान आगामी कल नहीं रहेगा। रात का मनोविज्ञान दिन में नहीं रहता। दिन का मनोविज्ञान रात में नहीं रहता। खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहता है। उस दिन के समय, रात के समयों में जितना भी मनोविज्ञान उत्पन्न होता है वह भी उसके आलम्बन और उसके विज्ञान - उसके आलम्बन और उसके विज्ञान द्वारा खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहता है। इस तरह खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहने की अवस्था को अनुभव करने देखने लायक देखो - जानो। खण्ड-खण्ड विभाजित होने लायक विभक्त करो। रूपालम्बन को चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस रूपालम्बन में निरुद्ध ही होता है। सद्दालम्बन को चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस सद्दालम्बन में निरुद्ध हो जाता है। गन्धालम्बन को चिंतन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला

मनोविज्ञान उस गन्धालम्बन में निरुद्ध हो ही जाता है। रसालम्बन को चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस रसालम्बन में निरुद्ध हो ही जाता है। फोट्ठब्बालम्बन को चिंतन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस फोट्ठब्बालम्बन में निरुद्ध हो ही जाता है।

धम्मालम्बन को चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस धम्मालम्बन में निरुद्ध हो ही जाता है। मनुष्य को चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस व्यक्ति में निरुद्ध हो जाता है। देवता को, ब्रह्मा को, स्त्री को, पुरुष को, प्राणि को, चिन्तन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस... प्राणि में निरुद्ध हो जाता है। बुद्ध को आलम्बन करने वाला मनोविज्ञान उस बुद्ध में निरुद्ध हो जाता है। धर्म को, संघ को, शील को, त्याग को, देव को, निर्वाण को, मृत्यु को, द्वत्तिंसाकार को, आश्वास-प्रश्वास को चिंतन-मनन, समझने-जानने वाला मनोविज्ञान उस आते-जाते सांस में निरुद्ध हो जाता है। पथवी धातु को, आपो धातु को, तेजो धातु को, वायो

पृष्ठ – ४२७

धातु को, आकाश धातु को, विञ्ञाण धातु को मनन-चिंतन, समझने-जानने, निरीक्षण करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस विज्ञान धातु में निरुद्ध हो जाता है। रूप को, नाम को, अनिच्च को, दुक्ख को, अनत्त को चिन्तन-मनन, निरीक्षण करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस अनत्त में निरुद्ध हो जाता है। ध्यान (ज्ञान) को, अभिञ्ञाञ को, मग्ग को, फल को, निब्बान को चिन्तन-मनन, निरीक्षण करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान उस निब्बान में निरुद्ध हो जाता है, शिष्यों।

जो-जो कुछ असावधानी से अनजाने चिंतन-मनन, कल्पना करने वाला, जानने वाला मनोविज्ञान है - वह-वह अपने चिंतन-मनन, कल्पना किया जाना हुआ मनोविज्ञान, उस-उस अपने चिंतन-मनन कल्पना किये जाते हुए आलम्बन में निरुद्ध हो जाते हैं। शिष्यों, इस तरह से मनोविज्ञान को उसके आलम्बन और उसके विज्ञान द्वारा आलम्बन से भी खण्ड-खण्ड विभाजन करने लायक विभाजित कर देखो। साधना करो। उसके अतिरिक्त यह मनोविज्ञान जब उत्पन्न होता है तब कभी लोभ-राग से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। कभी दोष से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। कभी मोह से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। कभी दिट्ठि से, कभी मान से, कभी इस्सा से, कभी मच्छरिय से, कभी विचिकिच्छा से, कभी उदच्च से, कभी तन्दी से, कभी थिनमिद्ध से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। कभी अकुशल से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। कभी सद्धा से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। कभी सति से, कभी हिरीओत्तप्प से, कभी प्रज्ञा से, कभी मैत्री से, कभी करुणा से, कभी मुदिता से, कभी उपेक्खा से, कभी प्रीति से, कभी समाधि से, कभी वितर्क से, कभी ञाण संवेग से, कभी सोमनस्स से, कभी दोमनस्स से, कभी उपेक्खा से, कभी शोक से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न

होकर आता है। कभी शोक रहित प्रीति प्रश्रब्धि सुख से युक्त मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आता है। एक तरह का मनोविज्ञान उत्पन्न होकर आने पर एक तरह का मनोविज्ञान निरुद्ध हो जाता है। नहीं रहता शिष्यों, इस तरह के, तरह-तरह के चेतसिकों को समझकर भी इस मनोविज्ञान का खण्ड-खण्ड विभाजित कर स्थित होने को अनुभूति के तल पर देखने जाने लायक ध्यान द्वारा देखो।

पृष्ठ– ४२८

इन तरह-तरह के चेतसिकों से युक्त होकर उनमें से किसी को भी अचानक अनजाने (असावधानी से), एकेक को चिंतन-मनन, निरीक्षण कर, कल्पना कर जानते हुए क्षण में भी - चुटकी बजाने भर के समय की अवधि में उत्पाद-व्यय होने वाला मनोविज्ञान अनेकों शत-सहस्त्र कोटि बार होता है। इस तरह क्षण मात्र में उत्पाद-व्यय होकर रहने वाली इस अवस्था को, अपना ज्ञान जितना तीव्र है उतना, उसको जितना छू सकें, जान सकें उतना, देखो। लगातार चकमक पत्थर पर रगड़ते लोहे से - पत्थर पर उत्पन्न चिंगारियां जैसे लक्-लक्, लक्-लक् उत्पन्न होती, नष्ट होती रहती हैं - उसी तरह हृदयवत्थु रूप द्रव कणें एकेक पर मनोविज्ञान लक्... लक्... बिना क्रम टूटे उत्पन्न होते, नष्ट होते रहती है। अनुभूति पर देखो - अनुभूति करो। शिष्यों, बार-बार मनन-चिंतन करो और देखो। बार-बार भावना करने पर यह स्पष्ट अनुभूति पर दिखने लगेगा।

शिष्यो, आर्यों के धर्म से अनजान - अरियधम्म अकोविद पुग्गल लोग इसको चिंतन-मनन समझते निरीक्षण करते हुए जानने वाला विज्ञान ही है - उसको चिंतन-मनन समझते-जानते हैं। उसको चिंतन-मनन समझने-जानने वाला विज्ञान ही इसको चिंतन-मनन समझता जानता है। संवरं के विचार समझे हुए, जाने हुए विज्ञान ही - दोपहर के समय, संध्या के समय - चिंतन विचार समझता, जानता है। आज का विचार-चिंतन समझा हुआ - जाना हुआ विज्ञान ही कल भी सोचता-विचारता हुआ जानता है। पूर्व-पूर्व के विचार चिंतन जो समझे थे, जाने थे, उन विज्ञान को ही पश्चात-पश्चात का विचार-चिंतन जानता-मानता है - उसे एक ही सूत्र लगातार नित्य मानता समझता है। तुम लोग मेरे शिष्य गण इस तरह मत समझना। ऐसा मत जानना। जैसा कि अभी मैंने देशित किया उसके अनुसार खण्ड-खण्ड विभाजित है। इसे अनुभूति द्वारा समझने लायक देखो। क्षणिक है। उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है - इसे अनुभूतिपूर्वक देखो और जानो।

शिष्यो, यह मनोविज्ञान उत्पन्न होते ही क्षण-क्षण में नष्ट हो जाता है। अनित्य है - अस्थिर है। शिष्यों, मनोविज्ञान की उत्पत्ति में **अनन्तर, समनन्तर प्रत्यय** शक्ति से उपकार करने वाला पूर्व मनोपटल नामक जनक हेतु अविद्या, तण्हा, कम्म, पञ्च आलम्बन

पृष्ठ– ४२९

धम्मालम्बन इत्यादि सहायक उपत्थम्भक हेतु यह दो हैं। यह दोनों कारण (हेतु) भी उत्पन्न होकर क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं। क्षण भंगुर हैं - अनित्य हैं। शिष्यों, कड़ुवे

वृक्ष के बीज से उत्पन्न वृक्ष मीठा नहीं हो सकता - जैसे वह सदा कड़ुवा ही होगा - मरणधर्मा जननी से जन्मी सन्तान सदा नहीं रह सकती, मरती ही है - उसी तरह अनित्य हेतु से उत्पन्न मनोविज्ञान भला नित्य कैसे हो सकता है? अनित्य ही होता है। क्षण-क्षण नष्ट होते जाता है। शिष्यों, चाहे यह मनोविज्ञान हो; चाहे पञ्च विज्ञान हो - यह छहों विज्ञान रूप कणों को आश्रित होकर उत्पन्न होती है। जबकि इन विज्ञानों का आश्रय स्थल रूप कणें ही स्वयं नित्य नहीं, क्षण-क्षण में नष्ट हो रहे हैं - तो इस अनित्य क्षण-क्षण नष्ट हो रहे धर्मों पर आश्रित होकर उत्पन्न होने वाले ये छहों विज्ञान भला कैसे नित्य हो सकते हैं, मेरे शिष्यों। क्षण-प्रतिक्षण नष्ट होते जा रहे हैं। शिष्यों, इस तरह मनोविज्ञान के इस अनित्य स्वभाव का अनुभूतिजन्य दर्शन करो।

मनोविज्ञान समाप्त

छः विज्ञान का दर्शन कर कृतकृत्य होना

शिष्यो, इस तरह छः विज्ञानों के उदय-व्यय - अनित्य स्वभाव का अनुभूतिजन्य दर्शन करो। बार-बार चिंतन-मनन कर दर्शन करो। दर्शन की बारम्बारता अधिक होने पर अनुभूतिजन्य दर्शन होने लगेगा। इस तरह दर्शन कर विज्ञान के उदय-व्यय का खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहने का अनित्य स्वभाव जब प्रकट होने लगेगा तब मैं नामक धर्म किस समय से उदय-व्यय होता है - यह नहीं है। नया-पुराना बदल लेता है यह नहीं है। मैं विभिन्न प्रकार का उत्पन्न होता है यह नहीं। सारे दिन में एक ही 'मैं' है। माह भर में भी एक ही मैं। वर्ष भर में एक ही मैं।

पृष्ठ – ४३०

मैं - बचपन में क्या किया। मैं - अभी क्या करता है। मैं - भविष्य में क्या करेगा। मैं - कहां जायेगा। मैं - मरेगा। इत्यादि से सारे जीवन भर में भी केवल एक ही मैं रहता है। मैं - पूर्व जन्म में क्या था, यह भी नहीं जानता। मैं - को हुए कितना संसरण लम्बा हो गया यह भी नहीं जान सकता। मैं - भविष्य में निब्बान तक जाना चाहता है। बुद्ध होना चाहता है। प्रत्येक बुद्ध होना चाहता है। अग्गसावक होना चाहता है। इत्यादि द्वारा संपूर्ण एक संसरण भर में एक - मैं - ही है।

विज्ञान खण्ड-खण्ड विभाजित होकर रहता है। नष्ट हो-होकर रहता है। पुराना विज्ञान नये विज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। चुटकी बजाने भर की अवधि में यह विज्ञान अनेकों शतसहस्त्र कोटि बार से भी अधिक बार नया-पुराना परिवर्तित होकर भी केवल एक ही (मैं) बचता है। विज्ञान के उत्पत्ति का मार्ग एक, मैं - उत्पत्ति का मार्ग एक - एक ही नहीं होकर अलग-अलग होकर रहने से विञ्ञाण धातु को 'मैं' नहीं समझ सकते - नहीं निर्भर हो सकते - विज्ञान धातु के भीतर में 'मैं' को ढूंढ़े नहीं पा सकते हुए - अरे, यह विज्ञान धातु तो 'मैं' नहीं है भाई! अरे, इस विज्ञान धातु में 'मैं' नहीं हू भाई - ऐसा चित्त होकर 'मैं' लुप्त हो जाता है - (छूट जाता है) शिष्यों। इस तरह

'अनित्य' का बोध होता है - मैं निरुद्ध होता है। इसी को लक्ष्य कर भगवान ने यह देशित किया :–

अनिच्चसञ्ञिनो मेघिय अनत्तसञ्ञा सण्ठाति। अनत्तसञ्ञी अस्मिमान समुग्घातं पापुणाति। दिट्ठेव धम्मे निब्बानन्ति।

नवङ्गुत्तर पाळि - उदान पाळि - में भगवान ने यह मेघिय को देशित किया है। इसका अर्थ पीछे रूप खण्ड - अनिच्च अध्याय में आ चुका है, शिष्यों। (पीछे मूल बर्मी पृष्ठ ३०२ पर)

शिष्यों, इस तरह 'मैं' निरुद्ध होता है। उसके लुप्त हो जाने पर इस विज्ञान धातु को 'मेरा' के रूप में आसक्ति छूट जाती है। आसक्ति रहित हो जाता है। इन्हीं कारणों से - "नेसो हमस्मि नेतं मे। एवं तत्थ विरज्जति" को उद्देसवार में मैंने देशित किया है।

पृष्ठ– ४३१

शिष्यो, भगवान बुद्ध जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर यह कहा–

विञ्ञाणं भिक्खवे अनिच्चं, योपि हेतु योपि पच्चयो विञ्ञाणस्स उप्पादाय, सोपि अनिच्चो, अनिच्चसम्भूतं भिक्खवे विञ्ञाणं कुतो निच्चं भविस्सति। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरिय सावको विञ्ञाणस्मिम्पि निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागो विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति। वुसितं ब्रह्मचरियं कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाति पजानातीति। (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि - अनिच्च सुत्त)

भिक्षुओ, विज्ञान अनित्य है। विज्ञान के उत्पाद होने में उसका उत्पादक जनक हेतु; उसको सहायता करने वाला प्रत्यय उपत्थम्भक हेतु है। यह दोनों हेतु भी अनित्य हैं। भिक्षुओं, अनित्य हेतु से उत्पन्न अनित्यसम्भूत विञ्ञाण कैसे नित्य हो सकता है? भिक्षुओं, इसका साक्षात (दर्शन) करने वाला अनित्यता का दर्शन करने में दक्ष समझदार - श्रुतवान (सुतवा) कहलाने वाला पुग्गल, मेरा आर्य श्रावक - विज्ञान में भी - विज्ञान धातु में भी निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद को प्राप्त होने पर विरक्त हो जाता है। विराग के कारण विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'मैं आस्रव धर्मों से मुक्त हो गया' - यह ज्ञान होता है। 'मेरे लिये जन्म क्षीण हो गया। ब्रह्मचर्यवास

पृष्ठ– ४३२

आचरित किया जा चुका। करणीय कृत्य को कर चुका। 'इस सबको पूर्ण कर चुकने के फलस्वरूप - अब इसके अतिरिक्त कृत्य कुछ नहीं है।' इस तरह भी परिपूर्ण रूप से जान लिया।

इस तरह भगवान ने इस उपदेश के अंत में - इस देशना को सुनने वाले वे सभी

भिक्षु उनके निर्देशानुसार आचरण करते हुए, वीर्य करते हुए, दर्शन करते हुए, यह विज्ञान धातु का मैं नहीं होना - साफ-साफ देख लिये। साक्षात्कार कर लिये। अतएव सभी आस्रव धर्मों से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त हो गये। तुम सभी शिष्य गण भी उन भिक्षुओं के समान - विज्ञान धातु हम नहीं इस अवस्था का स्पष्ट साक्षात्कार कर, जानकर, आस्रव धर्मों से मुक्त होकर, निर्वाण प्राप्ति हेतु अभी जैसा मैंने समझाया वैसा प्रयत्न कर ध्यान करो। देखो। मेहनत से काम करो।

शिष्यो, इस स्थान पर भी अनुसासनी सुत्त को देशित करना उचित होगा। रखना उचित होगा। इसीलिये पीछे रूप अनिच्च खण्ड में देशित - अनिच्चनय विपस्सना सुत्त नाम प्राप्त अनुसासनी सुत्त को; जब मैं अरण्यवासी होने के लिये निष्क्रमण किया उस समय का रचित - नेक्खमविधान दीपनी ग्रन्थ के अनिच्च खण्ड में रखे गये गाथाओं को भी इस ग्रन्थ में यहां पर देशित अनुसासनी सुत्त के स्थान पर रखकर कंठस्थ कर निरीक्षण करो। इस स्थान पर भी संबंधित गाथाएं ही हैं।

इति अनिच्चेत सुञ्ञतनयो

पृष्ठ – ४३३

दुक्ख द्वारा सुञ्ञत की साधना

शिष्यो, विज्ञान धातु को "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।" नामक उद्देश्य के अनुसार मैं नामक 'अत्त', मेरा नामक अत्तनिय शून्य, निरुद्ध हो जाय इसके लिये अनिच्च द्वारा साक्षात्कार करना सुञ्ञत विधि को देशित करने के पश्चात अभी पुनः इस विज्ञान धातु को ही दुक्ख द्वारा अत्त अत्तनिय शून्य हो जाये, निरुद्ध हो जाये इसके लिये सुञ्ञत विधि को निर्देशित करता हूं :–

विज्ञान धातु का जाति (जन्म) - दुक्ख आदि का वर्णन

शिष्यो, पीछे रूप दुक्ख खण्ड में बताया हुआ - उप्पादो जाति अक्खातो - नामक गाथा के अनुसार इस विज्ञान धातु में भी जाति भय, जरा भय, व्याधि भय, मरण भय - यह चारों भय रहता ही है। इसीलिये ही तो भिक्षुओं, भगवान ने यह देशित किया :–

"यो भिक्खवे विञ्ञाणस्स उप्पादो, ठिति, अभिनिब्बति, पातुभावो, दुक्खस्स सो उप्पादो, रागानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो।" (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि)

भिक्षुओ, विज्ञान का वह उत्पाद होता है। उस विज्ञान का उत्पाद होना दुक्ख का, जाति दुक्ख का उत्पाद होना ही है। विज्ञान की वह स्थिति (ठिति), वह उप्पाद – ठिति नामक दो क्षण का उत्पन्न होना है। उस विज्ञान की स्थिति दो क्षण का उत्पन्न होना

रोगों की स्थिति ही है। विज्ञान का उन तीन-तीन क्षणों का प्रकट होना होता है। उन तीन क्षणों का प्रत्यक्ष प्रकट होना - प्रादुर्भाव होना

पृष्ठ – ३३४

जरामरण का ही प्रादुर्भाव है।

शिष्यो, कोमल - नव पल्लवित पत्तियां तोड़कर, लाल दहकते अंगारों में डाल देने पर वह क्षण मात्र में जऊकर राख (होकर नष्ट) हो जाती है। नये तिल के ताजे बीजों को यदि गर्म दहकते कड़ाही में डाल दें तो वह क्षण भर में चट्-चट् कर नष्ट हो जावेंगी। ठीक इसी तरह विज्ञान भी उत्पन्न होते ही क्षण भर में जरामरण की अग्नि में जल-जल कर विलीन होते जाता है। नष्ट होते जाता है। यह कथन सत्य है। शिष्यो, नष्ट होने के स्वभाव वाले सभी धर्म - नष्ट न हुए हों तो नष्ट होने के लिये - परिपक्व, जर्जर, जरा स्वभाव वाले हैं। यह हमेशा से उनकी धर्मिता है।

शिष्यो, इस तरह जाति भय, जरा भय, उस जग भय से टकराकर व्याधि भय, मरण भय से सतत आक्रांत - ये जरा अग्नियां, मरणाग्नियां, सतत जिसे जला रही हैं ये विज्ञान धातु कैसे अच्छे स्वभाव, अच्छे क्षेत्र, राहत देने के स्वभाव वाले, राहत देने वाले क्षेत्र, सुख स्वभाव वाले, सुखदायी क्षेत्र हो सकते हैं? अरे वे तो कभी भी सुख नहीं दे सकने वाले शुद्ध दुःख ही हैं। दुःख धर्म ही हैं। इसीलिये भगवान ने कहा है :–

"केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स" सुख रहित केवल दुक्ख ही है। नाम-रूप नामक दुःख पिण्ड है।

विज्ञान को दुक्ख जानकर कृतकृत्य हो जाने का वर्णन

शिष्यो, यह विज्ञान सुख नहीं केवल दुःख है। शिष्यों, इस विज्ञान के उत्पन्न होने में कारणों को उत्पन्न करने वाला

पृष्ठ – ४३५

जनक हेतु, सहयोग करने वाला उपत्थम्भक हेतु - यह दो होते हैं। यह दोनों हेतु भी सुख देने वाले नहीं - केवल दुक्ख ही है। शिष्यों, कड्डवे वृक्ष के बीज से उत्पन्न वृक्ष मीठा नहीं होकर हमेशा कड्डवा ही होता है - उसी तरह इस दुःख धर्म के कारण उत्पन्न विज्ञान कहां से सुखदायी, सुख धर्म हो सकेगा? सुख उत्पन्न करेंगा? सुख विहीन - केवल दुःख ही दुःख होगा। होगा ही। शिष्यों, इस तरह विञ्ञाण धातु का दुःख व्याधि के लक्षण को अनुभूति पर उतारते हुए देखो। जानो। इस तरह दुःख लक्षणों को देखने पर ही मार्गफल तक पहुंच सकेंगे। काम पूरा हो सकेगा। शोक, नामक चेतसिक दुक्ख को साक्षात्कार मार्गफल को नहीं प्राप्त कर सकेंगे। उस तरह के चेतसिक दुक्ख को जानना

अनुभव करना - विपश्यना ज्ञान दर्शन ही नहीं है। उस तरह के चेतसिक दुःखों को तो बुद्ध सासन के भीतर-बाहर हर समय ही सभी प्राणी स्वयं अनुभव करते ही रहते हैं। देखते जानते ही रहते हैं। अपाय लोक में पड़े निरय लोक के लोग निरन्तर जानते देखते, अनुभव करते ही रहते हैं।

शिष्यो, इस विपश्यना ज्ञान का आलम्बन दुक्ख लक्षण को भी - जब अनित्य लक्षण को अनुभव करेंगे तब ही जानेंगे। बिना अनित्य स्वभाव को जाने इस तरह के दुक्ख लक्षण को नहीं जान सकते। अनित्य लक्षण को जान जायेंगे तो इस तरह के दुक्ख लक्षण को स्वतः अनुभव करने लगेंगे। उदय-व्यय के अनित्य स्वभाव को अनुभव करने वाले को वे उदय-व्यय, जाति मरण - निरन्तर सताते हुए, दग्ध करते हुए, दुःख-व्याधि की स्थिति, दुक्ख लक्षण कैसा बिना अनुभूत हुए रह सकेगा। शिष्यों, वह तो स्वतः ही अनुभव होने लगता है। इसलिये तुम शिष्यों को

पृष्ठ– ४३६

इस विज्ञान धातु के दुक्ख लक्षण की अनुभूति कर सकने के लिये अनित्य लक्षण मात्र को ही अनुभव होने योग्य जानना होगा। अर्थात् पहले अनित्य भावना ही करना होगा। अनित्य बोध होने पर दुक्ख बोध स्वतः होने लगेगा।

शिष्यो, इस तरह देखकर दुक्ख लक्षण को अनुभव कर विपश्यना द्वारा अनुभव कर लेने पर - यह तो मैं द्वारा शासित धर्म ही है; यह विज्ञान धातु परिवर्तनशील है - नष्ट होते रहता है; भय से स्पर्श होते ही दुःखित होता है - व्याधिग्रस्त होता है। इस विज्ञान धातु को– 'परिवर्तित मत होओ - यथाक्रांत मत हो - भयाक्रांत होने पर भी दुःखी मत हो - सुखी ही हो', ऐसा भला चाहकर भी, आदेश देकर भी नहीं होता। यह किसी का भी कहना नहीं मानता। किसी के भी आधीन नहीं - किसी द्वारा भी शासित नहीं होता। यह अशासित अवस्था (अवश अवस्था) साफ-साफ प्रकट हो-होकर आने लगने से इस विज्ञान धातु को 'मैं' अत्त भाव से बिना आसक्त हो सके - इस विज्ञान धातु में 'अत्त' को ढूंढ़े न मिलने पर– 'अरे... यह विज्ञान धातु में 'अत्त' नहीं है रे!, ना इस विज्ञान धातु में मेरा 'अत्तनीय' नहीं है रे!' इस तरह मैं-मेरा लुप्त हो जाता है। शून्य हो जाता है। हो ही जावेगा। इस तरह दुक्ख लक्षण के अनुभव होने से, अनत्त लक्खण के अनुभव होने पर मैं लुप्त होकर, शून्य हो जाने को बताने के लिये - विनय महावग्ग पालि, खन्धवग्ग संयुत्त पालि में आये अनत्त लक्खण सुत्त पालि में :–

"विञ्ञाणं भिक्खवे अनत्ता। विञ्ञाणञ्च छिदं भिक्खवे अत्ता अभविस्सा, नयिदं विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तेय्य, लभेथच विञ्ञाणे एवं मे विञ्ञाणं होतु, एवं मे विञ्ञाणं मा अहोसीति। यस्मा च खो भिक्खवे विञ्ञाणं अनत्ता, तस्मा विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तति, न च लभति विञ्ञाणे [illegible] णं होतु, एवं मे विञ्ञाणं मा अहोसीति।"

[illegible] भिक्षुओं को भगवान ने देशित किया है।

पृष्ठ – ४३७

"भिक्षुओ! विज्ञान अनात्म (अन-आत्म) है। यदि विज्ञान का आत्मा होता तो यह विज्ञान पीड़ादायक न बनता; और विज्ञान में – 'मेरा विज्ञान ऐसा न होता, यह पाया जाता। चूंकि भिक्षुओं! विज्ञान अनात्म है इसलिए विज्ञान पीड़ादायक होता है; और विज्ञान में – 'मेरा विज्ञान ऐसा होता, मेरा विज्ञान ऐसा न होता' - यह नहीं पाया जाता।"

शिष्यो, इस तरह मैं लुप्त (शून्य) हो जाता है तब इस विज्ञान धातु के प्रति 'मैं-मेरे' की आसक्ति समाप्त हो जाती है। शिष्यों इस तरह के कारणों से – "नेसो हमस्मिनेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति।" को मैंने उद्देस बार में देशित किया है।

शिष्यो, एक बार भगवान जब जेतवन में विहार कर रहे थे तब भिक्षुओं को संबोधित कर कहा :–

विञ्ञाणं भिक्खवे दुक्खं, योपि हेतु योपि पच्चयो विञ्ञाणस्स उप्पादाय, सोपि दुक्खो। दुक्खसम्भूतं भिक्खवे विञ्ञाणं, कुतोसुखं भविस्सति। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरिय सावको विञ्ञाणस्मिम्पि निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागो विमुच्चति विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाति पजानातीति। (दुक्ख सुत्त) (खन्ध वग्ग संयुत्त पाळि)

पृष्ठ – ४३८

"भिक्षुओ, विज्ञान दुःख है। विज्ञान के उत्पाद होने में उसका उत्पादक जनक **हेतु**; उसको सहायता करने वाला **प्रत्यय** उपत्थम्भक हेतु है। यह दोनों हेतु दुक्ख हैं। भिक्षुओं, दुक्ख हेतु से उत्पन्न - दुक्ख सम्भूत विज्ञान - सुख कैसे हो सकता है? भिक्षुओं, इसका साक्षात (दर्शन) करने वाला दुक्ख विपश्यना करने में दक्ष समझदार - श्रुतवान (सुतवा) कहलाने वाला (आर्य) पुग्गल - मेरा आर्य श्रावक - विज्ञान में भी विज्ञान धातु में भी - निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद को प्राप्त होने पर विरक्त हो जाता है। (विरक्ति) विराग के कारण विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर – 'मुक्त हूं' ऐसा ज्ञान होता है। और वह जानता है – आवागमन नष्ट हो गया। जाति क्षीण हो गया। ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। करना था, सो कर लिया। अब यहां कुछ करने को (बाकी) नहीं है।" इसे परिपूर्ण रूप से ज़ान लिया।

पृष्ठ – ४३९

इस तरह भगवान के इस उपदेश के अंत में - इस देशना को सुनने वाले के सभी भिक्षु उनके निर्देशानुसार आचरण करते हुए, वीर्य करते हुए - (विपश्यना द्वारा) दर्शन करते हुए - अनास्रव होकर निर्वाण को प्राप्त हो गये। तुम शिष्य गण भी उन भिक्षुओं के समान दुक्ख-विपश्यना करते हुए आस्रव धर्मों से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्ति

हेतु अभी जैसा मैंने समझाया वैसा प्रयत्न कर ध्यान करो। विपश्यना करो। परिश्रमपूर्वक काम करो।

शिष्यो, इस स्थान पर भी अनुसासनी सुत्त को देशित करना उचित है। यहां देना उपयुक्त है। इसलिये पीछे (मूल बर्मी पृष्ठ ३१४) रूप दुक्ख खण्ड में देशित किया जा चुका दुक्खनय विपस्सना सुत्त - अनुसासनी सुत्त को भी; नेक्खम्म विधान दीपनी ग्रन्थ (लेखक का एक अन्य ग्रन्थ) के दुक्ख खण्ड में दिया गया गाथाओं को भी - इस ग्रन्थ के इस स्थान पर, देशित अनुसासनी सुत्त के स्थान पर रखकर कंठस्थ कर लेना। वह इस स्थान से भी संबंधित ही है!

इति दुक्खेन सुञ्ञतनयो

अनत्त द्वारा सुञ्ञत विधि

शिष्यो, विज्ञान धातु को दुक्ख द्वारा अत्त, अत्तनिय को शून्य करने तक विपश्यना करने की विधि - सुञ्ञत विधि को देशित कर चुकने के बाद - अभी पुनः विञ्ञाण धातु को ही अनत्त द्वारा अत्त, अत्तनिय को शून्य करने तक विपश्यना करने की विधि सुञ्ञत विधि को बताता हूं।

विञ्ञाण का अनत्त होना

शिष्यो, अभी दुक्ख वाले खण्ड में उद्धृत कर चुका - "विञ्ञाणं भिक्खवे अनत्ता।" इत्यादि अनत्त लक्षण सुत्त के अनुसार देशित करूंगा। तुम शिष्य गण

पृष्ठ – ४४०

ध्यानपूर्वक सुनो। अनुभूतिपूर्वक (विपश्यना द्वारा) जानो। कहता हूं। शिष्यों, कोई भी क्यों न हो अपने को पीड़ित करने वाला नहीं होता। यह विज्ञान - जाति भय, जरा भय, व्याधि भय, मरण भय से पीड़ित रहता है। जरा अग्नि - मरण अग्नि से अत्यधिक पीड़ित रहता है। राग, दोस, मोह, सोक दोमनस्स नामक अग्नियों से जलते हुए अत्यधिक पीड़ित होते रहता है। शिष्यों! ऐसा कोई भी प्राणी नहीं होगा जो कि अपने आपको पीड़ित रखना चाहता होगा। यदि विज्ञान 'मैं' होता तो निश्चित ही वह अपने आपको पीड़ित नहीं करता। यदि पीड़ादायी भयकारक अग्नि प्रज्वलित होकर - पीड़ा उत्पन्न करता भी तो वह - "मैं पीड़ित नहीं होऊंगा" कहकर पीड़ा रहित हो ही जाता। लेकिन ऐसा नहीं रह सकता, शिष्यो। उसके पीड़ा के कारण के बनते ही वह पीड़ित हो ही जाता है। हां! इसीलिये शिष्यों, यह विज्ञान 'मैं' नहीं है।

शिष्यो, चाहे कोई हो अपने आपका बुरा चाहने वाला नहीं होता। अच्छाई ही चाहता है। अपना भला ही चाहता है। यह विज्ञान क्षीण कमजोर होता है, गंदा, धुंधला, भारी, आलसी, प्रमादी, उत्तापित इत्यादि बुरा अकुशल होता है। शिष्यों, कोई भी सत्व

अपने आपको बुरा अकुशल चाहने वाला नहीं है। यदि यह विज्ञान 'मैं' होता, तो अपने आपको बिना बुरा किये अच्छा ही रखता। यदि उसमें क्षीणता कमजोरी आती तो कह देता मैं क्षीण कमजोर नहीं। बलवान ही रहूंगा। मंद हो तो कह दे मैं मंद नहीं मैं तीक्ष्ण ही रहूंगा। गंदा धुंधला होने पर कह देता कि नहीं स्वच्छ चमकदार निर्मल रहूंगा। जब आलस, प्रमाद, भारीपन आता हो कह देता कि नहीं मैं ऐसा नहीं होऊं। उत्तापित होने पर कह देता कि नहीं शांत रहूंगा। नहीं शिष्यों, ऐसा नहीं रह सकता। जिस-जिस से उसका संपर्क होगा वैसा हो ही जाता है।

पृष्ठ– ४४१

हां! इसीलिये शिष्यों, यह विज्ञान 'मैं' नहीं है।

शिष्यो, अन्य पर हमारा वश नहीं चलता। हमारा दुक्ख नहीं चलता। अपने पर तो अपना हुक्म चल सकता है। इसी कारण से ही तो शिष्यों, लोक में जो अपने आप पर - अपना अंकुश, अपना शासन नहीं रख सकता उसे उन्मत्त या पागल कहते हैं। शिष्यों, अपने ऊपर अपना शासन तो होना ही चाहिए। यदि यह विज्ञान 'मैं' होता तो इस विज्ञान पर मैं के इच्छानुसार, कामनानुसार - कहने पर, आदेश देने पर होता ही। विज्ञान को - 'मैं' की इच्छानुसार चला ही सकते। विज्ञान 'मैं' की कामनानुसार करता ही। यदि विज्ञान को पीड़ा हो जावे तब 'मैं पीड़ित नहीं होना चाहता' ऐसा कर ही सकता। यदि नरमी से न मानता तो कठोरता से आदेश दे सकते। कह देते वि 'मत हो पीड़ा'। विज्ञान जब क्षीण होता, कमजोर होता तो कह देते कि मत हो ऐसा। मत हो गंदा। मत हो धुंधला। मत हो भारी। मत हो आलसी। मत हो प्रमादी। मत हो उत्तापित। और ऐसा कहने पर, आदेश देने पर वह मान ही जाता। 'मैं' नामक विज्ञान, विज्ञान नामक 'मैं' - ऐसा हो जा? वैसा हो जा? ऐसा तो हो ही जा। वैसा तो हो ही जा। अरे, अबे तू ऐसा हो? अबे तू वैसा हो? तो 'मैं' के आदेशों का पालन करता ही। ना... ना... मेरे शिष्यों, नहीं करता है।

यह विज्ञान उसके पीड़ाजनक कारणों के संपर्क में आने पर पीड़ित हो ही जाता है। अकुशल कारणों के संपर्क में आने पर वह अकुशल हो ही जाता है। कारणों के अनुसार हो ही जाता है। उन कारणों के कहना को ही मानता है। हमारे मैं के– "पीड़ित न हो रे! बुरा न हो रे!" कहने के बावजूद भी वह अकुशल हेतुओं के संपर्क में आते ही पीड़ित हो जाता है - अकुशल हो जाता है। हमारे 'मैं' के कहना को नहीं जानता। हमारे 'मैं' के चाहने के अनुसार उसके अधिकार में नहीं रहता। उस पर हुक्म नहीं चलता। 'मैं' के कहना को नहीं मानता।

पृष्ठ– ४४२

इस विज्ञान पर 'मैं' का तनिक भी अधिकार नहीं। इस तरह यह विज्ञान - उठो, कहने पर बैठे। बैठो, कहने पर उठे। 'मैं' के हुक्म - आदेश का पालन नहीं करता।

तनिक भी कहना नहीं सुनता। 'मैं' का शासन, 'मैं' का कहना सुनता ही नहीं। 'मैं' से संलग्न होकर भी यह अनजान के समान - किसी अन्य के समान ही है। यह अन्य ही है। दूसरा ही है। यह भला 'मैं' कैसे हो सकता है। 'मैं' नहीं है, शिष्यों। इसे अनुभूति द्वारा जानो, शिष्यों।

शिष्यो, यह विज्ञान 'मैं = अत्त' नहीं है। शिष्यों, इस विज्ञान की उत्पत्ति में - दो ही कारण हैं - जनक हेतु तथा सहायक उपत्थम्भक हेतु। यह दोनों कारण भी 'मैं', 'अत्त' नहीं है, शिष्यों। कड्डुवे वृक्ष के बीज से कड्डुवा वृक्ष ही उत्पन्न होता है। मीठा वृक्ष कहां से उत्पन्न होगा। सदा कड्डुवा ही उत्पन्न होगा। इस 'मैं' के नहीं होने के कारण से - उत्पन्न विज्ञान भला - 'मैं' कैसे हो सकता है। 'मैं' के कहना नहीं मानने वाला नहीं सुनने वाला - 'मैं' के हुक्म को नहीं सुनने वाला एक बिल्कुल अन्य - अनजान ही है। गैर के समान ही है। इसीलिये शिष्यों, भगवान ने मोग्गलान, आनन्द आदि को यह देशित किया :–

"विञ्ञाणं अनत्ता। अनत्ततो परतो। परतो नो च अत्ततो। सङ्खार परतो पस्स।" (इसका अर्थ पीछे रूप अनत्त खण्ड में दिया जा चुका है।)

पृष्ठ– ४४३

विज्ञान को अनत्त जानकर कृतकृत्य हो जाने का वर्णन

शिष्यो, इस तरह विज्ञान के अनत्त स्वभाव को (विपश्यना द्वारा) अनुभव कर दर्शन करो। बार-बार मनन-चिंतन कर दर्शन कर साक्षात करो। बार-बार दर्शन करते रहने पर वह साक्षात्कार होता है। हो ही जावेगा। शिष्यों, इस तरह दर्शन कर जब अनत्त लक्षण का अनुभव होने लगे तब इस विज्ञान के प्रति बिना आसक्त हुए - इस विज्ञान धातु के भीतर 'अत्त = मैं' ढूंढ़े नहीं मिलेगा। तो यह साफ-साफ जानेंगे कि यह विज्ञान धातु मैं नहीं हूं रे। अरे - यह विज्ञान धातु मैं नहीं रे। अरे - इस विज्ञान में मैं तो नहीं है ऐसा चित्त होकर 'मैं' समाप्त हो जावेगा। समाप्त हो ही जावेगा। जब 'मैं' समाप्त हो जावेगा तब इस विज्ञान धातु के प्रति 'मैं - अत्त'; 'मेरा = अत्तनीय' आसक्ति टूट जावेगी। अनासक्त हो जावेंगे। शिष्यों, ऐसे ही कारणों के आधार पर– "नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति" इसे मैंने उद्देसवार में कहा।

शिष्यों, भगवान जेतवनाराम में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित किया :–

विञ्ञाणं भिक्खवे अनत्ता, योपि हेतु योपि पच्चया विञ्ञाणस्स उप्पादाय, सोपि अनत्ता, अनत्तसम्भूतं भिक्खवे विञ्ञाणं, कुतो अत्ता भविस्सति। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको विञ्ञाणस्मिम्पि निब्बिन्दति; निब्बिदं विरज्जति, विरागो विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्थायाति पजानातीति। (खन्धवग्ग संयुत्त पाळि - अनत्त सुत्त)

पृष्ठ – ४४४

"भिक्षुओ, विज्ञान अनात्म है। विज्ञान के उत्पाद होने में उसका उत्पादक जनक हेतु, उसको सहायता करने वाला प्रत्यय उपत्थम्भक हेतु है। यह दोनों हेतु अनात्म है। भिक्षुओं, अनात्म हेतु से उत्पन्न - अनात्म सम्भूत विज्ञान - 'अत्ता' कैसे हो सकता है? भिक्षुओं, इसका साक्षात (दर्शन) करने वाला अनत्त विपस्सना करने में दक्ष समझदार - श्रुतवान (सुतया) कहलाने वाला मेरा आर्य श्रावक - विज्ञान में भी - विज्ञान धातु में भी - निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद को प्राप्त होने पर विरक्त हो जाता है। (विरक्ति) विराग के कारण विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर– "मुक्त हूं।" ऐसा ज्ञान होता है। और वह जानता है = आवागमन नष्ट हो गया = जाति क्षीण हो गया। ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। करना था सो कर लिया। अब यहां कुछ करने को (बाकी) नहीं है।" इसे परिपूर्ण रूप से जान लिया।

इस तरह भगवान के इस उपदेश के अंत में इस देशना को सुनने वाले वे सभी भिक्षु उनके निर्देशानुसार आचरण करते हुए, वीर्य करते हुए - (विपश्यना द्वारा) दर्शन करते हुए - अनास्रव होकर निर्वाण को प्राप्त हो गये। तुम शिष्य गण भी उन भिक्षुओं के समान अनत्त विपश्यना करते हुए आस्रव धर्मों से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्ति हेतु अभी जैसा मैंने समझाया वैसा प्रयत्न कर ध्यान करो। विपश्यना करो। परिश्रमपूर्वक काम करो।

पृष्ठ – ४४५

यहां पर भी अनुसासनी सुत्त को देशित करना उचित है। यहां देना उपयुक्त है। इसलिये पीछे (मूल बर्मी भाषा पृ. - ३१४) अनत्त खण्ड में देशित किया हुआ - अनत्तनय विपस्सना सुत्त भी नाम दिया गया अनुसासनी सुत्त को भी, नेक्खम्म विधान दीपनी ग्रन्थ अनत्त खण्ड में रखने योग्य गाथा को भी यहां रख लें। उस अनुसासनी सुत्त को भी कंठस्थ करें। वह यहां से संबंधित है।

इति अनत्तेन सुञ्ञतनयो

इति नाम कण्डो निट्ठितो

विविध (तरह-तरह के) विपश्यना विधि का संयुक्त वर्णन

शिष्यो, इस तरह रूप धातु को; नाम धातु को; विस्तारपूर्वक छः धातुओं को; विविध विधियों से अलंकृत कर विस्तारपूर्वक भलीभांति देशित किया जा चुका। इस देशित विधि के अनुसार अनुभूति पर उतारते हुए दर्शन करो (ध्यान करो)। वैसे ध्यान करते समय रूप धातु में पांच विधियों में से अपने चित्त के भीतर, ज्ञान के भीतर जो सरलतापूर्वक अनुभव हो सके, जो हमारे लिये ज्ञान गम्य हो, उस किसी भी एक विधि से ध्यान करो। अभिधम्मा सुञ्ञत विधि अत्यंत सूक्ष्म तथा गहन है। अनुभूति द्वारा जानना कठिन है। उसके पीछे सुत्तं सुञ्ञत विधि सरल है। उसके पीछे अनिच्च विधि सरल है। अनिच्च

विधि को अनुभव करने पर भी दुक्ख विधि, अनत्त विधि स्वतः अपने आप सरलतापूर्वक प्रकट हो जाते हैं। पक्कुसाति थेर को भगवान ने इस छः धातु

पृष्ठ– ४४६

कम्मट्ठान को बताये तब पांच रूप धातु को सुत्तं सुञ्ञत विधि द्वारा बतायें। नाम विञ्ञाण धातु को अनिच्च विधि द्वारा देशित किये। इस देशित विधि के अनुसार साधना कर अरहत्त फल को प्राप्त कर लिये। रूप धातु, नाम धातु इन दोनों को अनिच्च विधि द्वारा ध्यान करना सबसे सरल है। सरलतापूर्वक अनुभूति पर उतरता है। शीघ्रतापूर्वक ध्यान के कृत्य को अंत तक पूर्ण किया जा सकता है। लेकिन अपने मन में, अपने ज्ञान में जो विधि सरल लगे उसी के अनुसार ध्यान करो। प्रत्येक विधि मार्ग-फल तक पहुंचाने में समर्थ ही हैं।

शिष्यो, इस तरह विपश्यना करने में बिना नाम धातु के केवल रूप धातु का ही ध्यान कर, अनुभव कर भी मार्गफल को प्राप्त नहीं किया जा सकता। बिना रूप धातु के केवल नाम धातु का ही ध्यान कर (अनुभव कर) भी मार्गफल को प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्यों ? क्योंकि सत्त्व लोग - 'मैं' से जो आसक्त रहता है वह नाम-रूप दोनों से ही आसक्त रहता है। इसलिये किसी एक में ध्यान कर अनुभव करना गन्तव्य तक नहीं ले जावेगा। नाम और रूप दोनों का ही ध्यान कर, अनुभव कर मार्गफल के गन्तव्य तक पहुंचा जा सकेगा। निदानवग्ग संयुक्त पाळि में आये आहार सुत्त में - कबळीकार आहार को अनिच्च, दुक्ख अनत्त परिञ्ञा तीनों को आधिकारिक रूप से अनुभूत करने वाला पुग्गल अनागामि मार्गफल तक पहुंचता है। अनागामी होता है - जो भगवान ने यह कहा है - उसमें भी अनागामी होकर काम राग समाप्त हो जाने पर ही उस वत्थु काम नामक कबळीकार आहार को दुक्ख जानना, अस्वाद जानना, दुक्ख परिञ्ञा को आधिकारिक रूप से जानने को बताने के लिये ही देशित किया है। उस कबळीकार आहार नामक कोई छोटा भाग एक रूप मात्र को तिलक्खणों (त्रिलक्षणों) से अनुभव करना मात्र ही मार्गफल तक पहुंचा सकता है, इसको बताने के लिये देशित नहीं किया गया। पहुंचा भी नहीं जा सकता है यह याद कर लेना। यह तो बिना अनागामी हुए, बिना आर्य हुए, ध्यान समापत्त मात्र को प्राप्त ऋषि तपस्वी लोग भी काम राग रहित होने के कारण उस कबळीकार आहार में दुःख की अनुभूति

पृष्ठ –४४७

कर सकते हैं। आधिकारिक रूप से दुक्खपरिञ्ञात कर जान सकते हैं। वे अनिच्च भी अनुभव करते हैं - सभी खाद्य व्यंजन को कभी भी 'मैं' नहीं मानते। वे उस आहार में अनत्त का भी अनुभव करते हैं। दर्शन करते हैं।

एक प्रकार से उस कबळीकार आहार नामक वत्थु काम के एक भाग में परिञ्ञात कर एक ही स्वभाव वाले पांचों काम गुणों में ही - परिञ्ञात कर काम राग को भी

विक्खम्भन द्वारा परिञ्ञात कर, त्याग कर सोतापन्न सकदागाम पुग्गल लोगों का ज्ञान **अनागाम होकर** - जाने को लक्ष्य कर वह देशित किया गया। यह याद रखना। एक **प्रकार से भी - कबळीकाराहार** रूप के एक खण्ड में परिञ्ञात कर सकने पर एक ही **स्वभाव वाले सभी** रूपक्खन्धों में भी सरलतापूर्वक परिञ्ञात कर, सक कर - रूप को **परिञ्ञात** कर सकने पर भी सरलता से ही नाम को भी परिञ्ञात कर अनागामी हो **सकने** को लक्ष्य कर कहा है यह जानना।

फस्साहार, चेतनाहार, विञ्ञाणाहार नामक तीन नाम आहारों में से किसी एक को त्रिलक्षणानुभूति कर लें तो शेष दोनों भी प्रकट हो ही जाते हैं। उस तरह नाम आहार में त्रिलक्षणानुभूति होने पर अरहत्त मार्गफल तक पहुंच जाते हैं यह जो देशित किया है - उसमें भी नाम धर्म में उस तरह अनुभव कर सकने पर (साक्षात कर सकने पर) ही मार्गफल तक पहुंच सकते हैं - यह नाम धर्म की गणना को लक्ष्य कर ही देशना किया गया है। मार्गफल प्राप्त कर सके इसके लिए रूप धर्म का गणना करना भी उसी तरह से ही अनुभव करके (दर्शन करके) लगा हुआ है। उसके अतिरिक्त चतुकूङ्गुत्तर पाळि में आया हुआ - राहुलोवाद सुत्त में चारों महाभूतों को मैं नहीं - मेरा नहीं यह ध्यान कर वीततण्हा होकर अरहत्त फल को प्राप्त किये - राहुल को देशित देशना में भी रूप धर्म में उस तरइ ध्यान कर, दर्शन कर सकेंगे तब ही मार्गफल तक पहुंच सकते हैं। इस तरह रूप धर्म की गणना को लक्ष्य कर ही देशित किया गया है। मार्गफल की प्राप्ति होने तक तो नाम धर्म की गणना भी उसी के समान ही दर्शन कर (ध्यान कर) अनुभव करना भी शामिल है। उसी तरह ही शिष्यों - इतिवुत्तक पाळि में आया - वेदना सुत्त में तीन प्रकार की वेदनाएं - उन वेदनाओं को त्रिलक्षणों द्वारा ध्यान कर अरहत्त मार्ग तक

पृष्ठ – ४४८

पहुंचना कहा गया है। उस देशित वेदना कम्मट्ठान, उसी तरह आसव कम्मट्ठान, सुत्त निपात पाळि में आया द्वयतानुपस्सना सुत्त में देशित अविज्जा कम्मट्ठान, सङ्खार कम्मट्ठान, विञ्ञाण कम्मट्ठान, फस्स कम्मट्ठान, वेदना कम्मट्ठान, तण्हा कम्मट्ठान, उपादान कम्मट्ठान इत्यादि केवल रूप मात्र का ही निरीक्षण करना (ध्यान करना), केवल नाम मात्र का ही ध्यान करना - इन सभी कम्मट्ठानों को रूप मानना (में गणना करना), नाम मानना (में गणना करना) को लक्ष्य कर ही देशित किया गया है यह जानना। मार्गफल की प्राप्ति के लिये तो नाम-रूप दोनों ही साथ रहेंगे।

यदि ऐसा है तो किस कारण से नाम और रूप दोनों को एक साथ पूरा कर देशित नहीं किया गया? शिष्यों, धर्म को सुनने वाले वे भिक्षुगण नाम और रूप दोनों को ही सुने हुए - समझे हुए थे। वैसे समझकर ध्यान करते समय कुछ भिक्षु रूप धर्म को अनुभव नहीं कर पाते थे। रूप धर्म रोड़ा (बाधा) बनकर रहता था। कुछ भिक्षु साधकों को नाम धर्म रोड़ा (बाधा) बनकर रहता था। उन भिक्षुओं को उन बाधक धर्मों को

भलीभांति देखने हेतु... अनुभव पर उतरवाने के लिये... जिनने धर्म नहीं सुना था - नवागन्तुक भिक्षुओं के लिये भी उस बाधक धर्म समूहों को ठीक-ठीक देख सकें, ध्यान कर सकें इस हेतु दोनों को एक साथ नहीं - बल्कि पृथक-पृथक अकेले भी देखने का अभ्यास करना सिखाने हेतु देशना करते थे। केवल नाम को ही अकेले देखने को, ध्यान करने को बताते थे। सळायतन संयुत्त पाळि में आया - किंसुकोपम सुत्त में एक भिक्षु चारों महाभूत कम्मट्ठान द्वारा मार्गफल को प्राप्त करता है। वहां भी उस चार महाधातु को (रूपधातु) साफ-साफ प्रधानता देकर ध्यान करते देखते हुए - पहुंचने को भी लक्ष्य कर ही कहा है। नाम धातु भी शामिल ही है यह समझो।

इसीलिये शिष्यों, तुम शिष्यगण विपश्यना करते समय रूप धातु को भी देखो। नाम धातु को भी देखो। कभी रूप धातु को देखो। कभी नाम धातु को देखो। रूप धातु में भी रोड़ा अटका देने वाले यथा - पृथ्वी धातु, जल धातुओं को भी स्पष्टता से देखो। विञ्ञाण धातु में भी रोड़ा अटकाने, बाधा उपस्थित करने वाला

पृष्ठ– ४४९

मनोविज्ञान को साफ-साफ देखो। विपश्यना ध्यान करने वाले पुग्गलों में इस विपश्यना जवन मनोविञ्ञाण ही अधिकांशतः बाधा उपस्थित कर सकता है। शिष्यों, कभी उत्पाद-व्यय अनित्य स्वभाव को अनुभव करो। हृदयंगम करो। कभी दुक्ख स्वभाव को अनुभव रहे। हृदयंगम करो - जानो। कभी अनात्म स्वभाव को अनुभव करो। हृदयंगम करो। (ध्यान कर अनुभूति द्वारा जानो)। अनित्य स्वभाव को सतत जानो। अनिच्च प्रकट होने पर दुक्ख, अनत्त भी स्वतः प्रकट होने लगता है। अनत्त स्वभाव को हृदयंगम करने के समय विपश्यना जवन के अतिरिक्त अन्य नाम, रूप को - "मैं" नहीं हूं यह पर्याप्त प्रकट हो सकता है। चिंतन-मनन कर ध्यान करते-करते रहने वाले विपश्यना जवन को "तुम" - "मैं" ही हो यह जानते हुए रह सकता है। उस विपश्यना ज्ञान - विपश्यना जवन को ही सतत, हमेशा - "मैं" नहीं हूं यह अनुभव होने तक ध्यान करो, देखो। उसे ध्यान करते समय रूप भी - "मैं नहीं" - होता ही है। नाम भी - "मैं" नहीं - यह होता ही है। "मैं" ही 'तुम' हो - इस तरह चित्त अपना आधार प्राप्त करने हेतु - 'मैं' भ्रम कर ढूंढ़ता है। कहीं भी मत भटक जाना। उस अटकाव को स्वीकार मत करना। जब "मैं" लुप्त होकर शून्य होने-होने को होगा तब महावन में पिता से बिछुड़ा नन्हें पुत्र के समान सारा जीवन - सारे भव संसरण पर्यंत से जिसे "मैं" कहकर आसक्त रहते आया था - उस 'मैं' को ढूंढ़े न मिलने पर "मैं" के लिये सहारा आधार आसक्ति न रहने से - चित्त क्षीण होकर (असक्त होकर, निर्बल होकर) गिर पड़ेगा। गिर ही पड़ेगा। कांपते हुए, थर्राते एवं भयभीत होते हुए गिर जावेगा। गिर ही जावेगा। इस तरह चित्त हो जाने के बाद - चित्त बिना आगे बढ़े पीछे मुड़कर इस विपश्यना जवन को ही यह - "मैं" हूं - ऐसा पुनः आसक्त हो सकता है। उससे चिपका-चिपका रह सकता है। रहना चाहे तो भी रहने मत देना। मत चिपकने देना।

विपश्यना अनुभूत हो जाने पर विपश्यना के मुरझा जाने के कारण - धर्मों का उत्पन्न होना।

शिष्यो, इस तरह भयभीत होना = परितस्सन; पुनः आसक्त होना = उपादान; उत्पन्न हो-होकर रहना भी - उत्पाद-व्यय को देखने वाला = **उदय-व्यय अनिच्च विज्जाञ्ञाण दर्शन** - असक्त क्षीण शक्ति हो मरने के कारण ही होता है। ऐसे उत्पन्न हो-होकर रहते समय भी अनित्य स्वभाव का ही सतत दर्शन करना होता है।

पृष्ठ– ५५०

देखते जाओ। शिष्यों, इस तरह साधना कर उदय-व्यय स्वभाव को जानने वाला अनिच्च विज्जाञ्ञाण के उत्पन्न होने का अवसर निकट आने पर ञाण का पूर्वगामी ञाण का, चित्त का, आलोक (रंग) भी उत्पन्न हो सकता है। इस आलोक (रंग) को ओभास कहते हैं। शरीर से निकलने वाला चमकीला प्रकाश नहीं है, शिष्यों। क्लेश झीना हो जाने पर, चित्त ञाण निर्मल हो जाने के कारण चित्त ज्ञान आलोक ही है। उस समय वह योगी पुग्गल, दिव्य-चक्षु पुग्गल के समान दूर में, ओझल में, रात में भी - रूपालम्बनों को मनोद्वार से जानता है। शिष्यों, उस समय उस योगी को 'समय' के क्षेत्र में 'पटिभाग' के समीप झानांगों के प्रकट होने के समान मग्ग धर्म, बोज्झङ्ग धर्म, बोधिपक्खिय धर्म भी सबल होकर प्रकट होने लगता है।

इस तरह अपने (चित्त) सन्तान में अनदेखा, अनहोनी, तनिक विशिष्ठ को देखने (साक्षात करने) पर लगता है कि यह धर्म समूह मार्गफल धर्म ही है। मुझे मार्गफल की प्राप्ति हो गई ऐसा सोचते हैं। ऐसा मत मान बैठना, शिष्यों। अभी यह मार्गफल नहीं है। अभी मार्गफल तक नहीं पहुंचे। शिष्यों, फिर भी उस ओभास को - मग्गङ्ग बोज्झङ्ग धर्मों को भी, मान से युक्त तृष्णा से भी आलम्बन कर भला (अच्छा) मानकर भी रह सकते हो। अभी ओभास को चित्त पहुंच गया, अभी ञाण सम्मादिट्ठि तक पहुंच गया, अभी उस मग्गङ्ग को पहुंच गया, अभी इस मग्गङ्ग तक पहुंच गया, उस बोज्झङ्ग तक पहुंच गया, इस बोज्झङ्ग तक पहुंच गया, इस तरह चित्त घुमते-फिरते रह सकता है। चित्त चंचल रहता है। इस तरह तृष्णा, मान, उद्धच्च आदि होते रहने के समय अनिच्च, दुक्ख, अनत्त स्वभावों को भलीभांति साक्षात नहीं कर सकते, शिष्यों। इसलिये उस समय इस तरह के उत्पन्न - तृष्णा, मान, उद्धच्चों को विपश्यना ज्ञान को उपक्लेशयुक्त होने के कारण - **विपस्सनुपक्किलेसा** ही हैं, यह जान चुकने पर उस ओभास मग्गङ्ग बोज्झङ्ग धर्मों पर ही निर्भर मत हो जाना। निर्भर नहीं होना चाहिए। कान्त-मनाप नहीं। अनित्य ही है।

पृष्ठ– ४५१

दुक्ख ही है। अनत्त ही है। इसे अनुभूति द्वारा देखते जाना होगा। देखो। विशेष रूप से जानते हुए, देखते हुए रहने वाला विपश्यना ज्ञान को ही अधिक मान तण्हा से

अच्छा मानकर रह सकते हैं। इस ज्ञान को ही साफ-साफ स्पष्ट रूप से देखो। विपश्यना जवन मनोविज्ञानं ही है। यह समझते हुए विज्ञान के समान ही जानते हुए साधना करते जाओ।

आरद्धविपस्सक पुग्गल का वर्णन

शिष्यो, इस तरह सभी विपस्सनुपक्किलेस को त्याग कर **रूप, नाम, सङ्खार धर्मों के उदय-व्यय स्वभाव की ही साधना करो।** साधना करते समय उस उदयवय **स्वभाव** को जैसे उग्गहनिमित्त प्रकट हुआ वैसे ही भलीभांति दिखने वाला **अनिच्च विज्जाञाण** अच्छी तरह से उत्पन्न हो आता है। इस तरह अनिच्च स्वभाव उदयवय का जब **दर्शन होने** लगता है **तब** उस उत्पाद-व्यय परिपक्वता - **नष्ट होना** आदि से अनवरत सताये जाने से पीड़ित **होकर रहने वाला दुक्ख स्वभाव भी भलीभांति प्रकट होने लगता है। इस तरह जब** अनिच्च दुक्ख **भलीभांति** प्रकट होने लगते हैं तो - हमारा **कहना** मानने, शासन में, हुक्म में, तनिक भी न रहने वाला "मैं नहीं" वाला - **अनत्त लक्खण** भी **भलीभांति** प्रकट होने लगता है। जैसा कि पीछे देशित कर आया - वैसे ही अरे, 'मैं' नहीं है भाई। अरे! 'मैं' तो है ही नहीं - ऐसा चित्त उत्पन्न होकर संदेह विचिकिच्छा सहित, "मैं" पने का **सक्कायदिट्ठि** छूट जाता है। चिन्तित होने वाला **परितस्सन,** पुनः-पुनः आसक्त होने वाला **उपादान** नहीं होता है। रूप, नाम धर्मो को केवल कारणों से उत्पन्न **होकर** रहने वाला **सुद्धधातु, सुद्धसङ्खारधम्म, सुद्धदुक्खपुञ्ज** की अवस्था रूप में ही मात्र अनुभव कर स्थित रहता है। इस तरह पच्चुप्पन्न नाम-रूपों को अनुभव करने पर अतीत अनागत नाम रूपों को भी; अपने नाम-रूप से बाहरी - बहिद्धरूपनामों को भी; धम्मन्वय से सभी दिखते हुए स्थित रहता है। शिष्यों, इस तरह त्रिलक्षणों का दर्शन कर - **सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छा** - इन दोनों निवरणों से छूट जाता है। ऐसे योगी को **आरद्ध विपस्सक पुग्गल** कहते हैं।

पृष्ठ – ४५२

शिष्यो, इस तरह आरद्ध विपस्सक पुग्गल की अवस्था को प्राप्त होने पर ही अनेकानेक उपकार प्राप्त होता है। बहुमूल्य होता है। भगवान के धर्म शासन में आधार प्राप्त हो गया। सुगति सुनिश्चित हो गया। चूळ स्रोतापन्न हो गया, ऐसा कहाने योग्य हो गया। सुपटिपन्नता इत्यादि नौ गुणों से भी सम्पन्न हो गया, परिपूर्ण हो गया। वर्तमान जीवन में यदि ऊपर के विशिष्ठ धर्मों को प्राप्त होने के पूर्व ही, यदि इस आरद्ध विपस्सक अवस्था से ही च्युति हो जावे तो देवलोक की प्राप्ति तो अवश्य ही होगी। देवलोक पहुंचते ही तुरंत उसे यह होश रहेगा (सति रहेगी) कि वह देवलोक आ गया है। वह याद आने वाला चित्त साथ रहेगा (याद बनी रहेगी)। सर्वप्रथम मग्ग जवन, फल जवन उत्पन्न होकर विशिष्ठ धर्म को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार के पुग्गलों को लक्ष्य कर भगवान ने यह देशित किया है, शिष्यों :–

तस्स तत्थ सुखितो धम्मपदानि प्लवन्ति। दन्धो भिक्खवे सतुप्पादो। अथ खो सो सत्तो खिप्पमेव विसेसभागी होति। (चतुक्कङ्गुत्तर)

"भिक्षुओ, उस देवलोक में जहां गर्भ धारण करके रहने का कोई कष्ट ही नहीं - अतः सुखदायक - उस आरद्ध विपस्सक के रूप में च्युत होकर देवलोक में जाने वाले को इस मनुष्य लोक के समय किये गये प्रयत्न - धर्म मार्ग के कारण धर्म समूह - जैसे रात को स्वप्न देखा तथा सवेरे जागने पर वैसे ही पाया - के तरह पल्लवित होता है। भिक्षुओं, उस सत्त्व का देवलोक में उत्पाद होने की स्मृति सुप्त होकर रहती है। वस्तुतः वह सत्त्व देवलोक में पहुंचते ही क्षिप्रता से ही विसेसभागी होता है। मार्गफल विशेष को प्राप्ति हेतु होता है।"

पृष्ठ– ४५३

शिष्यो, आरद्ध विपस्सक की अवस्था को प्राप्त करना इस प्रकार बहुत मूल्यवान है। इतना मूल्यवान होने के कारण ही भगवान ने उसकी प्रशंसा में कहा है :– (धम्मपद ३/४)

योच वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं।।

भिक्षुओ, जो व्यक्ति रूप, नाम, सङ्खार धर्मों के उदय-व्यय स्वभाव को बिना देखे सौ वर्षों तक जीवित रहता है, उस उदय-व्यय स्वभाव को नहीं देखने वाले अन्धबाल मूढ़ के सौ वर्षों तक जीवित रहने से अनगिनत गुना अच्छा और श्रेष्ठ होता है - उदय-व्यय स्वभाव के, ज्ञान चक्षु द्वारा सम्यक दर्शन करने वाले व्यक्ति का मात्र एक दिन का जीवन।

आरद्ध विपस्सक का निब्बिन्द (निर्वेदन)

शिष्यो, इस तरह विचिकिच्छा सहित - 'मैं पने' की सक्काय दिट्ठि के छूट जाने पर वह आरद्ध विपस्सक पुग्गल इस पंचस्कंध छः धातु को 'मैं भी नहीं', मेरा भी नहीं के कारण इसके प्रति उसका प्रेम (तण्हा - आसक्ति) समाप्त हो जाता है। इस तरह तृष्णा के झींना हो जाने के कारण; छहों धातु जाति, जरा, व्याधि, मरण, सोक, परिदेव, दुक्ख, दोमनस्स, उपायास भय दुःख को लाता है इस कारण को जानने के कारण - इस छः धातु में उसका चित्त नहीं लगता। उसमें भय को देखकर वह निर्वेद को प्राप्त करता है।

– एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरिय सावको रूपस्मिम्पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिम्पि निब्बिन्दति।–

पृष्ठ– ४५४

के कहे अनुसार निर्वेद हो जाता है। मृत शरीर में प्रविष्ट तुसित देवता के समान हो जाता है। उस समय वह पुग्गल–

उप्पादो भयं, अनुप्पादो खेमं, उप्पादो दुक्खं, अनुप्पादो सुखं। नो चस्स नो च मेसिया। नाभविस्स च मे भविस्सति। यदत्थियं भूतं, तं पजहामि।

"(शरीर का) इन छः धातुओं का उत्पन्न होना भय है। इन छः धातुओं का नहीं उत्पन्न होना क्षेम है। (शान्ति है।) इन छः धातुओं का उत्पन्न होना दुक्ख है। इन छः धातु वाले शरीर का नहीं उत्पन्न होना सुख है। यदि मेरे भीतर पूर्व भवों में इन छः धातुओं के प्रति तृष्णा नहीं होती, तो इन छः धातुओं (वाला शरीर) की उत्पत्ति नहीं हुयी होती। यदि वर्तमान भव में इन छः धातुओं के प्रति तृष्णा नहीं होगी - तो ये भविष्य में नहीं उत्पन्न होंगे। इसी कारण से मुझमें समुदय तृष्णा है। उसी के फलस्वरूप ये छः धातुएं भी प्रकट रूप में हैं। इसीलिये कारण और फल दोनों को मैं छोड़ दूंगा।"

इस तरह - इन छः धातुओं को ही दुःख जानकर - इन छः धातुओं का नहीं रहना ही - सुख जानकर; कारण सहित छः धातुओं को छोड़ने (त्यागने) का चित्त उत्पन्न होकर ही रहता है। (अर्थात् उसका चित्त यह जानते रहता है कि यह कारण है और उसका त्याग होना चाहिए।)

उस आरद्ध पुग्गल का विरत्त विमुत्त होना

शिष्यो, इस तरह इस छः धातु में सुख बिना माने निर्वेद होकर - इस 'छः धातु का नहीं रहना' में ही सुख मान-झुककर, करण सहित छः धातुओं को त्यागने की कामना वाला वह

पृष्ठ– ४५५

निर्वेद (निब्बिन्द) योगी - इस ठोस छः धातु को 'मैं' नहीं, 'मेरा' नहीं; केवल कारणों से उत्पन्न होने वाले धर्म धातु मात्र हैं। सङ्खार धम्म हैं। अनिच्च धम्म हैं। दुक्ख धर्म हैं। इस तरह जैसा कि पीछे देशित किया है उस नियम के अनुसार बार-बार ध्यान करते, साधना करते हुए– इस छः धातुओं के संगठन को सुधारने योग्य, भरमाने योग्य, चित्त उलझाने वाले परिबोध समुच्चय, अत्यंत भयकारी, भारी भार की गठरी के समान प्रतीत होता है। जब उसके प्रति बहुत विरक्ति हो जाता है तब छः धातु समूह को त्याग कर शांत शीतलीभूत निर्वाण (सन्ति, सीतिसभाव-निर्वाण) में दौड़ते हुए प्रवेश कर, निब्बान को आलम्बन बनाकर चले जाता है। चित्त क्षीणास्रव हो जाता है। "निब्बिन्दं, विरोगा विमुच्चति।" के कथनानुसार विरक्त-विमुक्त हो जाता है।

शिष्यो, इस स्थान पर इसके अनुरूप उपमा यह है कि– मछली पकड़ने वाला पुरुष किसी जाल में से जहरीले सर्प को गर्दन के पास पकड़ लिया। वह बड़ा प्रसन्न है कि उसने बड़ी मछली पकड़ लिया। जाल के बाहर हाथ खींचता है। देखता है कि यह तो सर्प है। खाया भी नहीं जा सकता। इसका कोई उपयोग भी नहीं। यदि कहीं डंस दिया तो भयानक दुक्ख होगा। भय दुक्ख के दोस को देखकर उसे पकड़े हुए वह अब प्रसन्न नहीं है। भयभीत है। घृणा भय से व्याप्त है। पकड़े हुए भी नहीं रहना चाहता। वैसे

छोड़े तो आक्रमण कर काट भी सकता है। वह उस सर्प को खूब कसकर भींचकर मुट्ठी में पकड़ता है - तीन-चार बार हवा में नचाता है। उसको कमजोर बनाकर एक झटके में दूर फेंककर स्वयं भी विपरीत दिशा में दूर भाग खड़ा होता है। ठीक उसी तरह। वह पीछे जो बता आया - सोने का गट्ठर समझ उठा लिया। खोलकर देखता है तो वह कूड़ा-क कट निकलने के तरह

पृष्ठ– ४५६

न सोना है, न उसका कोई उपयोग है। इस नकली सोने के गट्ठर के लिये राजा का आरोप चोर के समान भय भी लगा है। उसमें भय-दोस को देखकर वह नकली स्वर्ण गट्ठरधारी आदमी, अब उसे क्षणमात्र भी कंधे पर ढोना नहीं चाहता - घृणा करता है। उसे फेंककर भय मुक्त होता है। दुक्ख मुक्त हो, सुख शांतिपूर्वक रहता है। उसी के तरह।

शिष्यो, इन उपमाओं में - मछुआ; नकली स्वर्ण गट्ठर लेने वाला; यह दोनों सर्प को, कुड़े के गट्ठर को - मछली, स्वर्ण मानकर प्रसन्न हो आसक्त हुए थे। यह अन्धबाल मूर्ख योगी - इस छः धातुओं को 'मैं ही' यह मानकर प्रसन्न हो आसक्त थे। इन दोनों में समानता है। जब जाल से बाहर हाथ निकालकर देखा, तब सर्प को पाया, गट्ठर को खोला तो पाया कि यह कुड़ा-करकट है। तब उन्हें असलियत का ज्ञान हुआ। ऐसे ही छः धातुओं को बतायी हुई विधि के अनुसार साक्षात कर लेने पर 'मैं नहीं' यह सत्य देखने के समान ही है। सर्प, कुड़ा का गट्ठर, इन दोनों के प्रति आसक्ति टूट गई। भय, दुक्ख, दोस देखकर उसे फेंक दिया। अनासक्त हुए। घृणा हो गई उससे। वैसे ही छः धातुओं के प्रति आसक्ति टूटी। भय, दुक्ख, दोस को समाया देख भयभीत हो घृणा हुआ - अनासक्त हो गये। उस सर्प - उस कूड़ा-करकट के गट्ठर को घृणा कर फेंक दिये। सर्प को मर्दित कर फेंक दिया। कुड़े की पत्तियों, लकड़ियों, खपड़ों को देख लिया कि यह व्यर्थ है और फेंक दिया। सोना नहीं यह जानकर फेंक दिया। छः धातुओं को देखकर उसके प्रति घृणा हो गई - फेंक दिया। यह छः धातु मैं नहीं। मेरा नहीं। यह तो कार्य कारण से उत्पन्न होने वाला केवल शुद्ध धातु धर्मा हैं। शुद्ध सङ्खार धम्म हैं। अनित्य धम्म हैं। इन त्रिलक्षणों को पुनः देखने के समान ही है। जैसे उस सर्प को, उस नकली गट्ठर कुड़े को घृणित भाव से फेंककर भय मुक्त

पृष्ठ– ४५७

सुखी हो गये; वैसे ही छः धातुओं के त्रिलक्षणों को पुनः देखकर अत्यंत घृणा भाव से फेंककर निर्वाण तक दौड़ जाना - विरक्त विमुक्त हो जाना भी है।

शिष्यो, इस तरह छः धातुओं को त्याग कर निर्वाण की ओर दौड़ लगाकर, निर्वाण को आलम्बन कर विरक्त विमुक्त हो जाने वाले चित्त समूह को मार्गचित्त, फलचित्त कहते

हैं। इसे मार्गचित्त, फलचित्त समझना चाहिए। शिष्यों, ऐसे ही संदर्भ में मैंने उद्देसवार में कहा है :–

नेसो हमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति। पण्डित ज्ञानी पुग्गल इस छः धातु के संयोग वाले को यह छः धातु "मैं नहीं"। यह छः धातु 'मेरा नहीं'। इस तरह विपश्यना द्वारा बार-बार देखता है। देख लेने पर इस छः धातु संयोग के प्रति विरक्त हो जाता है।

तीन परिञ्ञाओं का वर्णन

शिष्यो, इस कम्मट्ठान मार्ग में **ञातपरिञ्ञा, तीरणपरिञ्ञा, पहानपरिञ्ञा यह तीन परिञ्ञा हैं। शिष्यों, "पथवी आपो च तेजो च" इत्यादि उद्देसगाथा जो दिया है, उससे शुरू कर यह अभी मार्गफल पर पहुंचने तक कम्मट्ठान धम्म मार्ग को देशित किया उसके अनुसार भलीभांति याद कर जानने का काम करने वाले ज्ञान समूह को ञातपरिञ्ञा कहते हैं।** इसे ञातपरिञ्ञा समझना। इस ञातपरिञ्ञा से जानने वाला - जाने हुए के अनुसार भलीभांति अनुभूति कर सके इसके लिये जांच-पड़ताल करने, मनन करने वाले, माप-तौलकर तुलना करने वाले - देखने, साधना करने वाले ज्ञान समूह को **तीरण परिञ्ञा** कहते हैं। इसे तीरण परिञ्ञा समझना। तीरण परिञ्ञा से माप-तौल तुलना कर, देखकर तिलक्खण (त्रिलक्षण) को भलीभांति अनुभव करने वाले ञाण से प्रारम्भ कर मग्ग ञाण, फल ञाण प्राप्त कर सकें - उस ञाण समूह को **पहान परिञ्ञा** कहते हैं।

पृष्ठ – ४५८

इसे पहान परिञ्ञा समझना। शिष्यों इन तीन परिञ्ञाओं में नीचे के (शुरू वाले) ञात परिञ्ञा, तीरण परिञ्ञा समूह को पटिपदा क्षेत्र, पटिपदा पड़ाव; ऊपर के (अंत वाला) पहान परिञ्ञा को अभिञ्ञा क्षेत्र, अभिञ्ञा पड़ाव भी जानना।

शिष्यो, इस तरह कम्मट्ठान को अभ्यास करते समय दोसचरित, पञ्ञाचरित वाले पुग्गल में तृष्णा का पर्दा झींना होने के कारण, तीव्र ज्ञान होने के कारण त्रिलक्षण प्रकट होकर आरद्ध विपस्सक पुग्गल की अवस्था को प्राप्त कर, पटिपदा को पार कर, निर्वेद होकर क्षण भर में ही छः धातुओं को त्याग सकते हैं। विरक्त विमुक्त होकर जा सकते हैं। रागचरित, मोहचरित वाले पुग्गल में तृष्णा की शक्ति तीव्र होने के कारण ञाण मंद होने के कारण, त्रिलक्षण प्रकट होकर, आरद्ध विपस्सक पुग्गल की अवस्था को प्राप्त कर, पटिपदा को पार कर लेने पर भी शीघ्रतापूर्वक, तीव्रतापूर्व साफ-साफ निर्वेद की अवस्था में स्थित नहीं हो सकते। निर्वेद हो भी जावे तो भी छः धातु सङ्खार धर्मों को अचानक त्याग कर उस अवस्था में स्थित नहीं हो सकते। दन्धाभिञ्ञ - ढीला मंद होकर रह सकते हैं। रहते हैं। शिष्यों, वैसे होकर रहने पर इस धातु सङ्खारों को शीघ्रता से निर्वेदन, कर घृणा कर, त्याग कर स्थित हो सकने के लिये दुक्ख लक्षणों को साफ-साफ देखना होता है। सब्बलोकानभिरति सञ्ञा को साफ-साफ विकसित करना होता है। लोक में जो भी

भय आदि हैं उन्हें ढूंढ़कर - उन्हें इन छः धातुओं पर घटित कर ध्यान करना होता है। ऐसे ध्यान करने पर शीघ्रता से ही - निब्बिन्द, विरत्त विमुत्त होते चले जाते हैं। शिष्यो, लोक में जो भी दुक्ख भय-भैरव हैं वे सब बिना इन छः धातुओं के उत्पन्न नहीं होते हैं। इन छः धातुओं के रहने के कारण ही उत्पन्न होकर रहते हैं। इसलिए यह छहों धातु संपूर्ण भय-भैरव दुक्खों के एकत्र होने वाले स्थान हैं। शिष्यों, इसका साक्षात हो सके ऐसा ध्यान करो। साधना करो।

१. फेण पिण्डूपमं रूपं, वेदना पुप्फुळूपमा।
मरीचिकूपमा सञ्ञा, सङ्खारा कदलूपमा।
मायूपमञ्च विञ्ञाणं, देसितादिच्च बन्धुना।।

पृष्ठ – ४५९

२. यथा यथा निज्झायति, योनिसो उपपरिक्खति।
रित्तकं तुच्छकं होति, योनं पस्सति योनिसो।।

३. इमञ्च कायं आरब्भ, भूरिपञ्ञेन देसितं।
पहानं तिण्णं धम्मानं, रूपं पस्सथ छड्डितं।।

४. आयु उष्मा च विञ्ञाणं, यदा कायं जहन्तिमं।
अपविद्धो तदा सेति, परभत्तं अचेतनं।।

५. एतादिसायं सन्तानो, मायायं बाललापनी।
वधको एसो अक्खातो, सारो एत्थ न विज्जति।।

६. एते खन्धे पवेक्खेय्य, भिक्खु आरद्ध वीरियो।
दिवा वा यदि वा रत्तिं, सम्पजानो पतिस्सतो।।

७. जहेय्य सब्बसञ्ञोगं, करेय्य सारकत्थिनो।
चरेय्या दित्तसीसोव, पत्थयं अच्चुतं पदन्ति।।
(खन्धवग्ग संवुत्त, बुद्धभासित फेणपिण्डोपम सुत्त)

१. भिक्षुओ, यह रूप फेण-पिण्ड के समान है। जैसे फेण-पिण्ड निस्सार होता है वैसे ही यह रूप निस्सार है। यह वेदना पुप्फुळ के समान = **पानी के बुल्ले के समान** सारहीन है। छः विज्ञानों में स्थित छः वेदना समूह सार हीन, सुख हीन, मैं (जीव) रहित,

वसवत्तन स्वभाव रहित होने के कारण - सार रहित पानी के बुलबुले के समान है। छः ज्ञानों में स्थित छः संज्ञा समूह - सार हीन, सुख हीन, मैं रहित वसवत्तन स्वभाव रहित होने के कारण

पृष्ठ– ४६०

सार रहित - **मृगमरीचिका** के समान है। छः विज्ञानों में स्थित फस्स चेतना वितक्क-विचार इत्यादि सङ्खार धर्म - स्थिर सार, सुख सार, मैं रहित वसवत्तन स्वभाव रहित होने के कारण - सार तत्व विहीन, निराधार केले की तना जैसा सार रहित है। छहों विज्ञान अस्थिर सार हीन, सुख हीन, मैं रहित - वसवत्तन स्वभाव रहित होने के कारण - जिसमें ढूंढ़कर भी सार प्राप्त न हो ऐसी माया के समान है। आदित्यबन्धु (आदित्य कुलोत्पन्न) भगवान ने देशित किया है।

२. जो कोई पण्डित उन-उन अवस्थाओं द्वारा उचित प्रकार से उस नाम रूप समूह वाले काया पर, कुड़े की गठरी पर ध्यान लगाता है, ध्यान द्वारा चिंतन करता है - उपपरीक्षा करता है - ठीक-ठीक दर्शन करता है - तब उस समय वह कुड़े-करकट की नाम रूप वाली गठरी रिक्त, तुच्छ ही होती है। रिक्त एवं तुच्छ ही दिखती है।

३. इस नाम रूप की काया वाली इस कुड़े-करकट की गठरी को ही कारण बनाकर - विपुल प्रज्ञाधारी बुद्ध ने पानी के बुल्ले आदि के समान विभाजित कर देशित किया। आयु - उष्म विज्ञान और धम्म जीव यह तीनों धर्म प्रहाण करने योग्य होकर

पृष्ठ– ४६१

फेंकने योग्य होकर, श्मशान में फेंक देने वाले - रूप वाली कुड़े-करकट की गठ्ठर के समान देखो।

४. जीवितीन्द्रिय = आयु; उष्मा; विज्ञान - यह तीनों धर्म (यह जीवन धारा) - जिस समय इस काया को (सड़ी-गली कुड़े करकट की गठरी को) छोड़ देती है - उस समय लोगों द्वारा छोड़ दिया गया श्मशान में अचेतन पड़ी हुई यही काया दूसरों का भोजन बन जाती है।

५. ऐसे स्वभाव वाला हमारा यह रूप सन्तान - इस प्रकार बन जाता है। यह विञ्ञाण धर्म मूर्खों को भ्रम में डालने वाला मायावी ही है। इस काया को वधिक के समान कहा गया है। इस नाम रूप वाली कुड़े-करकट की गठरी में कोई सार नहीं है। (इसमें नित्य सार, सुख सार, अत्त सार - कोई भी तत्व सार नहीं है।)

६. चारों सम्यक प्रधान से युक्त सम्प्रज्ञानी, सतत सति वाले (पतिस्सतो), आरद्धवीरिय से परिपूर्ण भिक्षु - अर्थात् क्लेशों को नष्ट करने की इच्छा वाले भिक्षु दिन-रात

पृष्ठ – ४६२

नाम रूप वाले इस पंचस्कंधों की रिक्त-तुच्छ स्वभाव की पर्येषणा करते हैं। ध्यान द्वारा देखते हैं।

७. सार को (सारवान बहुमूल्य को) चाहने वाले - (सार-अर्थी), अच्युत पद - (निर्वाण पाद) की प्रार्थना कर, कामना कर - सभी संयोजनों को छोड़ देता है, त्याग देता है। सिर में आग लगे हुए व्यक्ति के समान - शीघ्रतापूर्वक आचरण करता है।

१. भारा हवे छ धातुयो, भारहारो च पुग्गलो।
भासदानं दुक्खं लोके, भार निक्खेपनं सुखं।।

२. निक्खिपित्वा गरुं भारं, सञ्ञं भारं अनादियं।
समूलं तण्ह मब्भुय्ह, सुखिता होथ साधवोति।।
(सेक्ख्य भासित भार सुत्त)

१. साधुओ, वस्तुतः यह छहों धातु भार ही है। (सुमेरू पर्वत में भी भारी हैं।) सभी लोग (पुग्गल) इस भार को वहन करने हैं। साधुओ! लोक में भार का वहन करना दुक्ख है। भार को फेंक देना बहुत सुखकारी है।

२. शिष्यो, तुम लोग इस बहुत भारी भार को फेंककर तथा अन्य किसी नये भार को

पृष्ठ – ४६३

भी बिना उठाये - उठा लेने की तृष्णा को मूल सहित उखाड़ कर सुखी हो जाओ।

इति छधातुसम्पिण्डनासुसासनीपब्बं

शिष्यो, "पथवी आपोच तेजोच" इत्यादि उद्देसगाथा से लेकर अभी मग्गफल को पहुंचने तक, देशित किया हुआ संपूर्ण विपश्यना धर्म मार्ग क्रम को मग्गङ्ग रथ द्वारा निर्वाण नगर तक पहुंच सकने के लिये दौड़कर जाने का तरीका - निब्बानगमन खण्ड समझना होगा।

इति निब्बानगमन पब्बं

६. निब्बान पवेसन पब्बं

मग्गविथि में आ जाने का वर्णन

शिष्यो, मग्ग रथ द्वारा निब्बान तक पहुंच सकने के लिये दौड़ लगाना - निब्बानगमन

पर्व का उपदेश दे चुकने के बाद अब मग्ग जवन, फल जवन के उभरने (उत्पन्न होने) से लेकर अनुपादिसेस निब्बान तक प्रवेश करने का वर्णन - निब्बानपवेसन पर्व का उपदेश करूंगा। तुम शिष्य गण भलीभांति श्रवण करो। भलीभांति समझो। कहता हूं :–

पृष्ठ– ४६४

मग्गवीथिपात होना

१. शिष्यो, धातु के गुरुभार को त्याग का आचरण कर चुकने पर, विरक्त विमुक्त होकर अग्रसर वह आरद्धविपस्सक निब्बिन्द योगी पुग्गल को किस समय मग्ग जवन उत्पन्न होगा। मग्ग अप्पनावीथि में पड़ जाने पर चित्त छः धातु को बार-बार केवल त्रिलक्षण का ही ध्यान कर उस ध्यान के द्वारा विपश्यना जवन के अंत में भवङ्ग में पड़कर पुनः भवंग से उठकर छः धातुओं में से चाहे रूप धातु या नाम धातु - किसी एक को अनित्य अवस्था द्वारा; दुक्ख अवस्था द्वारा; अनत्त अवस्था द्वारा किसी एक अवस्था द्वारा ध्यान करते हुए - आलम्बन कर एक बार आवज्जन होकर निरुद्ध हो जाता है।

२. उस आवर्जन के तत्काल बाद उस आवर्जन की पर्येषणा करने वाला, आलम्बन करने वाला आलम्बन को ही आवज्जन पर्येषणा करने, आलंबन करने के अनुसार एक साथ पर्येषण कर आरम्मण कर (१) परिकम्म (२) उपचार (३) अनुलोम। इस तरह क्रमानुसार तीन बार जवन उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है।

३. शिष्यो, यह तीसरा अनुलोम जवन चित्त छः धातु नाम रूप दुक्ख धर्म को आरम्मण करके ही अत्यंत घृणा कर 'उह' कहकर त्याग कर निरुद्ध हो जाता है। मेरे भाई - तुम्हें प्रेम नहीं करता। देखना नहीं चाहता, आरम्मण नहीं करना चाहता। बात नहीं करना चाहता। इस अर्थ, इस भाव से कहकर निरुद्ध कर जाता है। त्याग कर बढ़ता है। जैसा कि पीछे बता आया - उसी के अनुसार चित्त धातु के स्वभाव - धातु को जानकर रखो। पुनः उसे स्मरण करो शिष्यों।

शिष्यो, इस तरह अनुलोम जवन जब छोड़ा जाता है तब छः धातु दुक्ख धर्म को चाहने वाली तृष्णा - राग सहित सभी अकुशल क्लेश गरम तप्त धर्म चित्त सन्तान में समाप्त होकर रहित हो जाते हैं, इस तरह क्लेश तप्त धर्म, दुक्ख धर्म कट जाने के कारण, छः धातु दुःख भय भारी गठरी के गिर जाने, छूट जाने के कारण; चित्त सन्तान में शीतलता, शांति आदि स्वभाव प्रकट हो आते हैं।

पृष्ठ– ४६५

उस समय चित्त ही... शीतलता ही है, शांति ही है - वह शांति-शीतलता सीति सन्ति स्वभाव को प्राप्त होकर, स्पर्श कर, संलग्न कर भोगते अनुभव करते उस अनुलोम जवन के तुरंत बाद में गोत्रभु नामक एक बार जवन उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है।

५. उसके बाद वह चित्त खूब शीतल, खूब शांति - सीतिसन्ति भाव को ही पूर्व के जवन से बढ़कर अत्यधिक मात्रा में प्राप्त कर, स्पर्श कर, संलग्न कर, (गड़) तीक्ष्ण होकर, धुंधला होकर, भोगकर (अनुभव कर) मग्ग - नाम प्राप्त कर एक बार जवन उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है।

६-७. उसके बाद वह चित्त उत्तरोत्तर खूब शीतलता, खूब शांति - सीतिसन्ति स्वभाव को ही प्राप्त कर, स्पर्श कर, संलग्न कर, गड़ कर, धुंधला होकर, भोगकर (अनुभव कर) फल नाम प्राप्त कर दो बार जवन उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाता है।

प्रथम = शिष्यो वह चित्त इस तरह आवज्जन से लेकर चढ़ते हुए उत्पन्न होकर आया हुआ - धीरे-धीरे थककर, शक्ति क्षीण होकर, इस द्वितीय फल जवन के अंत में बिना जवन किच्च के अपने मूल प्रकृति के अनुसार भवङ्ग उत्पन्न होकर भवङ्ग गिरकर चला जाता है। पुनः विराम करने लगता है। सभी वीथि में ही वीथि चित्त अंत में भवङ्ग गिर जाता है - अर्थात् थक जाने पर चित्त आराम (विश्राम-विराम) ही करता है, शिष्यों।

दुतिय = शिष्यो, इस तरह चित्त फल जवन अंत में अनेकों लाखों-लाखों करोड़ों बार से अधिक भवङ्ग उत्पन्न होता - विराम कर थकान मिटा चुकने पर पहले के ही अनुसार छः धातु नाम रूप धर्म को ही अनिच्च, दुक्ख, अनत्त की अवस्थाओं में किसी भी एक अवस्था द्वारा ध्यान करके, आरम्म करके एक बार आवज्जन उत्पन्न होकर पुनः निरुद्ध हो जाता है। उसके बाद वह चित्त जैसा आवज्जन आरम्मण किया उसी के अनुसार एक ही तरह ध्यान करते, आरम्मण करते - परिकम्म, उपचार, अनुलोम नामक तीन जवन उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं। यह अनुलोम जवन भी पूर्व नियमानुसार ही त्याग देता है। अकुशल क्लेशों को काट देता है, रहित कर देता है, शिष्यों। उसके बाद आगे - वह चित्त पूर्व नियमानुसार ही शीतलता, शांतता, सीतिसन्ति स्वभाव को प्राप्त कर, स्पर्श कर, संलग्न कर, गड़कर, धुंधला होकर, अनुभव कर– (४) वोदान (५) मग्ग (६) फल (७) फल - उत्पन्न होकर भवङ्ग गिरकर पुनः विश्राम करता है।

पृष्ठ– ४६६

इसी विधि के अनुसार शिष्यों, आगे (बाद में) भी दो बार मग्गवीथि, कुल चार बार होकर अंतिम चौथे बार फल जवन के अंत में भवङ्गपात होकर, विराम कर, जब थकान मिट जाता है तब - जैसे स्वप्न से जगा हुआ व्यक्ति उस स्वप्न को विचारते हुए याद करता है वैसे - उस मग्गवीथि पात हो चुका पुग्गल - मग्ग को, फल को, निब्बान को, विगत (समाप्त) क्लेशों को विचारने वाला, स्मरण करने वाला चित्त ज्ञान जवन वार उत्पन्न होता है। इस अवस्था को बताने के लिये भगवान ने यह कहा है :–

१. सेक्खस्स सिक्खमानस्स, उजुमग्गानुसारिनो।-
खयस्मिं पठमं ञाणं, ततो अञ्ञा अनन्तरा।।

२. ततो अञ्ञा विमुत्तस्स, विमुत्तिञाण मुत्तमं।
उप्पज्जति खयेञाणं, खीणं संयोजनं इति।।
(इतिवुत्तक पाळि)

१. भिक्षुओ, ऋजु - निर्वाण पहुंचने का महामार्ग पर निरन्तर चलते हुए शिक्षमान शैक्ष्य अरिहन्त को सर्वप्रथम मार्ग में पच्चवेक्खण जवन ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके अनन्तर (उस मग्ग के बारे में पर्येषण करने के तुरंत बाद में) - अन्य ज्ञान = अरहंत फल को विचारने वाला जवन ज्ञान उत्पन्न होता है।

२. भिक्षुओ, वह क्लेशों से मुक्त, विमुक्त अरिहन्त - उस अरहत्त फल को विचारने के बाद - परे - उत्तम विमुत्ति ञाण = निर्वाण को विचारने वाला जवन ज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसके बाद में मेरे संयोजन क्षीण हो गये। इस तरह का मोद - उस विगत

पृष्ठ– ४६७

क्लेशों को विचार करने वाला जवन ज्ञान उत्पन्न हुआ।

शिष्यो, इस तरह चिंतन कर लेने के बाद भी - "विमुत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति, खीणा जाति" इत्यादि कहे अनुसार - अहो... मैं विगत क्लेश, विगत आस्रव हो गया। प्रतिसन्ति जाति, गर्भशयन, जनम समाप्त हो गया। श्रेष्ठ मार्ग आचरण को आचरित कर लिया। इस तरह क्षीणास्रव - क्षीण जाति करने वाले महान कार्य को मैंने करके पूरा कर लिया। क्षीण-आस्रव, क्षीण-जाति के फलस्वरूप अब आगे मेरे लिये कुछ भी करने को नहीं बचा। हां... भाई... समापन विचार ध्वनि, सिंहनाद किया गया - जवन ज्ञान भी उत्पन्न हुआ। शिष्यों, प्रथम मग्गवीथि में क्लेश समाप्त हुआ कहने पर भी कुछ सीमा तक ही समाप्त होता है। निःशेष समाप्त नहीं हो गया। ड्पी के दुर्गंधित मटके को एक बार ही धो देने पर पूरा साफ नहीं हुआ। अनेकों बार धोना पड़ता है - वैसे ही इस प्रकार की मग्गवीथिपात चार बार होने पर चित्त सन्तान में क्लेशों का निःशेष होता है। क्लेश पूर्णतः समाप्त होते हैं। शिष्यों, यह मग्गवीथि चार बार, चार स्तर होने में - प्रथम मग्गफल को निर्वाण के तरफ प्रथम बार पहुंचा हुआ मग्गफल होकर उसे सोतापत्ति मग्गफल कहते हैं। द्वितीय मग्गफल को इस मनुष्यों के लोक काम लोक में केवल एक बार गर्भ में प्रतिसन्धि कर पुनः ला सकने की शक्ति होकर उसे सकदागामि मग्गफल कहते हैं। तृतीय मग्गफल को इस काम लोक में प्रतिसन्धि कर गर्भ धारण करने के लिये नहीं आने देने की शक्ति होकर - अनागामि मग्गफल कहते हैं। चतुर्थ बार, चतुर्थ मग्गफल को अरिहन्त होने का मूल कारण होकर - अरहत्त मग्गफल कहलाता है।

शिष्यो, कुछ पुग्गल इस तरह मग्गफल चार स्तर एक ही झोंके में अरहत्त फलपात तक उत्पन्न होकर पहुंच जाते हैं। बीच (मध्य में विराम (ठहराव) नहीं होता। पच्चवेक्खणा नहीं होता। अंतिम अरहत्त मग्गफल पूरा होने पर ही पच्चवेक्खणा होता है। कुछ पुग्गल

तृतीय अनागामि मग्गफल पात होने पर एकदम रुककर रहते हैं। कुछ दुतिय सकदागामि मग्गफलपात

पृष्ठ - ४६८

होने पर बिलकुल रुककर रहते हैं। कुछ प्रथम सोतापत्तिमग्गफलपात के अंत में ही एकदम रुककर रहते हैं। भगवान के छोटे भाई आयुष्मान आनन्द प्रथम सोतापत्ति मग्गफल में एकदम रुककर आगे के तीनों फल बाद में एक बार में बिना रुके ही प्राप्त कर लिये। शिष्यो, इस मार्गफल के चार सोपानीय मार्ग में कुछ को एक बार ठहरना पड़ता है। कुछ को दो बार। कुछ को मार्गफल एक के बाद एक बार - एक के बाद एक बार - इस तरह चार बार ठहरना (रुकना) पड़ता है। इस प्रकार मग्गफल सीढ़ी-दर-सीढ़ी रुककर बढ़ने को इस प्रकार भी समझो :– कोई पर्वत ४०० ईकाई ऊंचा है। कोई एकदम में शिखर पर चढ़ा और आराम किया; कोई तीन सौ चढ़कर आराम किया; कोई दो सौ चढ़कर आराम किया और कोई एक सौ चढ़कर आराम किया। लेकिन यह भी समझना कि - इस नीचे-नीचे के मग्गफल में एकदम रुकने वाले पुग्गल में भी फल जवन अंतिम भवङ्गपात पर आराम कर अंत में अपने सन्तान में मग्गवीथिपात होने की अवस्था को विचारने वाला पच्चवेक्खणा जवन होते ही हैं। उन पुग्गलों में क्लेश भी शेष होने के कारण उन शेष क्लेशों को भी विचारते हैं। यह मग्गवीथिपात का वर्णन हुआ।

सोतापत्तिमग्गफल का महा फल [(महान बल (शक्ति)]

शिष्यो, इन चार सोपान वाले मग्गफल में सबसे नीचे की डंडी सोतापत्ति मग्गफल को प्राप्त कर सोतापन्न हो जाना ही महान लाभ हो गया। महान उपकारी है। बहुमूल्य हो गया। भगवान के औरस पुत्र हो गये। सुप्पटिपन्नता इत्यादि - ९- गुणों से भलीभांति परिपूर्ण हो गया। चारों अपाय से भी सदा के लिए छुटकारा हो गया। जहां भी जन्म होगा सुगति भव में भी सुखी कुलगोत्र में ही जन्म होगा। मनुष्यों में राजा, देवताओं में राजा ही होगा। कामगुणों का सुखोपभोग करते, धर्म में यदि विस्मृति होगी भी - तो भी ज्यादा से ज्यादा सात जन्मों तक प्रतिसन्धि कर गर्भ में आता है। सातवें जन्म में अरिहन्त होकर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। वह आठवां जन्म नहीं लेता। आठवां जन्म तो किसी भी लोक में नहीं होता। इसीलिये ही, शिष्यों, भगवान ने

पृष्ठ– ४६९

"न ते भवं अट्ठम मादियन्ति"; "अभब्बो अट्ठमं भवं निब्बतेतुं"; सत्तक्खत्तुं परमञ्च, सन्धावित्वान पुग्गलो। दुक्खस्सन्तं करो होति; सब्ब संयोजनक्खया" – संयुत्त पाळि आदि में भगवान ने देशित किया है।

वे सबसे गये-गुजरे स्रोतापन्न भी आठवीं बार जन्म नहीं लेते। उस कामगुणों का कामी गया-गुजरा स्रोतापन्न पुग्गल का आठवां जन्म नहीं हो सकता। भिक्षुओं वैसा स्रोतापन्न अधिक-से-अधिक केवल सात बार ही (लोकों में) संधावन करेगा (आवागमन

करेगा)। उसके बाद सभी संयोजनों का क्षय कर लेगा। अंतिम सातवें जन्म में सभी संयोजनों को क्षीण कर लेने के कारण - संसरण वर्त्त - दुक्ख का अंत कर लेता है।

शिष्यो, एक बार भगवान चुटकी से धूल उठाकर भिक्षुओं को दिखाकर कहा– भिक्षुओ! स्रोतापत्ति मग्गफल को प्राप्त कर स्रोतापन्न हो चुके पुग्गल को - समाप्त हो चुके दुक्ख तथा अभी शेष बचे हुए दुक्ख - कौन-सा अधिक है? यदि पूछा जाय, तो समाप्त हो चुके दुक्ख इस महापृथ्वी के भीतर विद्यमान धूल कणों के बराबर बहुत अधिक है। और जो शेष दुक्ख है वह तो मात्र मेरी चुटकी भर धूल के कणों के जितना ही है। इस तरह भगवान ने तुलना कर उपमा द्वार समझाया। सोतापत्ति मग्गफल तक पहुंच जायं तो इतना सारा दुक्ख समाप्त हो गया। उस सोतापन्न पुग्गल में निहित गुणों का बखान कहकर पूरा नहीं किया जा सकता। इतना अधिक है। शिष्यों, सोतापत्ति फल को प्राप्त कर स्रोतापन्न अवस्था प्राप्त हो जाने पर ढेरों उपकार होता है - बहुत मूल्यवान है वह अवस्था। इतना मूल्यवान होने के कारण ही शिष्यों, भगवान ने कहा :–

पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकोधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं।।

धम्म पद - १३/१२

पृष्ठ– ४७०

इस गाथा को अनाथपिण्डिक श्रेष्ठि के लिए कहा। धम्म पद में आया है।– "(सारी) पृथ्वी का अकेला राजा होने से या स्वर्ग गमन से अथवा सारे लोक का स्वामी होने से भी स्रोतापत्ति फल श्रेष्ठ है।"

शिष्यो, जब स्रोतापन की अवस्था प्राप्त करना इतना बहुमूल्य उपकारी है, तो फिर इससे ऊपर की अवस्था, सकदागामी का क्या कहना। उससे भी ऊपर की अवस्था अनागामी हो जाने पर क्या कहना? उससे भी ऊपर अरहत्त फल प्राप्त हो अरिहंत हो जावे - तो फिर उसका पारावार नहीं। असङ्ख्येय्य अप्पमेय्य उपकार वाला है। इस तरह यह मार्ग फलों के शुभ परिणाम के बहुमूल्यता का वर्णन हुआ।

१. शिष्यो, इन चार मग्गों को प्राप्त करते जाने पर मार्ग का उत्पन्न होना - क्लेशों का समापन होना कैसे होता है? शिष्यों, सोतापत्ति मग्ग जवन की प्राप्ति में - **सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छा** - दोनों क्लेश चित्त सन्तान में शेष नहीं रहते। समाप्त होकर निरुद्ध हो जाते हैं। आगे के सात जन्मों में उत्पन्न कर सकने वाला चारों अपायों को देने वाला रूक्षतापूर्ण राग-द्वेष-मोह - सभी अकुशल क्लेश, जो रूक्ष होते हैं वे भी निरुद्ध हो जाते हैं। इस कारण - क्लेश के निरुद्ध होने के साथ ही साथ - एक ही बार में - इस कारण से - आगामी अपाय में - आगे के सात जन्मों में होने वाले - छः धातु फल दुःख धर्म भी कट जाता है - निरुद्ध होकर समाप्त हो जाता है। "अविज्जाय त्वेव

असेस विराग निरोधा सङ्खार निरोधो, तण्हाय त्वेव असेस विराग निरोधा उपादान निरोधो" इत्यादि कहने के अनुसार पटिच्चसमुप्पाद रथचक्र भंजित हो गया। कट गया।

पृष्ठ – ४७१

२. सकदागामी मग्ग जवन की प्राप्ति हो जाने पर - इस मनुष्य लोक में, इस काम लोक में पुनः एक बार से अधिक लाने वाले (अर्थात् जन्म देने वाले) कुछ अत्यधिक तीक्ष्ण रूक्ष राग, द्वेष, मोह वाले सभी अकुशल रूक्ष क्लेश अब निरुद्ध हो गये। कट गये। इसीलिये क्लेश के कारण आगामी होने वाला छः धातु फल दुक्ख धर्म भी कटकर निरुद्ध हो गये। दुक्ख रथ भग्न हो गया। टूट गया।

३. अनागामी मग्ग जवन की प्राप्ति हो जाने पर - **दोस, इस्सा, मच्छरिया, कुक्कुच,** यह चारों शेष नहीं रह जाते। कहकर समाप्त हो जाते हैं। कामगुण को भोगने की कामना - काम लोक में फिर आगे पुनः उत्पन्न कर सकने वाला राग, मोह, सभी अकुशल क्लेश जो रूक्ष थे - वे भी सब निरुद्ध हो गये। कट गये। समाप्त हो गये। फल - दुक्ख धर्म भी समाप्त हो गये। दुक्ख रथ भग्न हो गया।

४. **चौथी डंडी (चौथा सोपान)** अरहत्त मग्ग जवन के उत्पन्न होने पर अत्यंत क्षीण, सूक्ष्म - शेष बचा हुआ रूप - अरूप लोकों में जन्म दे सकने वाले - राग, मोह, मान, उद्धच्च, थिनमिद्ध नामक अकुशल क्लेश शेष नहीं बचे। सभी कटकर निरुद्ध हो गये। चित्त सन्तान में क्लेशों का रञ्चमात्र भी मैल नहीं रह गया। अनुपम - अप्रतिम रूप से निर्मल हो गया। इसी कारण से ही भगवान बुद्ध ने यह कहा :–

"यं बुद्ध सेट्ठो परिवण्णयि सुचिं समाधिं। समाधिना तेन समो न विज्जति।" (सुत्तनिपात – रतन सुत्त)

उन बुद्ध श्रेष्ठ ने उस अरहत्त मग्ग समाधि को - जो नितांत शुद्ध, मैल रहित शुचि है - प्रशंसा करते हैं। उस अरहत्त मग्ग समाधि से बढ़कर कोई भी समाधि धर्म (श्रेष्ठ) नहीं है।

पृष्ठ – ४७२

शिष्यो, इन्हीं कारणों से अकुशल समुदय निरुद्ध हो जाते ही एक-बा-एक उसी के साथ-ही-साथ च्युत-च्यवन हो कर बाद में उत्पन्न होने वाला छः धातु फल दुःख धर्म भी निरुद्ध हो जाते हैं। पटिच्च सम्मुप्पाद का रथचक्र टुकड़े-टुकड़े होकर छिन्न-भिन्न हो जाता है।

शिष्यो, इस क्लेश की समाप्ति पर अनुलोम जवन के भङ्ग क्षण में समाप्त होता है ऐसा कहने पर भी एक-बा-एक भङ्ग नहीं हो जाते - कटकर समाप्त नहीं होते। धागे के टूटने पर - उसके टूटे हुए स्थान पर कुछ महीन रेशे लंबे निकलते हुए कट जाने के

समान, दुश्मन की गर्दन को काटकर - गर्दन धड़ से पृथक हो जाने पर ही - मरते हुए होकर - मरा हुआ होकर - मर गया ऐसा कहा जाता है। ऐसा कहने पर भी कुछ थोड़ी अवधि बीत जाने पर से - प्राण एकदम छूट जाने के समान - उसी तरह अनुलोम जवन -त्याग देने से इस अनुलोम जवन के भंग क्षण से लेकर समाप्त होकर थोड़ा-सा क्लेश गंध-प्राण का क्षीण धागा निकलकर मग्ग जवन एक-बा-एक प्रकट होने से सर्वप्रथम समाप्त हो जाता है। गोत्रभू जवन - उत्पाद - स्थिति - भङ्ग - यह निरुद्ध हो जाने पर अपना निरन्तर उत्पन्न होते रहने के लिए अनन्तर समनन्तर पच्चय शक्ति नामक बीज अंकुर - वंश - को छोड़कर रख देता है। उस बीज अंकुर में से भी क्लेश - गंध-प्राण रेशा रह जाता है। बीज अंकुर से मग्ग नामक एक-बा-एक चित्त पिण्ड उत्पन्न होकर (उठने में) उत्पाद में - इस मग्ग चित्त पिण्ड में स्थित मग्गङ्ग धर्मों का वेग आनुभाव बल सामर्थ्य के कारण - वह क्लेश बीज अंकुर, गंध-प्राण, रेशा सूत्र एकदम साफ-साफ कटकर अलग हो जाता है। मग्ग चित्त पिण्ड के भीतर अब नहीं रह गया। इस तरह क्लेश गोत्रभू भंग से समानान्तर निरुद्ध नहीं होता। मग्ग उत्पन्न होकर निरुद्ध हो कर क्लेश को मग्ग ने हटाया कहते हैं। शिष्यों, इस तरह चारों मग्ग सोपान अपने-अपने संबंधित मग्ग - अपने मग्ग और उनके अपने क्लेश को हटाना - एकदम कटकर निरुद्ध हो जाने को भलीभांति देखो और समझो। अनुभूति पर उतारकर देखो। साधना करो।

पृष्ठ– ४७३

शिष्यो, एक उदाहरण से समझाते हैं - एक आदमी बहुत लदाव वाले (भारी वजन वाले) गाड़ी में एक तरफ एक गाय, दूसरी ओर एक बैल जोतता है। गाय को दाना-पानी नहीं देता। केवल बैल को ही खूब दाना-पानी खिलाता-पिलाता है। बहुत लम्बे रास्ते पर निकलता है। लगातार कई दिनों तक हांकता है। बेचारी गाय की शक्ति क्षीण हो जाती है - वह मर जाती है। तो शिष्यों, तुम क्या कहोगे - इस गाय को किसने मारा? क्या उस गाड़ीवान ने मारा ऐसा कहोगे? (अथवा) उस बैल ने मारा ऐसा कहोगे? (अथवा) वह स्वयं अपने आप मरी ऐसा कहोगे? शिष्यों, गाय के मरने में वह स्वयं शक्ति क्षीण होती हुई, थककर मरने के कारण वह अपने आप मरी यह भी कह सकते हो। केवल बैल अपने पल्ले को दबाये रखने के भार स्वरूप उसे न सहन कर सकने से उस गाय के मरने का कारण वह बैल है - यह भी कह सकते हो। वह गाड़ीवान बिना खिलाये-पिलाये भारी वजन की गाड़ी में निर्दयतापूर्वक जोता। इसलिये गाय के मरने का कारण - गाड़ीवान भी हुआ। ऐसे ही शिष्यों, इस क्लेश के कटकर नितांत समाप्त होने में क्लेश **तीरणपरिञ्ञा** से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे क्षीण होते-होते **मग्ग क्षण** में चरम अवस्था तक क्षीण होकर कटकर समाप्त हो गये। अतः वह अपने आप स्वतः कटकर समाप्त हो गया (मर गया) भी कहते हैं। सम्मादिट्ठि इत्यादि मग्गङ्ग धर्मों के बल अनुभाव से उसके छाये हुए दबाव डालने के कारण धीरे-धीरे क्षीण होकर कटकर समाप्त हो गया। अतः मग्ग ने हटाया - मग्ग ने मार डाला यह भी कहते हैं। वह पुग्गल मग्गङ्ग धर्मों को ही केवल बलवान बनाने का आलम्बन रूपी आहार देकर पोषण कर - क्लेश धर्मों

को आलम्बन आहार बिना दिये भूखों रखकर मार डाला - और वह क्षीण होकर समाप्त हो गया। अतः उस पुग्गल ने मार डाला यह भी कह सकते हैं। इसीलिये शिष्यों - मग्ग पुग्गल लोग मग्ग ज्ञान रूपी तलवार द्वारा क्लेश रूपी शत्रुओं को हटाते हुए मार डालते हैं - यह कहा जाता है।

पृष्ठ – ४७४

क्लेशों का निरोध

शिष्यो, क्लेशों को समाप्त (कर देना) पीतल से निर्मित पात्र पर जमे हुए मैल को रगड़-रगड़कर मैल रहित करना या चमचमाता हुआ बना देना है। मैल लिप्त सोने या चांदी को बार-बार अग्नि में तप्त कर मैल रहित कर देने के समान है। चित्त धातु में, संसरण में स्थित होने से लेकर लिप्त होकर आते हुए - वे क्लेश रूपी मैल - तीरण परिञ्ञा से लेकर थोड़ा-थोड़ा, थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे - क्षीण होते-होते श्वेत निर्मल होते हुए आकर - मग्ग जवन उत्पन्न होकर चढ़ती बार में सर्वप्रथम - श्वेत निर्मल - मैल रहित हो जाते हैं। तीरण परिञ्ञा से प्रारम्भ कर शुद्ध निर्मल करने वाले चित्त क्षणों में क्लेश समाप्त होकर जाने वाले शिखर में उत्पन्न इस चित्त क्षण को शिखर पर पहुंचाकर उसके भीतर से क्लेश फिर उत्पन्न न होकर शुरू-शुरू में एकदम समाप्त होकर मग्ग चित्त कहते हैं। इसीलिये ही शिष्यों, भगवान ने क्लेशों को निर्मल कर निर्मूल करने के लिये यह देशित किया :–

अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मल मत्तनो।। धम्म पद १८/५

"सोनार जैसे चांदी के मैल को क्रमशः प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे।" यह मग्ग का प्रकट होना तथा क्लेशों के समाप्त हो जाने का वर्णन है।

ऋजु सत्य उत्तम निब्बानधम्मकाय को ऊंगली रखकर बताना

शिष्यो, इन क्लेशों का निरोध हो जाना निर्वाण नहीं है। इस क्लेशाग्नि - दुक्ख धर्म - दुक्ख भार के निरोध हो जाने के कारण

पृष्ठ – ४७५

चित्त सन्तान में... अरे ओह... कितना शांत... कह सकने योग्य अत्यंत शीतलता अत्यंत शांति को प्राप्त होता है। उस शीतलता, शांति से निर्वाण। शिष्यों, ... शीत शांति (इस) के अतिरिक्त मग्ग चित्त फल चित्तों को आलम्बन करने वाला, संलग्न करने वाला, निर्वाण कहां ? निर्वाण नहीं, शिष्यों। मग्ग चित्त, फल चित्त में सब इस शीतल शांत के स्वभाव मात्र को ही केवल - जैसे लोहे को चुम्बक अपनी ओर खींचकर चिपका लेता

है - वैसे ही दृढ़ता से एकाग्र होकर शांति में शीतलता में संलग्न है (तल्लीन है), गोत्रभू चित्त तक भी सर्वप्रथम संलग्न होकर शीतलता शांति भी शक्तिशाली होने से - साफ-साफ सतत दृढ़तापूर्वक शांत नहीं हुए होने के कारण - 'अप्पना' नहीं कह सकते। इस मग्गं चित्त, फल चित्तों के भी आलम्बन के भीतर शामिल होने के समान सतत दृढ़तापूर्वक शांति से संलग्न होकर होने के कारण अप्पना जवन भी कहते हैं।

मग्ग चित्तों, फल चित्तों को निर्वाण से संलग्न करना

शिष्यो, इस स्थान पर किस प्रकार गोत्रभू खण में क्लेश से बिना निरुद्ध हुए शीतलता शांति को भला गोत्रभू जवन कैसे प्राप्त हो सकेगा। संलग्न कर सकेगा, आलम्बन कर सकेगा इसका दोष नहीं लगाना चाहिए। दोषारोपण नहीं किया जा सकता। प्राप्त हो ही गया। अनुलोम जवन त्याग कर दुक्ख के भार की गठरी उतर जाने पर ही शांति, शीतलता को प्राप्त होते हैं; क्लेशाग्नि भी निरोध हो रहा होकर - निरुद्ध हुआ - होकर प्राप्त होते हैं; प्राप्त होने पर भी मग्ग जवन पात से अत्यधिक बढ़कर आधिकारिक रूप से प्राप्त होता है। शिष्यों, यह सभी क्लेश धर्म "नत्थि रागसमो अग्गि" इत्यादि द्वारा कहे अनुसार अत्यंत तप्त अग्नि है - दुक्ख है। अत्यंत भारी गठरी है - दुक्ख धर्म की गठरी ही है। इन क्लेशों की तप्तता - भारीपन, को धम्म सेनापत्ति - आयुष्मान सारिपुत्र थेर ने इस प्रकार से देशित किया है।

भवे सातं न विन्दामि, दय्हन्तो तीहि अग्गीहि।
भारितो रागभारेन, नेरुं उद्धरितो यथा।। (अपदान पाळि)

पृष्ठ– ४७६

आवुसो, तीन अग्नियां (राग, दोस, मोह) जलाने वाली होकर मैं भव संसरण में आराम (आनन्द) को नहीं देख पाता। राग के भार से दबे हुए हैं। सुमेरू पर्वत जैसे भार को उठाये हुए के समान हैं।

शिष्यो, क्लेश को दोष न मानकर - क्लेश को ही प्यार कर, चाहकर बिना छोड़ने की इच्छा से उसी क्लेश के संग खुशी-खुशी सुखपूर्वक रहने की कामना वाले लोग - यह मानते हैं कि यदि यह क्षीण हो जावेगा - कम हो जावेगा तो दुक्ख का भार बढ़ जावेगा। क्लेश के लगातार बने रहने पर उसकी शक्ति बनी रहने पर भार कम होगा - सुख ज्यादा होगा। इसीलिये ही शिष्यों, कुछ लोग अत्यधिक क्लेशकारी आहारों को लेने के पक्षधर हैं। जो लोग क्लेश को दोष मानते और देखते हैं - वे उसे त्यागने के इच्छुक हैं, वे इसकी अधिकता को अत्यंत उत्तापक भार, भारी दुःख ही समझते हैं। सारिपुत्र के समझने तथा देखने के अनुसार - वे तो अकेले केवल 'राग' को ही, सुमेरू पर्वत के भार के समान भारी समझते हैं। शेष प्रत्येक क्लेश :– दोस, मोह, मान, दिट्ठि भी सुमेरू पर्वत जैसे ही भारी हैं। शिष्यों, इस तरह क्लेश को बुराइयों का समूह समझना; उसे त्यागने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। यह अत्यंत तीव्र अग्नि है। दुःखों की गठरी है।

भार है। इनकी समाप्ति के कारण किसी पुग्गल को अनिर्वचनीय शीतलता शांति स्वभाव की प्राप्ति होती है, शिष्यों। इसे उजागर करने के लिये उदाहरण द्वारा समझाता हूं :– "सातवें दिन दो पहर को इसकी सिर को धड़ से अलग कर दो?" इस प्रकार राजदण्ड पाया हुआ एक पुरुष। जबसे दण्ड की घोषणा हुई वह अत्यंत तापित - संतापित होता है। दुःखी है। दिन पर दिन उसका ताप - उसका दुःख बढ़ता जाता है। खाने की भी इच्छा नहीं। प्रसन्न रहना तो दूर की बात, बात भी नहीं कर सकता है - शिष्यों। उस अभियुक्त के दुःख का उसके ताप की कल्पना करो, शिष्यों।

पृष्ठ– ४७७

शिष्यो, वह अभियुक्त निश्चित तीथि पर - निश्चित समय के पूर्व ही उस वध-वेदिका के खम्भे में बांध दिया गया। तब तक राजा का आदेश होता है। बंदी को मुक्त कर दो, निर्भय कर दो। यह आदेश पाते ही उसके चित्त संतान में शांतिदायी, सुखदायी लहर उठने लगती है। उसका चित्त जैसा शीतल-शांत हो जाता है - वैसे ही आर्य पुग्गल योगी अकथनीय भारी - क्लेश अग्नि - भय-दुःख के निरोध, समापन, पतन हो जाने के कारण - महान शीतलता-शांति प्राप्त करता है। आर्य पुग्गलों को प्राप्त शीतलता-शांति निर्वाण की महानता - सुख को क्या देख लिया ? - शिष्यों, इसकी कल्पना कर जानो - और देखो तो ?

श्रेष्ठ निर्वाण के सुख का वर्णन

शिष्यो, इस शीतलता, शांति स्वभाव - निर्वाण को प्राप्त आर्य पुग्गल को यदि कोई पूछे कि दिखाओ तुम अपनी शीतलता, शांतता। तो इसे निकालकर दिखलाया भी तो नहीं जा सकता है - शिष्यों। निकालकर दिखाने के लिये कोई ठोस पदार्थ भी तो नहीं है। ऐसे किसी ठोस पदार्थ के समान नहीं दिखा पाने पर - 'तेरा निर्वाण का आकार प्रकार मूर्तता कुछ भी तो नहीं है। कुछ भी दिखाने के लिये तो नहीं है। व्यर्थ बकवास है। खरगोश का सिंग, कछुआ का रोम केकड़े का रुधिर आदि का-सा कथन मात्र है - निरर्थक अभाव प्रज्ञप्ति मात्र ही तो है। यह अनुपयुक्त अनुचित बात नहीं कहना चाहिए। शिष्यों, उसके चित्त सन्तान में उस सीति सन्ति स्वभाव को वह चित्त द्वारा, ज्ञान द्वारा वास्तव में जानता और अनुभव करता है। यह अभाव प्रज्ञप्ति नहीं है। यह तो परमार्थतः सचमुच में स्वभाव धर्म ही है। यह अन्य किसी को निकालकर दिखलाया जा सकने वाला धर्म तो नहीं है। दिखलाया ही नहीं जा सकता। इसलिये तो भगवान ने यह कहा–

पृष्ठ– ४७८

"पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि" भगवान द्वारा भलीभांति देशित मार्ग-फल-धर्म को आर्य प्रज्ञावान लोग प्रत्येक, अपने-अपने चित्त सन्तान में अनुभव करते हैं।

शिष्यो, जो साफ-साफ चित्त और ज्ञान से देखा ढूंढ़ा जाय वह नहीं है - विलुप्त के विपरीत चलता हुआ मनुष्य, देव, पुरुष, स्त्री, विहार, घर, वृक्ष आदि अर्थों को **पञ्ञत्त**

कहते हैं। इस तरह नहीं होकर, लुप्त होने वाला न होकर - बल्कि उसके विपरीत होकर न रहे - केवल चित्त में ज्ञान में के स्वभाव को ऐसे मिलने वाले अर्थों को **परमत्थ** कहते हैं। (जो मूर्त है - वह **पञ्ञत**, जो अमूर्त है वह **परमार्थ** हुआ।) वह परमत्थ धर्म भी दो है। जो कारण धर्म को करता है - वह **सङ्खत परमत्थ** तथा जो कारण धर्म को नहीं करने वाला **असङ्खत परमत्थ** कहलाते हैं। इन दोनों में जो सीति सन्ति - स्वभाव निर्वाण है - वह **असङ्खत परमत्थ** ही है। शिष्यों इस तरह निब्बान को भलीभांति जानो। याद रखो - अनुभूति पर उतारकर समझो। देखो। यह हुआ - मग्ग आलम्बन सहित निब्बान को अनुचित्त धम्मकाय को ऊंगली रखकर बताना।

निब्बान को विभिन्न सुत्तों द्वारा विचार-विमर्श

शिष्यो, इस समय इस निर्वाण को पीछे जो निब्बानकित्तन पर्व में सुत्तों को बताया उनसे; उसके अतिरिक्त सुत्तों से केवल प्रकट मात्र करने के लिये थोड़ा मिलान करके विचार-विमर्श करेंगे। शिष्यो, यह सीति सन्ति स्वभाव निर्वाण कारणों धर्मों के द्वारा निर्मित किया जाने वाला है क्या? नहीं, नहीं है। इसी कारण से **"विसङ्खारं", "असङ्खत्तं", "अकतं"**, आदि शब्द भगवान ने उपयोग कर देशित किया। नाम-रूप सङ्खत परमार्थों के समान उत्पाद द्वारा उत्पन्न होकर नहीं आता। उत्पाद स्वभाव वाला नहीं है। इसी कारण - **"अजातं अभूतं असमुप्पन्नं उप्पादो न पञ्ञायति"** भी देशित किया। उस तरह उप्पाद द्वारा उत्पन्न होकर आने वाला धर्म नहीं होने के कारण

पृष्ठ – ४७९

विपरिणाम धर्म वाला होना, परिपक्व होना, नष्ट होना इसमें नहीं है। इसलिये – **"अविपरिणामं अजज्जरं अमतं अच्युतं अच्चन्तं अनन्तं वयो न पञ्ञायति ठितस्स अञ्ञयत्तं न पञ्ञायति"** इस तरह देशित किया। उस तरह उत्पन्न होकर आने वाला धर्म नहीं होने के कारण - खरगोश के सिंग, कछुआ के रोम, झिंगे के रुधिर के समान कहे जाने का कथन मात्र होकर (अमूर्त) बिना भाव का - अभाव पञ्ञत्त ही है क्या? तो अभाव पञ्ञत्त भी नहीं है। अभाव प्रज्ञप्ति भी नहीं है। 'परमत्थ' द्वारा प्रत्यक्षतः वस्तुतः है। इसी कारण **"सन्तं"** भी, **"अत्थि"** भी देशित करते हैं।

शिष्यो, यह सीति-सन्ति धातु, संसरण भय में पड़कर भय भैरव में से गुजरते योगी - आर्य पुग्गलों के पहुंचने वाला स्थान है। स्थिति स्थान है। आश्रय स्थल, शरण स्थल, विश्राम स्थल है। इसीलिये – **"पद पत्त पत्ति"**, भी; **"आयतन पतिट्ठ दीप गाध"** भी; **"ताण लेण सरण परायण"** भी भगवान ने देशित किया है। इस "गाध दीप पतिट्ठ आयतन" वाला सीति-सन्ति स्थान आश्रय स्थल - कोई ठोस पदार्थ से निर्मित हमारे विहार, हमारे गृह (घर) के समान का आश्रय स्थान तो है नहीं। इसीलिए - **"अपदिं"** देशित किया है। इस शीतलता आयतन स्थित राजधानी नगर में चार महाधातु भी नहीं हैं। सूर्य नक्षत्र तारे भी नहीं। प्रतिसन्धि करने योग्य आने वाले भी कोई नहीं हैं। इसीलिए– **"नेव**

पथवी...पे०...। न उभोसन्दिम सूरिया नेव आमति वदामि, न गतिं न ठितिं न उपपत्तिं"। यह देशित किया है।

शिष्यो, लोक में अविज्जा जैसा अंधकार कुछ भी नहीं है। अमावस्या की आधी रात, बादलों से आच्छादित, वीहड़-वन, गुहा - इन चार अङ्गों से परिपूर्ण अंधकार से भी अनन्त गुना अंधेरा होता है - अविज्जा का अंधकार। इस अंधकार को हजार चांद-सूर्य भी दूर नहीं कर सकते - ऐसा प्रज्ञावानों ने कहा है। इतना गहन तमसाच्छादित अविज्जा के अंधकार को भी यह शीतलता 'सीति' निर्वाण का साक्षात्कार होते ही सब दूर हो जाता है। इसलिए

पृष्ठ– ४८०

यह निर्वाण, लोक में स्थित समस्त प्रकाशों से बढ़कर श्रेष्ठतम है। अप्रतिम है। प्रकाशमान है यह कहना पड़ता है। यह कहते हैं। इसलिए यह निर्वाण - नक्षत्र-तारे - चन्द्र-सूर्य के नहीं रहने पर भी अन्धकार रहित ही स्वयं-प्रभ होता है। रहता है। **"अनन्तं सब्बतो पभं"** भी देशित किया है।

शिष्यो, ग्यारह प्रकार की अग्नियां क्लेशों, दुक्खों का परिपूर्ण विनाश हो जाने के कारण - उनके बुझकर निरुद्ध होने के साथ-ही-साथ सीति-सन्ति, शीतलता शान्ति की प्राप्ति होती है। यह शीतल शांत निर्वाण - सीति-सन्ति धातु महान - उन अग्नियों, क्लेशों, दुक्खों के अन्त, मृत्यु, समाप्ति सङ्खत ताप, भङ्ग-छोर से भी बिना मिश्रित हुए, स्पर्श किये - उस सङ्खत ताप - भङ्ग-छोर के अग्र-भाग नोक पर एकत्र होकर रहता है। वह अग्नियां, वे क्लेश, दुक्खें - निर्वाण सीति सन्ति धातु माहान में गहनतर-गहनतर सिर को धंसाते हुए बुझकर शांत हो जाते हैं - निरुद्ध हो जाते हैं। इसलिये यह सीति सन्ति निर्वाण - वनाग्नि प्रज्वलित होने पर वन के मध्य स्थित शीतल सरोवर के समान है। बहुत विस्तृत है। भय-भैरव विहीन - क्षेमपूर्ण - उस पार के समान है। अयुज्झभूमि नामक तावतिंसा सुदस्सन नगर के समान भी है। क्लेशों के निरुद्ध हो जाने वाला स्थान भी है। दुक्खों का निरोध स्थान भी है। इसीलिये–

"निब्बानदहदो वरो, यम्हि गिनी निरुज्झरे"; "यस्मिं वेरा विलीयरे"; "अगति यत्थ मारस्स"; "यत्थ रागो निरुज्झति, यत्थ दोसो निरुज्झति, यत्थ मोहो निरुज्झति, यत्थ दुक्खं निरुज्झति"; "लोकन्तं"; "एसेवन्तो दुक्खस्स"; "सब्बुपधि पटिनिस्सग्गो वहुपच्छेदो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं"; आदि देशित किया गया है।

पृष्ठ– ४८१

सब्बुपधि पटिनिस्सग्गो = वह सभी उपधि अर्थात् पुनर्जन्मों के कारणों का परित्याग है। संसरणावर्त्त - तीनों वर्त्तों का रहित स्थान है। तृष्णाओं के क्षय वाला स्थान है। राग रहित विगत राग स्थान है। समुदय दुक्ख दोनों का निरोध स्थान है। निर्वाण ग्यारह अग्नियों का बुझ जाने वाला स्थान है। निब्बानं - निवानं - तण्हा से मुक्त स्थान ही है।

शिष्यो, यह निर्वाण सीति सन्ति धातु - स्वयं भी सङ्खत लोक से बिना मिश्रित हुए - लोक का अतिक्रमण कर लोकाग्र के उस पार से मुक्त सटा हुआ रहता है। जुड़ा रहता है। अपने समीप आये हुए पुग्गलों को भी लोक से मुक्त करता है। इसी कारण से - **"निस्सरण लोकुत्तर"** कहा गया है। इस निर्वाण को प्राप्त कर लेने पर सत्त्वों का जरा-जाति इत्यादि से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। इसीलिये कहा– **"अजातिमजराब्याधिं, अमतं निब्भयंगता"**। दिनों, वर्षों, कल्पों, अनेकों कल्पों तक खोद सकने पर, क्लेशों की मिट्टी को खोद डालने पर, इस निर्वाण तक पहुंच सकते हैं। अत्यंत सूक्ष्म ज्ञान, गहन-गंभीर ज्ञान को अनुभूत करने पर साक्षात्कार होता है। घनघोर परिश्रम, कठोर आचरण - प्रयत्न से साक्षात्कार होता है। इसीलिये कहा– **"गम्भीर निपुण दुद्दस सुदुद्दस दुरनुबोध।"** ऐसी शीतलता निर्वाण से बढ़कर श्रेष्ठ सुख नहीं है। कोई नहीं है। यह शीतलता निर्वाण ही सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, सबसे अच्छा सुख है। इसीलिये यह देशित किया गया - **साधु सुन्दरं अग्गं सेट्ठं पणीतं पवरं परमं उत्तमं निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा निब्बानं परमं सुखं।"** इस लोक का अंत, दुक्खों का अंत अत्यंत उत्तम सुखदायी यह शीतलता निर्वाण स्वभाव - हाथी से, घोड़े से, पैदल चलकर पहुंचा जा सकने वाला भी नहीं है। इसीलिये–

पृष्ठ– ४८२

> **नहि एतेहि मानेहि, गच्छेय्य अगतं दिसं।**
> **गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।।**

यह देशित किया।

मग्गङ्ग रथ द्वारा ही वहां पहुंचा जा सकता है। इसीलिये–

"स वे एतेन यानेन, निब्बानस्सेव सन्तिके", "मगङ्गिकेन यानेन, एथ तिसता गमाम्हसे" आदि देशित किया।

शिष्यो, यह सीति सन्ति स्वभाव कभी भी किसी भी समय में प्राप्त करना उत्तम है। कभी भी प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी ऐसा समय नहीं जबकि प्राप्त न किया जा सके। यदि प्राप्ति होने योग्य प्रयत्न करने वाला कोई व्यक्ति हो तो हर समय इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिये यह शीतलीभूत निर्वाण हर समय रहता है। इसीलिये– **"अनन्तं सब्बतो पभं"** यह देशित किया गया है।

कभी भी नष्ट नहीं होने वाला निर्वाण हर समय में प्रकटतः बना रहता है। 'अनन्तं सब्बतो पभं'।

यह शीतलता, निर्वाण हर समय प्रकट रूप में बने रहने पर भी, लोक में सुमेरू पर्वत जिस प्रकार दृढ़तापूर्वक अडिग अचल स्थिर रहता है; ध्रुव तारा ध्रुव बना रहता है, कहीं नहीं आता-जाता, उस प्रकार हमेशा स्थिर रहता है - ऐसा भी नहीं। इसलिये– **"अपतिट्ठं अपवत्तं"** यह देशित किया है। सुमेरू-ध्रुव इत्यादि के समान बिना गति के, बिना

परिवर्तन, चले-फिरे, एक स्थान पर स्थित - स्थिर धर्म भी नहीं है अतः अपतिट्ठं है। सुमेर-ध्रुव का-सा लगातार स्थित रहने वाला धर्म भी नहीं - अतः अपवत्तं है।

शिष्यो, आग को रगड़कर बनाने वाला होने पर - किसी भी समय अग्नि उत्पन्न हो सकता है और प्राप्त हो सकने के कारण - लोक में हमेशा अग्नि है यह जिस प्रकार कहा जा सकता है - मरने वाले लोग होने पर - मरने

पृष्ठ – ४८३

का समय कभी भी आ सकता है। इस कारण लोक में मृत्यु राज हमेशा विद्यमान है यह जिस प्रकार कहा जा सकता है - उसी तरह इस निर्वाण की सतत विद्यमानता को जानना - मेरे शिष्यो! यह शीतलता, यह निर्वाण सुमेरू-ध्रुव आदि के समान प्रकट रूप में स्थित होकर रहने वाला धर्म नहीं है इस कारण से दिशाओं के स्थिति स्थान में भी नहीं है। किस स्थान पर, किस दिशा में सीति सन्ति निर्वाण धातु रहता है यह दिशाओं के स्थिति स्थानों से निर्देशित नहीं किया जा सकता। अग्नि, मृत्युराज कहां किस दिशा में स्थित हैं जैसे निर्देशित कर नहीं बताया जा सकता - वैसे ही। इसी कारण से– **"नत्थि निब्बानस्स ठितो कासो"– "अनिदस्सनं"** यह देशित किया गया है। शिष्यों, इस तरह इंगित कर निर्देशित कर नहीं बताया जा सकने पर भी - हर स्थान पर, हर क्षेत्र, हर दिशा में यदि प्राप्ति के लिये प्रत्यत्न करेंगे तो वह प्राप्त किया जा सकने के कारण किसी भी क्षेत्र, किसी भी स्थान दिशा में वह सीति सन्ति निर्वाण नहीं है - इसे भी नहीं कह सकते। एक प्रकार से निर्वाण - निर्वाण को आलम्बन बनाकर रहने वाले पुग्गल के रहने वाले दिशा-क्षेत्र में है। उस पुग्गल के रहने वाले स्थान में है। उस पुग्गल के मग्ग चित्त, फल चित्त में स्थित है - ऐसा क्षेत्र दिशा के स्थिति स्थानों को निर्देशित कर सकते हैं।

शिष्यो, हाथी से, घोड़े से, पैदल इत्यादि द्वारा चल-चलकर पहुंचने में भी सरलता नहीं। सभी प्रकार के भय, सभी अग्नियों सभी दुक्खों से मुक्त, लोकों के अंत-अनन्त गुणों से परिपूर्ण इस शांत शीतल निर्वाण राज्य की राजधानी अमत स्टेशन - इस मग्ग चित्त, फल चित्त से परिपूर्ण पुग्गल की काया में ही क्या प्राप्त नहीं होता। होता है। हां, इसीलिए ही शिष्यों, भगवान ने सगाथावग्ग संयुत्त पाळि में :– **"अपि च खो आवुसो इमस्मिं येव ब्याममत्ते कळेवरे ससञ्ञिम्हि समनके लोकञ्च पञ्ञपेमि, लोकसमुदयञ्च, लोकनिरोधञ्च लोकनिरोधगामिनं पटिपदञ्च।**

इस प्रकार लोकों के अंत पर पहुंचकर अजरा अमर सुख प्राप्त करने के लिये खोजते हुए दौड़ लगाने वाला नहीं पहुंच पाने वाला रोहितस ब्रह्मा को भगवान ने देशित किया।

पृष्ठ – ४८४

"ओ दायक देवता! वस्तुतः संज्ञा सहित, चित्त सहित व्याम भर के इस काया के

कलेवर में ही लोक को भी मैं प्रज्ञापन करता हूं। लोकों का समुदय, लोकों का निरोध स्थान, लोक निरोधगामिनी को भी प्रज्ञापित करता हूं।

शिष्यो, इस तरह इस शीतल शांत निर्वाण को विभिन्न सुत्तों द्वारा मिलान कर विचार-विमर्श कर भी जानो, शिष्यों। इस निर्वाण को देशित करने में - अनिग्गहित सुत्त, सन्तिपदञाण सुत्त इत्यादि कुछ सुत्तों में सीधे शीतलता को बिना देशित किये वहां पहुंचने के पूर्व शीतलता के इसी पार क्लेशों सङ्खतों के निरोध में देशित किया है। उन सुत्तों को निरोध का पहुंच स्थान यह शांत स्वभाव निर्वाण के अर्थ को ही बिना छूये पहुंचे, नियम विधि द्वारा लाकर प्राप्त करने वाला नेय्यत्थ सुत्त को स्मरण करो। वेदना सुत्त, आसव सुत्त, चतुसच्च सुत्त इत्यादि कुछ सुत्तों में से शीतलता शांतता स्वभाव तक पहुंचने के लिये, प्राप्ति के लिये :–

"यत्थ चेता निरुज्झन्ति, यत्थ चंते निरुज्झन्ति, यत्थ दुक्खं निरुज्झति, यत्थ च सब्बसो दुक्खं असेसं उपनिरुज्झति, यम्हि निरुज्झन्ति भवानि सब्बसो।"

इत्यादि से निरोध का संबंधित सिर रोप कर निरोध नामक साफ-साफ निर्वाण को आधार बनाकर आधारपद द्वारा देशित करते हैं। वे सुत्त - उन सुत्तों की देशना के अनुसार सीधे गूढ़ार्थ प्राप्त होने लायक नीतत्थ सुत्त को समझो। इस तरह, इसी के जैसे निर्वाण को देशित करने वाले सुत्तों को भी नेय्यत्थ, नीतत्थ द्वारा बांटकर जानो। यह शांति का स्वभाव निर्वाण को विभिन्न सुत्तों से मिलान कर विचार-विमर्श हुआ।

पृष्ठ– ४८५

आर्य पुग्गलों का फलसमापत

शिष्यो, "अरिय सच्चान दस्सनं" नामक मङ्गल के अनुसार मग्गवीथि द्वारा प्रत्येक चार सच्च निर्वाण को दर्शन कर चार फल में स्थित फलट्ठान चारों अरिया पुग्गल "निब्बान सच्छिकिरियाच" नामक मङ्गल हो सकने के लिये निब्बान को साक्षात्कार करने की इच्छा के समय छः धातु नाम रूप सङ्खार धर्मों को अनिच्च दुक्ख अनत्त नामक बार-बार विपश्यना द्वारा देख लेने पर चित्त - भवङ्ग से उठकर सङ्खार को आलम्बन बनाकर आवर्जन परिकम्म उपचार अनुलोम - यह उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। उसके पश्चात पूर्व का मग्गवीथि होने के समय का उत्पन्न हुआ अनुभव किया - पहुंचा हुआ व्यवहार (आदत) के अनुसार निब्बान को आलम्बन बनाकर गोत्रभू-फल - फल नामक फल जवन, चित्त की सबलता भर, पुग्गल की कामना भर अधिक उत्पन्न होकर रहता है। उसके आगे भवङ्गपात होकर सङ्खार को आलम्बन बनाने वाला मूल-प्रकृति चित्त उत्पन्न होकर फल जवन से उठते हैं। इस तरह फल जवन पात होकर, उत्पन्न होकर रहने के समय सोकर रहने वाले व्यक्ति के समान वह व्यक्ति शीतलता शांतता के अतिरिक्त कुछ को भी नहीं जानता। याद नहीं आता है। उस समय काय चित्त अत्यंत सुखी होता है, शिष्यों। इस तरह रहने को फलसमापत को प्रविष्ठ होकर रहता है - यह भी कहते हैं। निब्बुति

भुञ्जमाना, फल चित्त से निर्वाणिक सुख को भोगते हुए रहता है - यह भी कहते हैं। निब्बान सच्छिकिरिया, फल चित्त से निर्वाण को साक्षात्कार कर 'रहना' भी कहते हैं। साक्षात्कार करना अर्थात् देखने को ही कहते हैं।

शिष्यो, अरिया पुग्गल हो गये तो निर्वाण को हर समय देखते रहते हैं - ऐसा मत मान लेना। इस तरह मग्ग चित्त, फल चित्त उत्पन्न होने के बाद, जब आलम्बन करते हुए रहते हैं तब ही केवल देखते रहते हैं। जब आलम्बन नहीं करते होते अर्थात् जब वे ध्यान में नहीं होते उस समय सङ्खारों को आलम्बन करने वाले विभिन्न चित्त उत्पन्न होते ही रहते हैं। अकुशल जिनका समाप्त नहीं हुआ है वैसे आर्य लोगों में अकुशल चित्तों के भी होने के समय होता ही रहता है, शिष्यों। इस तरह आर्यों के निर्वाण को साक्षात्कार कर

पृष्ठ– ४८६

चित्त उत्पन्न होने को भी भलीभांति जानो। यह आर्य पुग्गलों के निब्बान को साक्षात्कार करने का, अनुभव करने का, फलवीथिपात होने को बताना ही हुआ।

अरिहन्त पुग्गलों के निर्वाणिक अवस्था का वर्णन

शिष्यो, इस तरह छः धातु नाम रूप धर्मों को त्रिलक्षण द्वारा ध्यान कर चारों मग्ग सोपानों को प्राप्त कर संपूर्ण क्लेशों का प्रहाण कर, विरक्त हो चुका अरिहन्त पुग्गल जिस समय मरता है, उस समय पूर्व-पूर्व समय के किये हुए तथा चित्त सन्तान में साथ आया हुआ - अपरापरियकम्म उपपज्जवेदनियकम्म दिट्ठिधम्म वेदनियकम्म नामक कम्म भवों सहित, अभी का पच्चुप्पन्न वर्तमान जीवन, छः धातु दुक्ख पूर्णतः च्युति चित्त निरुद्ध होने और मरने के साथ ही साथ निरुद्ध हो जाते हैं। इस दुक्ख के निरुद्ध होने के कारण अपार, वर्णनातीत, अनन्त शीतलता शांति सीति सन्ति धातु - निर्वाण - उन दुक्खों के निरोध के सामने तुरंत आगे सटकर होता है। शिष्यों, निर्वाण के स्वभाव को आभासित कर (कल्पना कर) जान गये, समझ गये कि नहीं ? निब्बान, दुक्ख निरोध होना और उसके आगे वह निब्बान का होना - यह धर्मिता है। दुक्ख निरोध के बाद जो है वह निर्वाण ही है। किसी मृतक की काया में प्रविष्ट होकर रहने वाले उस तुसित देवलोक वासी देवता के समान अत्यंत दुक्खदायी - भारी छः धातुओं की भारी गठरी - घृणास्पद, भयानक, शत्रु दुःख को ढोते रहने वाला वह अरिहन्त पुग्गल - इन भारों-भयों दुक्खों के समाप्त हो जाने पर, निरोध हो जाने पर तुरंत उसके आगे सीति सन्ति स्वभाव को - निर्वाण स्वर्ण राजधानी कैसे बिना रहे हो सकेगा ? निश्चित ही परमार्थ के अनुसार है ही। उसे अनुभव कर साक्षात्कार करो। शिष्यों, उस अरिहन्त पुग्गल के चुति-चित्त के निरोध होते नष्ट होते मरते ही - उसके तुरंत बाद दूसरी ओर सीति सन्ति धातु महान निर्वाण - स्वर्ण नगरी में पहुंचकर बुझ चुकी अग्नि ज्वाला के समान एकदम समाप्त हो जाता है। लुप्त हो जाता है। कहीं नहीं जाता। कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। इसीलिये भगवान ने कहा –

पृष्ठ – ४८७

"निब्बन्तिधीरा यथयंपदीपो" (सुत्तनिपात) तथा -

१. अयोघन हतस्सेव, जलतो जातवेदसो।
अनुपुब्बू पसन्तस्स, यथा नञायते गति।। (उदान)

२. एवं सम्मा विगुत्तानं, कामवन्धो घतारिनं।
पञापेतुं गति नत्थि, पत्तानं अचलं सुखं। (उदान)

भिक्षुओ, वैशाली राजकुमारों द्वारा जलाकर रखे गये इस प्रदीप के बुझ जाने के समान - उन धीर अरिहन्तों का मरण के समय बिना कुछ उत्पन्न हुए वस्तुतः बुझकर, मर कर शांत हो जाता है। विनष्ट हो जाता है। जलते समय (धूं-धूं कर जलते समय) घन से पीटना होता है। हमेशा के लिए बुझकर विलीन हो जाने वाले प्रज्वलन की गति को जैसे नहीं जाना जा सकता, उसी के तरह काम-बन्धनों के बाढ़ को तैरकर लांघ गये सम्यक विमुक्त लोगों की, अचल सुख को प्राप्त करने वालों की, गति को जाना नहीं जा सकता।

आर्य पुग्गलों द्वारा साक्षात निर्वाण का वर्णन

शिष्यो, यह निर्वाण क्लेशों से, दुक्खों से (संबद्ध) संबंधित परिणाम है। यह कथन सत्य है। शिष्यों, यदि लोक में क्लेश नहीं होते, दुक्ख नहीं होते, तो निर्वाण भी नहीं होता। क्लेशों के

पृष्ठ – ४८८

दुक्खों के विद्यमान रहने से निर्वाण भी है। इसलिये मात्र सोतापन्न होने से निर्वाण को पूरा नहीं प्राप्त हो चुके। अपने चित्त सन्तान में क्लेशों दुक्खों का जितना-जितना छुटकारा हुआ केवल उतना ही उतना शीतलता निर्वाण को भी प्राप्त हुए। इसी तरह सकदागामी, अनागामी को भी समझना चाहिए। अरिहन्त अवस्था को प्राप्त हो जाने पर भी निःशेष संपूर्ण क्लेश धर्म अनागत स्कंध दुक्खों के शेष निरोध के कारण ही शीतल निर्वाण को भी प्राप्त करते - पहुंचते हैं। संपूर्ण निर्वाण प्राप्त नहीं हुआ। अभी वर्तमान स्कंध भार - दुक्ख तो है ही। वह अरिहन्त पुग्गल मर कर इस वर्तमान स्कंध भार, दुक्ख-भय, शत्रु पूरा-पूरा एकदम संपूर्ण निरोध हो जाने पर शीतलीभूत शांत निर्वाण को भी संपूर्ण रूप से प्राप्त करते हैं। क्या इसीलिये नहीं, शिष्यों - भगवान ने 'सत्तङ्गुत्तर' में यह देशित किया है–

सो भवे न रज्जति, सम्भवे, अथुत्तरिपदं सन्तं सम्मा पञाय पस्सति। तञ्चख्वस्स पदं न सब्बेन सब्बं सच्छिकतं होति। भिक्षुओ,

भिक्षुओ, वे नोचस्स नोचमे सिया इत्यादि से विलाप करने वाले निब्बिन्द योगी पुग्गल, भव संसरण में रत्त नहीं रहता, समुदय में भी चाह नहीं रखता अनुरक्त - उस अनुलोम जवन द्वारा आत्यन्तिक रूप से आसक्ति रहित हो जाने के समय उत्तरोत्तर अनुलोम जवन से ऊपर शांत पद निर्वाण को सम्यक प्रज्ञा द्वारा अर्थात् गोत्रभू प्रज्ञा, मार्ग प्रज्ञा, फल प्रज्ञा द्वारा, दर्शन कर वह पद वह निर्वाण पद ही वस्तुतः उस क्लेश दुःख के शेष रह गये होने से वे आर्य पुग्गल (वस्तुतः वे पुग्गल जिनके क्लेश दुक्ख अभी शेष हैं)

पृष्ठ– ४८९

संपूर्ण का - परिपूर्ण का साक्षात्कार नहीं कर पाये हैं।

सउपादिसेस अनुपादिसेस दोनों का वर्णन

शिष्यो, यहां पहुंचकर शैक्ष्य पुग्गल प्राप्तव्य निर्वाण सहित अरिहन्त पुग्गल मरने के पूर्व प्राप्तव्य निर्वाण को उपादिसेस नामक चारों-पांचों स्कंध के रहने पर्यंत प्राप्तव्य निर्वाण होकर सउपादिसेस निर्वाण कहलाता है। सउपादिसेस निर्वाण समझना। यह अब अरिहन्त के मरण हो जाने से प्राप्त निर्वाण उपादिसेस नामक चारों-पांचों स्कंध के न रहने से प्राप्त होने वाला निर्वाण होकर अनुपादिसेस निर्वाण कहते हैं। अनुपादिसेस निर्वाण समझना। शिष्यों, इस तरह दो तरह के निर्वाणों को समझाने के लिये भगवान ने यह देशित किया :–

दुवे इमा चक्खुमता पकासिता,
निब्बानधातु अनिस्सितेन तादिना।
एकाहि धातु इध दिट्ठधम्मिका,
सउपादिसेसा भवनेत्ति सङ्ख्या।
अनुपादिसेसा पन सम्परायिका,
यम्हि निरुज्झन्ति भवानि सब्बसो।
(इतिवुत्तक पाळि)

भिक्षुओ, भवतण्हा का अंत भवनेत्ति सङ्खय - इस अरिहन्त के मरने से पूर्व वर्तमान ज़ीवन में प्राप्तव्य, सउपादिसेस नामक निर्वाण - वही एक ही निर्वाण धातु है। उस अनुपादिसेस महान निर्वाण में कम्मभव उपपत्तिभव दुक्ख सर्वस्व निरुद्ध हो जाता है। मरने के पश्चात पहुंचने वाला (सम्परायिका) वह अनुपादिसेस निर्वाण, वही

पृष्ठ– ४९०

एक ही निर्वाण धातु है। इस तरह यह दोनों निर्वाण धातुएं किसी भी तृष्णा पर

आश्रित नहीं होते हैं। लाभालाभ इत्यादि आठों लोक धर्मों के कारण कोई प्रभाव नहीं - तादिगुण से संपन्न चक्षुमान भगवान बुद्ध ने प्रकाशित किया है।

शिष्यो, संसार (लोक) में जल न हो तो बीजों का अंकुरण भी नहीं हो सकेगा। बीज नष्ट हो जायेंगे। उसी तरह सउपादिसेस निर्वाण में कम्म फल देने का कारण, तृष्णा के समाप्त हो जाने के कारण, कम्मभव भी उत्तरोत्तर फल नहीं दे सकेगा। समाप्त हो गया, कहने के अनुसार भगवान ने "सब्बकम्मक्खयंपत्तो" देशित किया है। ऐसा कहने के बावजूद भी वस्तुतः में कम्मभव सउपादिसेस निर्वाण में समाप्त नहीं हुआ है। इस अनुपादिसेस निर्वाण होने के समय समाप्त होता है - निरुद्ध होता है यह याद रखना। इस तरह कम्मभवों को भी शामिल करने के लिये निर्वाण धातु सुत्त में– "भवानि" कहा है। कम्मभव, सउपादिसेस निर्वाण में निरुद्ध नहीं हुए रहते है - क्या इसीलिये ऐसा नहीं कहा है? शिष्यों, अरिहन्त पुग्गल मरने के पूर्व तक, पूर्व में किया हुआ कुशलकम्म अकुशलकम्मों का लाभ सुखों को विभिन्न दुःखों को भोगते ही हैं, शिष्यों। इस तरह - सउपादि - उनुपादि यह दो निर्वाण होने पर भी निर्वाण के स्वभाव धर्म काया में ताप धर्म, दुक्ख धर्म, इन सबके निरोध के कारण प्राप्तव्य शीतलता, शांतता स्वभाव एक ही होता है। यह निर्वाण एक ही है यह जानना। निरुद्ध दुक्खों के लिये पहुंचे हुए पुग्गल के लिये ही केवल अधिक होकर रहता है। शिष्यों, इस अनुपादिसेस निर्वाण को देख लिया, जान लिया न? हां तो बताओ कैसा है? यह अनुपादिसेस निर्वाण राजधानी नगर अनेकों अरिहन्तों के नहीं आया होने तथा आया होने के कारण कमी होना - परिपूर्ण होना क्या हो सकेगा? ना - नहीं हो सकता। हां! तो इसीलिए भगवान बुद्ध ने **"न ते निब्बान धातुया ऊनत्तंवा पूरत्तंवा पञ्ञायति"** यह देशना किया।

पृष्ठ– ४९१

अनुपादिसेस निर्वाण के सुख का वर्णन

शिष्यो, यह अनुपादिसेस निर्वाण सुख सर्वोत्तम सुख ही होता है। इसलिये– "निब्बान पत्तो साधु" ऐसा मैं पीछे कह आया, शिष्यों। इसलिये सर्वोत्तम सुख ही होने पर भी जीवनभव को घृणा करने वाले, नाम-रूप स्कंध को घृणा करने वाले, दुक्ख का साक्षात दर्शन करने वाले प्रज्ञावान योगी पुग्गल आर्य पुग्गल गण ही केवल ठीक-ठीक सर्वोत्तम सुख है - इसे प्रसन्नतापूर्वक दर्शन कर सकते हैं। देख सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। इस भव को, जीवन को, बिना घृणा किये इस जीवन के प्रति आसक्त, नाम रूप स्कंध को बिना घृणा किये इसको बिना दुक्ख जाने - नाम-रूप स्कंध सङ्खत में ही आसक्त-अनुरक्त रहने वाले अन्धबाल पृथग्जन इस निर्वाण सुख को - सुख नहीं, कुछ नहीं जाना जाता - कुछ नहीं अनुभव किया जाता - चुरूट-बीड़ी धुम्रपान तक भी नहीं किया जा सकता - फिर इसमें क्या अच्छा है रे? क्या सुख है रे? शुद्ध घृणास्पद भयानक दुक्ख ही है - ऐसा मानते, करते, कहते हैं। इसीलिए ही शिष्यों, भगवान ने सुत्तनिपात पाळि में आया द्वयतानुपस्सना सुत्त में यह देशित किया :–

१. रूपा सद्दा गन्धा रसा, फस्सधम्माच केवला।
इट्ठा कन्ता मनापाच, यावतात्थीति वुच्चति।।

२. सदेवकस्स लोकस्स, एते खो सुखसम्मता।
यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं नेसं दुक्खसम्मतं।।

३. सुखं दिट्ठमरियेति, सक्कायस्सु परोधनं।
पच्चनिक्कमिदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं।।

४. यं परे सुखतो आहु, तदरिया हु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदू।।

(१) भिक्षुओ, इस लोक में इष्ट, कन्ता = प्रियकर, मनाप तो केवल रूप, शब्द,

पृष्ठ– ४९२

गन्ध, रस, स्पर्श, (निर्वाण को छोड़कर) धम्मालम्बन ही जहां तक होते हैं - ऐसा कहते हैं।

२. भिक्षुओ, देव ब्रह्मा सहित अन्धबाल मनुष्य गण - छः इन्द्रियों (दुक्ख धर्मों) को ही सुख सम्मत कहा करते हैं। उस निर्वाण में, इन छः इन्द्रिय दुक्ख धर्म का निरोध होता है। उस दुक्ख निरोध निर्वाण सुख को देव ब्रह्मा सहित अन्धबाल मनुष्य गण केवल दुक्ख सम्मत कहते हैं। (देव ब्रह्मा मनुष्य दुक्ख धर्म को सुख सम्मत कहते हैं। दुक्ख निरोध निर्वाण सुख को वे लोग दुक्ख सम्मत मानते हैं।)

३. भिक्षुओ, छः इन्द्रिय सक्काय धम्म के निरोध स्थान निर्वाण को आर्य योगी जन वास्तविक सुख जानते हैं। भिक्षुओं, ज्ञान चक्षु से परिपूर्ण योगी आर्य पुग्गलों के सीधे विपरीत सारा लोक (अन्धबलों का संपूर्ण लोक) रहता है।

४. भिक्षुओ, योगियों के अतिरिक्त अन्य लोग जिस सुख को बड़ा सुख कहते हैं। उन अतिरिक्त अन्धबालों द्वारा कहे गये उस सुख को आर्य योगी जन दुक्ख कहते हैं। जिस धर्म को अन्धबाल मूर्ख जन दुक्ख कहते

पृष्ठ– ४९३

हैं, दुक्ख मानते हैं - उस धर्म को आर्य जन सर्वोत्तम सुख जानते हैं। (वेदनाओं द्वारा जानते (=विदु) हैं) भिक्षुओं, इस प्रकार सीधे-सीधे विपरीत होने को अनुभूति द्वारा जानो।

शिष्यो, इस सुत्त पाठ के अर्थ को कंठस्थ करो। बड़ा ही सुन्दर है। इस सुत्त द्वारा भी प्रत्येषणा कर दुक्ख स्वभाव को जानकर इस निर्वाण के सर्वश्रेष्ठता को भलीभांति जानो। अनुभूति करके देखो। जानो।

निर्वाण प्राप्त पुग्गल लोग होते हैं अथवा नहीं?

प्रश्न का समाधान

शिष्यो, यदि तुमसे कोई व्यक्ति यह पूछे - क्षीणाम्रव अरिहन्त पुग्गल मृत्यु के पश्चात क्या उत्पन्न होता (रहता) है? या क्या बिना रहे (उत्पन्न हुए) नष्ट हो जाता है? अथवा कुछ रहते हैं - कुछ नहीं रहते हैं? अथवा उत्पन्न होते भी नहीं, नहीं होते, भी नहीं? यदि इस तरह आकर प्रश्न करे, तो शिष्यों कैसे उत्तर दोगे? इस तरह पूछने पर इस तरह उत्तर देना होता है।

उस महापुरुष का रूप धातु भी अरिहन्त पुग्गल नहीं। नाम धातु भी अरिहन्त पुग्गल नहीं। यह नाम रूप दोनों भी अरिहन्त पुग्गल नहीं। इन नाम-रूप दोनों में भी अरिहन्त पुग्गल जैसा कुछ नहीं। इस नाम रूप दोनों को छोड़कर अन्यान्य भी अरिहन्त पुग्गल नहीं। वह नहीं वाला - पुग्गल का होना होगा। बिना उत्पन्न हुए क्या कटकर छिन्न हो गया इत्यादि द्वारा पूछना– "बांझिन का पुत्र क्या मरता है? क्या नहीं मरता है?" पूछने के समान ही है। "क्या आकाश टूटकर गिर गया? क्या नहीं गिरा?" इत्यादि पूछने के समान है। इसीलिए तुम्हारा पूछा हुआ चारों प्रश्न में से किसी का भी उत्तर देना उपयुक्त नहीं है। उस महापुरुष पुग्गल

पृष्ठ– ४९४

के समान लोक में कोई पुग्गल सत्त्व नहीं है। यह छः धातु नाम रूप धर्म मात्र ही है। यह नाम रूप धर्म समूह - कारणों से उत्पन्न होने वाला शुद्ध अनित्य धर्म है। दुक्ख धर्म है। कुड़े-करकट के जलावन को लगी हुई प्रज्वलित अग्नि उस इंधन के समाप्त हो जाने पर निरुद्ध हो जाने, बुझ जाने के समान है। ठीक उसी तरह नाम रूप दुक्ख धर्म समूह का विषय समाप्त हो जाने के कारण (कारण के समाप्त हो जाने पर) निरुद्ध हो जाता है। ऐसा उत्तर दिया जायेगा। यह अनुपादिसेस निर्वाण के स्वरूप स्वभाव सहित, सुख सहित निर्वाण प्राप्ति को दर्शाना हुआ।

निर्वाण प्राप्तों को मार नहीं ढूंढ पाता

शिष्यो, छ धातुओं को मैं नहीं, मेरा नहीं को ध्यान द्वारा जानकर वीततृष्णा होकर इस तरह अनुपादिसेस निर्वाण तक पहुंचा हुआ प्रज्ञावान पुग्गल को जराभय, व्याधिभय, मरणभय क्या सतायेगा? सोक परिदेव दुक्ख दोमनस्स उपायास भय आदि क्या सतायेंगे? जाति, जरा, व्याधि इत्यादि पीछा करने वाली सेना सहित मार मृत्युराज क्या ढूंढ़ कर भी

पा सकेगा ? नहीं सता सकता। उसके ढूंढ़े भी नहीं प्राप्त हो सकता। मार देवपुत्र अपनी सेना सहित ढूंढ़ कर क्या पा सकेगा ? (ढूंढ़े पर भी) नहीं पा सकता।

आयुष्मानगोधिक वत्थु

शिष्यो, भगवान बुद्ध के जीवनकाल में गोधिक नामक एक भिक्षु रोगी होने के कारण ध्यान को प्राप्त कर-करके छः बार च्युत होकर जब सातवीं बार ध्यान को पुनः प्राप्त किया तो विचार किया– अरे... मैं रोग व्याधि के कारण छः बार ध्यान च्युत हो चुका। अभी भी पुनः ध्यान च्युत हो ही सकता हूं। जब ध्यान च्युत हो जाऊंगा और उस समय मरूंगा तो केवल कामावचर कर्म मात्र ही होने के कारण अस्थिर गति होगी। अभी ध्यान च्युत होने के पूर्व ही मर जाने पर मेरी गति स्थिर हो जावेगी। ब्रह्मलोक प्राप्त कर लूंगा।

पृष्ठ– ४९५

ब्रह्मा हो जाऊंगा तो भगवान के धर्म को भी सुन सकूंगा तथा प्रयत्न कर भावना भी कर सकूंगा। इसलिये मैं अभी ध्यान च्युत होने के पूर्व ही अपनी गर्दन को तेज धार से काटकर मर जाऊं। ऐसा संकल्प कर निर्णय किया। गर्दन काटने के लिये औजार (कटार) निकाल लिया। उस समय उस आयुष्मान गोधिक के मन के विचारों को मार देवपुत्र ने जानकर– "अरे... यह गोधिक इस तरह मरेगा तो कटार से गर्दन रेतते समय इसको दुःखद वेदनाएं प्रकट होंगी - उन्हें देखते हुए यदि कहीं वह अरिहन्त हो गया और निर्वाण प्राप्त कर लिया तो मेरे राज्य से मेरे लोक से एक व्यक्ति कम हो जावेगा। ऐसा नहीं होने देने के विचार से मैं स्वयं जाकर मना भी करूं तो होने वाला नहीं। यदि भगवान रोकेंगे तो होगा। भगवान से रोकवाऊं।" ऐसा विचार कर भगवान के समीप पहुंचा। उनको प्रणाम किया। भलाई करने का-सा ढंग बनाकर कहा - "भगवान अभी आपका शिष्य गोधिक आत्म हत्या करने का संकल्प कर चुका है। वह आपका शिष्य गोधिक मग्ग फल को बिना प्राप्त किये अभी पृथग्जन शैक्ष्य ही है। भगवान के शासन में वह प्रमादी भी नहीं है - अश्रद्धालु भी नहीं है। बहुत श्रद्धावान प्रसन्न है। अच्छा शिष्य है। ऐसा शिष्य बिना मार्ग फल प्राप्त किये पृथग्जन शैक्ष्य अवस्था में ही अभी के समान उसका मर जाना - अच्छा नहीं भगवान। लोग जानेंगे तो अच्छा 'नहीं' मानेंगे। हे भगवान उसे रोकें। मना करें।" ऐसा निवेदन किया। मार द्वारा भगवान से निवेदन करते समय ही उधर वह आयुष्मान गोधिक अपनी गर्दन स्वयं रेतकर - दुक्ख वेदनाओं को उत्पन्न कर - उन दुःख वेदनाओं को हटाकर - उन्हें साक्षीभाव से दर्शन करते हुए अनित्य दुक्ख-* का दर्शन कर अरिहन्त हुआ - अरिहन्त होते ही तुरंत मर कर निर्वाण को प्राप्त कर लिया। इस बात को भगवान ने जानकर, मना करवाने के लिये आये उस मार देवपुत्र को भगवान ने यह गाथा कहा :–

एवं हि धीरा उब्बन्ति, नावकङ्खन्ति जीवितं।
समूलं तण्ह सब्भुय्ह, गोधिको परिनिब्बुतो।। (सगाथावग्ग - संयुत्त)

पृष्ठ– ४९६

"मार! लाभ-हानि को जानने वाले प्रज्ञावान धीर लोग इसी तरह करते हैं। जीवित रहने की आकांक्षा नहीं करते। मार! गोधिक, तृष्णा को समूल उखाड़कर परिनिर्वृत्त हो गया। तुम्हारे राज्य के परे परिनिर्वाण को प्राप्त हो गया।"

जब भगवान ने इस तरह कह दिया तब वह मार गोधिक को मुड़कर देखा। सचमुच में मरा हुआ जानकर गोधिक के प्राण विज्ञान को अपने राज्य को छोड़कर बाहर नहीं जा सके इसलिये तेजी से आकाश को मेघ-जाल से ढंककर पकड़ लिया। तब सारा आकाश अंधेरा हो गया। इस तरह मेघ-जाल से ढंककर उसके भीतर जब टटोल कर देखा - सोचा कि इस जाल में आ गया होगा - उसमें झांका, मनुष्य लोक में देखा, गोधिक की मृत काया में भी देखा, कहां है अब गोधिक का विज्ञान। वह ढूंढ़े पर भी कहीं पर भी नहीं मिला शिष्यों! उस समय तब मार देवता– "ओह मेरे राज्य से एक मनुष्य कम हो गया" वह उदास होकर रह गया। इस तरह शिष्यों, उस निर्वाण को प्राप्त हो गये प्रज्ञावान पुग्गल को मृत्यु मार अपनी सेना सहित ढूंढ़ नहीं पाया सो नहीं - सेनाओं सहित देवपुत्र मार राज भी नहीं ढूंढ़ पाया। शिष्यों, इन्हीं विषयों के आधार पर उद्देसवार में मैंने यह देशित किया है–

एवं विरत्तं खेमत्तं, सब्बसञ्ञोजनातिगं।
अन्वेसं सब्बठानेसु, मारिसेनापि नज्झगा।।

इसलिये शिष्यों! तुम लोग भी इस गोधिक इत्यादि प्रज्ञावान श्रेष्ठ पुग्गलों की तरह मार राज की सेनाओं के द्वारा ढूंढ़े नहीं मिल सको - ऐसे इस अनुपादिसेस निब्बान स्वर्ण राजधानी नगर पहुंचकर एकदम लुप्त हो जाओ। इसके लिये पीछे जैसा कि मैंने उपदेश देकर

पृष्ठ– ४९७

विधि बताया। उस विधि के अनुसार प्रयत्न करो। उस प्रकार प्रयत्न करोगे तो जब समय पकेगा तो निश्चित ही प्राप्त करोगे। तुम भी अंतर्धान हो ही जाओगे।

पाटिभोग सुत्त

(प्रतिज्ञा सुत्त - आश्वासन सुत्त)

आरम्भथेव साधवे इमिनाव नयेन, अहं वो पाटिभोगे, परिनिब्बानाय। तं किस्सहेतु, स्वाखातत्ता साधवे तथागतेन धम्मस्स, मया च अनुसङ्खातत्ता तथागतदेसित नयेनाति।

उजुमग्गम्हि अक्खाते, गच्छथ मानिवत्तथ।
अत्तना चोदियत्तानं, निब्बान मभिगच्छथ।।

यो इमस्मिं धम्म विनये, अप्पमत्तो विहिस्सति।
पहाय छधातुकं भारं, निब्बानं सो गमिस्सतीति।।
(सेक्ख्यभासित पाटिभोगसुत्त अथवा प्रतिज्ञा सुत्त)

ओ मेरे शिष्यों! तुम लोग - जो मैंने यह कम्मट्ठान विधि को देशित किया इस विधि से ही अभ्यासपूर्वक कोशिश करो। मैंने तुम्हारे निर्वाण प्राप्त होने की जिम्मेदारी लेता हूं। मैं जिम्मेदार हूं तुम्हारे निर्वाण का। इस तरह दृढ़तापूर्वक जिम्मेदारी लेना किस कारण से है? शिष्यों, विपश्यना कर्मस्थान विधि श्रेष्ठ धर्म को भगवान ने सुआख्यात किया है इस कारण से; मैं उन तथागत के बताये अनुसार पुनः भलीभांति कहा इस कारण से।

पृष्ठ– ४९८

शिष्यो, ऋजु मार्ग को आख्यात कर चुकने के कारण - अब तुम सब उस पर चलो। पीछे मत हटो। अपने आपको स्वयं ही हर हालत में आगे जाने के लिए सामना करने हेतु प्रोत्साहन कर, निर्भय सुख स्थान निर्वाण तक बढ़ते ही जाओ।

शिष्यो, जो व्यक्ति इस धम्म विनय में बिना प्रमाद किये विहरता है, वह व्यक्ति छः धातुओं के भार को प्रहाण कर निर्वाण तक निश्चित रूप से पहुंच जाता है।

(सेक्ख्यभासित पाटिभोग सुत्त समाप्त)

शिष्यो, इन छः धातुओं में पृथ्वी धातु से लेकर अभी इस स्थान तक धर्म क्रम संपूर्ण को "पथवी आपोच, तेजोच" इत्यादि उद्देसवार का विस्तार निद्देसवार याद रखो।

इति छः धातु विभङ्गे निद्देसवारो निट्ठितो

इति निब्बान पवेसन पब्बं

पृष्ठ– ४९९

७. आदास विधान पब्बं

शिष्यो, सर्वोत्तम का साक्षात्कार कर वहां पहुंचने के इच्छुक मेरे शिष्यों, तुम्हें अत्यंत शीतल श्रेष्ठ निर्वाण राजधानी नगर को 'मार्ग' रथ से दौड़ लगाकर पहुंचने का वर्णन भलीभांति कर चुका। अब इस समय उस मग्गङ्ग रथ द्वारा दौड़कर पहुंचने के समय सुगम्भीर सुनिपुण सुदुद्दस इस निर्वाण राजधानी को शीघ्रातिशीघ्र बिना हैरानी के सुखपूर्वक, सरलतापूर्वक दर्शन कर सकने के लिए :–

धम्मादासं गहेत्वान, ञाणदस्सन पत्तिया।
पच्चवेक्खिं इमं कायं, तुच्छं सन्तरबाहिरं।। (थेरगाथा)

'आवुसो, मैं कुल्लथेर ज्ञान दर्शन प्राप्त करने के लिये, धर्म दर्पण को ग्रहण किया, तो भीतर से बाहर इस काया को तुच्छ ही देखा (पाया)।'

इस प्रकार **थेरगाथा** में आया कुल्लथेर के गाथा के अनुसार उसी के समान– **"समाधिकेनादासेन, एथ सिस्सा गमाम्ह से"** यह मेरे द्वारा रचित व कथित **'गार्ड की सीटी'** **उद्घोषण गाथा के भी अनुकूल - समाधि** दर्पण लगाते समय, उसमें देखने के लिए **समाधि** दर्पण बनाने का तरीका **समाधि विधि समथ कम्मट्ठानों** को कहूंगा। तुम **लोग श्रवण करो।**

चालीस समथों का संक्षिप्त स्वरूप वर्णन

शिष्यो, समथकम्मट्ठान इस प्रकार हैं।

पथवी कसिण, आपो कसिण, तेजो कसिण, वायो कसिण, नील कसिण, पीत कसिण, लोहित कसिण, ओदात कसिण, आलोक कसिण, आकास कसिण - यह **१० कसिण।**

पृष्ठ– ५००

उद्धुमातक असुभ, विनीलक असुभ, विपुब्बक असुभ विच्छिद्दक असुभ, विक्खायितक असुभ, विक्खित्तक असुभ, हतविक्खित्तक असुभ, लोहितक असुभ, पुळुवक असुभ, अट्ठिक असुभ - यह **दस असुभ––––** (१०)

बुद्धानुस्सति, **धम्मानुस्सति,** संघानुस्सति, सीलानुस्सति, चागानुस्सति, देवतानुस्सति, उपसमानुस्सति, **मरणानुस्सति,** कायगता सति, आनपानस्सति– /**दस अनुस्सति––** (१०)

मेत्ता ब्रह्मविहार, करुणा ब्रह्मविहार, मुदिता ब्रह्मविहार, उपेक्खा ब्रह्मविहार– **चार ब्रह्मविहार** – (४)

आकासानञ्चायतन आरुप्प, विञ्ञाणञ्चायतन आरुप्प, आकिञ्चञ्ञायतन आरुप्प, नेवसञ्ञानासञ्ञायतन आरुप्प– इस तरह **चार आरुप्प** – (४)

आहारे पटिकूल सञ्ञा, सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा– इस तरह **दो सञ्ञा** – (२)

कुल योग चालीस हुआ। इन चालीस समथ कम्मट्ठानो की भावना को क्रमशः बताता हूं। तुम सब ध्यानपूर्वक सुनो और समझो।

पथवी कसिण की भावना

शिष्यो, दस कसिणों में से पथवी कसिण की भावना करने वाला **योगी निम्न प्रकार** से भावना करता है। **भूरा,** सुवर्ण (सोना) लाल, ओदात (श्वेत) चार वर्ण कसिणों **से**

मिलने नहीं देने के लिए, चित्त साफ-साफ उसमें प्रसन्न हो - इसके लिए अरुणोदय के रंग वाला - न अधिक पीला, न अधिक लाल, मिट्टी को ही बिना गंदगी मिलाये सान-गूंथ कर - पीस कर पानी में मिलाकर खूब सान कर अपने बालिश्त से एक बालिश्त लंबा-चौड़ा विस्तार वाला गाड़ी के चक्के के समान शीलापट्ट समान वृत्त मिट्टीपट बनाकर - जिधर से देखना है उस तरफ से - चिकना जैसे मटका बनाते हैं वैसे बनाकर छोरों पर गोल पंखा के छोरों के समान - थोड़ा-सा भागा फ्रेम के समान - चाहे श्वेत हो, हरा हो,

पृष्ठ– ५०१

चारों ओर रंग देते हैं। यदि ऐसा करते समय वह मिट्टी पूरी नहीं पड़े तो दूसरी मिट्टी को भीतर से देकर बाहर से उस लाल मिट्टी - हल्की मिट्टी को रखते हैं। पानी में घोलकर मिट्टी को भी उसी के बराबर लकड़ी का तखत, या चमड़े का वृत्ताकार, आदि पर भी पोतकर बनाते हैं। शिष्यों, कसिण वृत्त बनाते समय उसकी चौड़ाई एक बालिश्त से कम करना चाहें तो दो-तीन अंगुल तक कम कर सकते हैं। एक बालिश्त से बड़ा चाहें तो चार आठ अंगुल बढ़ा सकते हैं। कसिण वृत्त छोटा होगा तो चित्त सरलता से एकाग्र होगा। निमित्त आसानी से प्रकट होगा। चित्त खूब नहीं फैलेगा। कसिण बड़ा होगा तो चित्त पर विजय पाना कठिन होगा। निमित्त प्रकट होना कठिन होगा। चित्त विस्फारित होगा (फैलेगा - बड़ा होगा)। शिष्यों, उस कसिण वृत्त पर गंदगी नहीं फेंके। उसको पिचकायें-तोड़ें नहीं। खूब अच्छी तरह से रखें। भगवान के धातु के समान रखें। यह कसिण वृत्त बनाने का तरीका हुआ।

इस तरह कसिण वृत्त बनाकर लोगों से परे - शांत स्थान में अकेले सुखपूर्वक पालथी मारकर, बैठकर - कसिण वृत्त को न दूर न निकट सम्मुख हाथ से छू सके इतनी दूर - बिना झुके - बिना सिर उठाये आंख से आरामपूर्वक दिख सके - इस तरह उसे खड़ा कर रख दें। बुद्ध के गुणों को थोड़ी देर स्मरण कर प्रार्थना करें : मेरे आस-पास उपस्थित सभी सत्त्व वैर रहित हों, भय रहित सुखी हों। हमेशा उत्तम आलम्बनों को ही प्राप्त करें - इस तरह थोड़ी मैत्री प्रेषित कर– मैं निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त करूंगा। मृत्यु कब आ जायेगी यह नहीं जानता। मरने के पूर्व पूजनीय को प्राप्त हो सकें यह करने से तनिक-सा मरण संज्ञा को उत्पन्न कर - यह कसिण आचरण - बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, आर्य पंडितों का आचरण क्रम - पथक्रम ही है। उन आचरणों को स्मरण करें। कसिण वृत्त में आदर उत्पन्न करें। इस आचरण द्वारा ही बुद्ध - प्रत्येक बुद्ध, आर्य पुग्गल लोग जरा-व्याधि मरण दुक्ख भयों से मुक्त हो चुके। मैं भी इस आचरण से ही जरा-व्याधि मरण दुक्खों से मुक्त होऊंगा। यह आचरण, यह कसिण वृत्त मेरे लिये शुद्ध पूजनीय है - ऐसा चिंतन कर

पृष्ठ– ५०२

कसिण वृत्त में अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक आकांक्षा कहते हुए आशा छन्द से उस कसिण वृत्त पृथ्वी (मिट्टी) को देखना होता है।

उस कसिण वृत्त पृथ्वी को आंखों से देखने के अनुसार चित्त में चिपककर दिखने लगे ऐसा देखो। कसिण वृत्त का मात्र कोई अंश ही मत देखो। उस कसिण वृत्त संपूर्ण को समग्र रूप से देखो। कछुआ को बाघ चूसता है तो भीतर के संपूर्ण मांस को चूस लेता है। केवल ऊपरी खोल छूट जाती है। उस कछुआ के सहित चूसने वाला बाघ के चित्त का-सा चित्त को बलवान और मजबूत दृढ़ रखकर सति संज्ञा द्वारा दृढ़तापूर्वक याद कर कसिण के पूरी पृथ्वी मण्डल को चित्त में संपूर्ण को प्रकट कर सकें ऐसा ग्रहण करना होता है। चित्त में ग्रहण कर आ जाने का समय हो जाता है - तब आंखें बन्द कर लो। आंखें बन्द कर लेने पर भी बन्द आंखों के भीतर पहले का-सा पृथ्वी वृत्त (मण्डल) प्रकट हो तो पृथ्वी कसिण उग्गह निमित्त प्राप्त हो गया ऐसा जानना। न प्राप्त हुआ रहने पर आंखें खोलकर हमेशा की तरह देखते हुए ग्रहण करना होता है। आंखें क्षण-क्षण बाद खोलकर, बंद कर भी जांचते नहीं रहना चाहिए। लंबे समय तक उसको टकटकी लगाकर निरीक्षण कर देखना होता है। देखने की अधिकता होने पर प्राप्त होता है।

शिष्यो, इस तरह उग्गह निमित्त प्रकट होने के समय मुंह से– "पथवी कसिणं, पथवी कसिणं" यह मंत्र की तरह बोलना नहीं है। कुछ भी नहीं बोलना है। मागधी में जो 'पथवी' शब्द है - वही बर्मी (ब्रह्मा) में मिट्टी कहलाता है। इस पृथ्वी वृत्त (मंडल) को देखकर ग्रहण करते समय चित्त को किसी अन्य स्थान पर भटकने नहीं देता है। पूरी पृथ्वी वृत्त को एक साथ देखकर ग्रहण करना है। इस तरह संपूर्ण को समग्र रूप में ग्रहण करने निगलने से अर्थात् आंखों द्वारा देखने से - 'कसिण' कहते हैं। कसिण कहने को जानो। शिष्यों, इस तरह 'कसिण' कहा जाने वाले उस पृथ्वी वृत्त को केवल चित्त में ही पृथ्वी-पृथ्वी जानते हुए आंख से देखे अनुसार चित्त में संलग्न होकर, प्रकट होकर, ग्रहण कर आ सके इसे आंखों से ही केवल देखकर रहना होता है।

पृष्ठ– ५०३

कसिण को देखते समय भी आंख को अर्धनिर्लिप्त करके नहीं देखना है। तंद्रिल होकर झपकी लेते कसिण ग्रहण करना कठिन है।

इसलिये - जितना आंख खोल सकते हैं उतना खोलकर देखना होता है। जितने समय तक पलक बिना झपकाये एकटक देख सकें वैसे देखना होता है। देर होने पर नींद आने लगती है। नींद आने लगने पर विस्फारित नेत्रों से देखना होता है। जब सोना चाहते हैं - उस समय या तन्द्रा के समय आंखें झपकने के कारण - उस अवस्था में देखने पर कसिण वृत्त दो-दो दिखने लगता है। चित्त संज्ञा तंद्रिल होती है इसलिये। ऐसा मत रहने दें। चित्त संज्ञा को दृढ़ रखकर देखें। ऐसे ही देखना चाहिए। सति चंचल होने पर चित्त कसिण मण्डल में बिना टिके अन्य आलम्बन की ओर भागता व विचारता है।

एक स्थान पर नहीं रहने देता। कसिण आलम्बन के अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं भागने देना चाहिए। साफ-साफ स्पष्ट सति रखना चाहिए। "तिट्ठ मक्कट माधावि"। चित्त वितर्क को स्पष्टतः दमन कर केवल कसिण आलम्बन को ही दृढ़ता से लंबे अरसे तक सति द्वारा बांधे रखना होता है। देर होने के बाद चित्त थकता है - वीर्य घटता है। प्रमाद आलस बढ़ता है। अप्रमादी बने रहें। फल दोष का विचार कर तीक्ष्ण चित्त वीर्य करने वाला आलम्बनों को विचार कर सुमेरू पर्वत को चूर-चूर कर देने वाले पुरुष के चित्त वीर्य के समान - चित्त वीर्य को दृढ़ शक्तिशाली बनाकर - बिना प्राप्त किये नहीं रह सकता ऐसा दृढ़तापूर्वक दांत भींचकर चित्त में ही कमर कसकर देखना होता है। चित्त भी थके - काया भी थके - थककर, आलसी होकर क्षण-क्षण भर में आराम करना चाहता है। अन्य काम करने के लिए उठने का मन होता है। बार-बार आराम नहीं करना है। उत्साहपूर्वक करना होता है। बहादुरी से करना होता है।

शिष्यो, इस तरह निमित्त ग्रहण करने पर कुछ लोगों में बहुत शीघ्र ही सरलतापूर्वक ही निमित्त प्राप्त हो सकता है। कुछ लोगों में बहुत मेहनत करने पर, बहुत परिश्रम करने पर देर से निमित्त प्रकट होता है, शिष्यों। इस तरह चित्त में ग्रहण कर प्रकट हुआ निमित्त **उग्गह निमित्त** कहलाता है। बाहरी कसिण वृत्त को **परिकम्म निमित्त** कहते हैं। उग्गह निमित्त - परिकम्म निमित्त एकदम अनुकृति होकर इस उग्गह निमित्त को प्राप्त होने के समय चित्त अच्छे चुम्बक को जैसे पिन चिपकता है - उसी तरह यह पृथ्वी वृत्त उग्गह निमित्त चिपकता है। कहीं भी नहीं भागता। आंख को खोलने पर

पृष्ठ – ५०४

जो सामने कसिण है - उसका वर्ण दिखता है। आंख बंद कर लें तो बाहरी कुछ नहीं देखेगा - इस पृथ्वी कसिण वृत्त को ही देखते हुए रहता है। आंख को बंद कर उत्तान रहने पर चेहरे पर कसिण पृथ्वी वृत्त की चकरी ही आच्छादित है - ऐसी दिखेगी। औंधा हुआ रहने पर भी नीचे की फर्स-चटाई नहीं दिखेगा। केवल पृथ्वी वृत्त की चकरी ही दिखती रहेगी। पानी में डूबकी लगाकर रहने पर भी चेहरे के सम्मुख जल नहीं - वही पृथ्वी वृत्त चकरी कसिण वृत्त ही दिखेगा। वही बना रहेगा। चेहरे को पूरा ढंककर रहने पर भी हथेली को बिना ध्यान दिये - कसिण वृत्त को ही देखते रहेगा।

रात को सोते समय भी वह कसिण वृत्त को ही अनुभव करते रहता है। जैसे प्रेत को देखकर भयभीत व्यक्ति उसी को देखता रहता है - मृतक के मृत काया को छूआ हुआ व्यक्ति उसी मृत काया उग्गह निमित्त को अनुभव करते रहता है - ठीक वैसे ही पृथ्वी कसिण वृत्त दिखती रहती है। नींद नहीं आती। स्पष्ट साफ-साफ वीर्य कर देखे, खूब हृदयस्थ करे जितना नेत्र फैलाये - वह उत्पन्न हुए ही रहता है। सोने की इच्छा से प्रयत्नपूर्वक हृदयंगम न करने पर धीरे-धीरे चित्त मंद होकर कसिण वृत्त, पृथ्वी वृत्त को, उस देखने की अवस्था से भूलते हुए भवङ्ग पात होकर नींद में चला जाता है। सोकर पुनः जागने पर भी पृथ्वी वृत्त, कसिण वृत्त को ही देखते हुए उठता है। चेहरे

के सम्मुख पृथ्वी वृत्त, कसिण वृत्त बंधा हुआ ही रहता है। इस तरह उग्गह निमित्त प्रकट होकर पर्याप्त स्थिर व परिपक्व हो जाता है - तब पर्याप्त अंधेरे घर के भीतर में खुली आंखों के सामने भी कसिण वृत्त, पृथ्वी वृत्त मण्डल को ही देखता है। चक्खुवीथिपात नहीं होता। चंक्रमण करते हुए भी वह प्रकट हुए रहता है। इस तरह जबसे शुरू कर उग्गह निमित्त प्रकट हुआ - नींद तंद्रा **थिनमिद्ध** तनिक दूर होकर धीरे-धीरे कम होकर तिरोहित हो जाता है। शेष नीवरणें भी उसी तरह धीरे-धीरे कम होकर तिरोहित हो जाते हैं। यह उग्गह निमित्त का प्रकट होना हुआ।

अप्पना (अर्पणा) ध्यान उत्पन्न होने का वर्णन

शिष्यो, इस तरह उग्गह निमित्त प्राप्त हो जाने पर बाहरी परिकम्म निमित्त कसिण मण्डल को पर्याप्त हो जाने पर उसे अलग सुरक्षित रखकर चित्त में स्थित उग्गह निमित्त को ही हमेशा ग्रहण कर देखना होता है।

पृष्ठ– ५०५

इस तरह सतत ध्यान करते हुए बहुत समय हो जाने पर यह उग्गह निमित्त धीरे-धीरे सूक्ष्म होते-होते जब सैकड़ों गुना बिना चूके - दर्पण के समान प्रारम्भ में प्रकट हुए उग्गह निमित्त से अनेकों-अनेकों गुना बढ़-चढ़कर स्वच्छ साफ-सुथरा सूक्ष्म हो जाता है। बड़ा कान्त हो जाता है। चित्त चाहे जितनी देर तक देखते रहे तब भी उबान या थकान नहीं होता। उस समय वैसे निमित्त को **पटिभाग निमित्त** कहते हैं।

जब पटिभाग निमित्त प्रकट हो जाता है - तब कामगुणों का भोग करने वाला **कामछन्द निवरण,** क्रोध वाला **व्यापाद निवरण** आलस प्रमाद वाला **थिनमिद्ध निवरण** चंचलता उद्यतपना वाला **उद्धच्चकुक्कुच्च नीवरण,** इस तरह पथवी कसिण को देखने प्रयत्न करने पर इस तरह होता है - यह कहने वाला आचार्य वास्तव में जानकर ही देशित किया है? या बिना जाने देशित किया है? क्या देशित धर्म सही ही है? क्या गलत ही है? इस प्रकार कम्मट्ठानाचार्य के प्रति; कम्मट्ठान के प्रति; शंका संदेह वाला - **विचिकिच्छानीवरण** यह पांचों नीवरण चित्त सन्तान में क्षीण होकर एकदम हटकर, लुप्त होकर, तिरोहित होकर, छुपकर चले जाते हैं। अब उत्पन्न नहीं होते। सिर नहीं उठाते। शेष अकुशल नीवरण धर्म भी चित्त सन्तान में छुपकर तिरोहित होकर समाप्त हो जाते हैं। फिर नहीं उभरकर आते।

१. चित्त को आलम्ब पर पहुंचाने हेतु लगाने के स्वभाव नामक **वितक्क**।

२. वितक्क चढ़कर (लगकर) आलम्बन पर पहुंचे हुए चित्त को उस आलम्बन पर से नीचे न गिरने योग्य चारों ओर से उठाये लगाये रहने वाला - अनुमज्जन स्वभाव नामक **विचार**।

३. **प्रीति**।

४. काया चित्त की शांति प्रसन्नता वाला **सुख**।

५. चित्त की **एकग्गता**।

पृष्ठ– ५०६

यह ध्यान के (५) पांच अङ्ग भी विपस्सना के समय में जैसे मग्गङ्ग धर्म प्रकट होता है - तनिक बलवान होकर प्रकट होकर उत्पन्न होते हैं। केवल यह ध्यान के अङ्ग ही नहीं - इन ध्यान के अङ्गों के अनुरूप सहयोगी शेष चेतसिक धर्म भी बलवान होकर प्रकटतः उत्पन्न हो आते हैं। उस समय **सति**-धर्म अत्यंत पुष्ट होता है। बना रहता है। अब से लेकर मां की गोद में अंतिम समय दूध पीने तक - इसके बीच के सारे कृत्य, सभी घटनाएं करने के समान सभी के सभी पुनः याद आने लगते हैं।

इस तरह सति की पुष्टता यह प्रकट होना हर व्यक्ति में भी ऐसा ही नहीं होता। उस समय चित्त अत्यंत महग्गत होता है। तीव्र होता है (शीघ्र होता है)। चक्रवालों के प्राचीर तक चित्त के साथ दौड़कर चारों ओर घूमना चाहे तो चुटकी भर में घूम आता है। विस्तृत मैदान प्रकट होकर जाता है। चित्त के देखने जाने के क्षेत्र में दर्पण (कांच) को हीरे के दांत से चीर देने के समान विषय प्रकट होकर दौड़ता है। जाता है। **वितक्क** का बलवान होना भी देखने वाले क्षेत्र में जब-जब छोड़ दें एकदम सीधा वहां दौड़ जाता है। क्षीण झुका हुआ - मुड़कर नहीं रहता।

शिष्यो, विपश्यना के रास्ते में उत्पाद-व्यय को अनुभव कर सकने वाला उदयब्बय ञाण भी कहलाने वाला उदयत्थ गामिनी ञाण, समय मार्ग में इस तरह पटिभाथ निमित्त इस अवस्था को प्राप्त हो सकने पर उस पुग्गल को तिहित पुग्गल समझना। तिहित पुग्गल ही इस स्थान तक पहुंच सकते हैं। यदि तिहित पुग्गल नहीं होगा तो वहां नहीं पहुंच सकेगा। नहीं पहुंच सकते - पहुंचाने से, प्रयत्न न करने से नहीं पहुंच सका ऐसे भी मत समझ लेना, शिष्यों। प्रयत्न करते हुए भी, पहुंचने का समय उपयुक्त होते हुए भी नहीं पहुंच पाने के समय ही केवल - तिहित नहीं है ऐसा समझना होगा। प्रयत्न करने पर भी कुछ पच्चीस-तीस वर्षों के बाद इस स्थान पर पहुंच सकते हैं। ज्ञान मग्ग फल धर्म विशेषों को प्राप्त कर सकते हैं। शिष्यों, यह स्थान तिहित - द्विहित को विभाजित करने वाले स्थान हैं। भलीभांति समझो। इन स्थानों तक पहुंच सकने पर यदि तिहित

पृष्ठ– ५०७

पुग्गल का ही कामना होगा - तो ज्ञान मग्ग फल ध्यान विशेष को निश्चित ही प्राप्त कर सकते हैं। यह प्रतिभाग निमित्त (पटिभाग निमित्त) उत्पन्न होने का वर्णन हुआ।

शिष्यो, इस तरह प्रतिभाग निमित्त (पटिभाग निमित्त) को प्राप्त योगी पुग्गल उस पटिभाग निमित्त को चक्रवर्ती राजा होने वाले गर्भ सत्त्व की जिस प्रकार महारानी सुरक्षा करती है उसको अत्यंत प्यार करती है बिना विस्मृत किये बार-बार अभ्यास की निरन्तरता

बनाये रखता है तब उसका चित्त शनैः शनैः परिपक्व होकर, महग्गत होकर, बलवान होकर, शांत होकर जिस समय आलम्बन को दृढ़तापूर्वक संलग्न होकर आलम्बन के भीतर प्रविष्ट होता है उसी तरह उत्पन्न होकर, आलम्बन को बींधते हुए शांत होकर अनुभव कर उत्पन्न होता है। उस चित्त को पांचों ध्यानांग से पूर्ण **प्रथम ध्यान चित्त** कहते हैं। पठमझान चित्त समझना। शिष्यों, यह **झान अप्पनावीथि पात, मग्ग अप्पनावीथि पात** के समान ही चित्त - पूर्व जवनवार अंतिम भवङ्ग पात होकर भवङ्ग से उठकर इस कसिण पटिभाग निमित्त को आलम्बन बनाकर– "आवज्जन, परिकम्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, झान" नामक झान जवन एक बार, उसके पश्चात भवङ्गपात कर जाता है। उसके पश्चात स्वप्न देखकर उठने के पश्चात पुनः उस स्वप्न पर विचार करने के समान तुम वितर्क हो, तुम विचार हो इत्यादि से पांचों अङ्गों को विचारने वाला पच्चवेक्खणा जवनवार उत्पन्न होते हैं।

शिष्यो, मग्ग अप्पना वीथि में आलम्बन भिन्न (अलग) होते हैं। इस झान अप्पना वीथि में आलम्बन भिन्न (अलग-अलग) नहीं होते। आलम्बन भिन्न न होकर, अलग-अलग न होकर क्यों किस कारण से यह झान जवन है - यह जाना जाता है। पूछें तो शिष्यों, परिकम्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू - ये चार जवन चार बार - कामतण्हा भी रहित नहीं हुए, तिरोहित नहीं हुए। उत्पत्ति भी ठीक-ठीक शांत नहीं हुए। गोत्रभू पश्चात में उत्पन्न होने वाला एक बार का जो जवन है वह कामतण्हा भी रहित होकर, क्षीण होकर तिरोहित हो गया। चित्त भी अत्यंत महग्गत हो गया। झान अङ्ग भी अत्यंत प्रकट रूप में महग्गत हो जाता है। लोहे के जंग (मोरचा) को झड़ने के लिये पीट देने पर उसे हिलाने-डुलाने-घुमाने की जिस तरह जरूरत नहीं पड़ती वैसे ही उत्पन्न होना भी आलम्बन के भीतर को प्रविष्ट होने के समान अत्यंत दृढ़तापूर्वक सटकर एकाग्र होकर बिना हलन-चलन के अत्यंत शांतिपूर्वक होता है। इस तरह के कारण से ठीक-ठीक झान जवन को जानना चाहिए।

पृष्ठ– ५०८

यह झान जवन चेतनाकम्म - कामतण्हा रहित होने के कारण काम भव में फल नहीं देता। काम भव को अतिक्रमण कर रूप ब्रह्मलोक में फल देता है। इसलिये इस झान चित्त को रूपावचर चित्त भी कहते हैं।

शिष्यो, इस तरह प्रथम ध्यान को प्राप्त योगी पुग्गल इस प्रथम ध्यान को हमेशा दृढ़ होने योग्य, बलशाली होने योग्य बार-बार ध्यान करता है। ध्यान करता है अर्थात् कसिण पटिभाग निमित्त को बार-बार ध्यान कर ध्यान जवन बार-बार पात करना ही है। अभी शुरू से अंत तक पात होने वाला अप्पनावीथि में झान जवनपात केवल एक बार होता है। उसके उत्तरोत्तर बार-बार ध्यान करने पर चित्त का बल दृढ़ होकर एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार इत्यादि द्वारा जितना चित्त दृढ़ होता है उतना झान जवनें अनेकों असङ्ख्येय्य बार पात होते जाता है। घंटे भर झान जवन मात्र ही पात होकर रहता

है। पूरे प्रातःकाल, सारा दिन, सप्ताह भर इत्यादि... अवधि पर्यंत ही ज्ञान जवन मात्र ही केवल पात होकर, उत्पन्न होकर रहता है।

पांच वसी (पांच वश वाला)

इस तरह चित्त को, ध्यान को, पुष्ट कर इस प्रथम ध्यान को समापज्जन वसी, अधिट्ठान वसी, वुट्ठान वसी, आवज्जन वसी, पच्चवेक्खण वसी नामक पांच वसी द्वारा अध्ययन वश में करना होता है।

१. शिष्यों, इस पांच वशी में ध्यान की कामना वाले क्षण में शीघ्रतापूर्वक ध्यानस्थ होने को **समापज्जन वसी** कहते हैं।

२. एक क्षण, एक खरा, एक घण्टा, एक दोपहर इत्यादि द्वारा जब तक अपनी इच्छा हो तब तक की अवधि पर्यंत - न अधिक न कम ध्यान जवन को रख सकने को **अधिट्ठान वसी** कहते हैं।

३. अपने संकल्प किये हुए अवधि तक, पूरा-पूरा - न कम न अधिक जितना संकल्प किया, उतनी देर तक में ध्यान जवन से उठने को **वुट्ठान वसी** कहते हैं। (नियत समय पर ध्यान से उठने के समय पर उठ जाना ही वुट्ठान वसी है।)

पृष्ठ – ५०९

४. ध्यान से उठकर ध्यानाङ्गों को विचारने हेतु भवङ्गपातें अधिक न होते हुए - ध्यानाङ्गों को विचारने वाला (पच्चवेक्खण करने वाला) तीव्रता से आवज्जन उत्पन्न कर सकने को - **आवज्जन वसी** कहते हैं।

५. ध्यानाङ्गों की पर्येषणा कर पुनः ध्यान को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त होने के लिये ध्यानाङ्गों को पच्चवेक्खण करने वाले जवनों को सात बार तक बिना अधिक उत्पन्न किये केवल चार-पांच बार ही पात कर सकने को **पच्चवेक्खण वसी** कहते हैं।

इस तरह ध्यानाङ्गों को पच्चवेक्खण करने वाले जवन को शीघ्रतापूर्वक थोड़े से ही काटकर जवन आगामी भवङ्गों को भी बिना अधिक उत्पन्न किये थोड़े से ही काटकर शीघ्रतापूर्वक पुनः ध्यान को प्राप्त कर सकने को समावज्जन वसी कहते हैं। इस तरह पांच वसी को घुमाकर जानना चाहिए।

शिष्यो, वसी अधिकृत लोगों में शिखर पर पहुंचे हुए सर्वज्ञ बुद्धों को ऋद्धि यमक प्रातिहार्य दिखाते समय बड़ी शीघ्रता से करते समयों में - पच्चवेक्खणा जवन - चार बार, पांच बार आगामी जवन ध्यान के मध्य भवङ्ग मात्र दो बार, तीन बार ही उत्पन्न होता है। यही न्यूनतम सबसे अधिकतम वश में ही हुआ। इससे कम कर उत्पन्न नहीं किया जा सकता। भगवान के अतिरिक्त कोई पुग्गल इतना तक न्यूनतम भवङ्ग को कमती नहीं कर सकते, शिष्यों। इस तरह जवन भवङ्ग को कमती कर शीघ्रतापूर्वक काट सकना

(कम कर सकना) परिवर्तित कर सकना अत्यंत शक्तिशाली तीक्ष्ण चित्र - शीघ्र (तीव्र) चित्त होने पर ही हो सकता है। इसलिये चित्त को तीक्ष्ण, महग्गत, शक्तिशाली होने के लिये कसिण निमित्त को महग्गत होने के लिए बहुलीकृत करना होता है। बहुलीकृत करते समय - इस तरह ध्यान को प्राप्त हो जाने के समय में भी बहुलीकृत किया जाता है। ध्यान प्राप्त होने के पूर्व **पटिभाग निमित्त** को प्राप्त हो जाने पर भी किया जाता है। बहुलीकृत किया जाता है। पटिभाग को पहुंचने के पहले **उग्गह निमित्त** के समय में भी बहुलीकृत किया जाता है। उग्गह निमित्त के समय में ही बहुलीकृत करने पर वह निमित्त महग्गत होकर बहुलीकृत होकर चलता है। चित्त पर आधिपत्य कर सकने योग्य - वश में नहीं कर सकने, ध्यान नहीं कर सकने पर बिखरकर

पृष्ठ – ५१०

नष्ट हो जा सकता है। इसलिए उग्गह निमित्त को महग्गत होने के लिये मत सोचो, मत करो। जब पटिभाग को आओ, ध्यान को भी प्राप्त कर लो - तब महग्गत करके उसको बहुलीकृत किया जाता है। बहुलीकृत करने में भी चित्त महग्गत... महग्गत विशद - विशद... ऐसा मनसिकार कर हृदयस्थकर चित्त जब-जब समझे, तब-तब पटिभाग निमित्त कसिणवृत्त बड़ा होकर चलता है। बड़ा होने लगता है। ऐसा जब-जब बड़ा होने लगे तब एक-बा-एक बड़ा न होने दें। क्रमशः धीरे-धीरे, एक-एक अंगुल, दो अंगुल, चार अंगुल, आठ अंगुल, एक हाथ, एक गज, १० गज इत्यादि द्वारा चक्रवाल तक उसको पूर्ण करने तक, उससे परे अतिक्रमण कर धीरे-धीरे बढ़ाना होता है। जितनी इच्छा हो चित्त जितना सूक्ष्म व तीक्ष्ण हो, विस्तृत होकर बड़ा होकर चला जाता है। शिष्यों, इस तरह नीचे के ध्यान को प्राप्त कर ऊपर के ध्यान की ओर चढ़ना चाहते समय यह स्वयं को प्राप्त नीचे के ध्यान को इस तरह दृढ़तापूर्वक शक्तिशाली वश में करने की वसी शक्ति पर विजय प्राप्त (करने योग्य) कर लेने पर ऊपर के ध्यान की ओर बढ़ना चाहिए। तब ही ऊपर की ओर बढ़ो। ऐसा बिना किये चढ़ने पर ऊपर वाला ध्यान तो प्राप्त होगा ही नहीं - नीचे का ध्यान भी नष्ट हो जावेगा! दोनों ध्यानों से स्खलित होकर नीचे गिर जावेंगे।

२. शिष्यो, इस तरह प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर दृढ़ और शक्तिशाली कर वसी को प्राप्त कर ऊपर के द्वितीय ध्यान की कामना करने वाला योगी विचार करता है : अभी यह प्रथम ध्यान चित्त बहुत नीचे है। **नीवरण** नामक शत्रु अभी निकट ही हैं। वितर्क के होने से अत्यंत गतिशील है, रूक्ष है। निर्बल है। इस वितर्क के न रहने पर इससे अधिक सूक्ष्म एवं शांत होगा। शक्तिशाली, सबल होगा। ऐसा मनसिकार करता है। वितर्क को घृणा करता है। वितर्क रहित ध्यान चित्त की इच्छा कर, छेद कर - उस पथवी पटिभाग निमित्त को ही 'पृथ्वी-पृथ्वी' इस तरह चित्त में करते हुए बार-बार देखने पर चित्त में वितर्क क्रमशः सूक्ष्म होकर चला जाता है। उस समय वितर्क तिरोहित हो जाता है। वितर्क रहित प्रथम ध्यान वीथि पात के समान– **"विचार, पीति, सुख, एकग्गता"**

नामक चार झानङ्ग से पूर्ण ज्ञान जवन वीथि पात होता है। यह ध्यान दूसरी बार प्राप्त ध्यान होकर उत्पन्न हुआ।

पृष्ठ– ५११

अतः **द्वितीय ध्यान** कहलाता है। इस ध्यान को भी पूर्व विधि के अनुसार स्थिर सबल बनाने के लिये 'वसी' करते हैं। वश में करते हैं।

३. शिष्यो, इस तरह दुतिय ध्यान को प्राप्त कर दृढ़ और शक्तिशाली कर 'वसी' करते हैं। वश में करते हैं। ऊपर के तृतीय ध्यान की कामना करने वाला योगी यह विचार करता है - यह दुतिय ध्यान चित्त भी अभी निम्न है। **वितर्क** नामक शत्रु निकट ही है। इस **विचार** की उपस्थिति के कारण रूक्ष है। निर्बल है। विचार रहित होने पर इससे अधिक सूक्ष्म होगा, शांत होगा। सबल होगा। यह मनसिकार करता है। पर्येषणा करता है। विचार को घृणा करता है। विचार रहित ज्ञान चित्त की इच्छा से उस पथवी पटिभाग निमित्त को– "पृथ्वी-पृथ्वी..." यह चित्त के भीतर जानते हुए बार-बार देखता है। तब विचार क्रमश धीरे-धीरे सूक्ष्म होते चला जाता है। तब उस समय विचार रहित– **"पीति, सुख, एकग्गता"** नामक तीन ध्यान के अंग से पूर्ण पहले के अनुसार ज्ञान जवन वीथि पात होता है। इस ध्यान को तीसरी बार प्राप्त होने वाला ध्यान होकर– **तृतीय ध्यान चित्त** कहते हैं। इस ध्यान को भी स्थिर होने के लिए, सबल होने के लिये 'वसी' करते हैं। वश में करते हैं।

४. शिष्यो, इस तरह तृतीय ध्यान को प्राप्त होकर, दृढ़ एवं शक्तिशाली बनाकर, वसी कर, वश में कर ऊपर चौथे ध्यान को चढ़ने की इच्छा से, प्रयत्न करने के इच्छुक योगी चिंतन-मनन करता है। यह तृतीय ध्यान चित्त भी अभी निम्न है। **विचार** नामक शत्रु निकट ही है। **प्रीति** उपस्थित है यह कामरति से निकट का स्वभाव है, (जो इस ध्यान में उपस्थित है।) अतः (प्रीति=) कामरति नामक शत्रु के निकट है। इस प्रीति की उपस्थिति के कारण यह अभी भी रूक्ष ही है। निर्बल ही है। इस प्रीति के न होने पर इससे भी सूक्ष्म शांति प्राप्त होगी। वह सबल भी होगा। ऐसा मनसिकार कर प्रीति को घृणा कर प्रीति रहित ज्ञान की कामना कर - उस पथवी पटिभाग निमित्त को पृथ्वी-पृथ्वी यह चित्त के भीतर से जानते हुए बार-बार देखता है। तब धीरे-धीरे प्रीति सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होते हुए जिस समय प्रीति रहित

पृष्ठ– ५१२

"सुख एकग्गता" ध्यान के दो अङ्ग से परिपूर्ण रहता है। तब पहले के ही अनुसार ज्ञान जवन वीथि पात होता है। यह ज्ञान चौथी बार प्राप्त होने वाला ध्यान होने के कारण **"चतुर्थ ध्यान"** कहलाता है। इस ध्यान को भी स्थिर शक्तिशाली 'वसी' शक्ति संपन्न करते हैं। पूर्ण **'वश'** में करते हैं।

५. शिष्यो, इस तरह चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर दृढ़ कर, शक्तिशाली बना **'वश'**

में पूर्ण कर लेते हैं - अर्थात् 'वसी' कर लेते हैं तब इससे ऊपर के पञ्चम ध्यान को प्राप्त करने की इच्छा से योगी यह मन में करता है– यह चतुर्थ ध्यान भी निम्न ही है। प्रीति नामक शत्रु निकट ही है। यह सुख भी कामरति - काम सुखों से निकट स्वभाव वाला ही है। काम सुख - कामरति नामक शत्रु निकट है। इस सुख के उपस्थित रहने के कारण चित्त छिछला है। अभी भी यह रूक्ष है। निर्बल भी है। चित्त के भीतर में आलम्बन को 'अच्छा है' यह भोगने वाला, इस सुख रहित आलम्बन को अच्छा है, बुरा है - को बिना भोगे - उपेक्षा स्वभाव में रहना उससे सूक्ष्म और शांत है। सबल भी हैं। ऐसा मन में कर सुख को घृणा कर 'उपेक्षा' की कामना करता है। तब उस पथवी पटिभाग निमित्त को पृथ्वी-पृथ्वी यह चित्त से जानते हुए बारम्बार ध्यान कर देखता है। तब सुख क्रमशः धीरे-धीरे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हुए - जिस समय 'अच्छा है' को भोगने का स्वभाव नहीं रहता 'बुरा है' को भोगने का स्वभाव नहीं रहता - अच्छा-बुरा, प्रिय-अप्रिय में बिना गिरे **उपेक्षा वेदना** होता है तब ऐसा होकर **एकाग्रता सहित** दोनों ध्यान के अंग से पूर्ण, पहले के अनुसार **झान जवन वीथि पात** हो जाता है। इस ध्यान को पांचवी बार प्राप्त होने वाला ध्यान होने के कारण पञ्चम झान कहते हैं। इस ध्यान को भी दृढ़ शक्तिशाली 'वसी' शक्ति सम्पन्न करते हैं।

१. शिष्यो, इस तरह ध्यान को प्राप्त होने लायक प्रयत्न करने में कुछ पुग्गलों में इसी तरह पांच अवस्थाएं होती हैं। तब इस विधि को **पञ्चक विधि** कहते हैं। कुछ में वितक्क-विचार एक ही बार में हटने से ध्यान की चार अवस्था ही रहती है। वह विधि **चतुक्क विधि**

पृष्ठ– ५१३

कहलाता है। इस विधि में तृतीय ध्यान - द्वितीय; चतुर्थ ध्यान - तृतीय ध्यान तथा पञ्चम ध्यान - चतुर्थ ध्यान हो जाता है। शिष्यों, पथवी कसिण को देखकर ध्यान करने पर इस तरह पञ्चम ध्यान तक पांचों ध्यान को प्राप्त किया जा सकता है। शिष्यों, इस तरह पृथ्वी कसिण को देखकर प्राप्त किये हुए ध्यानों को भी पृथ्वी मण्डल (वृत्त) पृथ्वी कसिण को देखकर प्राप्त ध्यान होने के कारण **पथवी कसिण** झान ही नाम प्राप्त होता है। शिष्यों, अभी के समान पथवी कसिण झान को प्राप्त होने के लिये पथवी कसिण निमित्त को देखने में अतीत के निकट के जन्म (भव) में पथवी कसिण निमित्त को प्राप्त किया हुआ - **संघनित वसी पारमी अधिकार** नहीं रहने वाले व्यक्ति में इस तरह विशेष रूप से मिट्टी के कसिण वृत्त भलीभांति बनाकर देखने पर ही निमित्त प्रकट हो सकेगा। ध्यान प्राप्त हो सकेगा। जिनमें पूर्व भवों का संघनित वसी पारमी अधिकार होगा उन्हें ऐसा कसिण वृत्त बिना बनाये - प्राकृतिक भूमि, वृत्ताकार खलिहान, जोती हुई भूमि, को ही पृथ्वी-पृथ्वी कहकर मन में धारण कर देखें तो पथवी कसिण निमित्त प्राप्त हो सकता है। झानों को उत्पन्न कर सकता है। पथवी कसिण देखने, भावना करने, अभ्यास करने का वर्णन पूरा हुआ।

आपोकसिण आदि की भावना

२. शिष्यो, आपो अर्थात् जल कसिण को देखकर ध्यान भावना करने के इच्छुक योगी - पूर्व अतीत के निकट जन्म में जल कसिण को प्राप्त किया हुआ संघनित वसी पारमी अधिकार प्राप्त किया होगा - कसिण को बिना निर्मित किये प्राकृतिक नदी, समुद्र, सरोवर, झील, पोखर, कुंआ आदि को ही केवल देखकर सरलता से ही आपोनिमित्त प्राप्त कर सकता है। इस तरह अधिकार नहीं रहने पर एक हाथ अथवा निमुठ हाथ व्यास वाले गहरे भांड या पात्र, या मर्तवान के भीतर में निर्मल जल को भरकर पथवी कसिण में जिस तरह पीछे कह आया उस विधि के अनुसार जल को चित्त में उग्गह निमित्त प्रकट होने तक देखना होगा। इस जल कसिण में उग्गह निमित्त के बाहर परिकम्म निमित्त जल के समान है। बाहरी जल के समान हिलता है तो हिलने के समान; बुलबुला है तो बुलबुले के समान प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त से अनेकों अनगिनत गुना बढ़कर

पृष्ठ– ५१४

निर्मल प्रतीत होता है। नीला दर्पण के समान एक समान समतल, निर्मल प्रकट होता है। ज्ञान का प्रकट होना - पृथ्वी कसिण के जैसा ही है। शिष्यों, यह आपो कसिण भी पांचों ध्यानों को उत्पन्न करता है। शिष्यों, इसके बाद में कसिणों को भी, कसिण से अवशिष्ठ कम्मट्ठानों को भी संक्षिप्त में ही विधि मात्र को देशित करूंगा। जहां पर कुछ विशेष मिलता है - उन स्थलों मात्र को समझाऊंगा। संक्षिप्त करूंगा। आपो कसिण भावना समाप्त हुआ।

३. शिष्यो, तेजो कसिण को भी पूर्व जन्मों में जिन्होंने अभ्यास किया है - जिनका संघनित वसी पारमी अधिकार होगा उनमें प्राकृतिक अग्नि समूह, अग्नि, प्रदीप आदि को ही देखकर निमित्त प्रकट हो जावेगा। पूर्व जन्मों का अधिकार नहीं होने पर उनके लिए कृत्रिम अग्नि ज्वाला, अंगार समूह को उत्पन्न कर उतनी दूरी पर बैठते हैं जहां से आंच न लगे और उसको देखकर आलम्बन ग्रहण करते हैं। बीच में पर्दे के रूप में चटाई, शीतल पाटी, गत्ता आदि को एक बालिश्त व्यास का वृत्ताकार छेदकर उसके बीच से तेजो कसिण को देखते हैं। इस तेजो कसिण में उग्गह निमित्त बाहरी परिकम्म निमित्त के अनुसार - अंगारा होने पर ताप सहित अलग-अलग अंगारे जैसे ही प्रकट होंगे। पटिभाग निमित्त में वह सब एक ही प्रकट होने लगेगा। प्रज्वलित अग्नि - उग्गह निमित्त में ताप सहित इंधन आदि सहित हिलना-डुलना-गतिशील प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में ताप धुंआ नहीं - इंधन नहीं - शांत प्रकट होने लगेगा। ध्यान होना तो पहले के अनुसार ही होता है। तेजो कसिण पूर्ण हुआ।

४. वायो कसिण को भी पूर्व के निकट वाले जन्मों में किसी ने कसिण के रूप में ग्रहण किया होगा तो उसमें संघनित वसी पारमी अधिकार होने पर प्राकृतिक आकाश में बहते हुए वायु को पकड़कर निमित्त को ग्रहण कर सकता है। अधिकार के न होने पर घास, मक्का, ईख, बांस, वृक्ष आदि के शिखर छोरों को अंगुली बराबर लंबा केश

को पकड़कर उसके अंतिम छोर को हिलाते हुए बहती हवा को जाने - अरे इसे हवा हिला रहा है।

पृष्ठ – ५१५

इसे हृदयस्थ कर हवा को सति सञ्ञा द्वारा जानकर, कल्पना कर "हवा... हवा..." ऐस. देखते हुए ग्रहण करना होता है। हवा के बहने पर अपने शरीर में लगने पर महसूस होता है। जानने वाले स्थान में हवा को हृदयंगम कर सति संज्ञा द्वारा जानकर कल्पना कर ग्रहण करना होता है। यह वायो कसिण में जो उग्गह निमित्त प्रकट होता है वह आपो, तेजो के समान ही - बहाव के जैसा हिलता-डुलता प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में गतिशीलता बहाव नहीं रहता, शांत ही प्रकट होता है। ज्ञान का प्रकट होना पुराने विधि के समान ही होता है। शिष्यों, हवा तो आंख से दिखता ही नहीं, फिर भी धुआं, जल आदि के समान ही होता है। पीछे अभिधम्म सुञ्ञत विधि में जिस तरह वर्णन किया उसी के अनुसार इस वायु धातु को, स्वभाव को जानने-समझने का प्रयत्न करो। उसके स्वभाव स्थिति को जानोगे तो इस तरह के कसिण निमित्त को ग्रहण करने में शीघ्रता एवं सरलता होगी। वह प्रकट होगा। वायो कसिण समाप्त हुआ।

५. शिष्यो, नीला कसिण को भी निकट पूर्व के जन्मों में जो इसका अभ्यस्त रहा होगा - जिसको पहले जन्मों में यह नीला कसिण प्राप्त हुआ होगा - संघनित वसी पारमी अधिकार होगा तो बिना निर्मित किये ही जो भी नीला-नीला दिखता है - उन सभी वस्तु को ही देखकर सरलता से ही निमित्त ग्रहण कर सकता है। यदि पूर्व जन्मों का अधिकार प्राप्त नहीं होगा तो अपने हाथ से एक बालिश्त लंबा-चौड़ा लकड़ी की पट्टिका लें। वृत्ताकार बनावें। पंखा या घड़ा के ढक्कन की तरह हत्थे सहित कसिण वृत्त मण्डप बनावें। नीला रंग से खूब सुन्दर ढंग से पोत लें। उसके चारों किनारे को जिस रंग से नीला रंग खूब उभरे वैसे लाल या सफेद रंग से सीमांकन कर दें। 'नील - नील...' इस तरह हृदय में याद करें। उसे देखते हुए - निमित्त ग्रहण करें। इस नील कसिण में उग्गह निमित्त बाहरी - परिकम्म निमित्त के साथ ही साथ आंख से जैसा दिखता है वैसा ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में उग्गह निमित्त की तुलना में अनेकों अनन्त गुना अधिक सुन्दर चमकदार नीला, अत्यंत मनभावन नीलमणि वृत्त मण्डल के समान प्रकट होता है। ज्ञान होना पूर्व विधि के अनुसार ही होता है। नील कसिण पूरा हुआ।

६. शिष्यो, पीत कसिण, लोहित कसिण, ओदात कसिण को भी ऊपर बताये अनुसार निकट अतीत के जन्मों में प्राप्त अधिकार

पृष्ठ – ५१६

होने पर बिना निर्मित कर बनाये, समस्त पीत वस्तुओं, लोहित वस्तुओं, श्वेत-ओदात वस्तुओं को देखकर ही सरलता से निमित्त ग्रहण कर सकता है। यदि अधिकार नहीं होगा तो जैसा कि पहले बताया - नील कसिण वृत्त के समान कसिण वृत्त बनाकर सबसे तीव्र

पीला रंग पोतकर पीत कसिण बनता है। सबसे तीव्र लाल रंग पोतकर लोहित कसिण बनता है। सबसे तीव्र श्वेत रंग पोतकर या चूना ही पोतकर ओदात कसिण बनता है। आंख से दिखने के अनुसार– "पीत... पीत...", "लोहित... लोहित...", "श्वेत... श्वेत...", चित्त के भीतर समझें, जानें। जानकर निमित्त ग्रहण करें। पीत कसिण में उग्गह निमित्त - बाहरी परिकम्म निमित्त के जैसा ही एक समान - जैसा आंख से देखते हैं उसी के तरह प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त उस उग्गह निमित्त की अपेक्षा अनगिनत गुना चिकना, चमकीला, मनभावन, स्वर्ण पंखा वृत्त मण्डल जैसा प्रकट होता है। लाल कसिण में उग्गह निमित्त बाहरी परिकम्म निमित्त के समान एक जैसा ही - जैसा आंख से देखा वैसा ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में उग्गह निमित्त से अनगिनत गुना वह लाल रंग चिकना, चमकीला, मनभावन, लालमणि मण्डल वृत्त के समान प्रकट होता है। श्वेत कसिण में उग्गह निमित्त बाहरी परिकम्म निमित्त के जैसा ही आंखों से देखने के समान ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में वह उग्गह निमित्त अपेक्षाकृत अनन्त गुना श्वेत चिकना, चमकीला, मनभावन प्रकट होता है। श्वेत परिकम्म निमित्त को देखते समय सतह पर ऊपर जल के समान लहराता हुआ - ऊपरी रंग होता है। उस ऊपरी रंग के भीतर से उत्पन्न होकर आने वाला श्वेत से ही पटिभाग निमित्त अनेकों अनन्त गुना बढ़कर श्वेत चमकीला होता है। ज्ञान की उत्पत्ति पूर्वानुसार ही होता है। पीत, लोहित, ओदात्त कसिण पूरा हुआ। ६ - ७ - ८। पृथ्वी धातु आदि चारों महाभूत, नील आदि चारों वण्ण कसिण - कुल आठों कसिण पूरा हुआ।

९. शिष्यो, आलोक कसिण निमित्त। छत के छिद्र से दीवाल के छेदों से सूर्य की किरणें प्रविष्ट होती हैं। कमरे के भीतर फर्स पर अथवा दीवाल पर दिखती है। उसी प्रकाश वाले अंश वृत्त को आलोक कसिण निमित्त कहते हैं। उस किरण के अंश वृत्त को– "आलोक... आलोक..." यह चित्त के भीतर से जानकर आंखों से दिखने के अनुसार चित्त के भीतर

पृष्ठ– ५१७

प्रकट हो ऐसा ग्रहण किया जाता है। इस तरह सूर्य किरण अंश वृत्त देर तक नहीं टिकता। यदि उसे ग्रहण करने में कठिनाई हो तो बाहर धूप में दर्पण रखकर उससे परावर्तित किरणों को घर के भीतर लाकर उससे भी निमित्त ग्रहण किया जा सकता है। रात के समय कमरे के भीतर दूसरे कमरे से दीवाल के छेद को पार कर आता हुआ आलोक वृत्त को देखकर भी निमित्त ग्रहण किया जा सकता है। इस आलोक कसिण में उग्गह निमित्त बाहरी परिकम्म निमित्त के समान - जैसा दिखता है वैसा ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में उस उग्गह निमित्त से अनन्त गुना बढ़कर प्रकाशित आलोक प्रकट होता है। ज्ञान का प्रकट होना - पहले के वर्णनानुसार ही है। आलोक कसिण पूरा हुआ।

१०. शिष्यो, आकाश कसिण निमित्त। छत के छेद, दीवाल के छेद, झरोखे के छेद

से दिखने वाले आकाश को कहते हैं। उसे निमित्त-सा देखने की इच्छा हो तो छत, दीवाल या खिड़की में दो बालिश्त व्यास का वृत्ताकार छेद वाला फ्रेम लगा दें। उस छेद से आकाश को देखकर निमित्त ग्रहण करें। चौकोर खिड़की के द्वारा परिसीमित आकाश को भी देख सकते हैं। उससे भी निमित्त ग्रहण कर सकते हैं। मुख्य बात है निमित्त को ग्रहण करना। इस आकाश कसिण में उग्गह निमित्त - दीवाल, छत या खिड़की से होकर दिखने वाले परिसीमित आकाश प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में सीमा नहीं रह जाता। संपूर्ण निःसीम आकाश प्रकट होता है। ज्ञान का प्रकट होना पूर्ववत ही होता है। आकास कसिण पूरा हुआ।

शिष्यो, वण्ण कसिण में कण्ह, हरित को देखकर भी निमित्त ग्रहण किया जा सकता है। ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस कण्ह कसिण, हरित कसिणों को नील कसिण में ही रखकर गणना करते हैं। उसी तरह पीत से निकट संपूर्ण वर्ण कसिणों को पीत कसिण ही पुकार कर उसी में गणना करते हैं। लाल (लोहित) से निकटता वाले सभी वर्ण रंग कसिण, लाल कसिण में ही रखकर गणना करते हैं। श्वेत से निकट सभी वर्ण रंग श्वेत कसिण में ही रखकर गणना करते हैं। **शिष्यों, लोक में**

पृष्ठ – ५१८

आंख से दिखने वाला हर कुछ कसिण ही है। दसों दिशाओं में जिधर भी देखो कसिण ही दिखता है। निमित्त प्राप्त हो सकने योग्य देखकर ग्रहण करो। शिष्यों, इस कसिण को बहुलीकृत करने देखने वाले योगी इस कसिणों में से अपने मनचाहे सरलता से ग्रहणीय किसी एक कसिण को सर्वप्रथम देखकर निमित्त ग्रहण कर पांचों ध्यानों को उत्पन्न करता है। उसके बाद शेष कसिण निमित्तों को ग्रहण कर ध्यानों को उत्पन्न करता है। एक कसिण निमित्त को प्राप्त हो जाने पर शेष कसिण निमित्तों को सरलता से ही प्राप्त कर लेता है। शिष्यों, अधिकार रहित प्रकृति वाला पुग्गल के लिए पृथ्वी कसिण भी कठिन होता है। निमित्त प्राप्त होना कठिन होता है। वायो कसिण, आलोक कसिण भी कठिन होता है। निमित्त प्राप्त होना कठिन होता है। आपो, तेजो, आकास - यह तीनों कसिण उसके लिए सरल होते हैं। सबसे सरल होता है - वण्ण कसिण। उससे निर्मित करने तथा ध्यान कर देखने में सरलता होती है। निमित्त प्राप्त करना भी सरल होता है। शिष्यों, इस वण्ण कसिणों में भी आदिकम्मिक पुग्गल के लिए थिनमिद्ध को शीघ्रता से हटाने वाला चित्त ज्ञान को अत्यंत निर्मल करने वाला निमित्त प्राप्त होने के पूर्व ही, रास्ते में ही, समस्त वण्ण वस्तु को इच्छानुसार जब चाहे तब दिखाने वाला अत्यंत प्रभावशाली कसिणों में श्रेष्ठतम... ऐसा भगवान ने अग्र रखे हुए ओदात कसिण को सर्वप्रथम देखकर ध्यान करने को हम अत्यधिक पसंद करते हैं।

ओदाताहं विवण्णेमि, बुद्धेन एतदग्गियं।
अनेका निसंसं ओदातं, तं तं भावेथ साधवो।।
(सेक्ख्य भासित गाथा)

शिष्यो, मैं - 'बुद्ध ने कसिणों में अग्र ओदात कसिण की भावना को प्रशंसा किया है' - उसी को भावित करने के लिये कहता हूं। शिष्यों! ओदात कसिण

पृष्ठ – ५१९

निमित्त प्राप्त होने के पूर्व ही थिनमिद्ध को शीघ्रता से दूर करने, रात के समय में भी प्रकाश देने, रूपालम्बन मात्र को कल्पना कर देख लेने पर जब-जब आवश्यकता हो, इच्छा हो देख सकने (अनुभव कर सकने); इत्यादि - अनेकों लाभकारी गुणों से पूर्ण है। इसलिये तुम लोगों को उस ओदात कसिण को सर्वप्रथम भावना करने के लिए कहता हूं। उसी की भावना करो।

शिष्यो, भगवान जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर यह कहा :–

"अच्छरा सङ्घातमत्तं पि चे भिक्खवे भिक्खु ओदात कसिणं भावेति। अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्त झानो विहरति, सत्थु सासनकरो ओवाद पटिकरो अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, को पन वादो येन बहुली करोतीति। (एकङ्गुत्तर पाळि - अच्छरा सङ्घात कसिण सुत्त)

"भिक्षुओ, यदि चुटकी बजाने के समय भर भी ओदात कसिण - भावना करता है तो भिक्षुओं, ऐसा भिक्षु ध्यान से अशून्य माना जाता है, शास्ता का आज्ञाकारी माना जाता है, शास्ता के उपदेश के अनुसार चलने वाला माना जाता है और यही माना जाता है कि वह राष्ट्र-पिण्ड को व्यर्थ नहीं खाता। जो बार-बार ओदात कसिण भावना करता है उसका तो कहना ही क्या ?"

पृष्ठ – ५२०

इस तरह भगवान ने देशित किया।

शेष कसिणों को भी उसी तरह देशित किया है। इसलिये शिष्यों, सर्वश्रेष्ठ का दर्शन साक्षात करने की इच्छा करने वाले मेरे शिष्यो, तुम लोग ध्यान से अशून्य रहने वाले, शास्ता का आज्ञाकारी, शास्ता के उपदेश के अनुसार चलने वाले, देश वासियों द्वारा दान में दिये गये भोजन आदि राष्ट्र-पिण्डों को व्यर्थ नहीं खाने वाले, उसका लाभकारी विकास हेतु उपयोग करने वाले - अभी जैसा मैंने बताया उस विधि के अनुसार ओदात कसिण भावना को बहुलीकृत करो। शेष कसिणों की भी भावना कर बहुलीकृत करो।

इति कसिण भावना नयो

असुभ कम्मट्ठान भावना

१. शिष्यो, दस अशुभों में **'उद्धुमातक असुभ'** मरने के बाद स्याह्य धब्बे आने के पूर्व फूले हुए (सूजे हुए) लाश (मृतक देह) को कहते हैं। उद्धुमातक असुभ को देखकर

भावना करने का इच्छुक योगी पुग्गल, उपरोक्त सूजे हुए मृतक शरीर को जैसा कि कसिण निमित्त ग्रहण करते हैं वैसा ग्रहण करता है। जैसा देखता है वैसा मन में अनुभव द्वारा देखता है। घृणास्पद, सड़ता पूतिकाय, इस तरह चित्त में जानते हुए आंख से देखते हुए निमित्त को ग्रहण करता है। इस उद्धुमातक असुभ में उग्गह निमित्त आंख से देखने के अनुसार ही घृणित, भयानक ही उत्पन्न होकर प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में भयानक घृणित नहीं रहता। अत्यंत सुन्दर भरापूरा

पृष्ठ – ५२१

प्रिय होकर दिखता है। उग्गह निमित्त, पटिभाग निमित्त दोनों को ही घृणित - **मन में धारण कर देखना होता है। बार-बार ऐसा देखने पर कसिण में बताये अनुसार ही पठम झानवीथि पात होता है। प्रथम ध्यान प्राप्त होता है। आलम्बन रूक्ष होने के कारण** ऊपर के दुतिय झान को उत्पन्न नहीं कर सकता; प्राप्त नहीं होते। **शेष असुभों में भी इसी तरह केवल पठम झान को ही उत्पन्न कर सकते हैं।** उद्धुमातक असुभ पूरा हुआ।

२. शिष्यो, **विनीलक** अर्थात् वह मृतक देह बहुत सूजा हुआ है। अब फटने के करीब है। नीला-लाल आदि मिश्रित धब्बे यहां-वहां उत्पन्न हैं। इस प्रकार सड़ता हुआ मृतक शरीर विनीलक कहलाता है। इस विनीलक असुभ को भी विनीलक... ऐसा चित्त में स्मरण कर, मन में करते हुए उद्धुमातक नियम के अनुसार निमित्त ग्रहण किया जाता है। उग्गह निमित्त तो जैसा देखते हैं वैसा ही घृणित, भयानक अवस्था में प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में घृणित भयानक नहीं होता। अत्यंत सुन्दर प्रिय प्रकट होता है। विनीलक असुभ पूर्ण हुआ।

३. शिष्यो, **विपुब्बक** सड़कर खूब पीब से भरा हुआ चमड़ी फटकर बहता हुआ मृतक शरीर होता है। इस विपुब्बक असुभ मृतक को भी विपुब्बक के समान चित्त में जानते हुए उपरोक्तानुसार निमित्त ग्रहण करते हैं। उग्गह निमित्त - जैसा आंख से देखते हैं वैसा ही प्रकट होता है। घृणित, भयानक अवस्था में प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में घृणा, भय नहीं रहता। अत्यंत सुन्दर - कान्त प्रकट होता है। विपुब्बक असुभ पूरा हुआ।

४. शिष्यो, **विच्छिद्दक** - दो खण्डों में खण्डित मृतक मनुष्य शरीर को कहते हैं। इस असुभ मृतक को भी उनके पृथक दो खण्ड को एक साथ सटाकर एक अंगुल दूर माना दोनों खण्ड जोड़कर रख देते हैं। मन में विच्छिद्दक करते हुए पूर्वानुसार निमित्त ग्रहण करते हैं। उग्गह निमित्त तो जैसा देखते हैं वैसा ही प्रकट होता है। घृणित, भयानक, द्विखण्डित। पटिभाग निमित्त विभक्त भयानक नहीं होता। अत्यंत सुन्दर, मनाप

पृष्ठ – ५२२

अखण्डित होकर प्रकट होता है। विच्छेद्दन असुभ पूरा हुआ।

५. शिष्यो, विक्खायितक - कौवे, कुत्तों, गिद्धों आदि द्वारा नोंच-नोंचकर खाये हुए मनुष्य के मृत देह को कहते हैं। विक्खायितक को भी - विक्खायितक - कहते, मन में करना होता है। पूर्व में कहे अनुसार निमित्त ग्रहण करते हैं। उग्गह निमित्त जैसे क्षत-विक्षत खाया हुआ होता है वैसे ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में वैसा क्षत-विक्षत नोंच खाया हुआ नहीं रहता। सु-वर्ण - सुन्दर मनाप ही उत्पन्न होकर प्रकट होता है। विक्खायितक असुभ पूरा हुआ।

६. शिष्यो, विक्खित्तक - पैर कहीं, हाथ कहीं, धड़ अलग, सिर अलग, इस तरह तितर-बितर बिखरा हुआ मृतक मनुष्य का देह। इस विक्खित्तक को भी एक साथ एकत्र कर रखते हैं। विक्खितक... कहते हुए मन में करना होता है। पूर्वानुसार निमित्त ग्रहण करते हैं। उग्गह निमित्त - जैसा देखते हैं वैसा ही अलग-अलग अंग प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में अलग-अलग कटा-छंटा पृथक नहीं बल्कि एक साथ जुड़ा हुआ - अत्यंत प्रिय मनाप प्रकट होता है। विक्खित्तक असुभ पूरा हुआ।

७. शिष्यों, हतविक्खित्तक हाथ-पैर, धड़, सिर अलग-अलग काटकर तलवार से रहे निशान भी उलझे हुए इधर ऊपर पड़े होते हैं। इधर-उधर बिखरा पड़ा है। इस प्रकार के मनुष्य के मृतक देह को हतविक्खित्तक कहते हैं। यह हतविक्खित्तक-विक्खित्तक के जैसा ही है। तलवार के कटान उभरा होता ही विशेष है। इस हतविक्खित्तको - मन में जानना है। मन में करना होता है। पूर्वानुसार निमित्त ग्रहण करते हैं। शेष क्रमांक ७ के समान। केवल तलवार का निशान विशेष है - जो उग्गह निमित्त में होता है - पटिभान में प्रकट नहीं होता। हतविक्खित्तक असुभ पूरा हुआ।

८. शिष्यो, लोहितक में यहां-वहां से रुधिर बहकर मृतक के शरीर पर फैल रहा होता है। ऐसे मनुष्य के मृतक देह को कहते हैं। इस लोहितक को भी लोहितक... कहते हुए चित्त में धारण करते हुए जानते हैं। पहले के जैसे ही निमित्त ग्रहण करते हैं। उग्गह निमित्त [illegible] अनुसार ही जैसा है वैसा प्रकट होता है। विभत्स, घृणित, [illegible]। पटिभाग निमित्त में वह लोहित आदि का चिन्ह नहीं होता। अजुगुप्सु, अभयानक सुन्दर लाल कम्बल ओढ़े हुए बहुत सुन्दर प्रकट होता है। लोहितक असुभ पूरा हुआ।

पृष्ठ – ५२३

९. शिष्यो, पुळवक अर्थात् ढोला, कीड़े आदि जो मवादादि में लप्-लप् मुंह निकालते रहते हैं; बलबलाते रहते हैं - इस प्रकार के ढोले बलबलाते हुए मृत मनुष्य का शरीर जो सड़ता होता है। इस पुळवक को भी - पुळवक... कहते हुए मन में जानना है। पुर्वानुसार निमित्त ग्रहण करना होता है। उग्गह निमित्त आंख से दिखने के अनुसार ही अत्यंत विभत्स जुगुप्सु होता है। सड़ते मुर्दे के सहित कलबलाती ढोले वाली अवस्था प्रकट होती है। पटिभाग निमित्त विभत्स जुगुप्सु नहीं होता। श्वेत भात से मिला हुआ भोजन का-सा ढोले एकदम शांत होकर स्थित-सा अच्छे प्रियवर प्रकट होते हैं। ढोलों की अधिकता न्यूनता के अनुसार इसको भेद कर समझते हैं। पुळवक असुभ पूर्ण हुआ।

१०. शिष्यो, अट्ठिक अर्थात् मृतक मनुष्य के हड्डियों को कहते हैं - वह हड्डियां भी - (१) नसों वाहिकाओं-रुधिर आदि से जुड़ा हुआ हड्डी। (२) बिना मांस रुधिर से ही लिप्त जोड़ों सहित अस्थियां। (३) रुधिर - आदि रहित जोड़ों सहित अस्थियां। कंकाल। (४) जोड़ (संधि) संयोजन टूट गये - जिधर-तिधर बिखरे हुए अस्थि। इस प्रकार चार तरह के होते हैं।

इन चारों अस्थियों में से जो प्राप्त हो उसे ही देखकर भावना करते हैं। तितर-बितर फैले हुए अस्थियों को एकत्र कर, एक साथ रखकर देखते हैं। जितना प्राप्त हो उतने को ही देखते हैं। अकेले एक ही अस्थि को भी देखते हैं। घृणित अस्थि है... इस तरह मन में रखकर जैसे कसिण निमित्त ग्रहण किये वैसे ही चित्त के भीतर देखते हुए भावना करते हैं। देखते हुए निमित्त ग्रहण करते हैं। इस अट्ठिक में उग्गह निमित्त - आंख से जैसे प्रत्यक्ष देखते हैं वैसे ही

पृष्ठ– ५२४

घृणित ही प्रकट होता है। पटिभाग निमित्त में एक समान अच्छा - सुन्दर प्रियतर ही प्रकट होता है। अट्ठिक असुभ पूरा हुआ।

शिष्यो, इन दस असुभों में पूरा का पूरा बिना सड़े-गले मुर्दा को देखने कर जब निमित्त प्रकट होता है - तब प्रतीत होता है कि वह मुर्दा ही उठकर अपने समीप आच्छादित कर आ रहा है। बड़ा भय होता है। ऐसा मन में हो सकता है। उस समय भयभीत होकर हृदय गति रुक सकती है। पागल हो सकते हैं। दृढ़तापूर्वक सजग रहना होता है। अविञ्ञाणक वृक्ष - खूंथ, लकड़ी का लट्ठा जिस तरह नहीं उठ सकता उसी तरह अविञ्ञाणक मरा हुआ मुर्दा भला कैसे उठ सकता है। इस तरह महसूस होना तुम्हारे चित्त के परिपक्व होकर निमित्त प्रकट होने की निकटता के कारण ही होता है। 'मत डरो!' अपने आपको समझाकर, निर्भय होकर प्रसन्न चित्त से भावना करना होता है। शव जब तक चमड़ी सहित सड़-गल नहीं जाता तब तक कोई प्रेत प्रविष्ट हो सकता है। शव के सड़-गल जाने पर उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। यदि उस शव में प्रेत प्रविष्ट होकर उठ जावे तब डंडे से मार कर उसे गिरा देना चाहिए। परित्राण गाथा द्वारा भी गिराया जा सकता है। अकेले ही असुभ भावना करने वाला योगी पहले से डंडा (छड़ी) रखता तथा परित्राण गाथा जानता है। उसे जानकर रखना होता है। सति - जागरूक रखनी होती है।

शिष्यो, सुभी कसिण आरम्मण सुन्दर, मनाप (होने) के लिए चित्त को चिपकने वाले आलम्बन ही है। यह असुभ आलम्बन - भयकारी, जुगुप्सु के लिए चित्त को चिपकने वाले आलम्बन ही है। शिष्यो, आस-पास के क्षेत्र में, भूत-प्रेत, शव को भय खाने वाले कुछ लोग अनचाहे इत्तफाक से शव को पकड़ लेते हैं - तो वह दृश्य उसके मनःस्थल तक बैठ जाता है। वही उसको दिखता व महसूस होता है। रात को सोते समय भी ओढ़ना ओढ़कर सोते समय भी ऐसा ही लगता है कि वह मुर्दा बगल में लम्बवत उतान

सोया है अथवा वह मेरे ऊपर से ढंक कर पड़ा है। डर के मारे उस व्यक्ति की नींद हराम हो जाती हैं। उसके घर के लोग घेरकर पकड़ते हैं तब उसे भय से राहत मिलती है। फिर वह सो पाता है। यह उद्धुमातक असुभ उग्गह निमित्त का प्रकट होना ही होता है, शिष्यों। वे लोग इसका उपयोग करना नहीं जानते। उसके लिये

पृष्ट – ५२५

भयानक दुक्खोत्पादक घटना होती है। इसका उपयोग करना जानने वाले योगी - इस तरह प्रकट होने लगने पर मानो उन्हें मणि रत्न प्राप्त हो गया - ऐसा मानकर बहुत प्रसन्न होते एवं सुख मानते हैं। इस तरह अनुभव होने पर ही उग्गह निमित्त प्रकट हुआ ऐसा जानना होगा। शिष्यों, शव रखने वाले स्थान में चित्त के भीतर पलटकर महसूस करने को भी उग्गह निमित्त को यह महसूस करना मत समझना। इस तरह जानने को दिखना समझ बैठते हैं। स्वयं अपने अट्ठिक को देखने वाले (भावना) करने वाले लोग बिना देखे ही जानने को महसूस करते हैं ऐसा जमीन-पठार पर चले हुए मनुष्य और भिक्षु भी ढेरों हो चुका। वैसे पैदल चलकर आने पर कांस (झाड़) देखने पर - अपने सोये स्थान में जो छोटे-मोटे आस-पास सामान रखे होते हैं उन्हें जरा उठकर देखो - देख रहे हो - तो कहेंगे कि दिखता है उत्तर देते हैं। अपने देखे हुए देखकर रखे हुए पुस्तक, अक्षर, पृष्ठ संख्या को भी इधर देखो। तो दिखता है? तो हां दिखता है उत्तर देते हैं। ठीक है - यदि दिखता है तो पढ़ो तो जरा - ऐसा कहने पर नहीं पढ़ सकता। शिष्यों, इसी तरह हथेली को पलटकर - 'तो ठीक है - हथेली को देखो, दिखता है - तो कहेगा हां दिखता है। यदि दिखता है तो रेखाओं को गिनकर दिखाओ - कितने हैं? ऐसा पूछने पर नहीं बता सकेगा। हां तो अभी तुम देखना कहाने वाला देखना नहीं जानते। यह केवल जानते-समझते हो। अब जानना देखना को पृथक कर देना, हो गया।

शिष्यो, यह असुभ निमित्त भय से, जुगुप्सा से प्रकट होता है। खूब स्पष्ट भय खाने, जुगुप्सा होने पर खूब स्पष्टता सरलता से प्रकट होता है। नहीं डरने वाला - जुगुप्सा नहीं होने वाला सुभराजा लोगों में यह प्रकट नहीं होता। इसी कारण से निमित्त ग्रहण करने वाला योगी पुग्गल असुभों को (शवों को) हाथ से न छूये। उससे बहुत ज्यादा परिचित न हो। हटाना - एक साथ सटाना भी हो तो अन्य से करवाये। वहां करवाने वाला कोई सहायक न हो तो डंडे (छड़ी) से उठाकर हटाये, सरकाये, एक साथ संयुक्त कर रखे। शिष्यों, यह दसों अशुभ मनुष्य का ही शव हो यह आवश्यक नहीं। पशु-प्राणियों के शव - असुभों को भी देखकर निमित्त ज्ञान प्रकट हो सकता है। पुळवक ढोलों-कीड़ों के शुद्ध समूह को देखकर भी निमित्त ध्यान को प्राप्त किया जा सकता है। खुले पाय खाने (वच्चकुट्टी) में गड्ढे के भीतर मल में कलबला रहे असुभ को देखकर भी निमित्त ध्यान को प्राप्त किया जा सकता है। वह मृत शव भी नहीं हो सकते हैं।

पृष्ठ – ५२६

में भी, जो सूज जाते हैं वैसे समय उद्धुमातम; घाव, फोड़े-फुन्सी आदि

फूटकर उसमें से लहू मवाद निकलते पड़े हुए मनुष्य को देखकर उसमें विपुब्बक; हाथ-पैर कटे वाले मे विच्छेद्दक; छुर्रे-दाव आदि से कटे हुए के कारण गिर पड़े आदमी से बहता रुधिर को देखकर लोहितक; हर समय कभी-कभी अट्ठिक असुभ आदि को ग्रहण कर सकते हैं।

इन दस असुभों में खूब भलीभांति भयोत्पादक असुभ समूह से निमित्त ग्रहण करना सरल होता है। अट्ठिक में भी बाह्य अट्ठिक से निमित्त ग्रहण करना सरल है। अपने स्वयं के भीतर के अट्ठिक को ग्रहण करना कठिन है। यदि अपने स्वयं के भीतर के अट्ठिक को प्राप्त कर सकते तो बहुत उत्तम है। झान और मग्ग दोनों को सरलता से प्राप्त कर लेते। शिष्यों, दस अशुभों को असुभ के रूप में जानकर घृणात्मक जुगुप्सु जैसा मन में धारण कर, देखकर, चित्त में रखकर, प्रथम झान को प्राप्त योगी जब द्वितीय ध्यान की ओर बढ़ना चाहता है तब उस प्राप्त असुभ निमित्त में नील-पीत-लोहित-ओदात में से कोई एक न एक रंग लेता है। इसके बाद वण्ण कसिण में बताये अनुसार फिर उसको आगे बढ़ना होता है। असुभ के समय में निमित्त को बहुलीकृत नहीं किया जा सकता। कसिण होने के समय - निमित्त को भी बहुलीकृत कर सकते हैं।

शिष्यो, इस अशुभ की भावना करने में जैसा कि अभी विधि बताया उसके अनुसार निमित्ति ग्रहण करने, झान प्राप्त होने तक की भावना - **समथ भावना विधि** है। उस असुभ भावनाओं को साक्षात कर लेने पर निमित्त ग्रहण करने हेतु कसिण को बिना देखे (उसकी भावना बिना किये) - "अरे... यह व्यक्ति अस्थिर है - परिवर्तन शील है - ऐसे ही होकर चला गया रे... मैं भी इसी तरह अस्थिर, परिवर्तनशील हूं - ऐसे ही मर जाऊंगा रे - ऐसे ही होऊंगा रे - इस तरह अनिच्च भावना; अरे... यह व्यक्ति इस तरह कुरूप - घृणास्पद है रे; कितनी बुरी अवस्था है रे, मैं भी इसी तरह कुरूप, घृणास्पद हूं रे; कितनी बुरी अवस्था है रे; इस तरह दुक्ख भावना; अरे... यह अपने आपको तनिक भी हिला-डुला नहीं पाता है रे, निर्जीव काष्ठवत पड़ा है रे, मैं भी इसी तरह, मैं भी बिना हिले-डुले निर्जीव तृणवत - काष्ठवत हो जाऊंगा।

पृष्ठ – ५२७

अभी भी तो वैसा ही है रे - इस तरह अनत्त भावना – ऐसे **विपश्यना भावना विधि** इस प्रकार दो विधि हैं। उन दोनों में समथ विधि से भावना करने वाले व्यक्ति में - पुरुष को स्त्री असुभ (शव); स्त्री को - पुरुष असुभ (शव) अर्थात् **विसभाग** अशुभ आलम्बन बड़े-छोटे गुह्यांग की आकृति यदि विकृत नहीं हुई होगी तो यह अशुभ उचित नहीं होता - उपयुक्त नहीं होता। उसकी भावना नहीं करनी चाहिए। उसके (विपरीत लिंगी शव के) प्रति राग आसक्ति उत्पन्न हो सकता है। निमित्त प्राप्त होकर यदि उग्गह निमित्त में राग नहीं उत्पन्न हुआ तो भी पटिभाग निमित्त के समय तो राग उत्पन्न ही हो सकता है। भगवान के समय की घटना है : भिक्षु राजदत्त था। उस भिक्षु को इस तरह असुभ निमित्त - ढोले (कीड़े) पड़ चुके एक स्त्री के असुभ (शव) में जिसकी

जननेन्द्रिय की आकृति अभी विकृत नहीं हुई थी - इस कारण राग चित्त उत्पन्न हो आया। वह थेर जब इस तरह राग चित्त उत्पन्न हो गया तो वह अपने आपको स्वयं ही भर्त्सना कर, दूर हटकर विपश्यना विधि द्वारा भावना किया। जैसे पूरी हण्डी का भात पक जाता है - इस तरह भीतर में ही वह अरहत्त अवस्था को प्राप्त हो गया। उस राजदत्त थेर के समान राग चित्त उत्पन्न हो सकता है। विपश्यना विधि द्वारा भावना करने वाले में **विसभाग** असुभ आलम्बन विशेषकर, बढ़कर उपयुक्त है। विसभाग असुभ को ही विशेष रूप से ढूंढ़कर देखते एवं निमित्त ग्रहण करते हैं। इसीलिये भगवान ने अत्यधिक रागचरित उद्विग्न विपश्यना विधि - असुभ भावना करने वाले कुल्लथेर को स्त्री के शव को ही विशेष रूप से निर्मित कर दिया। नगर वधू सीरिमा को आसक्त होकर भोज़न ग्रहण नहीं करने वाले - न जल ग्रहण करने वाले भिक्षु को भी सीरिमा के शव (असुभ) को दिखला कर मार्गफल पद को प्राप्त करवाया।

शिष्यो, भगवान ने जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर यह देशित किया :–

अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे भिक्खवे भिक्खु अट्ठिकसञ्ञं भावेति। अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्तझानो विहरति, सत्थु सासनकरो ओवादपटिकरो अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, कोपनवादो येन बहुलीं करोतीति। (एकङ्गुत्तर पाळि)

पृष्ठ– ५२८

शेष अशुभों को भी इसी तरह देशित किया है।

इसलिये शिष्यो, सर्वश्रेष्ठ का दर्शन करने की इच्छा करने वाले मेरे शिष्यों, तुम लोग ध्यान से अशून्य रहने वाले, शास्ता के उपदेश के अनुसार चलने वाले, शास्ता के आज्ञाकारी, देशवासियों द्वारा दान में दिये गये भोजन आदि राष्ट्र पिंड को व्यर्थ नहीं खाने वाले, उसका लाभकारी विकास हेतु उपयोग करने वाले - अभी जैसा मैंने बताया उस विधि के अनुसार अट्ठिक असुभ भावना को, शेष प्रत्येक असुभ को भी, बहुलीकृत करो। प्रयत्न करो शिष्यों, इस अच्छरासङ्घात असुभ सुत्त में अट्ठिक सञ्ञं नामक पद को– "अट्ठिक सञ्ञं घृणित अस्थि - ऐसी भावना करने की अट्ठिक सञ्ञा को; चे भावेति = यदि बहुलीकृत करोगे" ऐसा अर्थ दो। शेष तो कसिण सुत्त जैसा ही जानो।

इति असुभ भावना नयो

अनुस्सति कम्मट्ठान भावना

१. शिष्यो, दस अनुस्सति में बुद्धानुस्सति भावना में बुद्ध के सद्गुणों को वार-बार स्मरण करते हैं। सति करते हैं। उस बुद्धानुस्सति को बहुलीकृत करने वाले योगी –

(१) भगवान के क्लेश नामक अरियों का हनन कर सकने की शक्ति वाले अरिहंत गुण –

(२) सम्मा सम्बुद्ध गुण –

पृष्ठ – ५२९

(३) इतिपि सो भगवा विज्जाचरण सम्पन्नो - यह गुण –

(४) इतिपि सो भगवा सुगतो - यह गुण –

(५) इतिपि सो भगवा लोकविदू - यह गुण –

(६) इतिपि सो भगवा अनुत्तरो पुरिस दम्मसारथि - यह गुण –

(७) इतिपि सो भगवा सत्था देव मनुस्सान - यह गुण –

(८) इतिपि सो भगवा बुद्धो - यह गुण –

पृष्ठ – ५३०

(९) इतिपि सो भगवा - भगवा – अर्थात् (१) ऐश्वर्य (२) धम्म (३) यश (४) श्री (५) काम (६) प्रयत्न, इन छः भगवान के गुणों से पूर्ण होने के कारण भगवा - का यह गुण –

इन नौ गुणों को बार-बार स्मरण करते हैं। पालि में स्थान-स्थान पर यह इतिपि सो भगवा आया है – अरे... उन भगवान ने - क्लेशों का प्रहाण कर लिया - उन्होंने कितना कठिन कार्य किया। हमारे लिये यह कितना कठिन है रे। उसे तो छोड़ो, हम थीनमिद्ध मात्र को नहीं हटा पाये रे। उन्होंने तो चूर्ण-चूर्ण कर हटा डाला। हमारी कौन कहे इसको तो देव ब्रह्मा भी नहीं हटा पाये हैं - क्लेशों का प्रहाण कितना कठिन है रे। प्रत्येक बुद्धों को छोड़कर कोई भी स्वयं की प्रज्ञाशक्ति से नहीं त्याग सकते। इस तरह अत्यंत कठिन है जिनका प्रहाण करना हम संपूर्ण लोकवासी नहीं प्रहाण कर पाते। अतः हमें हार मान कर रहना पड़ता है। इन क्लेश नामक शत्रुओं को मार डाला उन भगवान ने। इस तरह जिन्हें प्रहाण करना, हटाना अत्यंत कठिन कार्य है - उन क्लेशरूपी शत्रुओं को बिना किसी मार्गदर्शन के स्वयं अपने आप अपने परिश्रम द्वारा मार-काटकर हटा देने वाले बुद्ध का शक्ति-सामर्थ्य अत्यंत विस्मयकारी है रे। ऐसे अरियों को हनन कर देने वाले बुद्ध का श्रद्धा बल, वीरिय बल, सति बल, समाधि बल, प्रज्ञा बल आदि बल बड़ा तीक्ष्ण था रे। अत्यंत विस्मयकारी था रे।

"अरहं वत सो भगवा" - वे हमारे भगवान बुद्ध - जिन क्लेशरूपी शत्रुओं का हनन अत्यंत कठिन है - उन्हें बिना आचार्य के स्वयं विधि की खोज कर

पृष्ठ– ५३१

हनन कर डाला रे। **"अहो अच्छरियं वत"** - अरे कितना विस्मयकारी हैं रे। हम संपूर्ण लोक से - **"अभिक्कन्त तरोवत"** अत्यंत सुन्दर शक्ति वाले हैं रे।

किस कारण से उन अरियों का हनन कर पाये? इतिपि - इस तरह दान पारमी को पूर्ण कर सकने के कारण; सील, नेक्खम्म, पञ्ञा, वीरिय, खन्ति, सच्चा, अधिट्ठान, मेत्ता,... इतिपि - इस तरह उपेक्खा पारमी को परिपूर्ण कर सकने के कारण - इतिपि - इस तरह पांच त्यागों को त्याग सकने के कारण - इतिपि - इस तरह तीन चरिय को आचरित करने के कारण अरहं हैं रे। क्लेशरूपी दुश्मनों को मार सके रे। इस तरह उनके पूर्व समय की दसों पारमिताएं - पांचों महात्याग, तीनों चरिय को परिपूर्ण करने की बातों को बार-बार स्मरण करते हैं। उन पारमिताओं के बारें में सम्भार सहित अर्हंत गुण को बार-बार स्मरण करते हैं। याद करते हैं।

पुनः स्मरण करते हैं... अरे... हमारे को देखो कि हम अपने भीतर पेट में क्या है इसे ही नहीं जानते। उन भगवान को देखो रे - हमारे लोक की बात कौन करे - प्रत्येक बुद्ध भी जिसे नहीं जानते - उनको भी जानते हैं रे। लोक में जो भी धर्म हैं उन सबको बिना आचार्य के स्वयं ही बिना विपर्यास के ठीक-ठीक जान सके रे। इस तरह अत्यंत, गहन सूक्ष्म गंभीर, दुसाध्य - सभी धर्मों को संपूर्ण को जान सकने वाले भगवान की शक्ति सामर्थ्य बड़ा विस्मयकारी है रे। इस प्रकार जान सके उन भगवान का सब्बञ्ञुत ज्ञानशक्ति अत्यंत तीक्ष्ण महान है रे! अप्रतिम - तीक्ष्ण महान है रे। अत्यंत आश्चर्यजनक है रे!

"सम्मा सम्बुद्धो वत सो भगवा" के भगवान! वे हमारे बुद्ध! सम्यक सम्बुद्ध है रे। संपूर्ण धर्मों का साक्षात्कार बिना आचार्य के स्वयं अनुसंधान कर खोज निकाला रे। "अहो अच्छरियं वत"–

पृष्ठ– ५३२

अरे आश्चर्यजनक हैं रे। 'अम्हेहि'– हमारे संपूर्ण लोक से भी "अभिक्कन्ततरो वत"– ओहो! अनन्त अनन्त प्रज्ञा बल में श्रेष्ठ हैं रे।

कैसे इस ज्ञान को प्राप्त कर सके? इतिपि... इसी तरह दान पारमी को पूरा करने के कारण;...पे०... इतिपि - इसी तरह उपेक्खा पारमी को परिपूर्ण करने के कारण; - इतिपि - इसी तरह पांचों महान त्यागों के कारण; इतिपि - इसी तरह तीनों चरिय को आचरित करने के कारण; सम्मा सम्बुद्धो - संपूर्ण धर्मों को स्वयं बिना किसी आचार्य के मार्गदर्शन के ही भलीभांति जान सके। इस-प्रकार पूर्व के **पारमी, त्याग, चरिय** आदि को उन्होंने कैसे पूर्ण किया इसका पुनः स्मरण कर उस पारमी के विषय में उसके बारे में सम्भार सहित सम्मासम्बुद्ध गुण को बार-बार स्मरण करते हैं। याद करते हैं।

शिष्यो, इस विधि के अनुसार शेष गुणों को भी पारमी के वारे में, सम्भारों सहित उसके अनुसार स्मरण करना होता है। उन नौ (९) गुणों के अतिरिक्त पांच चक्खुओं से पूर्णतः **चक्खुमगुण**; पांचों मारों को जीतने की शक्ति **जिन गुण**; दस कायिक तथा दस ज्ञान बलों की पूर्णता - **दस बल गुण**; इस तरह बुद्ध के गुण– ''अप्पमाणो बुद्धो'' असङ्ख्येय्य हैं। उन अनेक अनन्त गुणों को स्वयं अपने आप प्रयत्न कर साक्षात्कार किये। इस तरह उन नौ गुणों के अनुसार ही स्मरण किया जावेगा। केवल एक ही गुण के स्मरण से दो का स्मरण करना ज्यादा श्रेष्ठ होता है। चित्त ज्ञान निर्मल होता है। उसका लाभ बड़ा और श्रेष्ठ होता है। दो से तीन का; तीन से चार का; इत्यादि जितने ही अधिक से अधिक गुणों का स्मरण कर सकें उतना ही अधिक से अधिक उत्तम होता है। इसी कारण से शिष्यों, तुम शिष्य गण भगवान बुद्ध के गुणों को अधिक से अधिक जान सको - स्मरण कर सको इसके लिये उन भगवान के गुणों को देशित किये सुत्तों पाळिको, बुद्ध वंदना पाळि को, जहां तक हो सके कंठस्थ करो। उन्हें स्मरण करो,

पृष्ठ – ५३३

याद करो। अटानाटिय परित्राण में भी भगवान के बहुत सारे गुण वर्णित हैं। हो सके तो कंठस्थ कर लो। जानते हुए उसका स्मरण करो। मेरे द्वारा लिखित ''अरिय मग्ग दीपनी'', ''अनेकजातिं'' ग्रन्थों को भी पर्याप्त वंदना सुत्त पाळि - उद्धृत कर दिया है। हो सके तो हृदयस्थ कर डालो। जानो और स्मरण करो। पूर्व पारमी सम्भारों को उन्हें किस प्रकार पूरा किया उसे जानने के लिए भी, स्मरण कर सकने के लिए भी बुद्धवंस, अपदान, चरिय पिटक, जातक - भगवान की जीवनी आदि को भी जहां तक हो सके पढ़कर जानो। उन्हें स्मरण करो।

शिष्यो, इस तरह तुम अपने आप स्वयं जो जान सके हो - उन बुद्ध गुणों को यदि बार-बार स्मरण करोगे तो श्रद्धा धर्म अत्यंत बलवती होगी। बेझिझक सिर काटकर चढ़ा देने वाली श्रद्धा उत्पन्न होगी। चित्त ज्ञान निर्मल हो जावेगा। ज्ञान बहुलीकृत होकर परिपक्व होगा। चित्त बहुत स्थिर होगा। निर्मल होगा। **उपचार ज्ञान** को प्राप्त होगा। शिष्यो, उपचार ज्ञान - निमित्त ग्रहण करने में अच्छा कम्मट्ठानों में शुरू से लेकर पटिभाग निमित्त उत्पन्न होने तक इसके भीतर (मध्य) बहुलीकृत किया चित्तुप्पाद को **परिकम्मभावना** कहते हैं। पटिभाग निमित्त उत्पन्न होने से लेकर अप्पना तक पहुंचने के पूर्व तक - इस बीच बहुलीकृत किया चित्तुप्पाद को **उपचारभावना** कहते हैं। ज्ञान चित्त को आलम्बन के भीतर प्रविष्ट कर गये के समान एकाग्र होकर उत्पन्न होने के कारण **अप्पनाभावना** कहते हैं। इन तीनों भावनाओं में परिकम्मभावना के समय में स्थित समाधि को, ज्ञान को, **परिकम्म समाधि परिकम्म ज्ञान** कहते हैं। उपचार भावना के समय में उपस्थित समाधि को, ज्ञान को **उपचार समाधि, उपचार ज्ञान** कहते हैं। अप्पना भावना के समय में उपस्थित समाधि को, ज्ञान को अप्पना समाधि, अप्पना ज्ञान कहते हैं। इस तरह तीन तरह की भावना, तीन तरह की समाधि, तीन तरह के ज्ञान हैं। शिष्यों - यह बुद्धानुस्सति कम्मट्ठान बुद्ध

गुण परमार्थ धर्म उत्पन्न होकर निमित्त ग्रहण करने योग्य धर्म नहीं होने के कारण - इस तरह से

पृष्ठ– ५३४

चित्त ज्ञान की निर्मलता, प्रसन्नता, एकाग्रता मात्र उपचार ज्ञान को, उपकार समाधि को ही उत्पन्न कर सकता है। अप्पना ज्ञान, अप्पना समाधि को उत्पन्न नहीं कर सकता, शिष्यों। अप्पना ज्ञान अर्थात् निमित्त आलम्बन ग्रहण करने में सरल कम्मट्ठान में से सहजता से हो सकता है। बुद्धानुस्सति को बहुलीकृत करना पूरा हुआ।

२. शिष्यो, धम्मानुस्सति - बुद्ध-देशित परियत्ति, पटिपत्ति, पटिवेध नामक तीन धर्मो का; अथवा परियत्ति, पटिपत्ति, ज्ञान, मग्ग, फल, निब्बाण, नामक छः धर्मो की स्वाक्खातता - इत्यादि गुणों को बार-बार स्मरण करने वाली सति को कहते हैं। उस धम्मानुस्सति की भावना को करने के इच्छुक योगी धर्म की स्वाक्खातता आदि छः गुणों को भलीभांति जानकर बुद्ध गुण को - सभी गुणों के प्रकट हो सकने लायक लोक सहित स्वयं की प्राप्ति अप्राप्ति की अवस्थाओं को चिंतन-मनन करने के समान - वैसे ही धर्म गुणों को भी सभी गुणों के प्रकट हो सकने लायक बहुमूल्य अवस्था प्रकट होने योग्य - अरे... सर्वज्ञ हमारे शास्ता - बुद्ध द्वारा आख्यात श्रेष्ठ धर्म - मिथ्या दृष्टि वाले आचार्यों के द्वारा देशित धर्मो जैसा दुरक्खात नहीं है। दु:क्खकारी नहीं है। अरे... यह तो सचमुच में ऋजु है। सभी दुक्खों को नष्ट कर सुख उत्पन्न करने वाला है रे। इसीलिये वह स्वाक्खात धर्म कहलाने योग्य - अत्यंत ऋजु और उत्तम है।

१. "स्वाक्खातो वत सो धम्मो भगवतो" - भगवान बुद्ध उन तीन व छः उत्तम धर्मों को सुन्दरता से आख्यात किया है। सुआख्यात धर्म कहलाने योग्य अत्यंत ऋजु सत्य उत्तम धर्म है रे। अत्यंत साधु है रे! बड़ा आश्चर्यजनक है रे। मिथ्या दृष्टि वादियों से तुलना करके भी

पृष्ठ– ५३५

यहां स्मरण कर इसकी श्रेष्ठता को स्मरण करें। याद करें। सति रखें।

२. शिष्यो, शेष सन्दिट्ठिक इत्यादि गुणों को भी शिष्यों, कोई भी धर्म जब उसे साक्षात करते हैं तब लाभकारी होता है। सुख एवं अच्छे फल को उत्पन्न कर सकता है। यह धर्म साक्षात करने के लिए उपयुत्त सन्दिट्ठिक धर्म ही है।

३. इसी तरह यह धर्म बाद में नहीं अभी और यहीं फल देने वाला, लाभकारी धर्म है। अतः **अकालिक धर्म** है।

४. यह धर्म दूसरे किसी से भी करवाया जाय तो लाभ होता है। यह उसको सुख देने वाला लाभकारी ही होगा। लाभ ही देखा। "आओ करके देखो" इस तरह प्रोत्साहित

करने योग्य है। यदि कोई विनम्रता से बुलाने पर नहीं करता है तो उसको जोर-जबरदस्ती से करवाने पर भी उसका लाभ ही लाभ होने वाला है रे। जैसे घटिकार ने जबरदस्ती जोतिपाल को भगवान का प्रवचन सुनने के लिए ले गया। उसी तरह धर्म में प्रमाद करने वाले सामणेरों को आओ - बैठो - देखो यह धर्म; इस तरह पीट-धमकाकर कठोरता से तैयार करवाने योग्य है यह धर्म। यह **एहिपस्सिक** धर्म है।

५. संसार-चक्र से, दुक्ख-चक्र से बाहर निकालने वाला - मुक्ति तक ऊपर ही ऊपर पहुंचाने वाला निर्वाण की अवस्था तक पहुंचाने वाला **ओपनेय्यिक** है - यह धर्म। (अथवा) ज्ञान से संयुक्त होकर सिखाते हुए ऊपर उठाने वाला है - यह धर्म। अतः ओपनेय्यिक गुण वाला है।

६. हर प्रज्ञावान - प्रत्येक व्यक्ति - स्वयं अपने चित्त सन्तान में इसको अनुभव कर सकता है। ऐसा है यह पच्चत्तवेदितब्ब गुण। जानने में सरल है। सरलता से प्रकट होता है।

पृष्ठ– ५३६

शिष्यो, बुद्ध द्वारा देशित तीन अथवा छः धर्म श्रेष्ठ गुणों से संपूर्ण जो उपयुक्त है - पात्रता के अनुसार पूरा किया जा सकता है रे। स्वानुभूति पर उतारो। शिष्यों, धर्मो के गुण इन छः के अतिरिक्त असङ्खेय्य हैं। अनत्त हैं। "अप्पमाणो धम्मो"। इस पण्डित वेदनिय ग्रन्थ में पूरा का पूरा धर्म के गुणों का ही वर्णन करते आ रहे हैं। शुद्ध धर्म गुण वर्णन ही तो है। साक्षात कर देखकर - मनन-चिंतन कर विस्मित हो गुणगान करो, प्रशंसा करो। इसके अतिरिक्त अरियमग्गदीपनी ग्रन्थ में भी धर्म के गुणों, उपकारों की देशना है। अनेकों धर्म वंदनाएं मूल पाळि में उद्धृत हैं। अपनी सामर्थ्य भर उनको कंठस्थ करो। उनका अनुस्मरण करो, चिंतन-मनन करो। उन धर्म के गुणों को एक से दो, दो से तीन, जितना अधिक का स्मरण कर सको, गुणगान कर सको उतना ही उत्तम है भाई। अच्छा भी है। शिष्यों, इस तरह स्मरण करने पर प्रीति-प्रमोद उत्पन्न होता है। चित्त ज्ञान अत्यंत निर्मल होता है। ज्ञान तीक्ष्ण होता है। चित्त एकाग्र होता है, स्थिर होता है। उपचार ज्ञान को प्राप्त होता है। यह धम्मानुस्सति कम्मट्ठान भी - धर्म के गुण अत्यंत गहन सूक्ष्म परमत्थ धर्म होकर निमित्त प्राप्ति में सहजता न होने के कारण अप्पना ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता। धम्मानुस्सति भावना को बहुलीकृत करना पूरा हुआ।

३. शिष्यो, **संघानुस्सति** - बुद्ध के शिष्यों के संघ की श्रेष्ठता को - सुप्पटिपन्नता इत्यादि गुणों को, उपकारों को, बार-बार मनन-चिंतन करने वाले सति को कहते हैं। संघानुस्सति की भावना करने का इच्छुक योगी संघ के सुपटिपन्नता इत्यादि नौ (९) गुणों को भलीभांति जानकर - अरे, भगवान के शिष्य और उनका संघ - मिथ्या दृष्टि वाले शिष्य और उनके संघ के समान दुपटिपन्न नहीं है रे। यह तो सुपटिपन्न हैं।

पृष्ठ– ५३७

सम्मापटिपत्त से परिपूर्ण हैं। यदि स्वयं सम्मापटिपत्त न हों, उससे परिपूर्ण न हों तो ऐसी भावना करनी चाहिए - हमारे लिए सम्मापटिपत्त से पूर्ण होना कितना कठिन है। मुश्किल है। पूर्ण कर पाना, कर सकना कठिन है। पूर्णता की बात कौन कहे - सम्मापटिपत्त रास्ते को जानना भी कितना कठिन है। बहुत कठिन है। जानकर वैसा अच्छा बनना कठिन है। यह भगवान का भिक्षु संघ इतना कठिन सम्मापटिपत्त रास्ते को भी भलीभांति जानकर सज्जन बन गये। जानकर सज्जन हो चुके। उस सम्मापटिपत्त से पूर्ण हो सकने लायक हमें भलीभांति प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह अत्यंत कठिन कठोर सम्मापटिपत्त मार्ग को जान सकने वाले - पूर्ण होने योग्य आचरण कर सकने वाले संघ की शक्ति भी बड़ी तीक्ष्ण भारी होती है। बड़ी होती है। इस तरह कठिन, कठोर सम्मापटिपत्त मार्ग को जानने वाले, जानकर उसके अनुसार आचरण करने वाले श्रेष्ठ संघ के लोग श्रद्धा बल, वीरिय बल, सति बल, समाधि बल, पञ्ञा बल आदि शक्तियों, बलों से अत्यंत तीक्ष्ण - महग्गत - विस्मयकारी हैं रे।

"सुप्पटिपन्नो वत भगवतो सावक संघो" भगवान को श्रावक संघ सुप्पटिपन्न है रे। सुप्पटिपन्न पुग्गल कहलाने योग्य सम्मापटिपत्त से भलीभांति परिपूर्ण हैं रे। साधुकार! साधुकार इनको। अरे, आश्चर्यजनक है संघ। ऐसे अनुस्मरण करना चाहिए शेष गुणों को भी इसी तरह इसी विधि को आधार बनाकर अनुस्मरण करना चाहिए।

शिष्यो, यह सुप्पटिपन्न होने योग्य आचरण करने वाले पुग्गल - उजुप्पटिपन्न ञायप्पटिपन्न सामिचिपटिपन्न भी होते हैं। इस सम्मापटिपत्त को ही उजुप्पटिपत्त ञायप्पटिपत्त सामिचिपटिपत्त कहते हैं। इस सम्मापटिपत्त को कैसा आचरण कहते हैं? शिष्यों, सम्मापटिपत्त को इस तरह जाना जाता है :

पृष्ठ – ५३८

"येकेचि भिक्खवे समणा वा ब्रह्मणा वा एवं रूपं अभिञ्ञाय, एवं रूप समुदयं अभिञ्ञाय एवं रूपनिरोधं अभिञ्ञाय एवं रूप निरोधगामिनी पटिपदं अभिञ्ञाय एवं रूपस्स अस्सादं अभिञ्ञाय एवं रूपस्स आदीनवं अभिञ्ञाय एवं रूपस्स निस्सरणं अभिञ्ञाय रूपस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना, ते सुप्पटिपन्ना, ये सुप्पटिपन्ना, ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति। (संयुक्त पालि - सत्तट्ठान कुसल सुत्त का अंश)

"भिक्षुओ, जो भी श्रमण अथवा ब्राह्मण हैं (आनन्द, अनुरुद्ध आदि उपसम्पन्न भिक्षु - कौण्डञ्ञ, सारिपुत्त, मोग्गलान, सभिय, पक्कुसाति, दारुचिरीय आदि परिव्राजक भिक्षु; ऋषि, भिक्षुणी आदि श्रेष्ठ जन –

अथवा श्रद्धापूर्वक इस समण ब्राह्मण से शेष बुद्ध के शिष्य - मनुष्य देव ब्रह्मा सबको समझो –)

इस तरह देशना के अनुसार रूप को ञातपरिञ्ञा से जानकर, इस तरह देशित किये हुए के अनु रूप समुदय को, ञातपरिञ्ञा से जानकर, इस तरह देशित किये

हुए के अनुसार रूप निरोध को, ञातपरिञ्ञा से जानकर; इस तरह देशित किये हुए के अनुसार रूप निरोध गामिनी प्रतिपदा को, ञात परिञ्ञा से जानकर; इस तरह देशित किए के अनुसार रूप के आस्वाद को, ञातपरिञ्ञा से जानकर; इस तरह देशित किये हुए के अनुसार रूप को आदिनव दोष को ञातपरिञ्ञा से जानकर; इस तरह देशित किये हुए के अनुसार रूप के निस्सरण = छुटकारा को ञातपरिञ्ञा से जानकर; रूप का निर्वेदन के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिये, पटिपन्न हैं। आरूढ़ होते हैं।

पृष्ठ – ५३९

वैसा आचरण करने वाले मनुष्य, देव, ब्रह्मा सहित उपसम्पन्न भिक्षु परि व्राजक भिक्षु, ऋषि, भिक्षुणी आदि सज्जन सत्पुरुष लोग सुपटिपन्ना है। भलीभांति आचरण करने वाले पुग्गल लोग ही हैं। (अथवा) सम्मापटिपत्त से पूर्ण सुपटिपन्न पुग्गल ही हैं। जो मनुष्य, देव, ब्रह्मा सहित उन सम्पन्न भिक्षु परिव्राजक भिक्षु आदि भिक्षुणी, साध्वी सत्पुरुष लोग हैं, सज्जन, सन्नारी हैं वे सब सुप्पटिपन्न ही हैं। सम्मापटिपन्न ही हैं। (वे) सम्मापटिपत्त से पूर्ण सज्जन सन्नारी - इस हमारे बुद्ध शासन में दृढ़ खड़ा रहता है। दृढ़ता से खड़े रहने को प्राप्त हो जाता है।"

शिष्यो, इस पालि में समण ब्राह्मण पद को अर्थ देने में, लोक में भिक्षु - उपसम्पन्न परिव्राजक जाति से दो तरह के हैं। उन दोनों में विनयकम्म के आधार पर आठ उपसम्पदा द्वारा पञ्चङ्ग ग्रहण करने वाला पञ्चङ्ग की अवस्था में पहुंचा भिक्षु उपसम्पन्न भिक्षु कहलाता है। उसे उपसम्पन्न समझना। इस तरह आठ उपसम्पदा द्वारा जो पञ्चङ्ग ग्रहण नहीं करता उस भिक्षु को परिव्राजक भिक्षु कहते हैं। उन्हें परिभोज परिव्राजक भिक्षु समझना। सब्बञ्ञु बुद्ध, पच्चेक बुद्ध लोग परिव्राजक भिक्षु होते हैं। पञ्चङ्ग नहीं। भगवान बुद्ध की परिव्रज्या को सुत्तनिपात पालि में आये पब्बज्ज सुत्त से जानो। भगवान के साथ भिक्षु बनकर साथ-साथ रहे - पञ्चवग्गी भिक्षु लोग भी बुद्ध के जैसे ही परिव्राजक भिक्षु ही हैं। बाद में पञ्चङ्ग ग्रहण किये। कोण्डञ्ञ थेर सोतापन्न हो चुकने पर पञ्चङ्ग ग्रहण किये। सारिपुत्र मोग्गलान भी परिव्राजक भिक्षु ही थे। परिव्राजक भिक्षु अवस्था से सोतापन्न हो चुकने के बाद पञ्चङ्ग ग्रहण किये। सभिय, पक्कुसाति भी परिव्राजक भिक्षु ही थे। परिव्राजक भिक्षुणी अवस्था से ही नीचे के मार्ग फलों को प्राप्त कर मरणोपरांत ब्रह्मलोक में पहुंचकर पहुंचते ही अरिहन्त हो गये।

पृष्ठ – ५४०

"अविहं उपपन्नासे विमुत्ता सत्त भिक्खवो" आनन्द द्वारा कहा गया सात भिक्षुओं में से एक थे। इसका अर्थ पीछे दे आये हैं। आयुष्मान दारुचिरीय थेर भी परिव्राजक भिक्षु ही थे। वे चीवर नहीं पहनते थे। काष्ठ को सन (पाट) से बांधकर पहनते थे। दारुचिरीय थेर परिव्राजक भिक्षु की अवस्था से ही अरिहन्त होकर परिनिर्वृत्त हो गये। इसके अतिरिक्त भगवान के जीवनकाल में बहुत सारे परिव्राजक भिक्षु थे। बुद्ध शासन के नहीं रहने पर भी राजा महाजनक, महाबोधि परिव्राजक इत्यादि भिक्षु जो भी हैं वे परिव्राजक ही थे।

लोक में शासन के भीतर, शासन के बाहर हमेशा परिव्राजक भिक्षु रहे हैं। उनसे शून्य नहीं रहा। भगवान के जीवनकाल में बिना भगवान का शिष्य बने - भगवान से प्रतिस्पर्धा करने वाले - शत्रुता करके रहने वाले - बुद्ध सासन तित्थ में बिना शामिल हुए बुद्ध सासन के बाहर अन्य मिच्छादिट्ठि सासन तित्थ में शामिल नहीं होने वाले - अञ्ञतित्थिय परिव्राजक लोग भी थे। शिष्यों, इस उपसम्पन्न परिव्राजक दो तरह के भिक्षुओं में उपसम्पन्न भिक्षु को विनय भिक्षु कहते हैं - उन्हें **विनय भिक्षु** समझना। परिभोज (परिव्राजक) को सुत्त भिक्षु कहते हैं। **सुत्तं भिक्षु** समझना। इस तरह दो तरह के भिक्षुओं को समणसद्दा कहते हैं। इसीलिये समणा वा - उपसम्पन्न भिक्षु, परिव्राजक भिक्षु, मैंने अर्थ दिया।

शिष्यो, ब्राह्मण पद को भी इस ध्यान पर पुरोहित ब्राह्मण अर्थ नहीं किया जा सकता।– **"अणं पापं वाहेतीति ब्राह्मणों, वाहितपापाति ब्राह्मणो"** - इस तरह भगवान के कहे अनुसार भिक्षुओं के अतिरिक्त जो लोग अपने अकुशलों को कुशल जलस्रोत में बहा देने वाले होते थे - वैसे ऋषि (तपस्वी), तपस्विनियां अपने प्राकृतिक वेश-भूषा में ही अर्थात् गृहीवस्त्रों में ही - परिवार का परित्याग कर कुशल आचरण करते - उसका प्रयत्न करते थे - ऐसे सज्जन पुरुष-स्त्रियों को ब्राह्मण ही कहते थे। इसीलिए पुराने श्रेष्ठ आचार्यों ने ऐसे स्थलों पर ब्राह्मण पद का अर्थ सत्पुरुष ही दिया है। अनेकों ग्रन्थों के रचयिता - अत्थधम्म के पारंगत विसुद्धाराम सयाडो ने अपने **छिद्दपिधाननी** ग्रन्थ में ऐसे धर्मोपदेशों के आधार पर **ब्राह्मण** पद को

पृष्ठ– ५४१

"ब्राह्मणा वा = ऋषि परिव्राजक गण" यही अर्थ किया है। अत्यंत उचित है। इन सयाडो के अर्थ में समण कहलाने वाला परिव्राजक भिक्षु को ब्राह्मण पद के भीतर प्रविष्ट कर जो अर्थ दिया है - **"अणं पायं वाहेतीति ब्राह्मणों, वाहित पापाति ब्राह्मणो"** नामक भगवान के विग्रह के समान ही है। भगवान ने तो स्वयं अपने आपको भी– **"अहमस्मि भिक्खवे भिक्खु ब्राह्मणों"** अर्थात् भिक्षुओं, मैं भिक्षु हूं। सत्य है। ब्राह्मण हूं। यह सत्य है - ऐसा कहा है - (इतिवुत्तक पाळि)। इसी तरह धम्मपद में ब्राह्मण वग्ग में, परिव्राजक भिक्षु श्रेष्ठ बुद्ध भी हैं - वही ब्राह्मण भी हैं। इसीलिये परिव्राजक भिक्षु को ब्राह्मण पद में भी संग्रहित कर अर्थ किया जाता है। इसलिये शिष्यों - मैं भी बड़े आचार्यों के किये गये अर्थ के अनुसार ब्राह्मण पद को ऋषि - तपस्विनी अर्थ दिया है। यह समण ब्राह्मण पद का अभिप्राय (निष्कर्ष) हुआ।

उसी तरह शिष्यो, "येहिकेचि भिक्खवे समणा वा ब्राह्मणा वा एवं वेदनं अभिञ्ञाय" इत्यादि से पांचों स्कंधों को देशित किये हैं। इस तरह भगवान के उपदेशानुसार पंच स्कंध को सात स्थानों में उनके द्वारा जानकर उन पांचों स्कंधों में निर्वेद होने के लिये अनासक्त होने के लिए आचरण करने को **सम्मापटिपत्त कहते हैं। सम्मापटिपत्त समझना। इस प्रकार सम्मापटिपत्त से पूर्ण होकर - सुप्पटिपन्न, उजु, ञाय, सामिचि पटिपन्न - पुग्गल - आहुनेय्य पाहुनेय्य इत्यादि पांच लाभ सत्कारों से भी पूर्ण हो सकते हैं। इसीलिये– "चत्तारो च पटिपन्ना,**

चत्तारो च फलेठिता...पे०... एत्थदिन्नं महप्फलं'' के द्वारा और **''सोतापत्ति फल सच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं दत्वा असङ्ख्येय्या, अप्पमेय्या''** इत्यादि द्वारा भी - **दक्खिण विभङ्ग सुत्त आदि में भगवान ने देशित किया है।**

पृष्ठ – ५४२

शिष्यो, आहुनेय्य इत्यादि में बहुत दूर से, बहुत कष्ट एवं कठिनाई से लाकर दान दिये गये वस्तु को **आहुन** वस्तु कहते हैं। चारों दिशाओं से आने वाले, स्नेह करने वाले मित्र अतिथियों को लक्ष्य कर रखा गया श्रेष्ठ उपहार दान वस्तु को **पाहुन** दान कहते हैं। कम्म - कम्म के फल में विश्वास कर आगामी संसरण में उत्तम लाभ की कामना कर कोई भी वस्तु चाहे छुद्रतम पुष्प ही क्यों न हो - दिये जाने उस दान को **दक्खिण** दान (दक्षिणा) कहते हैं। शिष्यों, इन तीनों दान को सामान्य पुग्गल लोग ग्रहण कर, उपयोग कर, दान दाता का चित्त संतुष्ट या सुखी नहीं हो सकता। सामान्य पुग्गल लोग दान पाने के अधिकारी नहीं होते। इस तरह केवल सम्मापटिपत्त से परिपूर्ण पुग्गल लोग ही महान असङ्ख्येय्य लाभ को उत्पन्न कर सकने के कारण दान प्राप्त कर उपयोग करने के अधिकारी हैं। दान दाता भी मन में संतोष सुख प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा प्राप्त हो सकता है। मुदित हो सकता है। इसलिये इस सम्मापटिपन्न से पूर्ण पुग्गल - आहुन दान को प्राप्त करने योग्य आहुनेय्य; पाहुन दान को प्राप्त करने योग्य पाहुनेय्य; दक्खिण दान को प्राप्त करने योग्य दक्खिणेय्य पुग्गल हो सकते हैं। संतान - पुत्र-पुत्री द्वारा दिया दान - आहुनेय्य-पाहुनेय्य दोनों दान वस्तु सम्मापटिपत्त से पूर्ण नहीं होने पर भी माता-पिता ग्रहण करने के योग्य अधिकारी होते हैं। माता-पिता अपनी संतान के प्रति आहुनेय्य-पाहुनेय्य गुणों से परिपूर्ण होते हैं। वे आहुनेय्य पुग्गल, पाहुनेय्य पुग्गल होते हैं। इसीलिये भगवान ने ''अहुनेय्यो च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका'' आदि द्वारा इतिवुत्तक पाळि में देशित किया है। फिर भी यदि वे माता-पिता विसाखा, अनाथपिण्डिक आदि लोगों के समान सम्मापटित्त से परिपूर्ण सुप्पटिपन्न पुग्गल हों तो अपनी संतान सहित सभी लोगों के दक्खिण (दक्षिणा) को भी ग्रहण करने योग्य होते हैं। वे दक्खिणेय्य पुग्गल भी होते हैं। सम्मापटिपत्त से पूर्ण न होने पर दक्खिणेय्य पुग्गल नहीं हो सकते।

शिष्यो, यह आहुनेय्य आदि पुग्गल होना सम्मापटिपत्त की शक्ति सामर्थ्य ही है। पटिपत्ति, पटिवेध धर्मों का गुण - उसकी शक्ति सामर्थ्य की महानता की जांच कर लो। इसलिए शिष्यों,

पृष्ठ – ५४३

तुम लोग सुप्पटिपन्न पुग्गल इत्यादि हो सकने के लिये - जैसा कि मैं पीछे समझा आया वैसे - पांच स्कंधों को धातु द्वारा सम्मापटिपत्त विधि - विपश्यना को विस्तारपूर्वक भलीभांति देशित कर चुका - उसे अनुभूति पर उतारो, आचरित करो - सुप्पटिपन्न इत्यादि पुग्गल होओ। सुपटिपन्नता इत्यादि गुणों से परिपूर्ण होओ। इस तरह उन गुणों के पूर्ण हो चुका पुग्गल भगवान का शिष्य, आर्य संघ के गुणों को अभी जैसा कि मैं देशित

किया उसके अनुसार - मिच्छादिट्ठि संघ से तुलना कर-करके अपने स्वयं से भी तुलना कर-करके बार-बार मनन-चिंतन करो। फिर विस्मित होकर आश्चर्य चकित होकर प्रशंसा करो। भगवान के आर्य संघ में इन नौ गुणों के अतिरिक्त अनेकों गुण उपकार भरे पड़े हैं। "अप्पमाणो संघो" के अनुसार असंख्येय्य अनन्त है। उन गुणों को देशित करने वाला संघ वेदना सुत्त - अरियमग्ग दीपनी में मैंने पर्याप्त संख्या में उद्धृत किया है। सामर्थ्य हो तो उन्हें कंठस्थ करो। विचार कर मनन करो। आर्य संघ के एक गुण से दो, दो से तीन इत्यादि से अधिकाधिक जानते जायेंगे, मनन-चिंतन करते जायेंगे, तो एक से बढ़कर एक लाभ बढ़ता ही जावेगा। उत्तरोत्तर उत्तम ही होगा। शिष्यों, उस अरियमग्ग दीपनी ग्रन्थ में धर्म के छः गुण संघ का नौ गुण पाळि के भावार्थों को भी - अभी इस ग्रन्थ में बताये धर्म के गुणों, संघगुणों के अभिप्रायों - भावार्थों से मेल खाने लायक संतुलित कर भी अर्थ देते जाना।

शिष्यो, इस तरह आर्य संघ के गुणों को मनन करते हुए चिंतन करते हुए प्रीति-प्रमोद उत्पन्न होता है। चित्तञाण अत्यंत निर्मल होता है। अत्यंत तीक्ष्ण होता है। अत्यंत स्थिर होता है। उपचार झान को प्राप्त होता है। यह संघानुस्सति कम्मट्ठान भी - संघ गुण भी अत्यंत गहन सूक्ष्म परमत्थ धम्म होकर निमित्त प्राप्ति में सहज नहीं होने के कारण अप्पना ध्यान को उत्पन्न नहीं करते। संघानुस्सति भावनापूर्ण हुआ।

४. शिष्यो, **सीलानुस्सति** - अपने पालित सील का बारम्बार चिंतन-मनन कर ले, विचार करने वाले सति को कहते हैं। सजगता को कहते हैं।

पृष्ठ – ५४४

शिष्यो, चाहे गृहस्थों का गहट्ठसील हो, चाहे भिक्षुओं का पब्बजितसील ही क्यों न हो यदि आदि में, मध्य में या अंत में कहीं से भी खण्डित होता है तो वह फटे हुए, खोंच लगे वस्त्र के समान खण्डित सील ही कहलाता है। यदि मध्य का कोई शील खण्डित हो गया तो समझो कि धोती बीच में जल गयी। जलकर छेद हो गया। क्रमशः एक के बाद दूसरा - बीच-बीच में छोड़कर खण्डित शील को चितकबरी गाय के समान धब्बेदार शील कहते हैं। दो-तीन से अधिक शील खण्डित होने पर रंग-बिरंगी मिश्रित धब्बे वाली गाय के समान - बदरंग शील कहते हैं।

शिष्यो, उन सीलानुस्सति की भावना करने का इच्छुक योगी अपने सुरक्षित शील को अपने द्वारा पालित शील को इस तरह बिना खण्डित किये, बिना धब्बा लगाये, बिना बदरंग किये, पालन करते हुए, संरक्षण करते हुए, उन अपने द्वारा पालित शील को ही स्वयं विचार करे, मनन-चिंतन करे - अरे - मेरा शील अखण्ड है। धब्बा रहित है रे। परिपूर्ण है - निर्मल है। अत्यंत उत्तम है। भव संसरणावर्त्त से मुक्त करने के लिए निकट का कारण है। तृष्णा के दासत्व की अवस्था से मुक्त करने का कारण है। दूसरे, इस मेरे शील में कोई खोट नहीं निकाल सकते हैं इतना परिशुद्ध-धवल मेरा शील है। बुद्धों प्रज्ञावानों के प्रशंसा को पाने योग्य है। चित्त की स्थिरता समाधि को उत्पन्न कर सकने

वाला दोष रहित (खोट रहित) धवल है मेरा शील। बहुत उत्तम है रे - मेरा शील। इस तरह अपने शील का बार-बार निरीक्षण करता है - उसका मनन-चिंतन करता है। ऐसे बार-बार मनन-चिंतन करना होता है। ऐसा मनन-चिंतन करते हुए प्रीति-प्रमोद उत्पन्न होता है। चित्त ञाण अत्यंत तीक्ष्ण होता है। निर्मल होता है। स्थिर होता है। उपचार झान को प्राप्त होता है। यह सीलानुस्सति कम्मट्ठान भी सील गुण उपकारों का अत्यंत गहन सूक्ष्म (परमत्थधम्म) होकर - निमित्त प्राप्ति का धर्म नहीं होने के कारण अप्पना झान को उत्पन्न नहीं कर सकता। सीलनुस्सति पूरा हुआ।

पृष्ठ – ५४५

५. **चागानुस्सति** - बिना पछतावा व कंजूसी किये शुद्ध श्रद्धा से दान दिया हुआ - अपने दान-त्याग के गुण उपकार को बार-बार मनन-चिंतन करने स्मरण करने वाली जागरूकता या सति को कहते हैं। इस चागानुस्सति की भावना करने का इच्छुक योगी धर्मपूर्वक प्राप्त दान की वस्तु को गुण उपकार को किसी श्रेष्ठ पुग्गल को दान देने के पूर्व, दान देते समय, दान देने के पश्चात तीन क्षणों में चित्त को प्रसन्नतापूर्वक, प्रीति-प्रमोदपूर्वक, श्रद्धापूर्वक दान कर इस दान देने वाले चित्त की चेतना को उसकी स्वच्छ अवस्था को, निमित्त को ग्रहण कर - अरे... मैं बिना मात्सर्य के - मात्सर्य रहित होकर भलीभांति दान दिया। कितना उत्तम किया रे। मैं जहां भी जिस भव में जन्म पाऊं - दीर्घायु, सुवर्ण, सुखी, बलवान, प्रज्ञावान इत्यादि लाभों को प्राप्त होऊं। मैं मनुष्य जीवन प्राप्त होने का लाभ पाऊं। मैं भव संसरण से मुक्त होने का कृत्य किया। अहो साधुवत। कितना अच्छा हुआ। इस तरह बार-बार विचार करने पर प्रीति-प्रमोद होता है। इस तरह बार-बार विचार करने पर प्रीति-प्रमोद होता है। चित्त ज्ञान निर्मल होता है। स्थिर होता है। उपचार झान प्राप्त होता है। यह चागानुस्सति कम्मट्ठान भी दान (त्याग) गुणों उपकारों का गहन, सूक्ष्म होकर, निमित्त प्राप्त हो सकने वाला धर्म नहीं होने के कारण अप्पना झान को उत्पन्न नहीं कर सकता। चागानुस्सति पूर्ण हुआ।

६. **देवतानुस्सति** – देवताओं को साक्षी रखकर देवताओं को प्रतिस्पर्धी-सा मानकर अपने भीतर स्थित - (अथवा) दोनों में स्थित श्रद्धा आदि का उत्तम जनों का सम्पत्ति धर्मो को आश्रित होकर प्रसन्नतापूर्वक अनुस्मरण करने वाली सति को कहते हैं। उस देवतानुस्सति की भावना को करने के इच्छुक योगी पुग्गल - ओ... ऊपर आकाश पर - चतुमहाराज देवगण, तावतिंसा, यामा, तुस्सित, निम्मनरति, परनिम्मितवसवत्ती आदि देवता गण वास करते हैं। उसके ऊपर भी पठम झान ब्रह्मा, दुतिय झान ब्रह्मा इत्यादि ब्रह्मा गण वास करते हैं। वे देवता ब्रह्मा गण अत्यंत प्रभावशाली होते हैं।

पृष्ठ – ५४६

वे ब्रह्मा - देवता गण इस मनुष्य लोक में रहते समय सद्धा, सील, सुत, चाग, पञ्ञा, हिरी, ओत्तप्प नामक सत्पुरुषों का - (अथवा) सद्धा, सति, हिरी, ओत्तप्प, बुद्धस्सच्च वीरिय पञ्ञा नामक सत्पुरुषों के सात धर्मों से पूर्ण होने के कारण इस मनुष्य लोक से

जब च्युत हुए तब उस देवलोक में उत्पन्न हुए। मैं भी उन देव ब्रह्माओं की अवस्था को देने वाले सद्धा, सील, सुत, चाग, पञ्ञा, हिरी, ओत्तप्प नामक बहुमूल्य संपत्ति सत्पुरुषों की सम्पत्ति को प्राप्त करूं। (वा) सद्धा सति हिरी ओत्तप्प, बाहुस्सच्च वीरिय पञ्ञा नामक बहुमूल्य सत्पुरुषों के धर्मों को हासिल करूं। उन्हें हासिल करना चाहिए। वह बहुमूल्य धन-सम्पत्ति प्राप्त करना कितना अच्छा है। अहो साधु! बहुत उत्तम है। अच्छा है। इस प्रकार बार-बार मनन-चिंतन करना चाहिए। इस तरह मनन-चिंतन करने में बड़ी बात होती है। बहुत प्रीति-प्रमोद उत्पन्न होता है। चित्त स्थिर होता है। उपचार ध्यान की प्राप्ति होती है। यह देवतानुस्सति कम्मट्ठान भी सद्धा आदि धर्म अति गहन सूक्ष्म धर्म होकर निमित्त प्राप्ति वाला धर्म नहीं होने के कारण अप्पना झान को उत्पन्न नहीं कर सकता। देवतानुस्सति भावना पूरा हुआ।

७. **उपसमानुस्सति** - निर्वाण के गुणों को बारम्बार स्मरण करने वाली सति (जागरूकता) को कहते हैं। इसकी भावना करने के इच्छुक योगी पीछे 'निब्बान कित्तन पब्ब', 'निब्बान पवेसन पब्ब' को जैसे बता आया उसी तरह निर्वाण को; उसके गुणों को जानकर बार-बार हृदयंगम करे। बार-बार विचार करे। मनन करे। स्मरण करे। इस तरह स्मरण करने पर चित्त ञाण निर्मल हो जाता है। ञाण विशद होता है। चित्त शांत, स्थिर होता है। उपचार झान को प्राप्त होता है। यह उपसमानुस्सति कम्मट्ठान भी निर्वाण के गुण उपकार अत्यंत गहन सूक्ष्म होने से निमित्त ग्रहण करने योग्य धर्म नहीं होने के कारण अप्पना झान उत्पन्न नहीं कर सकता। उपसमानुस्सति समाप्त हुआ।

८. **मरणानुस्सति** – मरण को बार-बार स्मरण करने वाली सति जागरूकता को कहते हैं। उस मरणानुस्सति की भावना को करने का इच्छुक योगी

पृष्ठ – ५४७

इस प्रकार मनन करता है। विचार करता है। ओ... मैं मरण धर्मा हूं। मृत्यु का अतिक्रमण नहीं कर सकता। निश्चित ही मरना होगा। मृत्यु अवश्यंभावी है। इस लोक में मृत्यु के अनेकों कारण हैं। हाथी से कुचला जाकर भी मर सकते हैं। बाघ, रीछ, सर्प के खाने-डंसने से भी मरण हो सकता है। कानखजूरा के काटने पर, मकड़ी के काटने से, कंटक के धंसने से, पेड़ पर से गिरने से, प्रपात से गिरने से, पर्वत पर से लुढ़क कर, कुंए में गिरने से, पानी में डूबकर, आग से जलकर भी मरण हो सकता है। चोर के मार डालने से, डाकू के हत्या कर देने से, राजा के मार डालने से, घृणा करने वाले शत्रु के मारने से भी मर सकते हैं। भूत-प्रेत, देव, यक्ष, जमीन के भूत-यक्ष, ओझा-डायन के प्रयोग के पकड़ में आने से भी मर सकते हैं। काया के भीतरी अस्सी कीड़ों के कुपित होकर भड़क उठने पर पीड़ा से व्यग्र होकर भी मर सकते हैं। अपच से या अनुपयुक्त आहार लेने से भी; जहर खा लेने से भी, मर सकते हैं। किसी प्रकार की बिमारी-व्याधि के होने से भी मर सकते हैं। चार महाभूतों का संतुलन बिगड़ जाने पर भी मर सकते हैं। वात, पित्त, कफ के कुपित हो जाने पर भी मर ही सकते हैं।

अरे भाई किसी भी कारण से मैं क्षण मात्र में मर ही सकता हूं - मरना ही पड़ सकता है। यदि अभी-अभी वायु कुपित हो जाय तो यकृत, हृदय आदि उच्छिन्न हो स्वस्थ स्वाभाविक मनुष्य क्षण मात्र में मर ही जावेगा। वेरम्भ वायु के कुपित हो जाने पर स्वस्थ मनुष्य क्षण मात्र में मर ही जावेगा। सिर पर बैठे-बैठाये बिजली ही गिर पड़ी - तो स्वाभाविक स्वस्थ व्यक्ति भी क्षण मात्र में ही मर ही जावेगा।

प्राणियों (सत्तवों) का जीवन कम्म के कारण उत्पन्न हुआ है। यदि उपरोक्त उपद्रवों से नहीं मरता है तो कर्म के पूरा हो जाने पर जीवन उच्छिन्न होकर मर ही जाते हैं। कम्म बल अच्छा है तो जीवन लम्बा, निर्बल होने पर आयु छोटी होती है। किसी की भी आयु क्यों न हो - इसका कर्म बल कितना सबल है, कितना निर्बल है - यह भी नहीं जान सकते। ओ हो... मेरा कर्म कितना सबल

पृष्ठ – ५४८

है - तो मेरी आयु उत्तरोत्तर कितनी लम्बी होगी - नहीं जान सकते। इसके उपरांत हमारी आयु को काल (समय) भी खाते चल रहा है। एक रात पूरा हो गया तो मेरी आयु का कुछ अंश समाप्त ही तो हो गया। दो रात पूरा हुआ तो दो अंश घट गया - इस तरह अंश-दर-अंश समाप्त होते जा रहा है। खाते जा रहा है काल - समय। मेरी आयु छोटी-ही-छोटी होती जाती है। मैं दिन-प्रतिदिन मृत्युराज के निकट-ही-निकट चले जा रहा हूं।

ओ... यदि मेरी आयु को उत्पन्न किया कम्म यदि आज ही रात को सोते समय पूरा हो जाय - तो फिर उस रात सोये-सोये मेरी आयु समाप्त... दूसरे दिन जाग भी नहीं पाऊंगा। यदि बैठे हुए हूं। उसी क्षण कम्म पूरा हो गया। उस बैठे हुए क्षण में ही आयु समाप्त! अब इस बैठने से पुनः उठना नहीं हो सकेगा। यदि खड़े रहते हुए क्षण में, कर्म समाप्त। अब उस खड़े से पुनः चलने की नौबत नहीं आने वाली है। यदि चल रहे हैं - अभी पहला कदम ही उठाया। उसी क्षण में कम्म समाप्त हो गया। तो उस प्रथम कदम में ही आयु समाप्त होकर - पुनः दूसरे कदम को नहीं उठा पायेंगे। यदि मुंह में कौर तोड़कर डाले हैं - चिगल रहे हैं तब ही कम्म समाप्त हो गया। उस चबाते हुए क्षण में ही आयु समाप्त - मृत्यु को प्राप्त होकर चबाये हुए कौर को निगल भी नहीं पायेंगे। यदि चबाया हुआ भोजन निगलते समय कम्म समाप्त हो गया, उस निगलते समय में आयु पूरी हो गई - मृत्यु आ गयी - पुनः कौर को तोड़कर मुंह में नहीं डाल पायेंगे। यदि बाहर गये हुए सांस के समय कम्म समाप्त हो गया, तो वह बाहर गये हुए सांस के समय ही मर जायेंगे। पुनः आश्वास की नौबत नहीं आयेगी। आश्वास के समय ही यदि कम्म समाप्त हो गया - आयु पूरी हुई - मर गये - पुनः प्रश्वास करने वाला प्रश्वास के लिये बचेगा ही नहीं। इस प्रकार बार-बार हृदयंगम करता है - स्मरण करता है।

इस तरह बारम्बार चिंतन-मनन करने वाले योगी को अपना मरण, अपनी मृत्यु

दिखती है। उसे बहुत निकट लगती है। मरने की कल्पना से हताश हृदय हो - भयभीत होता है - कांप भी सकता है

पृष्ठ – ५४९

कैसी अवस्था नहीं होने के लिये उसे इस तरह भी चिंतन करना होगा।

न खो अहञ्ञेवेको मरणधम्मो, मरणं अनतीतो, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बे सत्ता मरणधम्मा, मरणं अनतीता। (पञ्चङ्गुत्तर पाळि - अभिण्ह सुत्त का अंश)

केवल मैं ही अकेले मरण धर्मा हूं, मरण को अतिक्रमण नहीं कर सकता ऐसा नहीं। वस्तुतः सत्तव मात्र, प्राणि मात्र जो आगत, गत, च्युत तथा उत्पन्न हैं - वे सभी प्राणी मरणधर्मा हैं। मृत्यु को अतिक्रमण नहीं कर सके। मरणधर्मा ही हैं। इस तरह भी चिंतन करें।

शिष्यो, भगवान के जीवनकाल में मरणानुस्सति भावना का अभ्यास करने वाले आठ भिक्षुओं का वर्णन अङ्गुत्तर पाळि में आया है। उन आठों में इस प्रकार प्रकट होता था –

(१) पहले को प्रकट होता था कि एक दिन एक रात लंबी आयु तक रहना है।

(२) दूसरे को प्रकट होता था कि केवल एक दिन भर का जीवन है।

(३) तीसरे को - आधे दिन भर का।

(४) चौथे को - एक बार भर पेट भोजन खाने भर का जीवन है।

(५) पांचवे को - एक बार के भोजन का आधा भोजन करने भर का जीवन है।

(६) छठवें को - चार-पांच कौर तोड़ सकने भर का जीवन है।

पृष्ठ – ५५०

(७) सातवें को - एक कौर चबाकर निगलने भर - एक कौर खाने भर का ही जीवन है।

(८) आठवे को - प्रश्वास के समय भर ही यह जीवन लंबा है। बस उतने समय तक ही रह सकेंगे ऐसा अनुभव करता है। पुनः दूसरा सांस ले सकेंगे यह नहीं लगता। जब आश्वास हो रहा होता है तब भी प्रवेश करते समय तक ही जीना हो सकेगा - ऐसा समझता है। पुनः प्रश्वास करने को मिलेगा कि नहीं - नहीं कहा जा सकता। इस तरह छोटा-से-छोटा जीवन अनुभव कर देखता है।

शिष्यो, इन आठ भिक्षुओं में पहले के छः को मरणस्सति की अनुभूति स्थूल तथा

भूल-भूल जाने वाली है। बाद के दोनों को तीव्र अनुभूति है। सजगता बिना विस्मृति की है। ऐसा भगवान ने कहा। इसलिए शिष्यो, तुम लोग भी उन भिक्षुओं के तरह अनुभव कर सकने लायक अभी जैसा कि देशित कर चुका वैसे बार-बार स्मरण करो। नेक्खमविधानदीपनी ग्रन्थ के मरणस्सति खण्ड, सिस्सानुसासनी खण्ड में भी मरणस्सति को चिंतन-मनन करने की गाथाएं बहुत हैं। संभव हो सके तो कंठस्थ करो। चिंतन करो। उस तरह चिंतन-मनन कर उन आठों भिक्षुओं में से प्रथम भिक्षु के बराबर भी यदि चिंतन कर सके तो ढेरों उपकार हो गया। बहुमूल्य हो गया। कम-से-कम, छोटी-से-छोटी आयु तक अनुभव कर सकने योग्य चिन्तन-मनन करो। उस तरह कम करते हुए अनुभव करने के लिये कम्म द्वारा विचार करना होगा। यदि कम्म द्वारा चिंतन-मनन करोगे तो अंतिम आठवें अप्पमादविहारी भिक्षु के समान केवल एक आश्वास भर या केवल प्रश्वास भर का लघुतम आयु अनुभव हो जावेगा।

शिष्यो, इस प्रकार संपूर्ण लोक सहित हमें मरना होगा। इसको बारम्बार भावना-विचार करने वाला योगी अपनी बुद्धि, अपने ज्ञान के अनुसार - मरण को लघुकाल बराबर अनुभव करता है। इस तरह अनुभव का मरणसञ्ञा मरणस्सति में अगर स्थित हो जाता हैं तो उसका चित्त ञाण अत्यंत निर्मल हो जाता है। विशद, तीक्ष्ण हो जाता है। मरण धर्म में चित्त चिपककर स्थिर हो जाता है। उपचार ज्ञान को प्राप्त करता है। यह मरणानुस्सति कम्मट्ठान भी

पृष्ठ– ५५१

जीवितिन्द्रिय का निरोध अत्यंत गहन सूक्ष्म स्वभाव होकर निमित्त प्राप्त होने वाला धर्म नहीं होने के कारण अप्पना ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता। मरणानुस्सति पूरा हुआ।

९. **कायगता सति** - केश, लोम, नख, यकृत, दांत इत्यादि बत्तीस (३२) कोट्ठास काय को आलम्बन बनाकर उत्पन्न होने वाली सति (जागरूकता) को कहते हैं। कायगता सति को बहुलीकृत करने का इच्छुक योगी पुग्गल पीछे सुत्तन्त सुञ्ञत खण्ड में देशित बीस पथवीधातु, बारह आपोधातु, द्वत्तिंसाकारों को आकृति, स्थिति स्थान, परिच्छेद इन चार अवस्थाओं द्वारा स्मरण कर केश से प्रारम्भ कर मुत्त (मूत्र) तक, मूत्र से वापस केश तक - अनुलोम प्रतिलोम द्वारा बिना रुके कंठस्थ कर, कंठस्थ हो जाने पर बिना मुंह से बोले (पाठ किये) चित्त द्वारा ही अनुलोम-प्रतिलोम लगातार बार-बार निरीक्षण करना होता है। देखना होता है। उस तरह बार-बार देखने पर वे कोट्ठास प्राकृतिक चर्म चक्षु से देखने के समान चित्त के भीतर, ज्ञान के भीतर अनुभूति के स्तर पर दिखने लगते हैं। अनुभूति को देखना नहीं समझना चाहिए शिष्यों। इस तरह अनुभव करने पर उग्गह निमित्त प्रकट हुआ यह जानो। इस तरह उग्गह निमित्त प्रकट होने पर उन ओट्ठासों में दृढ़ता से प्रकट चित्त में दृढ़ता से अनुभूत कोट्ठास एक ही है - इसे देखकर रहना होता है। उस तरह देखने ध्यान करने में भी उस कोट्ठास को कसिण होने के लिए रंग को

भी बिन मन में किये - सुञ्ञत होने के लिये धातु को भी मन में विना किये - घृणास्पद, जुगुप्सु के समान ही मन में करके देखना होता है। ध्यान करना होता है। यदि जुगुप्सु, असुभ भाव मन में न आ सके तो - रूप आकृति की अवस्था, घृणित आहार - पित्त, परवान, मूत्र के कारण माता-पिता के डिम्ब (उतु) शुक्राणु के कारण उत्पत्ति - घृणित-गंदी-दुर्गंध इन चार कारणों से जुगुप्सा का भाव आवश्यक रूप से उत्पन्न होने तक विचार कर मन में करना होता है - देखना होता है। इस तरह विचार करने पर, स्मरण करने पर जुगुप्सु का भाव - अवस्था उत्पन्न होने लगेगा। वैसे उत्पन्न होकर उस जुगुप्सु की अवस्था को बार-बार मन में कर - बार-बार देखने पर वह कोट्ठास उग्गह निमित्त सुन्दर प्रिय

पृष्ठ – ५५२

पटिभाग निमित्त उत्पन्न होकर प्रकट होगा। उस कोट्ठास पटिभाग निमित्त को घृणित के समान मन में रखे हुए बार-बार निरीक्षण करते रहने पर पांच ध्यान के अंग से परिपूर्ण प्रथम ध्यान अप्पना जवन वीथि पात होता है। प्रथम ध्यान प्राप्त होता है। उस पठम झान को तीक्ष्ण बहुलीकृत स्थिर होने के लिये 'वसी' करना होता है। वश में करना होता है। वैसे करने पर ही इसी तरह शेष कोट्ठासों को भी एक से एक क्रमवार लगे हुए निमित्त ग्रहण कर प्रथम ध्यान जवन को पात होने देते हैं। यह कायगता सति कम्मट्ठान भी असुभ कम्मट्ठान के समान आलम्बन रूक्ष होने के कारण ऊपर के द्वितीय ध्यान को उत्पन्न नहीं होने देता। इस प्रकार कायगता सति कम्मट्ठान कोट्ठास असुभ आलम्बन से प्रथम ध्यान को प्राप्त कर तीक्ष्ण बलवान स्थिर होने योग्य 'वसी' कर लेने पर योगी पुग्गल ऊपर के दुतिय झान आदि को जब उत्पन्न करना चाहे तब उन कोट्ठासों को - रंगों को मन में कर - वण्ण कसिण को उत्पन्न कर, देखकर, बढ़ता है। मग्ग फल को प्राप्त करना होता है तो पीछे जैसे बता आया उसी तरह धातु सुञ्ञत अवस्था का ध्यान करते हुए बढ़ना होता है। कायगता सति पूरा हुआ।

आनापानस्सति भावना करने का वर्णन

१०. आनापानस्सति आश्वास-प्रश्वास को आलम्बन बनाकर उत्पन्न सति को कहते हैं। उस आनापानस्सति की भावना करने का इच्छुक योगी चित्त को दृढ़ रखकर आश्वास-प्रश्वास को न धीरे - न तेज, न छिछला - न गहरा सामान्य रूप से एक समान सोते हुए अपनी नासिका द्वारों पर - चित्त को रखे हुए - उन बाहर जाते भीतर आते हुए सांसों को एक-दो इत्यादि से गिनता नहीं, बिना गिनती किये मात्र बाहर जाते हुए सांस को केवल बाहर जाता हुआ जानना होता है। समझना होता है। बिना जानकारी में ही सांस न जाने पावे। सति सञ्ञा द्वारा जानते हुए हमारी जानकारी में ही बाहर जावे। पुनः भीतर आता हुआ सांस - भी उसी तरह भीतर आ रहा है - यह जानते हुए आवे - यह जानकारी बनी रहे। जानते रहना होता है। अनजाने में बिना जानकारी के भीतर आने न पावे। सति सञ्ञा द्वारा जानते हुए जागरूकता में ही अन्दर जाने

देवें। इस तरह करना होगा - इसे बताने के लिए भगवान ने महासतिपट्ठान सुत्त इत्यादि में देशित किया :–

"सो सतोव अस्ससति, सतोव पस्ससति"

भिक्षुओ, आनापान का अभ्यास करने वाला आदिकम्मिक योगी 'सति' रखते हुए ही - सति सञ्ञा द्वारा जानते हुए ही आश्वास करता है, सांस लेता है। 'सति' रखते हुए ही - सति सञ्ञा द्वारा जानते हुए ही सांस निकालता है। प्रश्वास करता है।

"सेय्यथापि भिक्खवे दक्खो भमकारो वा"

इस उदाहरण का यहां वर्णन है। (छोड़ा)

पाप वितक्क, थिनमिद्ध अन्तराय आवेगा। अपने आपको आनापानस्सति के अभ्यास में लगाये रखोगे। धीरे-धीरे यह अन्तराय हट जावेंगे। चित्त निर्मल व हल्का हो जावेगा। जब इस तरह अभ्यास की निरन्तरता बनाये रखोगे तब पाप वितक्क थिनमिद्ध अन्तराय रहित हो जाने पर–

"पस्सम्भयं कायसङ्खार" की देशना के अनुसार बिना धीरे, बिना तेज, बिना छिछला, बिना गहरा - सामान्य आश्वास-प्रश्वास करते रहना होता है।

पृष्ठ– ५५४

यहां सुतार का आरा खींचने और लकड़ी चीरने का उदाहरण दिया है। इस तरह आनापान सति की विधि का वर्णन कर कहा है कि– जागरूक रहकर आते-जाते सांस को जानना है। उसे जानते हुए वायु कसिण में जैसे निमित्त ग्रहण किया उसी तरह चित्त में ञाण में अनुभव करते हुए - प्रकट होने तक अभ्यास करते हुए देखना होता है। देखते हुए निमित्त ग्रहण करना होता है। शिष्यों, इस आनापान निमित्त प्राप्त होने के लिए अभ्यास ग्रहण करने को बिना जाने जैसे करना है वैसे करना नहीं जानने वाले के लिये यह बहुत कठिन है। समझकर उसके विधि के अनुसार कर सकने वाले के लिये अत्यंत सरल होता है।

शिष्यो, इस तरह बारम्बार अभ्यास करते हुए नासिका के भीतर में सीधी लटकी रस्सी के तरह, छड़ी के समान, तारा के समान, अंगारे के जैसा, धूम्र के समान, पानी के बूंद के समान - इस तरह अपनी-अपनी सञ्ञा के समान गतिशील आनापान उग्गह निमित्त प्रकट होता है। शिष्यों, यह आता-जाता सांस चित्तज वायु धातु ही है। पीछे अभिधम्म सुञ्ञत विधि में देशित वायु धातु के स्वभाव को जानते रखना। इस तरह वायु धातु स्वभाव को जानने वाले व्यक्ति को यह आनापान निमित्त धुआं के समान, जल के समान प्रकट होता है। शीघ्रता से सरलतापूर्वक प्रकट होता है। शिष्यो,

पृष्ठ ५५५

इस तरह उग्गह निमित्त प्राप्त हो जाने पर अव उस आते-जाते श्वास को विना देखे केवल उस प्रकट हुए निमित्त को ही, चित्त में, ञाण में जो उग्गह निमित्त प्रकट हुआ है केवल उसी को ही बार-बार देखते रहना होता है। इस तरह बार-बार देखते हुए रहने पर अत्यंत सुन्दर, प्रिय, शांत पटिभाग निमित्त उत्पन्न होकर प्रकट होता है। उस आनापान पटिभाग निमित्त को बार-बार देखते - अभ्यास करते रहने पर पांच ध्यानांङ्गों से पूर्ण प्रथम ध्यान अप्पना जवन वीथिपात होता है। प्रथम ध्यान प्राप्त होता है। इस पटिभाग निमित्त को ही देखकर कसिण में पीछे बताये विधि के अनुसार ऊपर के झान को भी बढ़ना होता है। उत्पन्न करना होता है। यह आनापान कम्मट्ठान - पांचवे ध्यान तक पांचों ध्यानों को उत्पन्न कर सकता है। आनापानस्सति भावना का अभ्यास करना पूरा हुआ।

शिष्यो, इन दस अनुस्सतियों में से यह आनापानस्सति, कायगता सति यह दोनों - अनवरत (हमेशा) अभ्यास किये जाने वाले कम्मट्ठान हैं। शेष आठ अनुस्सतियों का अभ्यास हमेशा करने के लिये नहीं है। वे सहायक कम्मट्ठान हैं। अप्पना झान को, मार्ग को प्राप्त करवाने, ग्रहण करवाने वाले, हमेशा अभ्यास करने वाले किसी एक कम्मट्ठान के अभ्यास करते समय चित्त ज्ञान निर्मल हो सके, श्रद्धा तीक्ष्ण हो सके, वीरिय तीक्ष्ण हो सके, बल प्राप्त हो सके - इसके लिये कभी-कभी स्मरण करने वाले कम्मट्ठान हैं। इस तरह वे सहायक कम्मट्ठान हैं। ऊपर बताया हुआ - सञ्ञाकम्मट्ठान भी इसी तरह मिल-जुलकर सहायता करने वाले कम्मट्ठान ही हैं। क्यों ? क्योंकि वे झान अप्पना को भी उत्पन्न नहीं कर सकते। मग्ग अप्पना को भी उत्पन्न नहीं कर सकते। वे केवल चित्त ञाण को निर्मल करते हैं। मात्र श्रद्धा वीरिय को तीक्ष्ण करते हैं। मात्र शक्तिशाली बन सकते हैं। इस तरह चित्त निर्मल होकर थोड़ा-सा प्रीति-प्रमोद, शांति, स्थिरता को ही उपचार झान कहलाने वाला, उपचार झान कहलाने वाला अर्थात् अप्पना को उत्पन्न करने वाला कम्मट्ठानों के पटिभाग निमित्त के समय में उत्पन्न उपचार ध्यान जितना शक्तिशाली स्थिर हैं ऐसा भी मत समझना। उग्गह निमित्त के समय में उत्पन्न परिकम्म झान जितना भी बलशाली स्थिर झान अंग भी प्रकट होता हो ऐसा मत समझना।

पृष्ठ – ५५६

तुम्हारे वितर्क, तुम्हारे विचार इत्यादि से पटिभाग निमित्त उपचार झान के तरह अलग-अलग पहचान सकने योग्य प्रत्यक्षतः नहीं प्रकट होता है। अकुशल क्षीण होकर चित्त निर्मल होता है, बलवान होता है - बस इतनी अच्छाई होती है। इसलिये दोनों सञ्ञा सहित वे आठ अनुस्सतियों को उपकार झान को उत्पन्न करता है। प्राप्त करता है यह बिना कहे परिकम्म झान को उत्पन्न कराता है, प्राप्त कराता है - यह भी कहना उचित है। कह सकते हैं। अप्पना झान मार्ग का अभ्यास नहीं कर सकने वाले निम्नप्रकार के भिक्षु, उपोसथ व्रती उस उत्तम कम्मट्ठानों को भी चित्त ञाण निर्मल होने के लिए विशेष कुशल उत्पन्न होने के लिए सतत अभ्यास करना होता है। अप्पना ध्यान का सहायक आधार, मग्ग का सहायक आधार उत्पन्न हो सकते हैं। लाभ फल भी बहुत अधिक होता

है। विशद होता है। उच्च होता है। विशेष रूप से बुद्धानुस्सति बहुत बढ़कर लाभकारी है। विशद व उच्च है। श्रेष्ठ है। धम्मानुस्सति, संघानुस्सतियों सहित (के साथ) यह बुद्धानुस्सति का लाभ, विशदता, उच्चता श्रेष्ठताओं को अरियमग्गदीपनी ग्रन्थ में अल्पतम रूप में संक्षिप्ततः - मैंने देशित किया है। वहां से देखकर जान लेना।

शिष्यो, भगवान एक समय जब जेतवन में विहार कर रहे थे तब भिक्षुओं को सम्बोधित कर यह कहा :–

"अच्छरा सङ्घातमत्तम्पि चे भिक्खवे भिक्खु बुद्धानुस्सतिं भावेति, अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्त झानो विहरति, सत्थु सासनकरो ओवाद पटिकरो अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, को पन वादो येन बहुली करोतीति।" (एकङ्गुत्तर पाळि)

शेष अनुस्सतियों को भी इसी तरह देशित किया है।

इसलिये शिष्यों, तुम शिष्य गण सर्वोत्तम को भी देख सकने के लिये - झान से अशून्य, बुद्ध शासन वाहक, उनके उपदेशों के अनुसार

पृष्ठ– ५५७

आचरण करने वाले, राष्ट्र-पिण्ड को बिना निरर्थक उपयोग किये - अधिकतम लाभों को देते हुए प्रयोग करने उपभोग करने वाले होकर - अभी मैंने जैसा बताया उसके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करो - देखो। इस अच्छरासङ्घात अनुस्सति सुत्त में बुद्धानुस्सति नामक पद को भी– "बुद्धानुस्सति = भगवान बुद्ध को बार-बार विचार विवेचन द्वारा स्मरण करने वाले सति को - चे भावेति = यदि बहुलीकृत करोगे" अर्थ दोगे। शेष तो कसिण सुत्त के समान ही है।

इति अनुस्सतिभावनानयो

ब्रह्मविहार कम्मट्ठान - भावना करने का वर्णन

१. शिष्यो, चारों ब्रह्मविहारों में मेत्ता ब्रह्मविहार को भावित करने को इच्छुक योगी पुग्गल को इस तरह भावना करनी चाहिए। शिष्यों, यह मेत्ता भावना विधि दो प्रकार की है : कुशल प्राप्ति मात्र के लिये तथा ध्यान अप्पना प्राप्ति के लिये - यह दो हैं। इन दोनों में कुशल प्राप्ति मात्र की भावना विधि में संपूर्ण विहार भवन, प्रत्येक घर-परिवार, सारा गांव, सारा नगर इत्यादि से - सभी प्राणियों, सत्तवों को, एक-एक के प्रति आलम्बन कर यह सत्त्व ये प्राणी सुखी हों!... सभी प्राणी मात्र सुखी हों! सभी सुखी हों! कायिक, चैतसिक रूप से सुखी हों! इस तरह बार-बार मन से भावित करते हैं। उस तरह भावित करने में भी–

माता यथा नियं पुत्त, मायुसा एकपुत्त मनुरक्खे।
एवम्पि सब्बभूतेसु मानसं, भावये अपरिमाणं।।
(सुत्तनिपात - मेत्तसुत्त का अंश)

पृष्ठ – ५५८

(अन्वयार्थ दिया है। उसे छोड़ा)

जैसे इकलौते पुत्र को वात्सल्यमयी मां खूब सावधानीपूर्वक उसकी देखभाल करती है - प्यार और स्नेह उड़ेलती है, उसी तरह वास्तविक स्नेह, सचमुच में सुखी करने की कामना होने पर ही मैत्री कहलाती है। मन में मैत्री नहीं केवल मुंह से सुखी होने की कामना मैत्री नहीं है। मन के भीतर सचमुच में किसी के सुखी होने की कामना न रहने पर– "अवेरा होन्तु अव्यापज्जा होन्तु" आदि पालि पाठ कर देने से मैत्री भावना नहीं होती है। केवल तोते के तरह पाळि पाठ का रटना हुआ। कोई भिक्षु बुद्ध वंदना कर रहे हैं। मैत्री भावना को पाठ कर रहे हैं - ऐसे समय में पीछे से शिष्य (बच्चे) गण शोर कर रहे हैं - अथवा अनजाने में पीछे से आकर टकरा ही गये कमर में - तो वह उठकर चप्पल से मारेगा। यदि अभी नहीं मार सका तो वंदना के बाद 'मारूंगा पीटूंगा" ऐसा चिड़चिड़ायेगा। नन्हा-सा बालक मां की गर्दन पकड़कर सिर का बाल नोचता है या डंडा लेकर मार भी देता है तो भी मां के मन में तनिक भी क्रोध नहीं - यदि वह भिक्षु सचमुच में मैत्री भावना कर रहा है तो उस मां के समान हृदय होगा! यदि मन-ही-मन चिड़चिड़ा रहा है - ऊपर मुंह से– "अवेरा होन्तु..." का पाठ कर रहा है तो यह मैत्री कहां - तोता रटंत पाठ है। शिष्यों, मैत्री के समय चाहे मुंह से बोलो या न बोलो - मुख्य बात है चित्त की चेतना। उसमें सचमुच में मैत्री देने की भावना है कि नहीं। वह मैत्री युक्त चित्त होना ही आवश्यक है।

पृष्ठ – ५५९

इस प्रकार मैत्री भावना होता है। यह मात्र कुशल प्राप्ति हेतु की गई मैत्री हुई। मैत्री विधि हुई।

शिष्यो, अप्पना ज्ञान की प्राप्ति हेतु मैत्री भेजने की विधि इस प्रकार है। उस मैत्री की भावना करने का इच्छुक भिक्षु - योगी– मैं भी दुक्ख नहीं चाहता। सुख को चाहता हूं। सुखी होना चाहता हूं। सभी प्राणी भी मेरी ही तरह दुक्ख नहीं चाहते। सुख को चाहते हैं। सुखी होना चाहते हैं। मैं भी सुख प्राप्त करना चाहता हूं। सभी प्राणी भी सुखी हों। इस तरह सभी प्राणी मात्र के सुखी होने की कामना की ओर, चित्त को झुकाकर इस - अभी आज से शुरू कर पूर्व के दो-तीन वर्षों तक; पांच-दस वर्षों तक, उससे पूर्व तक, उस बीच में जहां-जहां गया - पहुंचा - रहा - उन-उन स्थानों में जो-जो अपने संपर्क में आये दिखे, बातचीत किये, साथ रहे, परस्पर उपकार किये हुए सभी लोगों को सबको पुनः सोचकर - याद कर - इस आज मिले व्यक्ति लेकर - पीछे

क्रमानुसार - यह व्यक्ति मेरी ही तरह प्राणवान है - सुखी रहना चाहता है। वह सुखी होवे। उन्हें कोई भी - व्याधि, वेदना, भय, अन्तराय न हो। सुखी हो। काया से, चित्त से सुखी हो। अपने से मिले हुए प्रत्येक प्राणी को एक-एक को पुनः सोच-विचार कर क्रमानुसार मैत्री देते जाना होता है। अपने से जो कभी भी नहीं मिला हो तिस पर भी दूर से परोक्ष रूप से अपने आपको उपकार करने वाला समझकर उसे भी मैत्री दें। मत छोड़ें। कभी उपकार भी नहीं किया, कभी नहीं देखा, उसे मत भेजें, लेकिन जिसे देखा हो - चाहे वह जानवर पशु-पक्षी ही क्यों न हो - बिना छोड़े उन्हें भी मैत्री दो। इस तरह पीछे की ओर क्रमानुसार जाते हुए मैत्री देते हुए जाकर उस दसवें वर्ष के प्रारम्भिक मिले उस अन्तिम व्यक्ति को मैत्री देते हुए पुनः वहां से मुड़कर आज वर्तमान में जिसे देखे हो - यहां तक क्रमशः अनुलोम एक-एक को मैत्री देते आना होता है। शिष्यों, जिस तरह तुम्हें कायगता सति में कोट्ठासों को अनुलोम-प्रतिलोम बार-बार देखने को सिखाया वैसे ही, जिन-जिन से मिले हो - उन सबको आग की ओर, पीछे की ओर

पृष्ठ– ५६०

अनुलोम-प्रतिलोम एक-एक को बार-बार अनुलोम-प्रतिलोम मैत्री भेजते-भेजते चलते रहोगे तो उस योगी में तण्हा वाला प्रेम न रहकर शुद्ध कुशल मैत्री वाला मैत्री चित्त प्रविष्ट हो जायेगा। ऐसा देखेगा। ऐसा होने पर अन्य पुग्गल को बिना भेजे - यह पूर्ण मैत्री-चित्त दृढ़ता से प्रविष्ट हुआ। एक ही पुग्गल को चित्त और ज्ञान से लगातार एक साथ लगा हुआ संलग्न रूप में देखकर - यह व्यक्ति मेरे प्रति करुणा करता है - स्नेह करता है। इस-इस प्रकार का उपकार किया है। संरक्षण प्रदान किया है। यह व्यक्ति मेरी ही तरह प्राणी ही है। यह भी दुक्ख को नहीं चाहने वाला है। सुख चाहने वाला है। सुखी होना चाहता है। सुखी होवे। व्याधि रहित होवे। निर्भय होवे। निर्वेद होवे। काया और चित्त शांत हो! सुखी हो!!– इस तरह उस पुग्गल को पैर की अंगुलियों से सिर के सिरे तक - सिर के सिरे से लेकर पैर की अंगुलियों तक - बाहर भी, भीतर भी, सर्वत्र संपूर्ण काया में सर्वत्र मैत्री चित्त से फैलाना होता है - भेजना होता है। हृदय वत्थु चित्त को भी मैत्री चित्त से प्रविष्ट कर इस व्यक्ति का चित्त भी - उत्तापित न हो। दुःखी न हो। सुखी होवे। ऐसा फैलाता - प्रेषित करता है। इस तरह बार-बार मैत्री चित्त को फैलाता - प्रेषित करता है।

इस तरह प्रेषित कर रहने पर कुछ समय व्यतीत होने पर उस पुग्गल को आंख से देखने के समान अनुभव होगा। पास में ही खड़ा है - ऐसा अनुभव होगा। मैत्री चित्त भी अत्यंत प्रबल होकर उस पुग्गल में ही केवल संलग्न होकर रहता है। अब अधिक भागेगा नहीं। उस समय उग्गह निमित्त प्राप्त हो गया ऐसा समझो। उग्गह होने योग्य प्रकट होने वाला उस पुग्गल को इसी तरह बार-बार मैत्री चित्त प्रेषित करते रहे - तो समय बीतने पर चित्त - उस व्यक्ति (पुग्गल) में संलग्न होकर अत्यंत शांत स्थिर होकर पांच ध्यान के अंगों से परिपूर्ण प्रथम ज्ञान जवन अप्पना वीथि पात हो जाता है। प्रथम ध्यान को प्राप्त होता है। उस प्रकार प्रथम ध्यान प्राप्त योगी - उस पुग्गल को ही आलम्बन

कर मैत्री चित्त फैलाते हुए, प्रेषित करते हुए, कसिण में बताये विधि के अनुसार ऊपर के दुतिय, तृतीय, चतुर्थ झानों तक उठ जाता है।

पृष्ठ – ५६१

इस तरह किसी एक पुग्गल को मैत्री चित्त फैलाकर प्रेषित कर आरम्मण बनाकर चतुत्थ ध्यान तक प्राप्त होकर वश में कर 'वसी' किया हुए समय - अपने मिले हुए को देखकर पहले से मैत्री प्रेषित कर छोड़े हुए पुग्गलों को भी एक-एक को लेकर इसी तरह मैत्री चित्त फैलाकर, प्रेषित कर - आरम्मण बनाकर चतुर्थ ध्यान तक उत्पन्न किया जाता है। उसके बाद उत्तरोत्तर स्वयं नहीं मिले फिर भी सुने हुए सभी को - दसों दिशाओं में रहने वाले सभी सत्त्वों को एक-एक को अथवा समूह समूह को एक-सा मानकर आरम्मण बनाकर ग्रहण करने पर - मेत्ताचित्त फैलाकर, प्रेषित कर, आरम्मण बनाकर चतुर्थ ध्यान तक उत्पन्न किया जाता है।

शिष्यो, उस तरह मैत्री भेज़ने में उस पुग्गल के भीतर में स्वयं घृणा करने वाला, शत्रु मिलेंगे। यदि उनके प्रति मैत्री चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। द्वेष चित्त उत्पन्न होने पर– **"न सो भिक्खवे सत्तो सुलभरूपो, यो न माता भूतपुब्बो"** इत्यादि जैसे भगवान ने देशित किया है- - (अनमतग्ग सुत्त) उसके अनुसार - "अरे मेरे चित्त - वह शत्रु तेरा शत्रु नहीं है। पूर्व-पूर्व के जन्मों में का माता-पिता आदि होकर तेरा उपकार कर चुका है। इस चित्त में उत्पन्न हुआ द्वेष ही तेरा शत्रु है। वह पुग्गल तुझे झान से च्युत करने का भी काम नहीं करता। नरक में गिराने वाला काम भी नहीं करता। वह मेरा शत्रु नहीं है रे। यह द्वेष ही तुझे झान से च्युत करने वाला - नरक में डाल सकने वाला शत्रु है। जो तेरा शत्रु नहीं उसको घृणा मत करो। असली शत्रु अपने ही द्वेष को घृणा करो। इसे ही हटाओ। काट डालो।

कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स एक धम्मस्स, मधुरग्गस्स ब्राह्मण।
वधं अरिया पसंसन्ति, तम्हि छेत्वा न सोचति।।
(सगाथावग्ग संयुत्त पाळि)

पृष्ठ – ५६२

(अन्वयार्थ दिया गया है - उसे छोड़ दिया)

इस तरह भगवान द्वारा देशित कथन का भी मनन-चिंतन करो। ककचूपमसुत्त सपत्तकन्त सुत्त इत्यादि को भी पर्येषणा करो। स्मरण-मनन करो। अपने असली शत्रु द्वेष (क्रोध) को मारो। उन शत्रु पुग्गलों में पूर्व-पूर्व के जन्मों का माता-पिता आदि होने की अवस्था का स्मरण करो। वर्तमान में भी सगा माता-पिता इत्यादि समझते हुए मेत्ता झान जवन पात न्पन्न करना चाहिए। यदि माता-पिता के समान ना समझ कर अनजान

व्यक्ति के समान ही समझते रहो तो भी - अरे... यह भी तो हमारे समान ही एक प्राणी ही है। दुक्ख को नहीं चाहता। सुख को चाहता है। सुख ही चाहता है। सुखी रहे। अपने समान ही समझो - सहानुभूति रखो। मैत्री ञान जवन पात उत्पन्न करना चाहिए। यदि इस तरह भी अपने ही समान सहानुभूति नहीं कर सको तो, उसके प्रति की घृणा न दूर हो तो उसमें मेत्ता ञान जवन पात नहीं हो पाता। कठिन हो जाता है। ऐसा हो तो अन्यान्य सभी लोगों में मेत्ता ञान जवन पात होने पर अंत में ऐसे शत्रु में, घृणित में जवन पात होने देना चाहिए। जो दुश्मन न हो - उनमें बार-बार मेत्ता जवन पात होगा - और मेत्ता चित्त तीक्ष्ण, बलवान हो जावेगा तब अत्यंत घृणा करने वाले के प्रति, वैसे शत्रु के प्रति भी मैत्री ञान उत्पन्न कर सकेंगे। इसके बावजूद

पृष्ठ – ५६३

भी यदि इस तरह मेत्ता ञान जवन पात न हो सके तो - ऐसे होने पर अपने उस शत्रु को मन में मत लाओ। उसको आरम्मण मत करो। ऐसे को मेत्ता भावना नहीं करना चाहिए। जंगल में पड़े हुए धास-फूस, लक्कड़-वक्कड़ के समान रख देना चाहिए। 'है' ऐसा मन में लाओ ही मत। अनारम्मण उपेक्ख करना होता है। जिनकी मैत्री भावना करने से मेत्ता ञान जवन पात हो सकेगा - ऐसे लोगों के प्रति, साथियों के प्रति ही मेत्ता ञान जवन फैलाकर प्रेषित करना चाहिए। (१) मेत्ता ब्रह्मविहार भावना पूरा हुआ।

(२-३) करुणा, मुदिता की भावना विधि भी मेत्ता विधि के अनुसार ही, मात्र कुशल पुण्य प्राप्ति हेतु भावना विधि, ञान अप्पना की प्राप्ति हेतु भावना विधि दो तरह का है। इन दोनों में कुशल (पुण्य) प्राप्ति हेतु भावना विधि - जैसे मां अपने रोगी पुत्र को रोग दुक्ख से मुक्त होने की बलवती कामना से अत्यधिक दयावान हो जाती है - वैसे ही; अपनी धन-संपदा, सुख-संपत्ति, मोद-प्रमोद वैभवादि को कोई नहीं चाहता कि घटे - उसे हमेशा बनाये रखना चाहता है, उसे बढ़ाकर ही - बढ़ाने में ही हमेशा प्रसन्नता का अनुभव करता है - वैसे ही योगी अकेले एक का हो, चाहे अनेकों का हो - दुःखी सत्त्वों को दुःख-मुक्त करने की भावना से दयार्द होता है। करुणा से भर उठता है। ऐसी करुणा चित्त बारम्बार उत्पन्न करता है। बहुलीकृत करता है। सुख-वैभव, ऐश्वर्य-सम्पदा से परिपूर्ण लोगों को देखकर वह योगी मन में भाव करता है कि इसका यह सुख-वैभव, ऐश्वर्य-सम्पदा हमेशा बना रहे - घटे मत - विकसित ही होता रहे - पूर्ण ही होता रहे - ऐसा उसके मन में मोद होता है - प्रसन्नता होती है। मुदिता होती है। इस मुदिता चित्त को बार-बार उत्पन्न करे। उसके प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न न हो। यह है - मात्र कुशल (पुण्य) प्राप्ति हेतु भावना विधि।

पृष्ठ – ५६४

मेत्ता चित्त की भावना को अप्राप्त पुग्गल में दुःखी को देखकर करुणा चित्त अधिक समय तक स्थित रखना कठिन होता है। ञान अप्पना उत्पन्न होने हेतु अतिशय करुणा चित्त उत्पन्न कर सकना कठिन होता है। कम्मरसका अर्थात् स्मरण कर कम्मादि को बिना

खयाल किये अनारम्मण उपेक्खा कर ही रह सकता है। सुखी लोगों को देखकर मन में अर्से तक मुदिता का चित्त उत्पन्न कर रख सकना कठिन होता है। ज्ञान अप्पना होने योग्य मुदिता का चित्त उत्पन्न कर सकना कठिन होता है। केवल ईर्ष्या का भाव ही उत्पन्न हो सकता है। इसलिये जो योगी चाहता है कि करुणा मुदिता करते हुए ज्ञान अप्पना की प्राप्ति हो उसे चाहिए कि वह मेत्ता को ही बहुलीकृत करे। मैत्री का भावना को करके, मेत्ता ज्ञान को प्राप्त हुआ होने पर उस अपनी मेत्ता ज्ञान चित्त किये हुए अत्यंत प्रिय सत्त्वों में से किसी को दुक्ख में पड़ा देखेगा तो उसके प्रति उसमें बहुत अधिक करुणा जागेगी। जैसे ही करुणा उत्पन्न होगा तो चित्त में यह चेतना जागेगी कि अरे यह अपने दुक्खों से मुक्त हो रे! तत्क्षण उसके अनन्तर करुणा अप्पना ज्ञान जवन पात होवेगा। केवल स्नेह-प्यार को करुणा चित्त में परिवर्तित करने भर की देर होगी। करुणा ज्ञान जवन पात के लिये उसे कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उन अपने प्रियों को कोई भौतिक दुक्खों में न पड़ा हो तब भी वह योगी - उन लोगों के जाति जरा (व्याधि) मरण से मुक्त नहीं - ये इसी भय भैरव में डूबे हैं रे - ये भव संसरण के दुक्ख से कैसे मुक्त होवें रे - ऐसा स्मरण करता है। करुणा से भर जाता है। अरे ये पृथग्जन दुक्खों में लिप्त हैं रे - ऐसी करुणा - अपार करुणा उत्पन्न होती है। उन पृथग्जन पुग्गल मात्र के प्रति ही करुणा ज्ञान जवन पात हो सकता है।

अपने प्रियँ लोगों के प्रति जिनके प्रति मैत्री होती है - उन पुग्गलों के सुख-वैभव, धन-संपत्ति, प्रसन्नता, परिपूर्णता को देखकर मन में मोद होता ही है। मुदिता उत्पन्न हो ही आती है। मुदिता के

पृष्ठ – ५६५

उत्पन्न होते ही चित्त की चेतना में यह भाव उत्पन्न होता है कि इसका यह सुख-संपदा, धन-वैभव कभी न घटे - यह ऐसे ही हमेशा बनी रहे - इस तरह मन में प्रसन्नता, मोद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। जब मोद से लबालब होता है तो ऐसे चित्त क्षण में तत्काल ही मुदिता अप्पना ज्ञान जवन पात होता है। मैत्री, स्नेह प्रेम से करुणा - करुणा से मोद में चित्त को मात्र परिवर्तित करने भर का भार रहता है। मुदिता ज्ञान जवन पात होने के लिये विशेष कुछ करना नहीं पड़ता है। यदि वे - जिनके प्रति हमारे चित्त में करुणा होती है - वे लोग अधिक कोई विशेष सुख संपदा वाले न भी हों - तिस पर भी उनके चेहरे पर खेलती रहती प्रसन्नता को देखकर भी बड़ा ही मोद उत्पन्न होता है। उस पुग्गल में मुदिता ज्ञान जवन पात उत्पन्न हो सकता है। इस करुणा, मुदिता को भी मेत्ता विधि के अनुसार ही चतुत्थ ज्ञान तक भावित किया जा सकता है। (२-३) करुणा, मुदिता दोनों ब्रह्मविहार पूर्ण हुआ।

शिष्यो, मेत्ता, करुणा, मुदिता द्वारा चतुर्थ ध्यान तक प्राप्त योगी जब ऊपर के पंचम ध्यान को प्राप्त करना चाहता है तब - जैसे कि पीछे कसिणों के संबंध में बता आया वैसे ही चतुर्थ ध्यान को, सुख को - यह जाने कि इसमें दोष है, अतः उसको घृणा

कर पञ्चम झान को, उपेक्षा को, अच्छा है - उसकी कामना कर किसी एकेक पुग्गल में मेत्ता चित्त द्वारा या करुणा चित्त द्वारा या मुदिता चित्त द्वारा - किसी भी एक के द्वारा चतुर्थ ध्यान में प्रविष्ट कर, झान से उठकर, उसी एक पुग्गल को ही आरम्मण बनाकर - अरे... यह पुग्गल मेरा प्यारा है तिस पर भी उसके सुखी रहने के कम्म होंगे तब ही सुखी रहेगा रे। भले ही मैं चाहूं कि - कि यह अपने दुक्खों से मुक्त रहे, तिस पर भी उसके मुक्त हो सकने का कारण कम्म होगा तब ही मुक्त हो सकेगा रे। भले ही मैं चाहता हूं कि यह अपने सुख-वैभव से च्युत न होवे - तिस पर भी उसके वैभव से च्युत हो सकने का कारण कम्म है तो वह च्युत होगा ही। मेरी कामना करने पर भी कुछ नहीं हो सकेगा। उसके कम्म होंगे तब ही होगा। उसमें उसका कम्म ही सुधार करने की तैयारियां कर पावेगा।

पृष्ठ – ५६६

उसके कम्म ही उसे शरण देंगे। कम्मस्सका ही चित्त के भीतर में सुख करवाने की इच्छा वाले दुक्ख से मुक्त करने वाला दुक्ख से च्युत नहीं होने देने की इच्छा वाले चित्त व्यापार को संवरण कर उपेक्खा भावना की पर्येषणा करने पर झान चित्त के भीतर में सुख वेदना न रहकर उपेक्खा वेदना उत्पन्न होकर एकग्गता सहित पांचों ध्यान के अङ्गों से पूर्ण पञ्चम झान अप्पना वीथि पात होता है। पञ्चम झान प्राप्त होता है। उस पञ्चम झान को बलशाली बनाने के लिए स्थिरता प्राप्त करने के लिये 'वसी' करते हैं। उसको वश में कर लेते हैं।

शिष्यो, पीछे ब्रह्मविहारों द्वारा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर ऊपर के पञ्चम झान को उत्पन्न करने की इच्छा के समय इस तरह चित्त के भीतर में - सत्त्वों को सुखी चाहने आदि के व्यापारों को संवरण कर - उन्हें उनका 'कम्म' ही कुछ करने कराने का शरण स्थल है - कम्मस्सका नामक उपेक्षा द्वारा पर्येषणा को उपेक्षा ब्रह्मविहार को बहुलीकृत किया - ऐसा कहते हैं। उपेक्षा ब्रह्मविहार को भावित किया ही समझना। उपेक्खा को भावित करना होगा ऐसा कहने पर सत्त्व को उस जंगल में पड़े हुए घास-फूस, लक्कड़-वक्कड़ आदि के समान बिना माने, बिना आलम्बन किये विस्मृत रहने की तरह यह नहीं है। यह अनारम्मण उपेक्षा के तरह नहीं है। नीचे (पीछे) ब्रह्मविहार चतुत्थ झान चित्त से चिपके हुए संलग्न हुए के समान आरम्मण कर रहना होता है। चित्त में ही केवल सुखी होवें इत्यादि उत्पन्न करने चाहने की कामना करने व्यापार मात्र को ही केवल संवरण करना होता है। कम्मस्सका की अवस्था से व्यापार को संवरण कर उस पुग्गल को ही उपेक्षा चित्त से देखकर, आरम्मण कर, चिपककर, संलग्न होकर रहना होता है। इस उपेक्खा ब्रह्मविहार में मात्र कुशल (पुण्य) प्राप्ति के लिये भावित करना नहीं है। नीचे (पीछे) के ब्रह्मविहार चतुर्थ झान को बिना प्राप्त किये - सत्त्वों को उसके कम्म से वह है - कम्मस्सका ही है - यह ध्यान करने देखने से यह कुशल नहीं रहता। अकुशल भी नहीं होता। अनारम्मण उपेक्षा के तरह हो गया। जंगल में पड़े घास-फूस, लक्कड़-वक्कड़ जैसा

पृष्ट– ५६७

अनारम्मण **उपेक्षा**। यहां उपेक्षा ब्रह्मविहार भावना पूर्ण हुआ। (४)

शिष्यो, जो मेत्ता भावना करता है उसको करुणा, मुदिता, उपेक्खा के लिये विशेष अभ्यास नहीं करना पड़ता, स्वत: पूर्ण हो जाता है। इसलिये सर्वप्रथम मैत्री को ही भावित कर बहुलीकृत करनी चाहिए। इस मैत्री भावना का बहुत महान फल होता है। उत्तम होता है। भव सम्पत्ति फलों को प्रदान करने वाले अच्छे (श्रेष्ठ) कर्मों में यह मेत्ता कम्म सर्वश्रेष्ठ है। सर्वोत्तम है। मेत्ता कम्म की बराबरी करने वाला कोई कर्म नहीं है। अनुस्सतियों के अंतर्गत बुद्धानुस्सति कम्म भी भवसम्पत्ति का लाभ प्रदान करने में बहुत तीक्ष्ण है। विशद एवं श्रेष्ठ है। इसीलिये बुद्ध होने की कामना वाले लोग जिन्हें अनेकानेक भवों में रहना होगा - बुद्ध व्यादेश प्राप्त पुग्गल विशेषकर इस बुद्धानुस्सति तथा मेत्ता दोनों को अपना अस्त्र-शस्त्र बनाकर रखते हैं। इसको भावित कर बहुलीकृत करते हैं। मेत्ता को भावित कर बहुलीकृत करने पर शेष ब्रह्मविहार भी स्वत: समाविष्ट हो जाते हैं। शिष्यों, मैत्री के आनिसंस (लाभ फल) की विशदता, अधिकता, श्रेष्ठता आदि का वर्णन (मेरे शिष्य संघ सोभण संस्थाओं ने मेरे द्वारा देशित - के अनुसार समझकर जो पुस्तक लिखी) धम्मरासी ग्रन्थ में सविस्तार है। वहां से देखो।

शिष्यो, भगवान बुद्ध जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर यह कहा :–

अच्छरासङ्घातमत्तम्पि चे भिक्खवे भिक्खु मेत्तं चेतो विमुत्तिं भावति, अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्त झानो विहरति। सत्थुसासनकरो ओवादपटिकरो अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, को पन वादो येन बहुली करोतीति। (एक अङ्गुत्तर से) इसी पुस्तक के मूल पृ. ५५६, ५२७

शेष ब्रह्मविहार को भी इसी तरह देशित किया गया है।

इसलिये भिक्षुओ, सर्वोत्तम को जानने की इच्छा वाले ध्यान से अशून्य माने जाने के लिए, शास्ता का आज्ञाकारी माने जाने के लिए, शास्ता के उपदेशानुसार चलने वाला माना जाने के लिये और यह भी माना जाने के लिए कि तुम राष्ट्र-पिण्ड को व्यर्थ नहीं खाते हो, तुम मेरे शिष्य गण

पृष्ठ– ५६८

मैंने जैसे अभी समझाया उस प्रकार इस ब्रह्मविहार को प्रयत्न कर बहुलीकृत करो। प्रयत्न करो। इस अच्छरासङ्घात मेत्त सुत्त में - मेत्तं चेतो विमुत्तिं नामक पद को - "चेतविमुत्ति कहलाने वाला मेत्ता धर्म को यदि भावित करोगे" यह अर्थ देना। शेष कसिण सुत्त के समान ही है।

इति ब्रह्मविहारभावनानयो

आरुप्पकम्मट्ठान भावना करने का वर्णन

१. चार आरुप्प कम्मट्ठानों की भावना करने वाला योगी कसिणों के द्वारा प्रथम ध्यान को प्राप्त कर तीक्ष्ण स्थिर 'वसी' कर - उस कसिण नामक रूप धर्म को, उस रूप धर्मों से आलम्बन वाला रूप झान को ऐसा विचार करे कि यह तो अभी नीचे है - हीन है ऐसा दोष देखकर, घृणा कर ऊपर का ध्यान वह अरूप झान सूक्ष्म है, श्रेष्ठ है, अच्छा है - ऐसी चाहना कर, कामना कर, उससे उच्च अरूप आकासानञ्चायतन झान को उत्पन्न करने, प्राप्त करने के समय आकास कसिण से शेष नौ कसिणों में किसी एक को आरम्मण कर पञ्चम झान को भावित कर - झान से उठकर - उस कसिण वृत्त को ही आरम्मण कर - चेहरे के सम्मुख रखकर (प्रसार कर) उस कसिण को खूब सूक्ष्मता से देखकर - इस स्थान पर कसिण वृत्त नहीं– "अनन्त आकाश है - अनन्त आकाश है" इस तरह बारम्बार मन में धारण कर देखे - ध्यान करे - तो कसिण विलीन हो जावेगा

पृष्ठ– ५६९

उस कसिण के स्थान पर अनन्त आकाश उत्पन्न होकर दिखने लगेगा। ठीक वैसे जैसे खिड़की पर कोई पर्दा हो। उसको देखते समय ही हवा के झोंके से वह पर्दा गिर पड़े - उसके स्थान पर सारा आकाश दिखने लगे। ठीक वैसे दिखने लगेगा। कसिण का विलोप होना अनन्त आकाश का दिखना **कसिणुग्घाटिम** आकाश कहते हैं। इस **कसिणुग्घाटिमाकास** को उप्पादभङ्ग नामक बिना आदि अंत वाला– "अनन्त आकाश - अनन्त आकाश" इस तरह चित्त से जानते हुए बार-बार देखते रहे तो उपेक्षा, एकाग्रता, नामक दो ध्यान के अंगों को पूर्ण करने वाला पञ्चम ध्यान - अप्पना वीथिपात हो जाता है। इस पञ्चम झान को कसिण नामक रूप धर्म को घृणा करने वाला, अतिक्रमित - बिना आरम्मण किया हुआ झान होने के कारण अरूप झान कहते हैं। उप्पादभङ्ग नामक आदि अंत रहित आकाश ही स्थिति स्थान, शरण स्थान, टिकने का स्थान आरम्मण होने के कारण **आकासानञ्चायतन झान** भी कहते हैं। यह **आकासानञ्चायतन अरूप झान** ही **आकासानञ्चायतन आरुप्प** कहलाता है। प्रथम प्राप्त, पहुंचा हुआ - अरूप झान होने के कारण **पठमारुप्प झान** भी कहलाता है।

२. इस पठमारुप्प झान को दृढ़ सबल स्थिर कर वश में कर 'वसी' कर चुकने पर उससे ऊपर दुतियारुप्प झान को उत्पन्न करने की इच्छा से मन में यह विचार करे कि नीचे के झान से ऊपर का झान अत्यधिक श्रेष्ठ है - अच्छा है। इस तरह नीचे के झान को घृणा कर, हेय मानकर, उससे उच्च ध्यान को चाहकर इस कसिणुग्घाटिमाकास को आरम्मण कर पठमारुप्प झान को प्रविष्ट होकर झान से उठकर उस अभी प्रविष्ट होकर उत्पन्न होकर निरुद्ध हो चुका हुआ - अतीत पठमारुप्प झान चित्त विञ्ञाण को उत्पाद भङ्ग बिना आदि अंत के आकाश को आरम्मण करने वाला– "विञ्ञाण-विञ्ञाण" इस तरह चित्त के भीतर स्मरण कर बार-बार ध्यान करते रहने पर - उपेक्षा एकाग्रता

दोनों ध्यानाङ्गों से पूर्ण पञ्चम ज्ञान जवन अप्पनावीथिपात होता है। अरूप पञ्चम ज्ञान को प्राप्त होता है। इस ज्ञान को, अनन्त आकाश को आरम्मण कर उत्पन्न होने से अनन्त नामक पठमारुप्पविञ्ञाण होने से वही आधार आरम्मण होने के कारण **विञ्ञाणञ्चायतन ज्ञान** कहते हैं। दूसरी बार प्राप्त होने वाला अरूप ज्ञान होने के कारण दुतियारूप्प ज्ञान भी कहते हैं। शिष्यों, नीवरण रहित होकर चित्त ञाण निर्मल हो जाने पर अपने चित्त के उत्पन्न होने को साफ-साफ अनुभूति कर देखते हैं। चित्तें आगे-पीछे के चित्त निरन्तर लगातार लगे हुए - अति शीघ्रता से उत्पन्न हो रहे, होने के कारण रात के समय वृत्ताकार घुमाते मसाल आदि को लगातार जैसे वृत्तवत देखते हैं - वैसे ही अनुभूति द्वारा दिखता है। वह पठमारुप्प विञ्ञाण निरुद्ध होकर चले जाने पर भी ध्यान करते ही रहने के रूप में आकाश के आकार को विस्तृत चपटा खण्ड - नारियल माला पर्वत से सीधा पिरोये हुए के समान आलम्बन कर दृढ़तापूर्वक स्थिर कर शांतिपूर्वक सीधा उत्पन्न होकर रहने के अनुसार को इस दुतियारुप्प विञ्ञाण साफ-साफ प्रकट होकर, आरम्मण कर संलग्न हो स्थिर रहता है।

३. इस दुतियारुप्प ज्ञान को दृढ़ कर - 'वसी' कर इसके ऊपर वाले ततियारुप्प ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा के समय मन में यह करो कि यह ज्ञान निम्न है। ऊपर का ज्ञान उत्तम है। अच्छा है। इस तरह नीचे के ज्ञान को हेय समझ घृणा कर ऊपर के ज्ञान को चाहकर, कामना कर, पठमारुप्पा विञ्ञाण को आरम्मण कर दुतियारुप्प ज्ञान को भावित कर ज्ञान से उठकर - अभी मैं जो ध्यान करता हूं - आकाश में आकाश खण्ड में सीधी रेखा में उत्पन्न होने वाला यह परमारुप्प विञ्ञाण "नहीं है - नहीं है।" इस तरह कसिण को हटा देने के समान - उस विज्ञान को - नहीं रहे - जैसा लोप कर, मन में कर ध्यान कर हटा देने, नष्ट कर देने पर - आकाश खण्ड में लंबवत सीधा उत्पन्न उस पठमारुप्प विञ्ञाण रेखा को जो देख रहे थे अब नहीं दिखेगा - ऐसा हो जावेगा। आकाश खण्ड के भीतर में - पठमारुप्प विज्ञान रेखा - 'नहीं होकर' - उत्पन्न हो जावेगा। अब उस आकाश खण्ड के भीतर उस पठमारुप्प विञ्ञाण के नहीं होने को ही केवल देखेंगे। उदाहरण के रूप में समझो – 'सिम' मैदान में संघ के सम्मेलन को देखा - बाद में वहां से जाते हुए - संघ सम्मेलन नष्ट होकर उठकर सब चले गये। बाद में आकर देखा तो पाया कि सिम मैदान में संघ को बिना देखे - संघ नहीं है केवल - इसे ही देखने के समान है। उस समय उस पठमारुप्प विञ्ञाण का नहीं होना - अभावपञ्ञत्त - मात्र को आरम्मण कर – "नत्थि किञ्चि - नत्थि किञ्चि"

पृष्ठ – ५७१

"पठमारुप्पविञ्ञाण तनिक भी नहीं है; तनिक भी नहीं है; किञ्चित मात्र नहीं, किञ्चित मात्र नहीं" इस तरह चित्त से जानते हुएं - उस अभाव को बार-बार मन में कर ध्यान करते हुए - उपेक्खा, एकग्गता दो ज्ञानाङ्गों से पूर्ण पञ्चम ज्ञान जवन अप्पनावीथिपात होता है। अरूप पञ्चम ज्ञान को प्राप्त होते हैं। इस ज्ञान को पठमारुप्प विञ्ञाण का किञ्चित मात्र भी न रहना - अभावपञ्ञत्त का ही - आधार आ[illegible]ण होने

के कारण - आकिञ्चञ्ञायतन झान कहते हैं। तीसरी बार प्राप्त अरूप झान होने से - ततियारुप्प झान भी कहते हैं।

४. इस ततियारुप्प झान को तीक्ष्ण दृढ़ 'वसी' वश में करके इससे ऊपर का ध्यान चतुत्थारुप्प झान को बढ़ाने और उत्पन्न करने की इच्छा होने पर - इस नीचे के ध्यान से ऊपर का ध्यान प्रणीततर है, श्रेष्ठ है - इस तरह नीचे के ध्यान को घृणा कर हेय मान ऊपर के ध्यान को चाह कर, कामना कर पठमारुप्प विञ्ञाण के अभावपञ्ञत्त को आलम्बन बनाकर ततियारुप्प झान में प्रविष्ट होकर - उस ध्यान से उठकर - उस अभी ध्यान में प्रविष्ट कर, उत्पन्न कर निरुद्ध हो चुके अतीत ततियारुप्प झान चित्त विञ्ञाण को ही यह विञ्ञाण "अत्यंत सूक्ष्म, शांत है। सूक्ष्म शांत है।" इस तरह चित्त के भीतर स्मरण कर, आरम्मण कर बार-बार मन में करते हुए देखने पर - उपेक्खा एकग्गता दो झानाङ्गों से परिपूर्ण पञ्चम झान जवन अप्पनावीथि उत्पन्न होता है। अरूप पञ्चम झान को प्राप्त होता है। इस झान के लोप होते-होते अत्यंत सूक्ष्म होकर हलन-चलन रूक्ष, सञ्ञा ही नहीं रहती। केवल अत्यंत सूक्ष्म सञ्ञा ही होने के कारण नेव सञ्ञा ना सञ्ञायतन झान कहते हैं। चौथी बार प्राप्त होने वाला अरूप झान होने के कारण चतुत्थारुप्प झान भी कहते हैं। इस झान को भी तीक्ष्ण शक्तिशाली, स्थिर करने हेतु वश में करना होता है। 'वसी' करते हैं।

झान समापत्त निरोध समापत्त भावना करने का वर्णन

शिष्यो, **रूपझान** चतुक्क विधि से चार, यह **अरूप** झान चार - इन **आठ ध्यानों** को नीवरण इत्यादि शत्रुओं से रहित व मुक्त

पृष्ठ – ५७२

होने के कारण **आठ विमोक्ख** भी कहते हैं। ध्यान में समाहित (प्रविष्ट) होने के कारण **आठ समापत्त** भी कहते हैं। इस आठ समापत्त में निरोध समापत्त को शामिल कर लेने पर नौ समापत्त होते हैं। इस नौ समापत्त को लगातार **क्रमशः** ध्यान करने पर नौ **अनुपुब्बविहार समापत्त** कहते हैं। इन नौ समापत्तों को कामराग रहित हो चुके रूप वाले अनागामी तथा अरिहंत यह दो ही पुग्गल प्रविष्ट हो सकते हैं।

ध्यान में प्रविष्ट होने का तरीका– सर्वप्रथम **प्रथम** ध्यान (पठम झान) को एक क्षणभर प्रविष्ट होकर ध्यान से उठकर उस प्रथम ध्यान को अनित्य-दुक्ख-अनात्म नामक तिलक्खण को रखकर किया जाता है। इसके उपरान्त द्वितीय ध्यान को प्रविष्ट करते हैं। झान से उठकर इस दुतिय झान को ही पूर्व के नियमानुसार त्रिलक्षणों द्वारा करना होता है। इस तरह इसी विधि से क्रमवार आकिञ्चञ्ञायतन समापत्त तक सातों समापत्तों को समाहित होकर त्रिलक्षणों के आधार पर ध्यान कर चुकने पर निरोध समापत्त समाहित ध्यान से उठकर बेतरतीब चुतिचित्तों को बिना पात होने दिये - क्या चुतिचित्तपात के समय अभी दूर हैं? यह देखकर अनुमान लगाकर अपने लिये आवश्यक अवधि तक के

लिये संकल्प रखकर - जब चाहेंगे, पात कर उठा सकते हैं। उस अवधि के भीतर में भी बुद्ध के बुलाने पर उठ सकूं। संघ का कार्य होकर मेरा आवश्यकता महसूस हो रही होगी तब भी मेरा ध्यान खुल जावे। मेरा पात्रादि परिक्खार भण्डार को भी किसी भी कारणवश क्षति नहीं पहुंचे ऐसा अधिष्ठान करना - पुब्बकिच्च को करके नेवसञ्ञा नासञ्ञायतन समापत्त को प्रवेश कर समाहित होते हैं। वह समापत्त ज्ञान जवन एक-दो बार पात होकर बिना चित्त उत्पन्न हुए चित्त क्रम छिन्न होकर, निरुद्ध होकर अपने द्वारा पहले से संकल्पित अवधि पर्यंत - विना चित्त चैतसिक हुए - केवल रूप मात्र उत्पन्न होकर रहता है। इस तरह चित्त चैतसिक के, निरोध अवस्था को प्राप्त होकर स्थित होने को **निरोधसमापत्त** समाहित होना कहते हैं। ऐसा कर जब उठने का समय होता है - तब निर्वाण को आरम्मण कर - फल चित्त उत्पन्न होकर निरोधसमापत्त से उठता है। इस तरह अधिष्ठान कर निरोध समापत्त समाहित होकर (प्रविष्ट होकर) ध्यानावस्थित पुग्गल को तोप से मारने पर भी नहीं गिरेगा। उसे आग से भी नहीं जला सकते। उनके निवास विहार

पृष्ठ – ५७३

को भी नष्ट नहीं किया जा सकेगा, आग नहीं लगाया जा सकेगा। प्रत्यय भण्डा परिक्खार सहित कायसिद्धि पूर्ण होकर रहता है। यदि अधिष्ठान नहीं करता है - तो केवल योगी हो पूर्ण करता है। परिक्खार भण्डा पूर्ण नहीं होता। यह नौ अनुपुब्ब विहार समापत्त को समाहित होना हुआ।

शिष्यो, इन आठों समापत्त में **रूपचतुत्थ झान** को प्राप्त पुग्गल, इस नाम के होने के कारण, चिंता दुक्ख को प्राप्त करता है। बिना नाम के, केवल रूप ही रहने पर, बिना कुछ जाने शांतिपूर्वक, सुखपूर्वक रहता है। 'अच्छा' ऐसी कामना को करके केवल नाम में ही दोष को देखकर घृणा कर रूप को (में) दोष न देखकर - बिना घृणा किये - रूप के साथ रहने का विचार चित्त (छन्द) होने से - झान को बिना छोड़े (झान से बिना स्खलित हुए) यदि च्युति कर जाये (मर जाये) तब नाम रहित केवल रूप वाले असञ्ञसत्त - ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर असञ्ञसत्त ब्रह्मा होता है। पांच सौ महाकल्प (*) की लंबी आयु होती है। पांच सौ कल्प पूरा होने पर चतुत्थ झान चेतना कम्म समाप्त होकर उस असञ्ञसत्त ब्रह्मा का वह रूप निरुद्ध होकर च्युति होकर पुराने किये हुए कामकुसल कम्म के कारण मनुष्य लोक में रूप-नाम दोनों के साथ उत्पन्न होकर पुनः मनुष्य हो जाता है।

इस आरुप्प झान को प्राप्त पुग्गल भी यदि ऐसा विचार करे– "यह काया होने के कारण मार सहना, भाले-बर्छी से बिंधना, घाव जख्म होना, बिमार पड़ना आदि दुक्ख को प्राप्त होना पड़ता है। बिना रूप के केवल नाम ही रहने पर फिर किसी भी वस्तु से बिना पीड़ित हुए - सुख-शांतिपूर्वक रहने को प्राप्त होगा। 'वही अच्छा है' ऐसी कामना कर रूप को ही दोष देखकर नाम को बिना दोष देखे - बिना घृणा किये - नाम के ही साथ रहने की कामना हो चित्त छन्द होकर रहे और झान बिना छोड़े ध्यानावस्था में

ही यदि उस योगी की च्युति हो जावे तो रूप रहित केवल नाम वाले अरूप ब्रह्मा लोक में पहुंचकर अरूप ब्रह्मा हो जाता है। उसमें सबसे ऊपर - नेवसञ्ञानासञ्ञा लोक में ८४००० महाकल्प की लंबी आयु होती है। उतने कल्प की आयु पूरा हो जाने पर उसकी च्युति होती है। पुनः वह नाम रूप सहित काम लोक में उत्पन्न होता है।

इसलिये यदि कोई पुग्गल उस चतुत्थ झान - अरुप्प झानों को प्राप्त होने पर भी नाम को - अपने करजरूप को बिना घृणा किये उस लोकों की यदि कामना न करे तो उस असञ्ञसत्त अरूप लोकों में उत्पन्न नहीं होगा। वह नाम-रूप दोनों वाला शेष केवल ब्रह्म लोकों में ही उत्पन्न होता है। काम भव में उत्पन्न होना चाहे तो भी होता है। शिष्यों, इस कथन समूह से, रूप झान से अरूप झान को बढ़ते समय (चढ़ते समय) अपनी काया

पृष्ठ – ५७४

रूप पिण्ड वाला करजरूप को बिना घृणा किये दोष को देखें, आरम्मण कसिण रूप सहित रूप झान ही केवल निम्न है, नीचा है - ऐसा केवल दोष मढ़ने, घृणा करने के अर्थ को भी बताता है - यह जनाना चाहता हूं। ऐसा जानो।

शिष्यो, भगवान ने जेतवन में विहार करते समय भिक्षुओं को बुलाकर संबोधित किया –

अच्छरासङ्घातंमत्तम्पि चे भिक्खवे भिक्खु आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्त झानो विहरति सत्थुसासनकरो ओवादपटिकरो, अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, को पन वादो येन बहुली करोतीति।

(एकअङ्गुत्तर) शेष अरुप्पों को भी इसी प्रकार देशित किया है।

इसलिये भिक्षुओ, सर्वोत्तम को जानने की इच्छा वाले ध्यान से अशून्य माने जाने के लिये, शास्ता का आज्ञाकारी माने जाने के लिये, शास्ता के उपदेशानुसार चलने वाला माना जाने के लिये, और यह भी माना जाने के लिये कि तुम राष्ट्र-पिण्ड को व्यर्थ नहीं खाते हो। आठ विमोक्ष, आठ समापत्तों से परिपूर्ण होने के लिए रूप चतुत्थ झान को प्राप्त कर इस आरुप्प कम्मट्ठान को, झान को भी अभी मैंने जैसे देशित किया उस विधि के अनुसार प्रयत्न कर बहुलीकृत करो। उत्पन्न करो, प्रयत्न करो। इस अच्छरासङ्घात आरुप्प सुत्त में आकासानञ्चायतन् नामक पद को– "आकासानञ्चायन झान को उपसम्पज्ज - परिपूर्ण कर, प्राप्त कर, समाहित कर यदि विहार करोगे" - यह अर्थ होता है। शेष कसिण सुत्त के समान है।

इति आरुप्प भावनांनयो

पृष्ठ – ५७५

आहारेपटिकूलसञ्ञाकम्मट्ठान को भावित करने का वर्णन

शिष्यों, दो सञ्ञाओं में से एक आहारेपटिकूल सञ्ञा है। निगलकर खाने वाले कबळीकार आहार में घृणित, अच्छी तरह प्रकट रूप में स्थित सञ्ञा को कहते हैं। उस सञ्ञा को प्राप्त करने का इच्छुक योगी को इस तरह भावना करना होता है। शिष्यों, उपमा द्वारा सुनो - पुराने समय की बात। दो पति-पत्नी अपने छोटे बच्चे के साथ बियाबान कन्तार से गुजर रहे थे। उनका पाथेय समाप्त हो गया। वे अपने बच्चे को मार कर क्षुधा तृप्त कर सकते थे अथवा मर सकते थे। उन्होंने सोचा कि अगर जीवित रहना है तो बच्चे को मार कर खाना ही पड़ेगा। इस मार कर अपनी क्षुधा तृप्त करते हुए इस कन्तार को पार कर लें ऐसा विचार कर बच्चे को मार कर खा गये। इस प्रकार कन्तार को पार किये। उस माता-पिता ने अपने पुत्र के मांस को जो खाया वह, इस पुत्र का मांस समजाति का मांस होने के कारण, कुल वंश का ही मांस होने के कारण, कुल वंश में भी कोई छोर वाला नहीं - अपना ही सगा पुत्र होने के कारण, अत्यंत प्रिय पुत्र का मांस होने के कारण, अत्यंत दया करुणादायी हृदयवत्सल का मांस होने के कारण - बिना अग्नि का - बिना पकाया कच्चा ही मांस होने के कारण, रूक्ष भयानक मनुष्य का मांस होने के कारण, बिना नमक के ही खाने के कारण, अन्य किसी स्वाद के बिना होने के कारण, इस तरह कारणों से अत्यंत घृणास्पद था। बहुत-बहुत घृणाकारी था। तनिक भी अच्छा होने का उसमें कारण नहीं था। अच्छा नहीं था। अत्यंत घृणापूर्वक हो उस बियाबान कन्तार को पार करने के लिये खाना पड़ा।

शिष्यों, उस शिशु (बच्चे) के मांस के जैसा, उसी के समान यह खाने-पीने निगलने वाला कबळीकार आहार भी वर्षा, धूप, भय, शत्रु आदि का बिना परवाह किये श्रमपूर्वक कठोर मेहनत से जुटाना पड़ता है। इसलिए - इस कारण भी अत्यंत घृणा करने योग्य है। जुटाकर संग्रह भी कर लाया तो आहार ग्रहण करते समय मुंह से चबाकर लार-थूक पोंटा आदि

पृष्ठ – ५७६

से मिलाकर अच्छा वर्ण - अच्छी गन्धों को नष्ट कर - कुत्ते के वमन किये हुए का-सा परिवर्तित कर, विकृत कर होने की अवस्था से भी वह आहार अत्यंत घृणित-सा है। चबाकर निगलने के समय भी पित्त, कफ - कफ पिव नामक मवाद रुधिर यह चार अपशिष्ट आशय से लिपटकर होने के कारण से भी वह आहार अत्यंत घृणित होता है। निगलकर आगे आमाशय में जब पहुंचता है तब भी वह नया आमाशय कोई धोकर साफ नहीं करता। हमेशा से गंदा जूठा रहने वाला कुत्ते के आहार पात्र के समान जो कभी भी धोया नहीं जाता उसी तरह हमारा यह आमाशय जबसे जन्मे तबसे आज तक कभी भी धोया नहीं गया, अत्यंत घृणित गन्दा रहता है। इस तरह घृणित रहने वाला आमाशय के कारण भी वह भोजन अत्यंत घृणा के लायक ही है।

आमाशय में पहुंच जाने के बाद भी चाण्डाल ग्राम के निकट में ३२ प्रकार के

कृमि केंचुए आदि लिपटे हुए रहते हैं। कलबलाते - वलबलाते बुजबुजी छोड़ते रहते हैं। धातु अग्नि में सब सीझता रहता है - अत्यंत घृणित वर्ण-गंध में परिवर्तित होकर पचता है। इस तरह आमाशय के भीतर परिवर्तित होकर, पचकर बनने वाली अवस्था में भी वह आहार अत्यंत घृणित होता है। यदि बिना पचे आगे चला जावे तो पेट फूल जाता है, पेट में पूर्ण अपच आदि को उत्पन्न करता है। ऐसी हालत बनाने के कारण भी वह आहार घृणा करने लायक है। भलीभांति पचकर भी कहां सोना-चांदी बन जाता है? सोना-चांदी नहीं बनता है मेरे भाई! वस्तुतः अत्यंत घृणात्मक अपशिष्ट पदार्थ - मूत्र बन जाता है, मल बन जाता है। इस तरह वह आहार चूंकि मल-मूत्र बन जाता है - इसलिये भी तो घृणात्मक है।

उस आहार से निकलने वाली चर्बी (स्नेह) भी कोई बहुमूल्य पदार्थ बन जाता हो सो नहीं। वस्तुतः घृणास्पद केश, लोम, नख, दन्त, अस्थि, मज्जा इत्यादि बत्तीस सड़ने वाले पदार्थों को ही तो उत्पन्न करता है।

पृष्ठ– ५७७

दाद, खुजली, कुष्ट इत्यादि नानाप्रकार के रोगों को भी उत्पन्न करता है। इस तरह बहुत बुरा घृणित परिणामों को उत्पन्न करने के कारण भी वे आहार अत्यंत घृणित होते हैं। उस आहार को भीतर पेट में प्रविष्ट करने पर भी पुनः पेट में डालने पर भी - फिर बाहर ही निकालना पड़ता है। बिना निकाले हम नहीं रह सकते। निकालना ही पड़ता है। चाहे वर्षा हो रही हो, चाहे धूप पड़ रही हो, चाहे भय हो, चाहे शत्रु हों - कहीं-न-कहीं छुपकर घृणास्पद पाखाने परित्याग करना ही पड़ता है, भाई। इस तरह बिना निकाले, बाहर किये नहीं रहा जा सकता। इसलिये भी वह आहार अत्यंत घृणित है।

उस आहार के उत्तरोत्तर परिणामस्वरूप - (फलस्वरूप) नौ द्वारों से घृणित वस्तु एकत्र होने पर पघरते रहता है। बहते रहता है। इस तरह नौ द्वारों से घृणित पदार्थ बहते रहने के कारण वह आहार अत्यंत घृणास्पद है। उस आहार को जब खाने को कहते हैं तबसे लेकर नौ द्वारों से निकलते समय तक - पात्र को, हाथ को, मुंह को. काया के भीतर - बाहर को, नौ द्वारों को गंदगियों से लपेटे ही रखता है। इस तरह लिपटा होने के कारण भी वह भोजन, आहार अत्यंत घृणित ही है। वह भोजन आहार मुंह में पहुंचने के साथ ही चित्त को गंदा कर देता है। प्रकम्पित करता है। चंचल करता है। पेट आमाशय में पहुंचकर काया चित्त दोनों को ही शिथिल, भारी कर देता है। मंद कर देता है। उदास पश्चाताप भी करवाता है। विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है। इस तरह पुग्गल को दुःखी, व्यथित करता है। जीवन को भी मारता है। शुक्र अर्थात् अन्तोफोट्ठब्ब को उत्पन्न कर चित्त को भी कलुषित, थकित, प्रकम्पित कर देता है। उत्तापित कर देता है। ब्रह्मचरिय शील को भी भंग कर देता है। मिच्छाचार, दुचरित को भी उत्पन्न करता है। इन सब कारणों से भी वह भोजन आहार अत्यंत घृणित है, शिष्यों।

पृष्ठ– ५७८

इसी आहार को कारण बनाकर विभिन्न रोग-वेदनाएं उत्पन्न होती हैं। दुःख होता है। विभिन्न विवाद, झगड़ा, द्वेष, अकुशल, दुचरित - भय, शत्रुता, दुक्ख उत्पन्न होता है। यह सारा कुछ तो जो भी होता है - वह आहार के कारण होता ही है। सारा कुछ आहार ही करता है। आहार ही करता है। शिष्यों, जितना भी दुक्ख है - शेष नाम आहार के सहित इस कबळीकार आहार के कारण उत्पन्न होता ही है। लोक में जितने भी दुःख हैं वह सब उस चार आहारों के कारण ही उत्पन्न होता है। वह आहार संपूर्ण भय दुक्खों को उत्पन्न करते हैं। इसीलिये ही बुद्ध ने–

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया।
आहारातं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो।।

जो किञ्चित मात्र भी दुक्ख उत्पन्न होता है, वह सब आहार के कारण उत्पन्न होता है। (आहार के कारण संभव होता है।) आहारों का निरोध हो जाने पर किसी भी दुःख का होना संभव नहीं होगा।

शिष्यो, वह कबळीकार आहार इस तरह अनेकों आहारों दुक्खों को उत्पन्न कर सकने के कारण भी अत्यंत घृणित है। शिष्यों, इस कथित कारणों से वह कबळीकार आहार अत्यंत घृणा के योग्य है। घृणा के योग्य होने के बावजूद भी व्याधि घाव को दूर करने के लिए अत्यंत कड्डआ दवाओं को सेवन करने के समान, कन्तार पार करने के लिए अपने पुत्र के मांस खाने के समान, दीर्घायु होकर चारों इरियापथों को संतुलित कर क्लेश व्याधि रहित होने वाले कम्मट्ठान को अभ्यास कर सकने हेतु

पृष्ठ– ५७९

उस कबलीकार आहार को खाकर आश्रित होना पड़ता है। खाकर आश्रित होते हैं। खाकर आश्रित होते हैं। शिष्यों, इस आहार प्रतिकूल सञ्ञा को भावित करने के इच्छुक योगी, यह अभी जैसे बताया उसके अनुसार उस कबलीकार आहार में घृणित जुगुप्सु अवस्था, घृणा जुगुप्सु वाले कारणों को बार-बार पर्येषण करना होता है। इस तरह मनन करना, विचार करना - पर्येषणा अधिक होने पर खाने के बाद खाते समय जब खायेंगे - अतीत, वर्तमान, अनागत - तीनों काल में स्थित वह कबळीकार आहार उस योगी पुग्गल के चित्त ञाण सञ्ञा में घृणित होकर उत्पन्न होता एवं महसूस होता है। उसका चित्त ञाण सञ्ञा में घृणित होकर, महसूस होकर स्थित होता है। उस समय चित्त ञाण अत्यंत तीक्ष्ण होकर विशद होता है। निर्मल होता है। स्थिर होता है। उपचार ज्ञान को प्राप्त होता है। उस योगी पुग्गल को रसतण्हा अत्यधिक क्षीण होता है। पांचों कामगुणों में तण्हा राग भी अत्यधिक निर्बल हो जाता है। आहार को खाने-पीने, उस पर आश्रित होने के समय भी कन्तार मार्ग के मध्य पुत्र के मांस को खाने वाले लोगों के समान चाह रहित होकर - भव संसरण से मात्र पार होने के लिये ही खाकर आश्रित होता

है। **"आदीनव दस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति"** के अनुसार प्राप्त हो जाता है। आहार पटिकूल सञ्ञा भावना पूरा हुआ।

सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञा (कम्मट्ठान) को भावित करने का वर्णन

शिष्यो, सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा - इकत्तीस (३१) लोकों (समस्त लोकों) के प्रति अनासक्ति, अनभिरति को भलीभांति अनुभव कर स्थित सञ्ञा को कहते हैं। उस सञ्ञा को प्राप्त करने के इच्छुक योगी को इस प्रकार पर्येषणा करनी चाहिए। ओ... मैं जरा धर्मा हूं। बूढ़ा होना पड़ेगा ही। जरा से बचा नहीं जा सकता। व्याधि धर्मा हूं। रोगी होना ही पड़ेगा। रोगी

पृष्ठ – ५८०

होने के स्वभाव से बचा नहीं जा सकता। मरण धर्मा हूं। मृत्यु होगी ही। मरण के स्वभाव से बचा नहीं जा सकता। अरे... यह जरा व्याधि मरण मुझ अकेले को घेरे हुए नहीं है। इकत्तीस लोकों के समस्त प्राणियों को यह जरा व्याधि मरण स्वभाव घेरे हुए है। बूढ़ा होना पड़ेगा। बुढ़ापा के स्वभाव को अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। रोग व्याधि का स्वभाव भी है। रोगी होना पड़ेगा ही। इस रोगी होने के स्वभाव का अतिक्रमण नहीं कर सकते। मरण का स्वभाव ही है। मरना होगा ही। मृत्यु के स्वभाव का अतिक्रमण नहीं कर सकते। मां भी पुत्र को नहीं बचा सकती। पुत्र भी मां को नहीं बचा सकता। यह जरा व्याधि मरण नामक **अमातापुत्तिकभय** समस्त लोकों में समस्त प्राणियों को ही दबाये (सताये) हुए हैं। इस तरह बार-बार चिंतन-मनन कर, स्मरण करते हुए –

उक्खित्ता पुञ्ञतेजेन, कामरूपगतिं गता।
भवग्गतम्पि सम्पत्ता, पुन गच्छन्ति दुग्गतिं।।

ताव दीघायुका सत्ता, चवन्ति आयुसङ्खया।
नत्थि कोचि भवो निच्चो, इतिवुत्तं महेसिना।।

इस बुद्ध-वचन को भी पाळि अर्थ को पाठ कर बार-बार स्मरण करना चाहिए। स्मरण करना चाहिए। इस दोनों गाथाओं के अर्थ को रूप अनिच्च खण्ड में दिया जा चुका है।

उसके अतिरिक्त भी गर्भ शयन व जाति भय, जरा भय, व्याधि भय, मरण भय, अपाय दुक्ख भय, अतीत दुक्ख भय, अनागत दुक्ख भय, आहार परियेसन दुक्ख भय इस आठों महा भय को डरने का कारण होने से इन्हें आठ संवेग वत्थु कहते हैं। इन आठ संवेग वत्थु को भी बार-बार स्मरण करना चाहिए।

पृष्ठ – ५८१

रागाग्नि, द्वेषाग्नि, मोहाग्नि, जाति-अग्नि, जरा-अग्नि, मरण-अग्नि, परिदेव अग्नि, दुक्खाग्नि, दोमनस्स अग्नि, उपायास अग्नि, इकत्तीसों लोकों में यह ग्यारहों अग्नियां धूं-धूं कर धधकते हुए प्रज्वलित हो रहा है। मार्ग (मग्ग) से न हटाये हुए होने के कारण पुथुजन देव ब्रह्मा लोगों में भी यह सभी ग्यारहों अग्नियां विद्यमान हैं ही यह कहना पड़ता है। कहते हैं! इस तरह इकत्तीसों लोक इस ग्यारहों अग्नियों से धूं-धूं कर धधकते हुए प्रज्वलित हो रहा है - इसको बार-बार चिंतन-मनन कर स्मरण करो। स्मरण करते हुए -

सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूमितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो।।
(सगाथावग्ग संयुत्त पाळि)

सभी लोक (ग्यारह अग्नियों से) आदीपित हो रहे हैं; सभी लोक प्रधूमित हो रहे हैं; सभी लोक प्रज्वलित हो रहे हैं; सभी लोक प्रकम्पित (आठ संवेगवत्थु से) हो रहे हैं।

इस पाळि को भी पाठ कर बार-बार विचार कर स्मरण करना चाहिए।

उसके अतिरिक्त भी इकत्तीस लोकों को - जाति भय, व्याधि भय, मरण भय, सोक भय, परिदेव भय, दुक्ख भय,

पृष्ठ - ५८२

दोमनस्स भय, उपायास भय, अप्पिय सम्पयोग भय, विप्पयोग भय, यंपिच्छं न लभति तम्पि दुक्ख भयं; विवाद भय; यह भय दुक्ख दबाये हुए सता रहे हैं। संपूर्ण लोक (सभी लोक) इस भय दुक्ख में गिरे हुए हैं। चूंकि इस तरह सभी लोकों को यह भय दुक्ख दबाया हुआ है इसलिए संपूर्ण लोक इस भय दुक्ख में स्थित होकर - गिरकर - रहने को; बार-बार स्मरण करते हुए -

तण्हाय ओड्डितो लोको, जराय परिवारितो।
मच्चुना पिहितो लोको, दुक्खे लोको पतिट्ठितो॥
(सगाथावग्ग संयुत्त पाळि)

(इकत्तीसों लोकों के संपूर्ण सत्त्व लोक को) तृष्णा ओढ़कर रखा हुआ है। जरा परिआवृत्त किया हुआ है। सारे लोक मृत्यु से पिहित है। संपूर्ण लोकों के प्राणी दुक्ख में प्रतिष्ठित हैं।

इस पाळि का भी बार-बार पाठ कर स्मरण करो।

शिष्यो, इस तरह बार-बार पर्येषणा करने पर उस योगी का चित्त ञाण सञ्ञा में

उस इकत्तीस लोकों के प्रति आसक्ति टूटती है - अनासक्ति प्रकट होती है। उस योगी का चित्त ञाण सञ्ञा खांई में रहने वाली

पृष्ठ – ५८३

मछली के समान, झाड़ी में रहने वाले चिड़िया के समान, बिल में रहने वाले सर्प के समान। संपूर्ण इकत्तीसों लोकों में अनभिरति साफ-साफ प्रकट होकर स्थित हो जाता है। उस समय उस पुग्गल का चित्त ञाण अत्यंत तीक्ष्ण विशद हो जाता है। अत्यंत निर्मल, स्थिर हो जाता है। उपचार झान को प्राप्त होता है। उस योगी का भवतण्हा निर्बल हो जाता है। इकत्तीस लोकों में अनभिरति होकर लोक से बाहर निकलने के धर्मों में प्रसन्न रहने लगता है, अभिरत रहने लगता है।

सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा कम्मट्ठान भावन करने का वर्णन समाप्त हुआ।

शिष्यो, रूक्ष अनिच्च जैसे मरण को देखना - पर्येषणा करना जिस तरह एक मरणानुस्सतिसमथकम्मट्ठान है - वैसे दुक्ख (जैसा) वाला जाति जरामरण आदि भयों का पर्येषणा करना भी एक सब्बलोकेअनभिरतिसञ्ञासमथकम्मट्ठान ही है। मरणानुस्सति कम्मट्ठान सूक्ष्म अनिच्च नहीं है। रूक्ष अनिच्च मात्र होने के कारण आरम्मण निमित्त भी नहीं प्राप्त हो पाता। अप्पना झान भी नहीं प्राप्त होता। केवल निर्मल चित्त ञाण स्थिर उपचार झान उत्पन्न कर सकने के जैसा, उसी तरह यह सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा कम्मट्ठान भी दुक्ख-सूक्ष्म नहीं। केवल दुक्ख-रूक्ष ही होने के कारण आरम्मण निमित्त प्राप्त कराने वाला नहीं होने के कारण - मग्ग अप्पना भी बिना उत्पन्न हुए झान अप्पना को भी बिना पहुंचे केवल चित्त ञाण तीक्ष्ण निर्मल स्थिर उपचार झान को ही उत्पन्न कर सकता है। आहारेपटिकूलसञ्ञाकम्मट्ठान भी आरम्मण निमित्त प्राप्त कराने योग्य धर्म नहीं होने के कारण अप्पना झान को उत्पन्न नहीं कर सकता। केवल झान मात्र को ही उत्पन्न कर सकता है। शिष्यों, अनिच्च-दुक्खों में सभी प्राणी द्वारा ही अनुभव किया जा सकने वाला अनिच्च-रूक्ष, दुक्ख-रूक्ष समथ कम्मट्ठान जैसे कि उत्पन्न होने के लिए है - वैसे अनत्त में मग्ग अप्पना को उत्पन्न नहीं कर सकने वाला समथ कम्मट्ठान होने हेतु अनत्त-रूक्ष नहीं होता है।

पृष्ठ – ५८४

शिष्यो, भगवान ने सावत्थि के जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को सम्बोधित कर यह कहा :–

अच्छरासङ्घातमत्तम्पि चे भिक्खवे भिक्खु सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञं भावेति, अयं वुच्चति भिक्खवे भिक्खु अरित्त झानो विहरति, सत्थुसासनकरो ओवादपटिकरो अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति, को पन वादो येन बहुली करोतीति।

एकङ्गुत्तर पाळि - आहारे पटिकूल सञ्ञा को भी इसी तरह देशित किया गया है।

इसलिये शिष्यो, तुम लोग सर्वोत्तम को जानने की इच्छा वाले ध्यान से अशून्य माने जाने के लिये, शास्ता का आज्ञाकारी माने जाने के लिए, शास्ता के उपदेशानुसार चलने वाला माना जाने के लिये और यह भी माना जाने के लिये कि तुम राष्ट्र पिण्ड को व्यर्थ नहीं खाते हो - मेरे बताये अनुसार - इस सञ्ञाकम्मट्ठानों को भी परिश्रमपूर्वक बहुलीकृत करो। इस अच्छरासङ्घात सञ्ञा सुत्त में सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञा नामक पद को "सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा, सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा कम्मट्ठान को - चे भावेति - यदि भावित करोगे" यह अर्थ करना। शेष कसिण सुत्त के अनुसार ही समझना।

इति सञ्ञाभावना नयो

शिष्यो, **दस कसिण, दस असुभ, दस अनुस्सति, चार ब्रह्म विहार, चार आरुप्प, दो सञ्ञा इस तरह कुल चालीस समथ कम्मट्ठानों को किस तरह भावित किया जाय इसकी तैयारी करने की विधि यहां पर समाप्त हुआ।**

पृष्ठ– ५८५

आरब्भथेव साधवे इमिनाव नयेन अहं वो पाटिभोगो झानाधिगमाय, तं किस्स हेतु, स्वाखातत्ता साधवे तथागतेन धम्मस्स, मया च अनुसङ्घातत्ता तथागतदेसित नयेनाति। (सेक्ख्यभासित, पाटिभोगसुत्त)

साधवे! तुम शिष्य लोग - इन देशित विधियों से ही आरब्भ करो - प्रयत्न द्वारा शुरू करो। मैं तुम लोगों को उपचार अप्पना झानों की प्राप्ति हेतु वादा करता हूं। इस तरह दृढ़तापूर्वक दावा करना क्योंकर है? साधवे! समथकम्मट्ठान धम्म के सत्य के सहारे इसे प्राप्त होने के कारण तथागत नाम प्राप्त भगवान ने भलीभांति आख्यात किया है। मैं उन तथागत द्वारा देशित नियमानुसार ही पुनः वैसे ही देशित कर बताता हूं। इसलिये दृढ़ता से दावा करके कहता हूं।– पटिभोग सुत्त समाप्त।

अभिञ्ञाण उत्पन्न होने हेतु झान को धीर करना

शिष्यो, इस ४० समथों में दस कसिणों में प्राप्त झान ही केवल अभिञ्ञाण को उत्पन्न कर सकते हैं। शेष कम्मट्ठान अभिञ्ञाण को उत्पन्न नहीं कर सकते। कसिणों द्वारा चारों-पांचों रूपसमापत्तों को पूरा प्राप्त होने पर ही–

पृष्ठ– ५८६

आकिञ्चञ्ञं पत्थयन्ता, पारिवारेन्ति मं सदा।
पथवीकम्पका एते, सब्बेव नभचारिनो।
- **चतुब्बीस सहस्सेहि,** छादितं होति अम्बरं।।

इत्यादि द्वारा **प्रशंसित** सारिपुत्त-सत्त्व - सुरुचि ऋषि आचार्य के चौबीस हजार शिष्यों के जैसे पूर्व-पूर्व के अभी से निकटवर्ती जन्मों में, अभिञ्ञा को ध्यायित झान प्राप्त पुग्गलों

ने अभिञ्ञा को उत्पन्न कर सके। पूर्व से अध्यायित मंद ज्ञानी को - आठ-नौ झान समापत्त को ही प्राप्त होने से - अभिञ्ञा को उत्पन्न कर सकते हैं, १० कसिणों से आठ-नौ समापत्तों को प्राप्त योगी - इद्धिविध, दिब्बसोत, परचित्तविजानन, पुब्बे निवासानुस्सति, दिब्बचक्खु नामक पांचों पभिञ्ञा को भी प्राप्त हो सकने के लिये करते हैं। उत्पन्न करते हैं। शिष्यों, उन अभिञ्ञाओं को प्राप्त करना चाहने वाले उत्पन्न करने के इच्छुक को - जैसे जंगल काटने के लिये जाने वाला लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी को खूब पजाता है, धार देता है, तेज करता है - ठीक वैसे ही झान चित्त को, ञाण को तीक्ष्ण-से-तीक्ष्णतर करना होता है। जैसे दूर के दृश्य को साफा-साफ देखने के लिये अपने दूरबीन की कांच को कोई वैज्ञानिक खूब स्वच्छ साफ निर्मल करता है - वैसे ही उपयोगी को अपने झान चित्त को स्वच्छ से स्वच्छतर - निर्मल-से-निर्मलतर करना होता है। झान स्थिर रखना होता है।

झान थीर करना (झान का खेल) - चतुक्क विधि में - आठ समापत्त, पञ्चक विधि में नौ समापत उन आठ नौ समापतों को पठम झान से नेवसञ्ञानासञ्ञायतन झान तक लगातार केवल अनुलोम-ही-अनुलोम ही बार-बार ध्यान करना होता है। पुनः नेवसञ्ञानासञ्ञायतन झान से इस प्रथम झान तक केवल ऊपर से नीचे - प्रतिलोम-ही-प्रतिलोम बार-बार ध्यान करना होता है। उसके बाद पुनः अनुलोम-प्रतिलोम द्वारा भी अनेकों बार, बार-बार ध्यान करना होता है। दस कसिणों को भी उसी तरह से पथवी कसिण से प्रारम्भ कर आकास कसिण तक लगातार केवल अनुलोम-ही-अनुलोम अनेकों बार ध्यान करना होता है। आकास कसिण से पथवी कसिण तक

पृष्ठ – ५८७

बार-बार लगातार क्रमवार प्रतिलोम-ही-प्रतिलोम अनेकों बार ध्यान करना होता है। फिर पुनः अनुलोम-प्रतिलोम दोनों दिशा में अनेकों बार ध्यान करना होता है।

इस तरह झान कसिणों को अनुलोम, प्रतिलोम तथा अनुलोम-प्रतिलोम द्वारा ध्यान करने में झान को ही - भी एक को पार कर एक ध्यान करना पड़ता है। कसिण को भी एक को पार कर, एक का ध्यान करना पड़ता है। झान और कसिण दोनों को मिलाकर भी - एक को पार कर एक ध्यान करना पड़ता है। दोनों झान और कसिण को मिलाकर एक को पार कर एक ध्यान में प्रविष्ट होना - पथवी कसिण में पठम झान को प्रविष्ट होकर - उससे उठकर दुतिय झान आपोकसिणों को छोड़कर आगे पार कर तेजोकसिण में ततिय झान को प्रविष्ट होना होता है। उसके बाद उत्तरोत्तर आगे चतुत्थ झान वायो कसिणों को छोड़कर पार कर (बीच में छोड़कर) नील कसिण में पञ्चम झान को प्रविष्ट होना होता है। उसके पश्चात आगे आकासानञ्चायतन झान को छोड़कर, पार कर विञ्ञाणञ्चायतन झान को प्रविष्ट होते हैं। उसके आगे आकिञ्चञ्ञायतन को छोड़कर उसे पार कर नेवसञ्ञानासञ्ञायतन को प्रविष्ट होते हैं। उसके पश्चात उस झान से उठकर पीछे की ओर प्रतिलोम उतरते हैं। तब आकिञ्चञ्ञायतन झान को प्रविष्ट होते

हैं। उसके बाद विञ्ञाणञ्चायतन को छोड़कर, पार कर लोहित कसिण को हटाकर आकासानञ्चायतन झान में प्रविष्ट होते हैं। उसके बाद पञ्चम झान नील कसिण को छोड़कर आगे पार कर वायो कसिण में चतुर्थ झान, आगे - तेजो कसिण को छोड़कर, पार कर आपोकसिण में द्वितीय ध्यान को प्रविष्ट होते हैं। उसके बाद पथवी कसिण में प्रथम ध्यान को प्रविष्ट होकर पूर्व की विधि के अनुसार ऊपर की ओर पुनः प्रविष्ट होते जाते हैं।

कसिण झान

(पथवी) (प्रथम)

आपो ------ द्वितीय

(तेजो) (तृतीय)

वायो ------ चतुर्थ

(नील) (पंचम)

पीत ------ आकाशा

(लोहित) (विञ्ञाणा)

ओदात ------- आकिञ्च

(आलोक) (नेवसञ्ञाना)

आकाश

इस तरह करने के बाद - नीचे के छः कसिण का रास्ता पूर्ण कर वश में करने पर ऊपर के कसिण छः रास्ता भी पूर्ण कर वश में करने के लिए नील कसिण से लेकर ऊपर के कसिणों में पहले की विधि के अनुसार प्रविष्ट होना होता है। करना होता है। नील, पीत - यह दोनों ऊपर-नीचे दोनों ओर में ही, छः कसिण पूरा करने के लिए गिनती में रहेंगे। शिष्यों, यदि अनजान में किसी एक कसिण को छोड़कर बिना पूरा किये - बिना वश में किये ही रहें - तो उस कसिण द्वारा - खिप्पनिसन्ति होने के लिये

पृष्ठ– ५८८

किया जाने वाला - स्थानों में खिप्पनिसन्ति बिना उत्पन्न हो सके ही रह सकता है। खिप्पनिसन्ति नामक प्रभाव निर्मित करते समय क्षिप्रता से पूर्ण कर सकने को कहते हैं। इसलिए १० (दसों) कसिणों को ही पूर्ण कर वश में पूर्ण किया जाता है। छुटने ना पावे। आकासानञ्चायतन झान को प्रविष्ट होने की इच्छा के समय आकास कसिण के साथ संकल्प कर रहने पर शेष को - अचानक ही किसी एक कसिण को हटा पविष्ट

हो सकते हैं। ऊपर के तीन अरूप झानों को कसिण से संबंध नहीं है। कसिण से नहीं जाया जाता। प्रत्येक झान को ही प्रविष्ट होकर, उठकर झान अङ्गों को भी पर्येषणा कर - **पर्येषणा कर** - पूरा होने से, बाद-बाद के झान को प्रविष्ट होना होता है। प्रविष्ट करना होगा। इस तरह करने पर पांचों 'वसी' पर अधिकार होगा। शिष्यों, इस तरह वर्णित किया हुआ झान प्रवेश करने - खेलने की विधिमात्र का वर्णन ही है। शुरू से अंत तक न होकर बीच से ही तोड़कर ध्यान में प्रविष्ट हो जाना - दो के बाद या तीन के बाद ही प्रविष्ट हो जाना - इस प्रकार अपनी इच्छानुसार जिस ध्यान को चाहें उसको प्राप्त कर प्रविष्ट हो जाना - करते हैं। ऐसे खेला जाता है। झान और कसिणों में अध्ययन कर उस पर अधिकार कर लेना ही मुख्य सार बात है।

यह झान थीर करना - खेलना हुआ

पांच अभिञ्ञाण

शिष्यो, इस तरह अट्ठारह अवस्थाओं से झान को सीखने करने को जान लेने पर झान चित्त ञाण अत्यंत तीक्ष्ण हो जाता है। शक्तिशाली हो जाता है। स्थिर हो जाता है। 'वसी' अर्थात् वश में हो जाता है। अत्यंत स्थिर होता है। निर्मल होता है। उस समय –

एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे - पे - ठिते आनेञ्जप्पत्ते इद्धिविधाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति, सो अनेक विहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति एकोपि हुत्वा बहुधा होति।

इत्यादि से देशित है। एक होकर अपने को सैकड़ों हजारों निर्मित कर सकना - धरती में गोता लगा लेना - आकाश में उड़ना इत्यादि

पृष्ठ – ५८९

विभिन्न ऋद्धियां को उत्पन्न कर सकते हैं। चेतोवसीपत्त - चित्त की कामना के अनुसार पूर्ण कर सकने की ओर पहुंचा जा सकता है।

शिष्यो, उस चेतोवसीपत्त चित्त की चाहना के अनुसार पूर्ण कर सकने तक पहुंचने वाला ऋद्धिमान पुग्गल अपने आपको एक होकर सौ हजार निर्मित करना चाहे - मान लो सौ निर्मित करना चाहे :– विज्जाधर लोग दवा जगाने के समान - प्रभाव शक्ति को जगाकर सर्वप्रथम पथवी कसिण में शक्ति जागृत प्रथम झान को क्षणभर में प्रविष्ट होकर, जगाकर, उठकर मैं सौ निर्मित करूंगा, होऊंगा ऐसा संकल्प कर पर्येषण करने परिकम्म को पूर्ण कर अभिञ्ञापदक पञ्चम झान को पुनः क्षणभर में ही प्रविष्ट कर, उठकर "सतं होमि" मैं सौ होऊं - ऐसा अधिष्ठान कर देता है। आदेश देता है। उस अधिष्ठान के अभिञ्ञाण जवन पात होते ही सौ हो जाता है। इस अधिट्ठान अभिञ्ञाण जवन वीथि पात होना को ही एक हजार निम्मित रूप को आरम्मण कर "अवज्जन, परिकम्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभु" नामक काम चित्त उत्पन्न होकर गोत्रभु के दूसरी ओर में रूप पञ्चम

ज्ञान अभिञ्ञाण जवन एक बार होकर - उसके आगे - बाद में - भवङ्गपात होकर चला जाता है। बाद में अभिञ्ञाण वीथि भी उसी विधि के समान ही समझना। फिर भी यदि एक हजार निर्मित नहीं हो पाया - तो इसी विधि से दो-तीन वार करना होता है। निर्मित होता ही है।

आयुष्मान चूळपन्न इत्यादि के समान - एक सहस्त्र भी, उससे अधिक भी, एक ही स्वभाव वाले, भिन्न स्वभाव वाले, यदि निर्मित करना चाहें तो इतनी संख्या का भिक्षु समूह प्रथम आयु वाले अमुक रंग - आकृति, वस्त्र चीवर, कार्य के साथ उत्पन्न होवें; अमुक संख्या में भिक्षु समूह - दुतिय आयु ऐसा - वर्ण, आकृति, वस्त्र चीवर - कार्य के साथ उत्पन्न होवें - इस तरह अपनी इच्छानुसार निश्चित कर पर्येषणा परिकम्म को करके अधिट्ठान करना होता है। अधिष्ठान किये अनुसार उत्पन्न होते हैं। उस तरह निर्मित करते समय - मैं कब तक इस तरह निर्मित कर रहूंगा उस अवधि को भी समय काल का भी पहले से संकल्प कर निर्मित करना होता है। अपना पूर्व संकल्पित अवधि पूर्ण हो जाने पर वह प्रभाव शक्ति शांत होकर स्वयं केवल एक ही बच रहते हैं। इस तरह यदि संकल्पित अवधि के पूर्व ही - बीच में ही अपना प्रभाव यदि पूर्ण करना चाहें तो

पृष्ठ – ५९०

ज्ञान को प्रविष्ठ होकर उठता है। मैं अकेला ही हो जाना चाहता हूं - यह संकल्प कर पर्येषणा कर ज्ञान को प्रविष्ठ होकर उठकर– "एको होमि" मैं अकेले होऊं ऐसा अधिष्ठान करना होता है। अधिष्ठान अभिञ्ञाण जवन पात होते ही - सभी निर्मित रूप अन्तर्धान हो जाते हैं। वह पहले का-सा अकेला बच रहता है।

आयुष्मान मोग्गलान - नन्दोपनन्दनाग को वश में करने के समय नाग का रूप, गरूड़ का रूप धारण करने के समान; बर्मा में ट् यो (सुवर्ण भूमि) नगर के भीतर मनुष्यों को पकड़कर खाने के लिये दक्षिण के सागर से निकलकर आने वाले पांच सौ अमनुष्य - यक्षों को आयुष्मान सोण थेर ने एक हजार यक्षों का रूप निर्मित कर पीछा करता-सा बनाने के समान; स्वयं भी नाग का, गरूड़ का रूप निर्मित करना चाह कर जब चाहें तब ज्ञान में प्रविष्ट होकर, उठकर मैं नाग होऊंगा, मैं गरूड़ होऊंगा, मैं यक्ष होऊंगा, इत्यादि से संकल्प करने, परिकम्म को करके, पुनः ज्ञान को प्रविष्ट होकर उठकर मैं नाग होऊं, मैं यक्ष होऊं, इत्यादि से अधिष्ठान को करना होता है। प्रत्येक अधिष्ठान के अनुसार होता है। इस तरह स्वयं अपने आपको बिना प्रकट किये - अपने से भिन्न पृथक नाग, गरूड़, यक्ष आदि बनाना चाहूं - निर्मित करना चाहूं - अमुक स्थान पर नाग होऊं। गरूड़ होऊं - यक्ष होऊं तो - ज्ञान में प्रविष्ट होकर परिकम्म कर पुनः ज्ञान में प्रविष्ट होकर - उठकर अधिष्ठान करना होता है। अधिष्ठान के अनुरूप ही होता है।

शिष्यो, चाहे कोई भी क्यों न हो - अपनी इच्छानुसार यदि निर्मित करना चाहे तो इस विधि के अनुसार सर्वप्रथम शक्ति (प्रभाव) जगाने वाला ज्ञान को प्रविष्ट होकर - उठकर अपनी इच्छित लक्ष्य पर्येषणा परिकम्म को कर - अभिञाण का मूल पुनः ज्ञान

को प्रविष्ट होकर - उठकर अपनी इच्छानुसार अधिष्ठान को किया जाता है। 'ऐसा हो' यह संकल्प कर दिया जाता है। जब-जब अधिष्ठान कर संकल्प कर देंगे - तब-तब वैसे ही पूर्ण होता है। विशेष रूप से - जैसे पानी में डूबते-उतराते हैं वैसे पृथ्वी पर भी डूबना-उतराना चाहें तो आपोकसिण में प्रविष्ट होकर - इस स्थान पर जल हो जाय - ऐसा अधिष्ठान द्वारा निर्मित कर करना होता है। दीवाल को, स्तंभ को, प्राचीर को, धरती को भेदकर - आकाश में चलने के समान बिना

पृष्ठ – ५९१

टकराये निकल जाना चाहने पर आकास कसिण में प्रविष्ट होकर अपने जाने वाले गन्तव्य स्थान पर - यहां इस स्थान पर आकाश हो जावे - ऐसा अधिष्टान निर्मित कर उसमें से होकर, भेदकर जाया जाता है। पक्षी के समान आकाश में उड़कर पैर से दबाते हुए जाना चाहें तो - पथवी कसिण में प्रविष्ट होकर अपने जाने की इच्छा वाला - आकाश में इस स्थान पर धरती हो - ऐसी अधिष्ठान निर्मित कर जाया जाता है। इस तरह पैर से दबाकर नहीं जाना चाहकर कदम-कदम न जाना चाहकर - मूर्ति के भीतर - देवता की मूर्ति निकलने जैसा शांतिपूर्वक जाने की इच्छा से तो - वायो कसिण में प्रविष्ठ होकर मैं आकाश में उड़कर जाऊं - ऐसा अधिष्ठान को करके जाना होता है। उस तरह-जाने में स्वाभाविक चलने के समान ही धीरे-धीरे जाना चाहता हूं - ऐसा होने पर मेरा चित्त काया के समान धीरे-धीरे होवे - ऐसा चित्त को रूप में प्रविष्ट कर झुकाने को भी किया जाता है।

रोहितस ऋषि - दौड़ने के समान - इच्छित क्षेत्र तक शीघ्रता से क्षणमात्र में जाना चाहने पर - मेरी काया चित्त के समान ही हल्का तथा तीव्रगामी हो जावे - ऐसा रूप को चित्त में प्रविष्ट कर देना, झुका देना, को भी करना होता है। सिंहल द्वीप का धम्म दिन्न थेर अपण्णक सुत्त को देशित करते हुए परिषद को, धरती को चीड़कर निरय लोक को दिखाने के समान; देव लोकों को भी दिखाने के समान; पूर्व के संकिच्च ऋषि आचार्य - ब्रह्मदत्त राजा को, निरयों को चीड़कर दिखाने के समान– "सुचिण्णस्स फलं पस्स, इन्दो देवा सब्रह्मका" ऐसे - देव ब्रह्मा लोकों को भी देख सकने लायक दिखाकर - दिखाने के समान; दिखाना चाहने पर आकास कसिण में प्रविष्ट होकर इतनी-सी धरती क्षेत्र आकाश हो जावे, यह वस्तुएं प्रकट हो जावें, दिखें - इस तरह अधिष्ठान किया जाता है। शिष्यों, इस तरह तरह-तरह के प्रभाव शक्ति को निर्मित करना, दिखाना, उत्पन्न करना, इन सबमें कसिणों के शक्ति सामर्थ्य को, प्रभाव को जानकर अपनी कामना अनुसार किया जाता है। कसिणों का सामर्थ्य इस प्रकार है :–

१. पथवी कसिण के सामर्थ्य द्वारा सैकड़ों, हजारों निर्मित करना, नाग गरूड़ की आकृति निर्मित करना, आकाश में, जल पर धरती निर्मित कर कदम-कदम जाना; खड़ा होना, बैठना, सोना आदि करना; वृक्ष, वन, जंगल, पर्वत, धरती, घर, विहार, विमान इत्यादि वस्तुएं

पृष्ठ– ५९२

जल वर्षा करवाना, हल्की वस्तु को भारी करना, किसी एक वस्तु को आदेश देकर - गतिमान कर - नहीं प्राप्त हो सके ऐसा दृढ़ कर देना आदि को पूर्ण कर सकता है।

२. आपोकसिण के सामर्थ्य (प्रभाव, शक्ति) से पृथ्वी में गोता लगाना, वर्षा करवाना, समुद्र निर्माण करना, प्राकृतिक जल को तेल, दूध, शहद आदि निर्मित करना, काया से जल निकालना, पृथ्वी, पर्वत, प्रासाद आदि को हिला देना इत्यादि उत्पन्न होता पूर्ण होता है। शिष्यों, पृथ्वी, पर्वत, प्रासाद इत्यादि को हिलाते समय आपोकसिण में प्रविष्ट होकर उस आपोकसिण से हिलाने वाली वस्तु को जल पर हल्का होने के समान तैरकर रहने वाले उपले (कंडे) के समान - हो सकने योग्य बनाकर हिलाया जाता है। पूर्व में महानाग थेर का सगा भतीजा संघ रक्खित सामणेर - सामणेर होने के दिन - मुंडन के समय में ही अरिहन्त होकर शक्ति सामर्थ्य से पूर्ण होकर उसी दिन शक्र महाराज के सहस्त्र योजन उच्च - वेजयन्ता प्रासाद को जब हिलाया - तब पथवी कसिण में प्रविष्ट होकर - हिलाकर भी नहीं हिला पाया तब देव-कन्याओं के हंसकर व्यंग करने पर वे पुनः अपने गुरू के पास वापस आकर पूछे - तब पुनः उस प्रकार आपोकसिण में प्रविष्ट कर जब हिलाये, प्रकंपित किये तब वह प्रासाद गिरने का-सा हिलने लगा। कंपित होने लगा। वह देव-कन्याएं उन्हें घेरकर क्षमा मांगी।

३. तेजो कसिण के सामर्थ्य से, अपनी काया से, अन्य किसी वस्तु से धुआं निकालना, अग्नि की लपटें निकालना, अग्नि वर्षा करना, अपने प्रभावी अग्नि से अन्य के प्रभावी अग्नि को समाप्त करना, जिसे जलाने की इच्छा हो उसे जला सकना, दिब्बचक्षु के लिये प्रकाश को करना, परिनिब्बान के समय अपनी काया को तेजो धातु से जला देना इत्यादि पूरा किया जा सकता है।

४. वायोकसिण की सहायता से, शक्ति सामर्थ्य से, वायु को वेग से बहाना, भारी वस्तु को हल्का करना, आंधी-तूफान प्रकट करना इत्यादि को उत्पन्न किया - पूरा किया जा सकता है।

पृष्ठ– ५९३

५. नील कसिण की शक्ति सामर्थ्य से - नील वर्ण के वस्तुओं को निर्मित करना, नीलमणि निर्मित कर देना, अन्धकार निर्मित कर देना, इत्यादि को उत्पन्न कर सकते - पूर्ण कर सकते हैं।

६. पीत कसिण के प्रभाव से पीत वर्ण, स्वर्ण वर्ण वस्तु को निर्मित करना, स्वर्ण - निर्मित कर देना, इत्यादि उत्पन्न कर पूरा किया जा सकता है।

७. लोहित कसिण के सामर्थ्य से, शक्ति से, लाल वर्ण वस्तुओं का निर्माण कर सकना, लाल मणि निर्मित कर सकना इत्यादि पूर्ण किया जा सकता है।

८. ओदात कसिण के सामर्थ्य बल से श्वेत रंग की वस्तुओं को निर्मित किया जा सकता है। रौप्य अर्थात् चांदी को निर्मित करना घोर अन्धकार को हटाकर साफ कर देना, दिब्बचक्षु को देखने में - प्रकाश को करना, इत्यादि पूरा किया जा सकता है।

९. आलोक कसिण के सामर्थ्य बल से अपनी काया से, दूसरे अन्य वस्तुओं से आलोक, प्रकाश निःसृत करवाना, आलोकित रूप को निर्मित करना, प्रकाश करना, अन्धकार को हटा देना, दिब्बचक्षु को देखने में प्रकाश को करना इत्यादि उत्पन्न कर पूरा करते हैं।

१०. आकास कसिण की शक्ति सामर्थ्य से आच्छादित वस्तु को प्रकट रूप में दिखने योग्य साफ-साफ प्रकट होने योग्य, धरती के भीतर, पर्वत के भीतर में आकाश निर्मित कर वहां चारों इरियापथों को कर सकना, प्राचीर, दीवाल की दूसरी ओर बिना स्पर्श किये आर-पार चले जाना इत्यादि पूर्ण करते हैं।

जिस वस्तु को नहीं दिखने देना चाहें उसे दृष्टि से ओझल कर देना, छोटी वस्तु को बड़ा कर देना, बड़े को छोटा करना, निकट की वस्तु को दूर - दूर की वस्तु को निकट करना, जिनकी स्मृति बिस्मृत करना चाहें उन्हें विस्मृत कर देना इत्यादि - तो दसों कसिणों का सामर्थ्य ही है। ऐसा करके पूर्ण किया जा सकता है।

विभिन्न ऋद्धि निर्मित कर दिखाने का **इद्धिविध अभिञ्ञाण** पूरा हुआ। (१)

पृष्ठ – ५९४

वह इद्धिमान पुग्गल देवताओं के समान सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राणियों यथा - जूं, लीख आदि आवाज को सुन सकता है। बहुत दूर की आवाजों को भी सुनने की इच्छा होने पर सुन सकता है। यथा देवलोक में चल रही वार्ता को यदि वह सुनना चाहे तो वह हल्का भारहीन कसिणों को उस दिशा में जहां की ध्वनि सुननी हो प्रवाहित कर फैलाता है, शक्ति को जगाने वाले ज्ञान को प्रविष्ट होकर, उठकर– "स्वाभाविक मनुष्य की ध्वनियों को जैसे सुनता हूं वैसे ही इन देवताओं की ध्वनि को मैं सुनूं" ऐसा संकल्प कर परिकम्म को करता है। पुनः अभिञ्ञापादक ज्ञान को प्रविष्ट होकर - उठता हैं तो इन देवताओं की ध्वनि को "मैं सुनूं" इस अधिष्ठान को करता है। अधिष्ठान अभिञ्ञाण जवन पात होने के साथ-ही-साथ सुनाई पड़ने लगता है। इस तरह यदि नहीं सुन पड़ा तो इसी विधि के अनुसार पुनः बार-बार अधिष्ठान करते हैं। सुनने लगता है। खटमल, जूं, घुन इत्यादि कोई भी ध्वनि क्यों न हो वह योगी सुनना चाहे तो इसी प्रकार से करना होता है। इस पर सुनाई पड़ने पर भी यदि कहीं अन्य भाषा में हो जिसे हम न जानते हों तो मात्र ध्वनि सुन सकेंगे - भाषा नहीं समझ पायेंगे। वे क्या कह रहे हैं यह कुछ भी समझ में नहीं आवेगा। ऐसे समय में परचित्त विजानन ञाण द्वारा उस भाषा में बात करने वाले के चित्त की भावना को अपनी इच्छानुसार जानने के लिए करके ध्वनि के अभिप्राय को भी जानना होता है। इस तरह जिसे स्वाभाविक कान से

नहीं सुन सकते उसको - उन ध्वनियों को सुन सकने वाला दिव्य श्रोत ज्ञान, अर्थात् - दिब्ब सोत अभिञ्ञाण प्राप्त होता है। दिब्ब सोत अभिञ्ञाण समाप्त हुआ। (२)

वह इद्धिमान पुग्गल दूसरे के चित्त को जब जानना चाहता है तब आदिकम्मिक पुग्गल (जो अभी शक्ति को वश में नहीं किया है), दिब्ब चक्खु अभिञ्ञाण द्वारा अन्य दूसरों के हृदय रुधिर को सर्वप्रथम देखकर वह रुधिर लाल होने पर राग चित्त ही, काला होने पर दोस चित्त ही, पीला होने पर श्रद्धा चित्त ही, श्वेत होने पर प्रज्ञा चित्त ही - इत्यादि द्वारा पीछे रूपखण्ड में कह चुके अनुसार हृदय रुधिर को देखकर चित्त को भी कैसा चित्त है - यह सामान्य अनुमान द्वारा जानकर इस व्यक्ति के चित्त के विचार को मैं जानूं ऐसा लक्ष्य (संकल्प) कर परिकम्म को करके अभिञ्ञाण पादक ज्ञान को प्रविष्ट होकर, उठकर इस व्यक्ति का चित्त विचार को मैं पहचानूं ऐसा अधिष्ठान को किया जाता है।

पृष्ठ– ५९५

चित्त के विचारों को जानने वाला अधिट्ठान अभिञ्ञाण जवन पात होता है - जानता है। इस तरह यदि प्रथम बार में नहीं जानता है तो इसी तरह बार-बार करना होता है। जानता है। इस तरह बार-बार अधिक बार जानता है - जानकर वश में कर लेता है तब हृदय रुधिर को देखते रहना नहीं रहता। सीधे चित्त को ही देखकर जान सकता है। बिना हृदय रक्त के अरूप भव चित्त को भी जान सकता है।

चेतोपरिय अभिञ्ञाण भी कहा जाने वाला **परचित्तविजानन** अभिञ्ञाण पूरा हुआ। (३)

वह इद्धिमान पुग्गल अपने पूर्व-पूर्व के प्राप्त जन्मों को जानने की इच्छा करता है तब - तेजो, ओदात, आलोक - ऐसा तीनों प्रकाश कसिणों में किसी एक में शक्ति जागृत करने वाले ज्ञान को प्रविष्ट होकर - उठकर अब से लेकर अपने दूध पीते समय तक अपने जन्म लेने के समय तक पीछे की ओर लगातार अपने रहे हुए, किये हुए, कहे हुए - संपूर्ण को परिकम्म चित्त द्वारा ही पर्येषणा कर स्मरण करता है - जाता है। दूध पीने के समय तक परिकम्म चित्त में साफ-साफ याद आ सकता है। उसके पीछे भी मूल तक सरक-सरक कर स्मरण करना होता है। उसके बाद नहीं जान सकने वाले स्थान में पहुंचने पर इस जन्म के समय से गर्भ में प्रतिसन्धि करने के समय तक के समयों को "मैं जानूं" ऐसा लक्ष्य कर परिकम्म को करके अभिञ्ञापादक ज्ञान को प्रविष्ट होकर उठकर - इस प्रसव के समय से गर्भ प्रवेश प्रतिसन्धि तक मेरे आने वाले क्रम को मैं जानूं - "मुझे स्मरण हो" इस तरह का अधिष्ठान करने को किया जाता है। जानने वाला **अधिष्ठान अभिञ्ञाण** जवन पात होकर जानता है। उसके बाद - आगे (जन्म के पहले) **मैं किस जन्म से,** किस अवस्था से आया था। मैं जिस जन्म से आया था उस पूर्व जन्म को जानूं - स्मरण हो आवे ऐसा परिकम्म कर ज्ञान को प्रविष्ठ होकर उठकर अधिष्ठान को करना होता है। उस समय प्रतिसन्धि से मूल की ओर सरकते हुए पूर्व जन्म को जान सकने वाला स्मरण हो आने वाला अधिष्ठान अभिञ्ञाण जवन पात होता

है। यदि नहीं जान पाये, स्मरण नहीं हो आया तो बार-बार ज्ञान प्रविष्ट कर - कर अधिष्ठान करना होता है। जानते हुए वह स्मरण हो आता है।

पृष्ठ – ५९६

इस वर्तमान जन्म में अपने स्वयं की उत्पत्ति-विनाश के संबंध में संपूर्ण को जिस प्रकार जानते हैं - वर्तमान जीवन में घटित स्वयं से संबंधित समस्त घटनाओं को जानते हैं वैसे ही - अपने पूर्व जन्म की उत्पत्ति-विनाश तथा जीवन की संपूर्ण घटनाओं को देख लेंगे, सब कुछ स्मरण हो आवेगा। इसी प्रकार इसी विधि से पूर्व-पूर्व के जन्मों को भी जानने के लिये, स्मरण हो सकने के लिये पीछे की ओर पुनः लौटकर स्मरण कर जानने के लिए करके जाना होता है। उस प्रकार जाते समय अपने स्वयं का चित्त ञाण जितना तीक्ष्ण होगा - उतने ही अनेकों जन्म, अनेकों कल्प स्मरण होकर याद आ सकता है - जान सकते हैं। बुद्ध सासन के बाहर के ऋषि लोग जब स्मरण करते हैं तब सबसे विशद-विस्तृत ञाण वाला पुग्गल ४० कल्पों तक याद कर सकता है। स्मरण कर सकता है। अरिहन्त पुग्गल अपने व्यादेश प्राप्त कर पारमी पूरा कर रहे उन समस्त काल पर्यंत को स्मरण कर जान सकते हैं। सब्बञ्ञु बुद्धों को असङ्ख्येय्य कल्पों - अनन्त कल्पों तक याद आती है। जान सकते हैं। तीक्ष्ण विस्तृत चित्त ञाण वाले पुग्गल लोग अपने भव क्रम को ही नहीं अन्यों के पुराने भव क्रमों (जन्मों) को भी जान सकते हैं। स्मरण कर सकते हैं। **पुब्बेनिवासानुस्सति अभिञ्ञाण** पूरा हुआ। (४)

वह इद्धिमान पुग्गल देवताओं के दिव्य नेत्र के जैसे छुपे हुए - सुदूर के क्षेत्रों में स्थित वर्ण-वस्तुओं को जब देखना चाहता है तब - यदि देवलोक को देखूं तो उसके लिए तीनों प्रकाश कसिणों में से किसी एक को - उस देखने की इच्छा वाले क्षेत्र की ओर फैलाकर जागृत ज्ञान को प्रविष्ट होकर उठकर जैसे इस स्वाभाविक आंखों से देखते हैं वैसे ही मैं उस देवलोक को देखूं ऐसी पर्येषणा कर परिकम्म को करके अभिञ्ञापादक ज्ञान को प्रविष्ट होकर - उठकर – "इस अमुक देवलोक को मैं देखूं" - ऐसा अधिष्ठान को करता है। देख सकने वाला अधिष्ठान अभिञ्ञाण जवन पात होता है। दिखता है। फिर भी यदि प्रथम बार में न भी दिखे तो पादक ज्ञान को बार-बार प्रविष्ट होकर बार-बार अधिष्ठान करने को किया जाता है। देखा जाता है। निरय को देखना चाहने पर भी इसी प्रकार देखना होता है। देखते हैं। जिस भी स्थान को क्यों न देखना हो - देखने की इच्छा हो तो इसी विधि से देखते हैं। उन सत्तवों को देखकर ये (सत्तव) कैसे कम्म को करके - इस प्रकार के प्राणी सुख-वैभव को पाया है

पृष्ठ – ५९७

या दुःख पाया है - उसके कर्मों को देखना चाहें तो वह भी देख सकते हैं। उन कर्मों को जानने देखने वाले ञाण को **यथाकम्मुपग** अभिञ्ञाण कहते हैं; उन प्राणियों की भविष्य में होने वाली गति को भी देखना चाहने पर देख और जान सकते हैं। उस तरह के ज्ञान को - **अनागतंस** अभिञ्ञाण कहते हैं। इन दोनों तरह के ज्ञानों को मिलाकर

एक ही में रखकर दिब्ब चक्खु अभिञ्ञा कहते हैं। इस प्रकार यह पांच लोकीय अभिञ्ञाणं कहा गया है।

दिब्बचक्खुअभिञ्ञाण पूरा हुआ। (५)

शिष्यो इन पांच अभिञ्ञाणों में अरहत्त फल को जोड़कर छः अभिञ्ञा हुए। इस छः अभिञ्ञाणों में **पुब्बेनिवासानुस्सति, दिब्बचक्खु, अरहत्त फल** नामक आसवक्खय इन तीनों को **तीन-विज्जा** कहते हैं। छः अभिज्ञान में ही - विपस्सना ञाण, मनोमयिद्धि इन दोनों को लेकर **आठ विज्जा** कहते हैं। मनोमयिद्धि अर्थात् अपनी काया के भीतर आकाश की पर्येषणा विचार कर, निर्मित कर, उस काय गुहा के भीतर से अपनी एक लघु काया को निर्मित कर म्यान के भीतर म्यान को जैसे डालते-निकालते हैं वैसे डाल-निकालकर प्रदर्शित करने वाले प्रभाव (शक्ति) को कहते हैं। इद्धिविध शक्ति प्रभाव ही है। शिष्यों, इस तरह धर्मों का नाम व्यावहारिक नाम को भी जानना।

इति अभिञ्ञाविधाननयो

दूरबीन लगाकर निर्वाण-दर्शन आदास विधान खण्ड

शिष्यो - इस तरह **अभिज्ञाओं सहित ध्यान** समापत्तियों को प्राप्त कर जब **चित्त विज्ञान अत्यंत** तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म हो जाता है :–

सो विविच्चेव कामेहि - पे - चतुत्थझानं उपसम्पज्ज विहरति, सो एवं समाहिते चित्त परिसुद्धे - पे - ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति, सो इदं **दुक्खन्ति यथाभूतं** पजानाति – (पञ्चङ्गुत्तर योधाजीवोपम सुत्त)

आस्रवों का अन्त मग्ग ज्ञान - फल ज्ञान को चाहने वाले चित्त के विपश्यना के रास्ते के तरफ झुकाकर आगे बढ़ना होता है। नौ ज्ञानों में प्रत्येक को भावित कर - ज्ञान समापत्त से उठकर पीछे देशित किये जा चुके के अनुसार छः धातुओं को तिलक्खणा - **प्रकट होने** पर्यंत भावित किया जाता है। ऐनक, दर्पण दूरबीन लगाकर देखने पर स्वाभाविक रूप से दिखने वाले सूक्ष्म दूरस्थ आलम्बनों को ही सरलतापूर्वक सुखपूर्वक साफ-साफ जैसे देखते हैं उसी तरह शिष्यों, इस तरह के ज्ञान को भावित कर ज्ञान समाधि **को आधार** कर यदि विपश्यना भावना को तो अत्यंत गहन सूक्ष्म अति दूर - परे दिखा **हुआ तिलक्खणा** रम्मणों को भी बिना परिश्रम के सुखपूर्वक सरलता से अनुभव कर देख **सकते हैं**। आस्रव धर्मों को निःशेष करने वाला मग्गञ्ञाण - फलञ्ञाण उत्पन्न हो आता **है। अत्यंत** गहन, सूक्ष्म, दूरस्थ परे प्रतीत होने वाला चार सत्य आरम्मण निब्बान - **आरम्मणों को अनुभव** द्वारा देख सकते हैं। शिष्यों, तिलक्षणों को अनुभवद्वारा देख सकने **पर ही निर्वाण** को अनुभव कर तिलक्षणों को अनुभव कर सकने योग्य देखना भी निब्बान **को देखना** ही कहलाता है।

शिष्यो, इस तरह झान समाधि को भावित कर आधार बनाकर आस्रवों के अंत करने को लक्ष्य कर भगवान ने यह देशित किया है–

पठमं पाहं भिक्खवे झानं निस्साय आसवानं खयं वदामि...पे०... नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं पाहं भिक्खवे झानं निस्साय आसवानं खयं वदामि। (नवङ्गुत्तर पाळि)

पृष्ठ– ५९९

भिक्षुओ, प्रथम ध्यान को भी (आश्रय) मूलाधार बनाकर आस्रवों के क्षय को मैंने कहा है... द्वितीय...पे०...। भिक्षुओं, नेवसञ्ञानासञ्ञायतन झानं को भी आधार बनाकर सभी आस्रवों के क्षय को मैंने कहा है। अर्थात् प्रथम ध्यान से नेवसञ्ञानासञ्ञायतन तक सभी के बारे में भगवान ने यही कहा है।

शिष्यो, इस तरह सर्वप्रथम ध्यान की प्राप्ति के लिए कार्य करे। ध्यान (झान) को मूल आधार बनायें। उसे मूल आधार बनाकर प्रयत्न करने से प्राप्त मार्गफल को चेतोविमुत्ति मार्गफल और उस पुग्गल को चेतोविमुक्त पुग्गल कहते हैं। इस तरह झान को प्राप्त होने हेतु सर्वप्रथम बिना प्रयत्न किये, ध्यान को बिना आधार बनाये - केवल सीधे विपश्यना मार्ग को ही अभ्यास करने में भी पूर्व-पूर्व के निकट के जन्मों का झान समापत्त को प्राप्त किया हुआ अधिकार होने पर मार्ग के उत्पन्न होने के समय झान भी एकदम प्राप्त होकर आ जाता है। इस तरह झान का प्राप्त होकर आ जाने (अर्थात् ध्यान लग जाने) पर मग्गफल को भी **चेतोविमुत्ति मग्गफल**, पुग्गल को भी **चेतोविमुत्त पुग्गल** कहते हैं। इस तरह सर्वप्रथम झान को भी बिना प्राप्त किये... उसे आधार बिना बनाये ही मग्ग उत्पन्न होने के समय में भी बिना झान के आये - केवल मग्ग ही उत्पन्न हो आने पर मग्गफल को **पञ्ञाविमुक्ति मग्गफल** कहते हैं। उस पुग्गल को **पञ्ञाविमुत्त पुग्गल** कहते हैं। झान समाधि संबंध से शुष्क **सुक्खविपस्सक पुग्गल** भी कहते हैं। इस तरह व्यावहारिक नामों को भी जानो। इसलिये शिष्यों, तुम शिष्य गण भी कुल्लथेर आदि लोगों के समान अत्यंत गंभीर गहन सूक्ष्म अत्यंत दूर - दुर्दर्श निर्वाण धर्म को - झान समाधि को मूल आधार बनाकर - झान समाधि दूरबीन दर्पण लगाकर देखो। अप्पना झान समाधि को ही यदि नहीं प्राप्त कर पाये तो उपचार झान समाधि दूरबीन दर्पण से भी जब लगाकर देखना पड़े तो देखो। इस तरह समाधि दर्पण दूरबीन से लगाकर

पृष्ठ– ६००

देखोगे तो बिना थके-मांदे, सुख-शांति एवं सरलतापूर्वक ही लोकों के उस पार लोकोत्तर में स्थित अप्रतिम - अत्यंत सुखकारी मृत्यु रहित परम सुख अमृत पड़ाव (स्टेशन) स्वर्ण नगरी राजधानी नगर का दर्शन कर वहां पहुंचकर सुखपूर्वक रहने को प्राप्त कर सको।

शिष्यो, ऐसे ही कारणों को लक्ष्य कर मैंने यह कहा–

सुसुखं अमतं पूरं, लोकन्तं बुद्ध देसितं।
समाधिकेन दासेन, एथ सिस्सा दिसम्हसे।। (अर्थ छोड़ा)

शिष्यो, जेतवन विहार में निवास करते समय भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित कर कहा –

मंस चक्खुस्स उप्पादो, मग्गो दिब्बस्स चक्खुनो।
यतो च ञाणं उदपादि, पञ्ञाचक्खु अनुत्तरं।।
यस्स चक्खुपटिलाभा, सब्ब दुक्खा पमुच्चतीति।।
(इतिवुत्तक पाळि - तिचक्खु सुत्त)

भिक्षुओ, मांस चक्षु का उत्पादन दिव्य चक्षु के उत्पन्न हो सकने का मार्ग है। उस दिव्य चक्षु के कारण निर्वाण को जानने वाला

पृष्ठ – ६०१

ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। इस तरह उत्पन्न ज्ञान अनुत्तर प्रज्ञा चक्षु ही है। उस प्रज्ञा चक्षु को प्राप्त होने के कारण सभी दुक्खों से छुटकारा हो जाता है। मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

ऐसा भगवान ने जो उपदेश दिया उसको सुनकर - वे सुनने वाले भिक्षु - भगवान के निर्देशनुसार - जन्म के साथ मां के पेट से प्राप्त प्राकृतिक मंसचक्खु को आधार बनाकर दिव्य चक्षु, प्रज्ञा चक्षु आदि को प्राप्त होने के लिए प्रयत्नपूर्वक आचरण कर सभी दुक्खों से मुक्त हो गये। इसलिये तुम, मेरे शिष्य गण भी उन थेरों के तरह सभी दुक्खों से मुक्त होने के लिये मां द्वारा प्रजनित प्राकृतिक मंस चक्षु को आधार बनाकर अभी मेरे उपदेश के अनुसार दिव्य चक्षु, प्रज्ञा चक्षुओं से परिपूर्ण होने के लिये आचरण करो। प्रयत्न करो, शिष्यो।

समथ कम्मट्ठान की तैयारी पूर्ण हुआ।

कसिण से प्रारम्भ कर इस समथ कम्मट्ठान तैयारी - इस संपूर्ण को आदासविधान खण्ड का एक खण्ड जानो।

इति आदासविधान पव्वं

८ - पधान विधान पब्बं

शिष्यो, निब्बानगमन पव्वं, निव्वानपवेसन पब्बं, आदासविधान पब्बं - इन तीन पर्वो के द्वारा विपश्यना - कम्मट्ठान, समथ कम्मट्ठान की तैयारी विशेष आधान भलीभांति पूर्ण हो चुका।

पृष्ठ– ६०२

कर्मस्थान के अभ्यास का वर्णन

शिष्यो, निर्वाण को शीघ्रातिशीघ्र चाहने वाले - कर्मस्थानों का अभ्यास करने वाले - संसारभीरूक निब्बान पत्थयन्त कुलपुत्त यह सभी देशित कर चुके - दोनों कर्मस्थानों (कम्मट्ठानों) में सर्व प्रथम उद्देस गाथा सहित छः धातुओं की भावना विपश्यना कर्मस्थान को भलीभांति जानने योग्य प्रयत्न करना होता है। कंठस्थ करणीय को - कंठस्थ कर हृदयस्थ करने वाले को चित्त से हृदयंगम कर भलीभांति जानने योग्य करते हैं। उसके उपरांत समथ कम्मट्ठानों को भी उसी प्रकार कंठस्थ एवं हृदयस्थ करते हैं। इस तरह भलीभांति सीख जाने पर –

आवासो च कुलं लाभो, गणो कम्मञ्च पञ्चमं।
अद्धानं ञाति आबाधो, गन्थो इद्धीति ते दस।।

आवास, कुल उपासक, लाभ, गण (विहार आवास, सेवा करने वाला कुल, उपासक, लाभ, जिनके साथ अध्ययन कर रहे हैं वह गण) इत्यादि, तथा पांचवा – **कम्मञ्च**, नवकम्म (बुद्ध स्थापना, सुधारना, विहार बनाना, सुधारना इत्यादि) **अद्धानं** - रास्ता जाने का कृत्य, **ञाति** - (उपाध्याय, अन्तेवासिक, इत्यादि शासन दायाद - माता-पिता इत्यादि दायाद), **आबाधो** - (रोग), **गन्थो** - (ग्रन्थ कार्य), **इद्धि** - प्रातिहार्य आदि - इस तरह उस कम्मट्ठान को निश्चित होकर करने में बाधाएं देने वाली - दस पळिबोध हैं। बाधाएं हैं।

इस तरह अट्ठकथा आचार्यों के कहे अनुसार इन रुकावटों (पलिबोध) को जानकर इनको कम्मट्ठान के अभ्यास करने में रुकावट पळिबोध को भी हटाकर - कम्मट्ठान को भलीभांति अभ्यास करने के लिये प्रधान कार्य को करने का मौका प्राप्त हो सके ऐसे स्थान में जाकर बैठना होगा।

पृष्ठ– ६०३

१. महावासं नवावासं, जरावासञ्च पन्थतिं।
सोण्डिं पण्णञ्च पुप्फञ्च, फलं पत्थितमेवच।।

२. नगतं दारुना खेत्तं, विसभागेन पट्टनं।
पच्चन्तसीमा सप्पायं, यत्थ मित्तो न लब्भति।।

३. अट्ठारसेतानि ठानानि, इति विञ्ञाय पण्डितो।
आरका परिवज्जेय्य, मग्गं पटिभयं यथा।।

उपरोक्त १८ (अट्ठारह) स्थानों को ध्यान के अयोग्य माना है - पुराने अट्ठकथाकारों ने। पच्चन्तसीमा सप्पायं के अन्तर्गत तीन बिन्दु - (१) श्रद्धा हीनों के निकट का विहार प्रत्यंत देश (२) दो देश के मध्य की सीमा पर (३) मातुगाथ - यक्ष आदि से उपद्रवयुक्त विहार (३) आ गये हैं। कुल १८ हो जावेंगे।

पृष्ठ– ६०४

उसका अनुवाद छोड़ दिया। उन अट्ठारहों का नाम स्पष्ट है।

उन अट्ठारहों विहार के अतिरिक्त शेष– "कथञ्च भिक्खवे सेनासनं पञ्चङ्ग समन्नागतं होति" इत्यादि को भगवान द्वारा देशित किया गया है– विहार गोचर ग्राम से ना अति दूर - ना अति निकट होवे, कोलाहल शून्य हो, डंस, मच्छर, सरीसृपों की अधिकता न हो, चार वस्तुएं आसानी से प्राप्त होती हों, शिष्य (ध्यान) विश्वास करने योग्य मित्र, धर्म संबंधी प्रश्नों को पूछने पर बताने योग्य सह भिक्षु का प्राप्त होना - इन पांच अंगों से पूर्ण विहार प्रधान कार्य करने के लिये अत्यंत उपयुक्त होता है। ऐसे स्थान पर रहना - ध्यान करना चाहिए।

अट्ठकथाकारों ने उन अट्ठारह स्थानों का निषेध और इन पांच को ग्रहणीय कहा अवश्य है। मुख्य बात यह है कि वहां की उक्त बाधा हटाकर कोई ध्यान कर पाये तो वहां रह सकता है। मुख्य बात है कि ध्यान करने में कोई बाधा उपस्थित न हो।

यहां पर संयुत्त पाळि से एक उदाहरण दिया गया है।

पृष्ठ– ६०५

एक युवा भिक्षु बिना कुछ किये केवल भोजन कर - अपने निवास में केवल ध्यान किया करता था। वह विहार के संघवेय्यावच्च को नहीं करता था। अपना भिक्षा-पात्र धोकर रखता - और ध्यान में समाहित हो जाता था। साथ के सभी भिक्षुओं ने भगवान से शिकायत किया। भगवान उस भिक्षु को बुलाये! उससे पूछताछ भी किया तथा स्वयं पर चित्त विजानन ञाण से देखकर जान लिया कि यह झान समापत्त - फल समापत्त में है। भगवान प्रसन्न हुए - उनसे कहा कि उसको कुछ मत कहो। वह प्रधान कार्य में लगा है। हालांकि वहां उसका रहना 'महावास' था। पर वह अनुकूल बना लिया था। उस समय भगवान ने यह गाथा कही - उसकी प्रशंसा किया–

अथञ्च दद्धो भिक्खु, अय मुत्तम पुरिसो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहनं।।
(संयुत्त पाळि) (अर्थ छोड़ा)

पृष्ठ– ६०६

इस तरह उस युवा भिक्षु को उन अट्ठारह निषेधित वास में से 'महावास' में होते

हुए भी वहां वह ध्यान कर सकता था। तो वह ध्यान कर सकता था। तो वह आवस निर्दोष ही था।

शिष्यो, एक प्रकार से उन पळिबोध (रुकावट) को काट चुका बाधा रहित पुग्गल–

सो निवित्तं सेनासनं भजति, अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। (योधाजीवोपम सुत्त)

भिक्षुओ, उस कम्मट्ठान की भावना करने का इच्छुक भिक्षु अरण्य, रुक्खमूल, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, वनपत्थं, शांत खुले आकाश के नीचे विस्तृत मैदान, पुआलपूञ्ज, शांत विहार में निवास करता है।

इस तरह भगवान ने योधाजीवोपन सुत्त इत्यादि में देशित किया है। प्रधान कार्य (ध्यान कार्य) के लिये उपयुक्त नौ स्थानों विहारों में भी रहा जा सकता है।

शिष्यो, संक्षिप्त में ऐसा कोई भी स्थान जहां पर ध्यान भावना का अभ्यास किया जा सके - करने को प्राप्त हो सके - वह स्थान उपयुक्त रहने योग्य स्थान ही है। उसे एकदम उपयुक्त ही जानो। वहां रहकर अभ्यास किया जाता है। कर्मस्थानों में - उप्पना ज्ञान को प्राप्त होने योग्य बिना अभ्यास किये, बिना अभ्यास किये, बिना अभ्यास करना चाहे - केवल विपश्यना को ही

पृष्ठ– ६०७

अभ्यास करने का इच्छुक व्यक्ति - मरणानुस्सति, सब्बलोके अनभिरति सञ्ञा, उपसमानुस्सतियों को अनवरत भावित करते हुए सहायक आधार बनाकर - विपश्यना विधियों में चित्त ञाण को वश में करने वाला जो कोई भी एक विधि लगे - उसको हमेशा भावित करते हुए अभ्यास करना चाहिए। विपश्यना योगी - मैत्री, करुणा, मुदिता को अधिक भावित न करें। अप्पना ज्ञान को आधार करने के लिये अभ्यास करने की इच्छा वाले अपने चित्त को वश में करने योग्य - जिसे समझे उस विपश्यना विधि किसी एक को हमेशा चित्त में हथियार-सा रखकर अप्पना ज्ञान को उत्पन्न करने की इच्छा वाला किसी एक समथ को हमेशा अभ्यास करना चाहिए।

उस समथों में भी रागचित्त बलवान रहने वाले व्यक्ति के लिए असुभ - कायगतासतियां विशेष उपयुक्त होती है। दोसचरित्त बलवान व्यक्ति के लिये मेत्ता करुणा विशेष उपयुक्त है। मोहचरित्त वितर्कचरित्त बलवान व्यक्तियों के लिये आनापान विशेष उपयुक्त है। यदि कायिक बल से पूर्ण - अधिक देर तक बैठ सकने वाला स्वस्थ व्यक्ति हो तो उसे चाहे कोई भी हो कसिण विशेष उपयुक्त होते हैं। ऐसा होते हुए भी अपने पूर्व जन्मों में किये गये अभ्यास किया गया कर्म स्थान का अभ्यास से मिलाप होते ही, सुनते ही, देखते ही उसके चित्त में वह बहुत प्रिय लगने लगता है। ऐसा कोई भी क्यों

न हो - उस अपने चित्त को प्रिय लगने वाला कोई भी एक कम्मट्ठान को ही बहुलीकृत करे! भावित करे! वैसे ही करना चाहिए।

अप्पना झान को प्राप्त होने हेतु अभ्यास किये जाने वाले समथ योगी को - उस अपने हथियार कम्मट्ठान को भावित करते समय कभी-कभी प्रमाद होकर, चित्त शुष्क होकर, शक्ति क्षीण होकर - आने वाली अवस्थाओं में संघानुस्सति, सीलानुस्सति, देवतानुस्सति को थोड़ा-थोड़ा भावित करना चाहिए - पर्येषणा करना होता है। देवतानुस्सति में भी इस तरह के योगी में कामावचर देवता से काम नहीं बनेगा - उसे स्मरण नहीं कर - ब्रह्मा देवों को ही केवल अच्छा मानकर स्मरण करना चाहिए। ब्रह्मा देवतानुस्सति को ही भावित करना चाहिए। मरणानुस्सति को भी थोड़ा-थोड़ा विचार करना होता है। मेत्ता को छोड़कर शेष सभी समथ को भावित करने वाले पुग्गल

पृष्ठ– ६०८

को मेत्ता को भी कभी-कभी थोड़ा भावित करनी चाहिए। वे दोनों समथ योगी तथा विपस्सना योगी, आहारों में आहारे पटिकूल सञ्ञा को भावित करें। विशेषकर समथ योगी पुग्गल को विशेष तौर पर आहारे पटिकूल सञ्ञा में स्थापित रहना चाहिए। भावित करना चाहिए। वे दोनों योगी बुद्धानुस्सति की भी कभी-कभी भावना करनी चाहिए। विशेष रूप से समथ योगी को बुद्धानुस्सति की भावना करनी चाहिए। और विपश्यना योगी को - धम्मानुस्सति की भावना करनी चाहिए। संघानुस्सति की भी भावना करनी चाहिए। चागानुस्सति भावना को उपासकों के लिये - सारणिवत्त पूर्ण करने वाले भिक्षुओं के लिये कर्म स्थान है। महायोगी के लिये वह चागानुस्सति व्यर्थ है।

शिष्यो, इस तरह भावित विकसित कर निमित्त प्राप्त होने पर चक्रवर्ती सत्त्व गर्भ के समान उस निमित्त की रक्षा करे। तब - उस समय–

आवासो गोचरो भस्सं, पुग्गलो भोजनं उतु।
इरियापथोति सत्ते ते, असप्पाये विवज्जये।।

सप्पाये सत्त सेवेथ, एवञ्हि पटिपज्जतो।
न चिरेनेव कालेन, होंति कस्सचि अप्पना।।

(१) आवास, (२) भिक्षाटन ग्राम (गोचर ग्राम), (३) भस्सं - बातचीत करना, (४) पुग्गल, (५) भोजन, (६) ऋतु, (७) इरियापथ, इन सातों को अपने से अलाभप्रद (असप्पाय) को विवर्जित करें - उससे बचें। सातों लाभप्रदों को जो अपने से उपयुक्त हों उनके आश्रित रहें। इस तरह उन सातों को - अपने से जो अलाभप्रद हों उनसे बचकर लाभप्रदों को आश्रित होने पर प्रतिपादन करने पर कुछ पुग्गलों के प्रति - अचिरकाल में ही अप्पना झान जवन को उत्पन्न करता है।

पृष्ठ– ६०९

इस प्रकार अट्ठकथाकारों के आदेशानुसार आवास - गोचर ग्राम, बातचीत, जन संपर्क (पुग्गल), आहार, ऋतु, इरियापथ इन सातों को अपने से अलाभप्रदों से बचकर - सप्पायों (लाभप्रदों) को ही केवल आश्रित होकर उस निमित्त आलम्बन को रक्षित कर भलीभांति आदरपूर्वक बिना विस्मृत हुए - आचरण कर अभ्यास करना चाहिए। इस तरह अभ्यास करने पर अचिरकाल में ही अप्पना ज्ञान को पहुंच सकते हैं। इस तरह नहीं करने पर प्राप्त निमित्त नष्ट हो जा सकता है। देर होने पर भी रह सकता है। निमित्त प्राप्त हो जाने पर से ही नहीं बल्कि निमित्त अप्राप्ति के समय से लेकर... अभ्यास करने के समय से ही इन सातों अलाभप्रदों (असप्पायों) को परहेज करना होता है। लाभप्रदों का सेवन करना होता है। विशेषकर समथ योगी पुग्गल का - अधिक बातूनी होना वस्तुतः उचित नहीं। तिरच्छान संबंधी बातों को कदापि नहीं करना चाहिए। धर्म संबंधी बातचीत को भी अधिक कहने पर निमित्त आरम्मण नष्ट हो जाता है। अधिक बातचीत नहीं करनी चाहिए। ग्रन्थों में जो देखा है - उसे भी बहुत ज्यादा पाठ नहीं करना चाहिए।

शिष्यो, अभ्यास करते समय भी छक्कङ्गुत्तरपाळि सीतिभाव सुत्त में भगवान की देशनानुसार चित्त को जब कभी-कभार प्रमादी हो जाय तब वीरिय को तीक्ष्ण होने के लिये सहायक कम्मट्ठानों से ऊपर उठाकर, कभी काल चंचल हो जाने पर चित्त को एक ही समाधि आलम्बन से दबाकर, कभी-कभार चित्त के शुष्क हो जाने पर श्रद्धा का स्नेहन उत्पन्न कर मन प्रसन्न करने के लिये - बुद्धानुस्सति इत्यादि सहायक कम्मट्ठानों द्वारा मुदित कर कम्मट्ठान आरम्मण में भलीभांति उत्पन्न कर रहने पर चित्त को न ऊंचा उठाये, न दबाये, न प्रसन्न किये हुए उपेक्षा कर, ज्ञान अप्पना - मग्ग अप्पना धर्मों को अत्यंत चाहने वाला आशा (आसाछन्द) रखते हुए क्लेशों की अग्नि शांत कर निब्बान धर्मों में चित्त को अत्यधिक झुकाकर मुदित रहते हुए– "यतं चरे यतं तिट्ठे, यतं अच्छे यतं सये" इत्यादि से

पृष्ठ– ६१०

इतिवुत्त पाळि, पहितत्त सुत्त में की देशनानुसार चारों इरियापथों में बिना स्मृति को खोये - दृढ़तापूर्वक अभ्यास करना होता है। इस तरह अभ्यास करने वाला पुग्गल, आरद्धवीरिय पुग्गल, पहितत्त पुग्गल - पधानिक पुग्गल कहलाता है। शिष्यों, इस तरह अभ्यास किया जाता है। इस तरह पधान– तैयारी को जानकर, याद कर तुम शिष्य गण अभ्यास करो।

इतिपधानविधान पब्बं

९ - सिस्सानुसासनी पब्बं

प्रोत्साहित करने वाला, अनुसासनी का वर्णन

शिष्यो, भगवान जेतवन विहार में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर **"अपटिवानं सुदाहं भिक्खवे पदहामि, कामं तचो च न्हारु च"** इत्यादि से अपने उत्साहपूर्ण,

विना पीछे हटे प्रधान कृत्य को करके फल को प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित किये हैं। उसे मैं तुम्हें उद्धृत करता हूं।

"तुम्हे चे भिक्खवे अपटिवानं पदहेप्पाय, कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु सरीरे उपसुस्सतु मंस लोहितं, यन्तं पुरिसथामेन पुरिसवीरियेन पुरिस परक्कमेन पत्तब्बं, न तं अपापुणित्वा वीरियस्स सण्ठानं भविस्सतीति, तुम्हेपि भिक्खवे नचिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचरिय परियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथ, तस्मा तिह भिक्खवे एवं सिक्खितब्बं, अपटिवानं पदहिस्साम, कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु सरीरे, उपसुस्सतु मंस लोहितं

पृष्ठ– ६११

यन्तं पुरिसथामेन पुरिसवीरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं, तं अपापुणित्वा वीरियस्स सण्ठानं भविस्सतीति। एवञ्हि वो भिक्खवे सिक्खितब्बन्ति।" (दुकअङ्गुत्तर पाळि, अपटिवान पधानसुत्तं)

"भिक्षुओ, यदि तुम भी सतत प्रयत्न करते रहोगे - चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य, तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्त हो सकता है, बिना उसे प्राप्त किये प्रयत्न नहीं रुकेगा - तो भिक्षुओ, तुम भी जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुल-पुत्र ठीक ही घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो जाते हैं, उस श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य फल को इसी शरीर में अपने आप जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विहार करोगे।

पृष्ट– ६१२

"इसलिये भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए; निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे। - चाहे त्वचा, नसें, हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्त हो सकता है, बिना उसे प्राप्त किये प्रयत्न नहीं रुकेगा। भिक्षुओं, ऐसा ही सीखना चाहिए।" (अङ्गुत्तरनिकाय - प्रथम भाग - पृष्ठ ५२-५३)

[यहां - इस पर्व में विभिन्न उद्धरणों द्वारा - सेक्ख्य पब्बत 'अशें तिलोक' ने अपने शिष्यों को अनुसासनी को बताया है, उपदेश दिया है - मैं यहां पर केवल उन उद्धरणों का सार संकलन दे रहा हूं।– अनुवादक]

उपरोक्त प्रवचन को, उपदेश को, धारण कर - आचरित कर, जैसे वे शिष्य गण **निर्वाण को प्राप्त** किये - वैसे ही **तुम मेरे शिष्य गण भी– "बिना उसे प्राप्त किये प्रयत्न नहीं रुकेगा"–** ऐसा संकल्प कर पुरुषार्थ करो।

यहां पर - केसकारी युवती का प्रसङ्ग दिया गया है। वह कायगता सति को केवल

परिकम्म ञान तक आधार बनायी। विपश्यना का अभ्यास निरन्तर की। सोतापत्ति मग्गफल को प्राप्त हुई। कुछ ही समय बाद वह मरी। तावतिंस देवलोक में शक्र की प्रिया

पृष्ठ– ६१३

रानी हुई। वहां पर भी मनुष्य जीवन के समय के अर्थ का निरन्तर अभ्यास कर मार्गफल विशिष्ठ को प्राप्त कर - अपनी अवस्था का वर्णन खूब प्रसन्नतापूर्वक - उद्गार स्वरूप करती है :–

वीरियस्स फलं पस्स, सासने तस्स तादिनो।
कामं भिज्जतु यं कायो, नेव अत्थेत्थ सण्ठानं।।
(विमान वत्थु पाळि - केसकारी की उदान गाथा का उदान)

– उस भगवान बुद्ध के सासन में मेरे वीर्य के फल को देखो। मैं उस प्रधान के अभ्यास के समय - मेरी काया वस्तुतः नष्ट हो गयी। उस प्रधान कृत्य - वीर्य में रुकावट नहीं आने दी। ऐसे प्रयत्न की।

वह स्त्री होकर अनवरत प्रयत्नशील रही। उस **केसकारी** से प्रेरणा लो, शिष्यों। वह युवती होकर इतना कठोर प्रयत्न कर सकी तो तुम युवा होकर वैसे पीछे हटोगे।

शिष्यो, भगवान के परिनिर्वृत्त होने के पश्चात की घटना। एक बहेलिया जीवन को त्याग कर भिक्षु हुआ। नाम था **मल्लियथेर**। आचार्य से निवेदन किया। आचार्य के बताने से निरय के ताप को जाना।

पृष्ठ– ६१४

भयभीत हुआ। निरय के भय से मुक्त होने के लिये विपश्यना का अभ्यास बड़ी कठोरता से आरम्भ किया। रात को जब - गहरी रात हो जाती, नींद आता तो - मिट्टी के मटके को रखने के लिये पुआल की जो गीली कुंडलीनुमा आधार (विड्ढई) को उठाकर अपने सिर पर रखकर - बिना सोये - चंक्रमण करते (प्रयत्न करते) हुए –

"आरब्भथ निक्कमथ, मुञ्जथ बुद्ध सासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो।।

यो इमस्मिं धम्म विनये, अप्पमत्तो विहिस्सति।
पहाय जाति संसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सति।।"
(सगाथा वग्ग संयुत्त पाळि, अरुणवती सुत्त)

इस गाथा को युवा सामणेर के पाठ को सुनकर समझा कि यह सुत्त भगवान मुझे लक्ष्य कर ही देशित किया है। ऐसा विचार कर अत्यंत प्रीतियुक्त हुआ। सतत प्रयत्न करते हुए क्षण भर में अनागामि फल को प्राप्त कर लिये। उस समय अपाय से मुक्त

होकर सुख को प्राप्त होने का निरीक्षण कर उत्तरोत्तर प्रसन्न हुआ। उसके मुंह से यह उदान निकला –

अल्लं पलालपुञ्जाहं, सीसेनादाय सङ्कमिं।
पत्तोस्मि ततियं ठानं, अहोनुभावो मारिसा।।
(अङ्गुत्तर अट्ठकथा पाळि, उदान गाथा) (अर्थ छोड़ा)

पृष्ठ– ६१५ - ६१६

शिष्यो, इससे प्रेरणा लेकर अपने प्रधान कार्य में प्रयत्नशील रहा।

वण्णुपथ जातक (२) द्वारा प्रेरणा दिया गया है - वह युवा भिक्षु एक वर्ष वास के उपरान्त धर्म के न प्रकट होने पर प्रयत्न त्याग देता है। भगवान को पता चलता है। उसे पास बुलाते हैं। पूर्व जन्म में कन्तार पार करते समय पानी समाप्त हो जाने पर - सार्थवाह मुखिया के कहने पर साठ हाथ खोदने के बाद पत्थर का चट्टान इसी ने तोड़ा था। जल पाये थे। तब के मुखिया भगवान ही थे। हताश युवा भिक्षु ही - तब का युवा था। इस प्रकार क्यों हताश हुआ। प्रयत्न कर! इस जन्म में न भी प्राप्त हुआ है। आगामी जन्म में प्राप्त होगा। उत्साहपूर्वक काम कर - इतना कहकर गाथा में उपदेश दिया –

अकिलासुनो वण्णपथे खणन्ता, उदङ्गणे तत्थ पपं अविन्दुं।।
एवं मुनि वीरियबलूपपन्तो, अकिलासु विन्दे हदयस्स सन्तिं।।
(पाठ जातक पाळि, वण्ण पथ जातक (वण्णु पथजातक) (अर्थ छोड़ा)

पृष्ठ– ६१७

गाथा के अन्त में वह सोतापत्ति फल को प्राप्त हुआ।

उसी तरह शिष्यों धुरनिक्खित्त बिना हुए प्रयत्न करो। हताश होना ही व्यर्थ है। वीर्य करो - प्रयत्न मत छोड़ो।

याव तिट्ठन्ति सुत्तन्ता, विनयो याव दिब्बति।
ताव दक्खन्ति आलोकं, सूरिये अब्भुट्ठिते यथा।।
(अङ्गुत्तर अट्ठकथा - धम्मकथिक थेराभत सुत्तं)

शासन का पांच हजार क्षेत्र समय में मार्गफल प्राप्त हो सकने का काल है। तिहित पुग्गलों का रहने वाला काल होता है। अभी के समय अनेकों तिहित पुग्गल हैं।

पृष्ठ– ६१८ - ६१९

शिष्यो, भगवान कुसिनारा राज्य में परिनिर्वाण के पूर्व सुभद्द परिव्राजक को बुलाकर देशित किये –

इमे च सुभद्द भिक्खु सम्मा विहारेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्स – (अर्थ छोड़ा)

उस उपदेश के अनुसार - लोक के भीतर अरिहन्त होने के लिये, शैक्ष्य आर्य होने के लिये - प्रयत्न कर बिना पीछे हटे - प्रयत्न करो। शिष्यों, भगवान जेतवन में विहार करते समय भिक्षुओं को संबोधित कर कहा –

दुरक्खातो ते भिक्खवे धम्म विनये यो आरद्धवीरियो, सो दुक्खं विहरति। यो कुसीतो, सो सुखं विहरति। तं किस्स हेतु, दुरक्खातत्ता भिक्खवे धम्मस्स। स्वाक्खाते भिक्खवे धम्मविनये यो कुसीतो, सो दुक्खं विहरति। यो आरद्धवीरियो, सो सुखं विहरति। तं किस्स हेतु। स्वाक्खातत्ता भिक्खवे धम्मस्स। (एकङ्गुत्तर पाळि, दुक्ख सुख विहार सुत्त) (अर्थ छोड़ा)

इस उपदेश को सुनते हुए न वे थकान महसूस किये न तो कोई दुःख - वे हल्का-फुल्का सुखी महसूस करते हुए - बिना थके प्रयत्न पुरुषार्थ को करते हुए निर्वाण को प्राप्त हो गये।

पृष्ठ– ६२० - ६२१ - ६२२

मेरे शिष्यो - तुम लोग भी उन थेरों के समान निर्वाण के सुख को प्राप्त हो सकने के लिये भगवान द्वारा आख्यात - जो कि सुन्दर ढंग से स्वाखात है - जिसका वर्णन मैंने किया उसका बिना थकान के सतत - प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करो।

यो हि कोचि साधवे इमानि कम्मट्ठानानि एवं आरब्भेय्य पण्णासवस्सानि, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं, दिट्ठेव धम्मे उत्तरिमनुस्स धम्म पटिलाभो, सति वा जाति ञाण विरहिते सुगति गमनं, तिट्ठन्तु ताव साधवे पण्णास वस्सानि, योहि कोचि साधवे इमानि कम्मट्ठानानि एवं आरब्भेय्य तालीसवस्सानि, तिंसवस्सानि, वीसतिवस्सानि, दसवस्सानि, तिट्ठन्तु ताव साधवे दसवस्सानि, यो हि कोचि साधवे इमानि कम्मट्ठानानि एवं आरब्भेय्य सत्तवस्सानि, ततो वा ओरं तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं। दिट्ठेव धम्मे उत्तरि मनुस्स धम्म पटिलाभो सति वा जाति ञाण विरहिते सुगति गमनन्ति।

तुम्हेहि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथा गता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धनाति।।
(सेक्ख्यभासित फल पाटिकङ्ख सुत्तं)

(अन्वयार्थ दिया है - छोड़ा) (अर्थ स्पष्ट है - छोड़ा)

शिष्यो, प्रमाद रहित होकर प्रयत्न में लग जाओ।

एत्तावता खो साधवे मया साधुञ्च वो सम्म देसितं, साधुगामिनी पटिपदा च सम्मा देसिता,

यं खो साधवे आचरि येन करणीयं सिस्सानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तंमया, अत्थि साधवे एतानि - पब्बतानि, एतानि सुञ्ञागारानि एतानि रुक्खमूलानि, आरब्भथ साधवे मा पमादत्थ, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ, अयं को अहनाकं अनुसासनीति। (सेक्ख्यभासित सिस्सानुसासनी सुत्त)

इति सिस्सानुसासनी पब्बं

यहां आकर (१) साधुसाविनी पर्व (२) निब्बानकित्तन पर्व (३) मग्गरथ विधान पर्व (४) मग्गरथ पेसन पर्व (५) निब्बान गमन पर्व (६) निब्बान पवेसन पर्व (७) आदास विधान पर्व (८) पधान पर्व (९) सिस्सानुसासनी पर्व, इस प्रकार नौ पर्व वाला पण्डित वेदनिय दीपनी नामक यह अनुत्तर परम सुन्दर अतुल कम्मट्ठान ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

उपसंहार

[इस उपसंहार में "अशें तिलोक" सयाडो द्वारा रचित १७ गाथाएं हैं। प्रत्येक का अन्वयार्थ भी दिया गया है। मैंने गाथाओं का मात्र देवनागरी लिपियांतर देकर अन्वयार्थ छोड़ दिया है।]

१. नगरे बजी नामम्हि, गामे खोसन्ति नामके।
सम्पुण्णे धनधञ्ञेहि, अड्ढे धीर विरुहने।।

२. तेत्तिंस द्वेकसाकम्हि, विजाता हं सुनिब्भयो।
तत्थ वड्ढित्वा वयो पत्तो, पब्बजिं तस्स सन्तिके।।

३. भदन्त जवतो थेरो, पक्खी रम्मवने ठितो।
तेपिटक भाणकोति, विस्सुतो यो मुनी सभो।।

४. तस्साहं सन्तिके गण्हिं, चूळ विनयचातुकं।
कच्चायनं अभिण्हञ्च, परित्तञ्चापि सङ्गहं।।

५. त आचेरं भिवन्दित्वा, निक्खम्म तम्हाचेरतो।
कल्याणमित्तं महा पञ्ञं, तेपिटकपारङ्गतं।।

६. गवेसं नापुणिं सुद्ध, "लेटी" आचेर सन्तिकं।
तस्साहं सन्तिके गण्हिं, पावचं जिनदेसितं।।

७. केचि गन्थे सयं पेक्खि, केचि आचेर सन्तिके।
एवं छपञ्चवस्सेहि, पापुणिं अतिछेकतं।।
साट्ठकथे तेपिटके, अपण्डित सुदुत्तरे।।

पृष्ठ – ६२५

८. तञ्चाचेर भिवन्दित्वा, निक्खम्म तम्हाचेरतो।
पधानाय पवीसिंहं, अरञ्ञं बुद्धवण्णितं।।

९. सप्पायट्ठान मेसन्तो, हेट्ठिमुपरि द्विरट्ठे।
हेट्ठिये नगरं तं हं, 'चाईठो'ति अभिविस्सुतं।
पापुणिं सोणथेरादि, पतने सोपणभूमियं।।

१०. नगरस्स अविदूरे, तस्स पुरत्थिमे नगो।
सेक्खानं आवासत्तो च, तेहि निविट्ठ ठानत्ता।
सिक्खन्तत्ता मुनी तम्हि, सेक्ख्योति लद्धनामको।।

११. तस्स मुद्धनि वेहारे, सङ्कमे साधुकारिते।
धातुभारो रोपनाय, पदहे धम्ममुत्तमं।।

१२. एवं पधानपहीतत्तं, रत्तिं दिव मतन्दितं।
इन्दको नन्दमालो च, पञ्ञो, नन्दो च, सुन्दरो।
तेचञ्ञेपि बहू सिस्सा, इति मं अभियाचिंसु।।

१३. धम्मं देसय त्वंलिक्ख, पञ्ञवन्त मुनीसभ।
लोकस्स नो च अत्थाय, अञ्ञातारो भविस्सरे।।

१४. तेहि मेवं याचितेन, सेक्ख्यनगधिवासिना।
देसितो सम्मलेखितो, धम्मो यं बुद्धिवेदितो।।

१५. सुनिट्ठितो अयं गन्थो, निब्भयो निरुपद्दवो।
सत्त छ द्वेक साकम्हि, मासे सावणे संयुते।
एवं सब्बेपि पजाय, निट्ठं गच्छन्तु सुन्दरा।।

१६. नेक्खमो अरियमग्गो च, पण्डित वेदितो अयं।
इमे मया तयो गन्था, देसिता सम्मलेखिता।।

पृष्ठ– ६२६

१७. याव तिट्ठति मेलिन्दो, ताव तिट्ठन्तु ते तयो।
याव दिब्बति भाणूमा, ताव दिब्बन्तु भंकराति।।

पृष्ट ६२६, ६२७...६३२ तक अन्वयर्थ है - उसे छोड़ दिया हूं।

निब्बानपच्चयो होतु

निट्ठितो पण्डितवेदनिय दीपनी गन्थो।

••••